प्रवचन -क्रम

103...तृष्णा की जड़
....2
104...धम्मपद का पुनर्जन्म
....25
105..तृष्णा को समझो
....51
106..बुद्धत्व का कमल
....77
107..बोध से मार पर विजय
....103
108..दर्पण बनो
....130
109..धर्म का सार --बांटना
....157
110..भीतर डूबो
....183
111..समाधि के सूत्रः एकांत , मौन , ध्यान
....211
112...मंजिल है स्वयं में
....236

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ तीन प्रवचन

तृष्णा की जड़

तण्हावग्गो

मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा बड्ढतिमालुवा विय।
सो पलवती हुराहुरं फलमिच्छं"व वनस्मिं वानरो।। 274।।

यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पबड्ढन्ति अभिवट्ठं"व वीरणं।। 275।।

यो चेतं सहती जीम्मं तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति उदविन्दू"व पोक्खरा।। 276।।

तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता।

तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो"व वीरणं।
मा वो नलं व सोतो व मारो भिंज पुनप्पुनं।। 277।।

यथापि मूले अनुपद्दवे दल्हे
छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहते
निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं।। 278।।

यस्स छत्तिंसति सोता मनापस्सवना भुसा।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं संकप्पा रागनिस्सिता।। 279।।

सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तंच दिस्वा लतं जातं मूलं पांंय छिन्दथ।। 280।।

एक कली...
नन्हीं सी
कल ही तो मौसम
मनाया था नेह का
गंध भरी देह का
आज लाचार गयी छली
एक कली...
एक सुबह एक शाम
इतनी-सी जिंदगी
झरी पाखें सगी
आंखें उदास रूप-जली
एक कली...
धूल की अलगनी पर
टंगे सपने अभी
मटैले से सभी
बुझे-बुझे रंग उम्र ढली
एक कली...
ऐसा ही जीवन है; अभी है, अभी नहीं; क्षणभंगुर है। इस क्षणभंगुरता को जिसने समझा, वही धर्म में प्रवेश करता है। इस क्षणभंगुरता को जिसने न समझा, वह भटकता रहता। कोल्हू के बैल जैसा जुता गोल-गोल घूमता रहता। इसी को बुद्ध ने कहा है--एस धम्मो सनंतनो।

2

जीवन क्षण-क्षण परिवर्तनशील है, इसे देख लेना परम नियम है। ऐसा हमें दिखायी नहीं पड़ता। आंख पर कोई पर्दा है, जो देखने नहीं देता। रोज देखते हैं चारों तरफ मौत को घटते, फिर भी यह बात मन में बैठती नहीं कि मैं भी मरूंगा। रोज देखते हैं पीले पत्तों को गिरते, लेकिन मन यही कहे जाता है कि मैं सदा हरा रहूंगा। रोज देखते हैं जवानी को बुढ़ापे में बदलते, स्वास्थ्य को बीमारी में गिरते; रोज देखते हैं किसी को धूल में खो जाते, लेकिन मन यही आशा संजोए रहता है--यह औरों के साथ होता है, मेरे साथ न हुआ, न होगा। मैं अपवाद हूं।
जिसने समझा अपने को अपवाद, वह संसार से मुक्त न हो सकेगा। जिसने समझा
कि नियम शाश्वत है, कोई भी अपवाद नहीं... ।
जो हरा है, वह पीला होकर झरेगा। जो जन्मा है, वह मरेगा। जो अभी युवा है,
कल थकेगा, बूढ़ा होगा। यहां हर चीज बनती और बिगड़ती है। सतत प्रवाह है। यहां कुछ भी थिर नहीं। एक क्षण भी थिर होने की आशा रखना महाभ्रांति है। और थिर होने की आकांक्षा से ही सारे दुखों का जन्म है।
जो नहीं होने वाला है, वह हो जाए, इसी आकांक्षा में तो दुख की उत्पत्ति है। क्योंकि वह नहीं होगा और तुम दुखी होओगे।
जवान हो, जवानी को थिर बना लेने की आकांक्षा है। सदा जवान रहूं! यह नहीं होगा; कभी नहीं हुआ; यह हो नहीं सकता। यह नियम के विपरीत है। तुम असंभव की कामना कर रहे हो। फिर कामना टूटेगी। पूरी तो हो नहीं सकती, टूटेगी ही; तब विषाद होगा, तब गहन अंधेरे में खो जाओगे। और तब ऐसा लगेगा कि पराजित हुए। पराजित सिर्फ कामना हुई, तुम नहीं। लेकिन कामना से समझा था एक अपने को, इसलिए लगता है पराजित हुआ। फिर भी सीखोगे नहीं! फिर-फिर क्षणभंगुर को पकड़ोगे।
पानी के बबूले को थिर बनाने की आकांक्षा है! जो फूल तुम्हारी बगिया में खिला--सदा खिला रहे; ऐसा ही खिला रहे; ऐसी ही सुगंध उठती रहे। झरेगा फूल कल सुबह। पखुड़ियां गिरेंगी धूल में, तब तुम रोओगे। तब आंसू सम्हाले न सम्हलेंगे। लेकिन तुम्हारे रोने का कारण तुम ही हो। तुमने गलत चाहा था; तुमने असंभव चाहा था; जो नहीं होता है, वैसा चाहा था। इसलिए विषाद है। काश! तुम देख लो उसे जो होता है, और वही चाहो, जो होता है, तो चाह मर गयी। चाह का अर्थ ही हैः जो होता है, उसके विपरीत चाहना। जैसा नहीं होता है, वैसा चाहना। जो होता है, उसकी स्वीकृति, उसके साथ समरस हो जाना--चाह मर गयी।
जवानी बूढ़ी हो जाती है, तुम भी स्वीकार कर लेते हो। जीवन मृत्यु में परिणत हो जाता है, तुम अंगीकार कर लेते हो। सुख दुखों में बदल जाते हैं; दिन रातों में ढल जाते हैं; तुम जरा भी ना-नुच नहीं करते। तुम कहते होः जो होता है, होता है। जैसा होता है, वैसा ही होगा। तो कहां वासना है?
वासना सदा विपरीत की वासना है। इस विपरीत की आकांक्षा को बुद्ध ने कहा है--तन्हा, तृष्णा।
किसी से तुम्हारा प्रेम हुआ, अब तुम सोचते होः यह प्रेम सदा रहे। यहां कुछ भी सदा नहीं रहता। अब तुम कहते होः इस प्रेम को बांधकर रख लूं। द्वार-दरवाजे बंद कर दूं--कि यह प्रेम का झोंका कहीं बाहर न निकल जाए! हथकड़ियां डाल दूं; बेड़ियां पहना दूं--प्रेम को। तालों पर ताले जड़ दूं; कहीं यह प्रेम चला न जाए! बामुश्किल तो आया है। कितना पुकारा तब आया है!
याद रखनाः न तुम्हारे पुकारने से आया है, न तुम्हारे रोकने से रुकेगा। आता है अपने से, जाता है अपने से।
तुम चेष्टा करके प्रेम कर सकोगे? तुम्हें कोई आज्ञा देः करो इस व्यक्ति को प्रेम; तुम कर सकोगे? जब आता है, तब आता है। तुम अवश हो।
जिसके आने पर बस नहीं है, उसके जाने को कैसे रोकोगे? जो आते समय तुम्हारे हाथ से नहीं आया, वह जाते समय तुम्हारे हाथ से रुकेगा भी नहीं।
हवा का झोंका है--आया और गया। इस सत्य को समझ लेना धर्म को समझ लेना है। क्योंकि इस सत्य की समझ में ही तृष्णा गिर जाती है, मांग मिट जाती है। जो होता है, उसे स्वीकार कर लेते हो। जो नहीं होता, वह नहीं होता। उसे भी

स्वीकार कर लेते हो। फिर जैसा है, वैसे में ही तृप्ति है। इस तृप्ति में ही तृष्णा से मुक्ति है।
तृष्णा को ठीक से समझना जरूरी है, क्योंकि तृष्णा का ही सारा जाल है।
तुम बंधे संसार से नहीं, तुम बंधे तृष्णा से। संसार को गालियां मत दो।
तृष्णा से बंधे हो तुम, तृष्णा को समझो। तृष्णा को भी गालियां मत दो। क्योंकि गालियां देने से कोई समझ पैदा नहीं होती; निंदा करने से कुछ बोध नहीं पैदा होता। उतरो! आंख खोलकर तृष्णा को देखो। कितनी बार हारे हो! सदा हारे हो! जीत कभी हुई नहीं। किसी की नहीं हुई। और जब तुम्हें लगती है, जीत हो रही है, तब भी ध्यान रखनाः तुम्हारी नहीं हो रही है। इसलिए हार जब तुम्हारी होगी, तब भी तुम्हारी नहीं होगी।
यहां जीवन अपने नियम से चल रहा है। कभी-कभी संयोगवशात तुम नियम के साथ
पड़ जाते हो। साथ पड़ जाते हो, अच्छा लगता है। जब-जब साथ छूट जाता है, तब-तब दुख और पीड़ा होती है; कांटा गड़ता है।
तुम सदा नियम के साथ हो सकते हो, फिर महासुख है; फिर आनंद है। सदा नियम
के साथ होने का अर्थ हैः जो होगा, उससे अन्यथा नहीं चाहूंगा। जैसा होगा, उससे रत्तीभर भी अन्यथा नहीं चाहूंगा। दुख होगा, तो दुख अंगीकार करूंगा। सुख होगा, तो सुख अंगीकार करूंगा। मैं अपने को बीच से हटा लूंगा। जो होगा, उसे होने दूंगा। मैं रिक्त हो जाऊंगा। अड़चन न डालूंगा। बाधा न डालूंगा। मांग खड़ी न करूंगा। अपेक्षाएं न रखूंगा। मैं दूर हट जाऊंगा, जैसे मैं रहा नहीं। आए हवा का झोंका--ठीक। न आए--ठीक। सूरज की किरण आए--ठीक। न आए--ठीक। उजाला आए, अंधेरा आए; सुख के दिन और दुर्दिन आएं; जो भी आता हो, आए, मैं तो हूं नहीं। ऐसी भावदशा में फिर कहां दुख? फिर कहां विषाद? इस भावदशा को बुद्ध ने निर्वाण कहा। तुम रिक्त हो जाओ, शून्य हो जाओ। तुम बीच में न आओ, तो निर्वाण है। निर्वाण महासुख है।
ये सारे सूत्र तृष्णा के ऊपर हैं। इसके पहले कि हम सूत्रों में उतरें,
उन परिस्थितियों में चलें, जब ये सूत्र कहे गए।
पहला दृश्यः

भगवान गौतम बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहरते थे। श्रावस्ती के नगर-द्वार पर बसे हुए केवट्ट गांव के मल्लाहों ने अचिरवती नदी में जाल फेंककर एक स्वर्ण-वर्ण की अदभुत मछली को पकड़ा।
अदभुत थी मछली। स्वर्ण-वर्ण था उसका, जैसे सोने की बनी हो। उसके शरीर
का रंग तो स्वर्ण जैसा था, किंतु उसके मुख से भयंकर दुर्गंध निकलती थी। मल्लाहों ने इस चमत्कार को जाकर श्रावस्ती के महाराजा को दिखाया। ऐसी मछली कभी उन्होंने पकड़ी नहीं थी। ऐसी सुंदर काया कभी देखी नहीं थी किसी मछली की। जैसे स्वर्ग से उतरी हो। और साथ ही एक दुर्भाग्य भी जुड़ा था उस मछली के पीछे। उसके मुंह से ऐसी भयंकर दुर्गंध निकलती थी, वैसी दुर्गंध भी कभी नहीं देखी थी; जैसे भीतर नर्क भरा हो। बाहर स्वर्ण की देह थी और भीतर जैसे नर्क!
राजा भी चकित हुआ। न उसने सुना था कभी, न देखा था। ऐसी मछली पुराणों में भी नहीं लिखी थी।
बुद्ध गांव में ठहरे हैं। राजा उस मछली को एक द्रोणी में रखवाकर भगवान के पास ले गया। सोचाः चलें, उनसे पूछें। शायद कुछ राज मिले।
उस समय मछली ने मुख खोला, जिससे सारा जेतवन दुर्गंध से भर गया। जहां बुद्ध ठहरे थे--जिन वृक्षों की छाया में--वह सारा जेतवन दुर्गंध से भर गया! ऐसी भयंकर उसकी दुर्गंध थी।
राजा ने भगवान के चरणों में तीन बार प्रणाम कर पूछाः भंते! क्यों इसका शरीर स्वर्ण जैसा, किंतु मुख से दुर्गंध निकलती है? यह द्वंद्व कैसा? यह द्वैत कैसा? स्वर्ण की देह से तो सुगंध निकलनी थी! और अगर दुर्गंध ही निकलनी थी, तो देह स्वर्ण की नहीं होनी थी। यह कैसा अजूबा! आप कुछ कहें। भगवान ने अत्यंत करुणा से उस मछली की ओर देखा और बड़ी देर चुप रहे। जैसे किसी और लोक में खो गए। और फिर बोलेः महाराज! यह मछली कोई सामान्य मछली नहीं है। इसके पीछे छिपा एक लंबा इतिहास है। यह काश्यप बुद्ध के शासन

में कपिल नामक एक महापंडित भिक्षु था। यह त्रिपिटकधर था; ज्ञानी था। बड़ा तर्कनिष्ठ, बड़ा तर्क कुशल; स्मृति इसकी बड़ी प्रगाढ़ थी। और उतना ही अभिमानी भी था। अहंकार भी बड़ा तीक्ष्ण था; तलवार की धार की तरह था। इसने अपने अभिमान में भगवान काश्यप को धोखा दिया; अपने गुरु को धोखा दिया। उन्हें छोड़ा ही नहीं, वरन उनके विरोध में भी संलग्न हो गया।
जो इसने बहुत दिनों तक एक बुद्धपुरुष का सत्संग किया था और उनके चरणों में बैठा था, और उनकी छाया में चला था, उसके फल से इसे स्वर्ण जैसा वर्ण मिला है। ऐसे देह तो इसकी स्वर्णमयी हो गयी, क्योंकि बाहर-बाहर से यह उनके साथ था, लेकिन आत्मा से चूक गया। बाहर तो सुंदर हो गया, लेकिन भीतर कुरूप रह गया। बाहर तो बुद्धपुरुष के साथ रहा, भीतर-भीतर विरोध को संजोता रहा। तो बाहर सुंदर हुआ, भीतर कुरूप रह गया। बाहर स्वर्ण हुआ, भीतर सिवाय दुर्गंध के और कुछ नहीं है। बाहर तो बुद्ध की छाया का परिणाम है; भीतर यह जैसा है, वैसा है। उस अंतर-कुरूपता के कारण ही इसके मुख से भयंकर दुर्गंध निकल रही है।
इसी मुख से इसने काश्यप भगवान का विरोध किया था। और भलीभांति जानते हुए कि यह गलत है, फिर भी विरोध किया था। यह दुर्गंध उस दगाबाजी और धूर्तता और अहंकार की ही गवाही दे रही है।
राजा को इस कथा पर भरोसा न हुआ। हो भी तो कैसे हो! यह कथा कल्पित सी मालूम पड़ती है। फिर प्रमाण क्या है? फिर गवाही कहां है? वह बोलाः आप इस मछली से कहलवाएं, तो मानूं!
भगवान हंसे और अब करुणा से उन्होंने उस राजा की ओर देखा--वैसे ही, जैसे पहले मछली की ओर देखा था। और वे मछली से बोलेः याद कर! भूले को याद कर! तू ही कपिल है? तू ही वह भिक्षु है, जो महाज्ञानी था? जो काश्यप बुद्ध के चरणों में बैठा? जो उनकी छाया में उठा?
मछली बोलीः हां, भंते! मैं ही कपिल हूं। और उसकी आंखें आंसुओं से भर गयीं--गहन पश्चात्ताप और गहन विषाद से। और उस क्षण एक अपूर्व घटना घटी। आंसू भरी आंखों के साथ, बुद्ध के समक्ष, वह मछली तत्क्षण मर गयी। उसकी मृत्यु के क्षण में उसका मुंह खुला था, लेकिन दुर्गंध विलीन हो गयी थी। जीते जी दुर्गंध आ रही थी, मरकर तो और भी आनी थी! मरकर तो उनमें भी दुर्गंध आने लगती है, जिनमें दुर्गंध नहीं होती। लेकिन यह अपूर्व हुआ। मछली मर गयी--मुंह खोले, आंख में आंसुओं से भरे! पश्चात्ताप... ! लेकिन पश्चात्ताप ही उसे नहला गया, धो गया, पवित्र कर गया। उस पश्चात्ताप के क्षण में उसका अहंकार गल गया।
किसी और बुद्ध के समक्ष अहंकार लेकर खड़ी थी। आज किसी और बुद्ध के समझ क्षमा मांग ली। वे आंसू पुण्य बन गए। वह मछली मर गयी। इससे सुंदर क्षण मरने के लिए और मिल भी न सकता था!
एक सन्नाटा छा गया। सारे भिक्षु इकट्ठे हो गए थे मछली को देखने। फिर
यह भयंकर दुर्गंध! जो दूर-दूर थे, जिन्हें पता भी नहीं था, वे भी भागे आए कि बात क्या है? इतनी भयंकर दुर्गंध कैसे उठी? फिर महाराजा को देखा। फिर बुद्ध के ये अदभुत वचन सुने। और फिर मछली को बोलते देखा! और यही नहीं, फिर मछली को मरते देखा और रूपांतरित होते देखा! मृत्यु जैसे समाधि बन गयी। और यह भी देखा चमत्कार कि जीते-जी दुर्गंध से भरी थी, मरते दुर्गंध विदा हो गयी! इतना ही नहीं; जैसे ही पुरानी दुर्गंध धीरे-धीरे हवा के झोंके ले गए, उस मरी हुई मछली से सुगंध आने लगी। जेतवन, जैसे पहले दुर्गंध से भर गया था, वैसे ही एक अपूर्व सुगंध से भर गया! वे भिक्षु पहचानते थे भलीभांति--वह सुगंध कैसी है। वह बुद्धत्व की सुगंध थी--जैसे बुद्ध से आती है।
मछली उपलब्ध होकर मरी। एक क्षण में क्रांति घटी। क्रांति जब घटती है,
तो क्षण में घट जाती है। बोध की बात है।
सन्नाटा छा गया। बड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। लोग संविग्न हो गए।
उन्हें रोमांच हो आया। तब भगवान ने उस समय उपस्थित लोगों की चित्त-दशा को देखकर यह गाथाएं कहीं।
इसके पहले कि हम गाथाओं में जाएं, इस कथा के एक-एक शब्द को हृदय में उतर जाने दो। समझो।

भगवान गौतम बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहरते थे।
गौतम उनका नाम था, उनके माता-पिता ने दिया था। बुद्धत्व उनकी उपलब्धि थी, क्योंकि वे निद्रा से जागे। अंधेरे से प्रकाश बने। मूर्च्छा गयी, होश आया। दीया जला भीतर का। सो बुद्ध उन्हें कहते हैं। और जो भी जाग गया, वह भगवान हो गया।
बुद्ध परंपरा में भगवान का वैसा अर्थ नहीं है, जैसा हिंदू या इस्लाम
या ईसाई परंपरा में है। हिंदू, ईसाई, इस्लाम की परंपरा में भगवान का अर्थ होता हैः जिसने सृष्टि को बनाया। बुद्ध परंपरा में भगवान का अर्थ होता हैः जिसने स्वयं को जाना। क्योंकि बुद्ध परंपरा में इस संसार को बनाने वाला तो कोई है ही नहीं। यह संसार कभी बनाया नहीं गया। यह असृष्ट है। यह सदा से है। और यही बात ज्यादा संगत मालूम पड़ती है।
तुम देखते होः संसार एक वर्तुल में घूम रहा है। बीज बोते हो, वृक्ष बन जाते हैं। वृक्षों में फिर बीज लग जाते हैं। फिर बीज बो दो, फिर वृक्ष बन जाते हैं। वृक्षों में फिर बीज लग जाते हैं। तुम ऐसी कोई घड़ी सोच नहीं सकते, जब यह वर्तुल न रहा हो। तुम ऐसा नहीं सोच सकते कि बीज हो जाएं। बिना वृक्षों के बीज न हो सकेंगे। और तुम ऐसा भी नहीं सोच सकते कि अचानक वृक्ष हो जाएं!
सृष्टि का तो अर्थ ही यही होगा कि भगवान ने या तो बीज बनाए या वृक्ष बनाए। कहीं से तो शुरू करना होगा! लेकिन वृक्ष बिना बीज के नहीं हो सकते। और बीज बिना वृक्ष के नहीं हो सकते। यह वर्तुल तोड़ा नहीं जा सकता!
बच्चे बिना मां-बाप के नहीं हो सकते। और जो मां-बाप हैं, वे भी किसी के बच्चे हैं। यह वर्तुल तोड़ा नहीं जा सकता। यह परंपरा शाश्वत है, सनातन है। इसको बुद्ध ने संतति कहा है। यह धारा सदा से है; इसको कभी किसी ने बनाया नहीं।
इसलिए स्रष्टा की धारणा बुद्ध के विचार में जरा भी नहीं है। आकाश में बैठे भगवान की धारणा बुद्ध की परंपरा में बड़ी बचकानी है। वह मनुष्य की कल्पना है। कोई आकाश में बैठा हुआ नहीं है। कोई न निर्माता है, न कोई नियंता है।
फिर कैसे यह विराट चल रहा है? प्रश्न उठता है, कैसे यह विराट चल रहा है? जब कोई सम्हालने वाला नहीं, कोई बनाने वाला नहीं, कोई नियंता नहीं! इतनी जटिल प्रक्रियाएं कैसी शांति से चल रही हैं! और कितनी नियमबद्ध!
इस नियमबद्धता को बुद्ध ने धर्म कहा है। इस नियमबद्धता को परम नियम कहा है--एस धम्मो सनंतनो। इसलिए बुद्ध की बात वैज्ञानिकों को रुचती है। आज पश्चिम में बुद्ध का प्रभाव रोज-रोज बढ़ता जाता है। क्योंकि विज्ञान से बात तालमेल खाती है। विज्ञान भी कहता हैः नियम हैं। बस, सब नियम से चल रहा है। जमीन में गुरुत्वाकर्षण है, इसलिए फल नीचे गिर जाते हैं। पानी का नियम है नीचे की तरफ बहना, इसलिए पहाड़ों से उतरकर नदियों में बहता और सागर में पहुंच जाता है। सारी चीजें नियम से चल रही हैं। नियम है, नियंता नहीं है।
नियम का अर्थ हुआः परमात्मा व्यक्ति की तरह नहीं है, सिद्धांत की तरह है। और जो भी जाग जाता है, वह उस नियम के साथ एक हो जाता है। क्यों? क्योंकि वह उस नियम से विपरीत की आकांक्षा नहीं करता।
सोया हुआ आदमी नियम के विपरीत की आकांक्षा करता है। सोया हुआ आदमी ऐसा है, जैसे रेत से निचोड़े और सोचे कि तेल मिल जाए! जागा हुआ आदमी ऐसा हैः तिल को निचोड़ता है, तो तेल पाता है। रेत को नहीं निचोड़ता। जानता हैः रेत से तेल नहीं होता। और अगर रेत को निचोड़कर तेल न मिले, तो दुखी नहीं होता। क्योंकि जो नियम के विपरीत है, वह नहीं होगा। फिर लाख प्रार्थनाएं करो, पूजाएं करो, हवन और यज्ञ करो, जो नियम के विपरीत है, नहीं होगा। बुद्ध-धर्म में चमत्कार के लिए कोई जगह नहीं है। चमत्कार होते ही नहीं। चमत्कार के नाम पर जो होता है सब धोखाधड़ी है। नियम के विपरीत कभी कोई बात नहीं होती। जो होता है, नियम के अनुसार होता है।

तो जो स्थान भगवान का है हिंदू, ईसाई, इस्लाम की परंपरा में, वही स्थान नियम का है--धम्म का, धर्म का--बुद्ध और जैन और लाओत्सू की परंपरा में।
जिसको लाओत्सू ने ताओ कहा है, उसी को बुद्ध ने धर्म कहा है।
धर्म शब्द का अर्थ भी होता है, जिसने धारण किया है; जिस पर सब ठहरा है।
लेकिन धर्म सिद्धांत, व्यक्ति नहीं। धर्म कोई आदमी की तरह सिंहासन पर नहीं बैठा है। धर्म विस्तीर्ण है प्रकृति के कण-कण में। धर्म छाया है सब जगह।
फिर भगवान का अर्थ अन्यथा हो गया। फिर भगवान का अर्थ बनाने वाला न रहा। बनाने वाला कोई है नहीं। बुद्ध को भगवान कहा है, क्योंकि उन्होंने जाना; जागे; नियम के अनुकूल हो गए।
नियम की प्रतिकूलता में दुख है; नियम की अनुकूलता में सुख है। यह बड़ी वैज्ञानिक बात है। तुम रास्ते पर सम्हलकर चलो, तो पृथ्वी तुम्हें गिराती नहीं और तुम्हारी टांग नहीं तोड़ देती और फ्रेक्चर नहीं हो जाता। तुम सम्हलकर न चलो, शराब पीकर चलो, लड़खड़ाते चलो, आंखें बंद करके चलो, तो गिरोगे। गिरोगे तो हड्डी टूटेगी। तब नाराज मत होना; गुरुत्वाकर्षण को गाली मत देना। गुरुत्वाकर्षण तुम्हारी टांग तोड़ने बैठा नहीं था। तुमने अपनी टांग अपनी ही भूल-चूक से तोड़ ली। तुमने अपनी टांग अपनी ही मूर्च्छा से तोड़ ली।
गुरुत्वाकर्षण तुम्हारा दुश्मन नहीं है। जमीन की कोई आकांक्षा नहीं
कि तुम्हारी टांग तोड़े। तुम सम्हलकर चलते, तो जमीन तुम्हारी टांग न तोड़ती।
तुमने देखाः रस्सी पर चलता है नट। रस्सी पर चलता है, तो भी सम्हल लेता है, तो जमीन उसकी टांग नहीं तोड़ती। कई लोग जमीन पर चलते हैं और टांग टूट जाती है! होश से चलने की बात है।
बुद्ध ने कहा हैः नियम न तो किसी के पक्ष में है, न किसी के विपक्ष में है। नियम निष्पक्ष है। अब तुम्हारे ऊपर निर्भर है। अगर विपरीत चले, तो कष्ट पाओगे। नियम के विपरीत चलोगे, तो नर्क निर्मित कर लोगे। नियम के अनुकूल चलोगे, तो स्वर्ग निर्मित हो जाएगा। और जिस दिन नियम और तुम्हारे बीच जरा भी फासला न रह जाएगा, तुम नियम के साथ एकरूप हो जाओगे, एकरस हो जाओगे, उस दिन तुम भगवत्ता को उपलब्ध हो गए। उस दिन तुम भगवान हो गए। प्रत्येक व्यक्ति भगवान हो सकता है। यही बुद्ध-धर्म की गरिमा है कि प्रत्येक व्यक्ति को भगवान होने का अवसर है।
हिंदू-धर्म में राम भगवान हो सकते हैं; कृष्ण भगवान हो सकते हैं; परशुराम भगवान हो सकते हैं। दस अवतार चुक गए, फिर कोई उपाय नहीं। हिंदू- धर्म लोकतांत्रिक नहीं है।
इस्लाम में तो इतनी भी सुविधा नहीं। दस आदमी भी भगवान नहीं हो सकते।
मोहम्मद भी भगवान नहीं हैं। मोहम्मद भी केवल संदेश-वाहक, पैगंबर! इस्लाम और भी कम लोकतांत्रिक है। भगवान एक तानाशाह है।
ईसाइयत थोड़ी गुंजाइश रखती है, मगर ज्यादा नहीं। जीसस भगवान हैं।
लेकिन वे इकलौते बेटे हैं। दूसरा कोई बेटा भगवान का नहीं! फिर ये सब बेटे किसके हैं? फिर ये सब अनाथ हैं? फिर जीसस ही सनाथ हैं! और बाकी सब अनाथ हैं? यह बात भी बड़ी गैर-लोकतांत्रिक है।
बुद्ध की बात बड़ी लोकतांत्रिक है। बुद्ध कहते हैंः प्रत्येक भगवान हो सकता है। प्रत्येक के भीतर छिपा हुआ है भगवान का बीज। इसलिए भगवान एक है, ऐसा नहीं। जितनी आत्माएं हैं इस जगत में, उतने भगवान हो सकते हैं। भगवान होना तुम्हारा स्वरूपसिद्ध अधिकार है। ठीक-ठीक चलोगे, तो पहुंच जाओगे। ठीक-ठीक नहीं चलोगे, तो चूक जाओगे।
इसलिए गौतम बुद्ध को भगवान कहा है। वे नियम के साथ एकरूप हो गए। वे धर्म के साथ एकरूप हो गए। अब उनकी कोई आकांक्षा नहीं, कोई तृष्णा नहीं। अब वे नदी के साथ बहते हैं। तैरते भी नहीं। कहीं जाना नहीं है। जहां नदी ले जाए वहीं जा रहे हैं। कहीं न ले जाए तो भी ठीक। कहीं ले जाए तो भी ठीक। मझधार में डुबा दे, तो वहीं किनारा। ऐसी परम तथाता की जो अवस्था है, उसको भगवत्ता कहा है।

भगवान गौतम बुद्ध श्रावस्ती के जेतवन में विहरते थे। श्रावस्ती के नगर-द्वार पर बसे हुए केवट्ट गांव के मल्लाहों ने अचिरवती नदी में जाल फेंककर एक स्वर्ण-वर्ण की अदभुत मछली को पकड़ा।
इन सारी छोटी-छोटी कथानक की प्रक्रिया को समझना। इनमें छोटे-छोटे शब्दों का मूल्य है।
अचिरवती नदी में... । चिर नहीं है नदी; अचिर है, क्षणभंगुर है।
अचिरवती नदी में मल्लाहों ने जाल फेंका और एक सोने की मछली को पकड़ा।
ऐसे ही तो हम सब मल्लाह हैं और अचिरवती नदी में, संसार की क्षण-क्षण बदलती हुई धारा में जाल फेंके बैठे हैं, अपनी-अपनी बंसी लटकाए बैठे हैं। सब अपनी-अपनी मछली पकड़ने बैठे हैं! कोई पद की मछली, कोई धन की मछली, कोई प्रतिष्ठा की, कोई यश की, कोई प्रसिद्धि की--अलग-अलग मछलियों के नाम हों, मगर अचिरवती नदी के किनारे सभी मल्लाह हैं। सभी अपनी बंसी लटकाए, जाल फैलाए बैठे हैं! मछली फंसे!
अचिरवती नदी में मल्लाहों ने जाल फेंककर एक स्वर्ण-वर्ण की अदभुत मछली को पकड़ा।
और यहां कभी-कभी जाल में सोने की मछली फंसती भी है। लेकिन हर सोने की मछली के पीछे भयंकर दुर्गंध है। धन मिलता भी है। ऐसा नहीं कि नहीं मिलता। लेकिन धन के पीछे भयंकर दुर्गंध है।
नानक के जीवन में उल्लेख है। एक धनपति ने--दुनीचंद उसका नाम था--नानक
को निमंत्रित किया भोजन के लिए। नानक समझाने की कोशिश किए, टालने की कोशिश किए, लेकिन दुनीचंद पीछे पड़ गया। माना नहीं। नगरसेठ था। प्रतिष्ठा का सवाल था। उसका निमंत्रण और कोई न माने!
अनेक लोग मौजूद थे। उनकी मौजूदगी में उसने चरण छूकर प्रार्थना की थीः
कल मेरे घर भोजन करें। और नानक मना करें! दुनीचंद को तकलीफ होने लगी। उसने कहाः चलना ही होगा। उसने सारी प्रतिष्ठा दांव पर लगा दी अपनी। उसने कहाः जो भी दान करना है, करूंगा। नानक ने कहा कि दान का सवाल नहीं। तुम ले चलकर मुझे, दुखी होओगे। नहीं मानते, तो ठीक है, चलूंगा। वे गए।
जब दुनीचंद ने उन्हें भोजन परोसा, तो उन्होंने उसकी रोटियां हाथ में उठायीं और जोर से उन रोटियों को मुट्ठी में भींचा। तो खून की बूंद उन रोटियों से टपकी!
सैकड़ों लोग देखने इकट्ठे हो गए थे। एक तो नानक ने इतना इनकार किया। मानते नहीं थे। फिर गए हैं। और यह भी कहा है दुनीचंद को कि मुझे ले जाकर तू पछताएगा। मुझे न ले जा।
सैकड़ों लोगों ने यह देखा कि उन रोटियों से खून की बूंदें टपकीं! लोग पूछने लगे कि यह क्या है? यह कैसे हुआ? तो नानक ने कहाः इसलिए मैं आना नहीं चाहता था। दुनीचंद के धन के पीछे बड़ी दुर्गंध है। यह धन शोषण से मिला है। इसके रुपए-रुपए में आदमियों का खून है। इसलिए मैं आना नहीं चाहता था। यहां कभी-कभी सोने की मछली फंस भी जाती है, तो तुम सदा पीछे पाओगे उपद्रव। यहां कभी-कभी पद मिल भी जाता है। एक तो जिंदगी गंवाता है आदमी! अचिरवती नदी के किनारे जाल फैलाए बैठे हैं! कभी-कभी फंस जाती है मछली। तब दूसरी बात पता चलती है कि मछली फंस जाती है; देखने में सोने की मालूम पड़ती है--और भीतर? भीतर सब दुर्गंध है और मल-मूत्र है।
बड़े से बड़े पद पर पहुंचकर लोगों को मिला क्या? बहुत से बहुत धन इकट्ठा करके लोगों को मिला क्या? पूछो सिकंदर से। पूछो बड़े धनपतियों से।
जितना धन बढ़ता जाता है, उतनी अपनी दरिद्रता का पता चलता है। और जितना
पद पर बैठ जाते हैं, उतनी अपनी दीनता का पता चलता है। ऊपर-ऊपर स्वर्ण, भीतर-भीतर नर्क निर्मित हो जाता है।
अचिरवती नदी में मल्लाहों ने जाल फेंककर स्वर्ण-वर्ण की अदभुत मछली
को पकड़ा। उसके शरीर का रंग स्वर्ण जैसा और उसके मुख से भयंकर दुर्गंध निकलती थी!
शरीर तो स्वर्ण जैसा बहुत बार मिल जाता है। तुम भी जानते हो। तुम किसी सुंदर स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हो। शरीर स्वर्ण जैसा। लेकिन जैसे- जैसे स्त्री को जानना शुरू करते हो, वैसे-वैसे पता चलता हैः मुंह से

दुर्गंध निकलती है। तुम किसी सुंदर पुरुष के प्रेम में हो। दूर-दूर सब ठीक। दूर के ढोल सुहावने! जैसे-जैसे पास आते हो, वैसे-वैसे जीवन में झंझट बढ़नी शुरू होती है। जैसे-जैसे पास से जानते हो, वैसे-वैसे पता चलता है कि गुलाब तो दूर से दिखते थे, झाड़ी कांटों से भरी है।
यहां सुंदरतम देहें मिल जाती हैं, लेकिन सुंदर आत्माएं कहां? और जब तक सुंदर आत्मा न मिले, तब तक कहां तृप्ति? कैसी तृप्ति?
लेकिन दूसरों के लिए यह मत सोचने लगना कि दूसरों के पास स्वर्ण-देह है
और सुंदर आत्मा नहीं। अपनी तरफ भी देखना। वही गति तुम्हारी है। ऊपर-ऊपर अच्छे लगते, ऊपर-ऊपर साज-शृंगार है, ऊपर-ऊपर शिष्टाचार है, लीपा-पोती है। भीतर? सब रोग खड़े हैं। ऊपर मुस्कुराहटें हैं, भीतर घाव है। ऊपर बड़े सज्जन मालूम पड़ते, भीतर जंगली जानवर छिपा है। मुख में राम, बगल में छुरी!
अपने ही जीवन-अनुभव से देखोगे तो पा लोगे--यह बात सच है। भीतर का भोलापन कहां मिलता? भीतर का स्वर्ण कहां मिलता? भीतर और बाहर एक हो--ऐसा आदमी कहां मिलता? भीतर और बाहर एक ही धुन बजती हो; भीतर और बाहर एक ही संगीत हो; भीतर और बाहर एक ही सुगंध हो--ऐसा आदमी कहां मिलता?
ऐसा आदमी मिल जाए, तो उसका संग-साथ मत छोड़ना। ऐसा आदमी पारस जैसा है। उसके साथ लोहा भी सोना हो सकता है। लेकिन उसके पास शरीर को ही मत रखना, नहीं तो ऊपर-ऊपर सोना हो जाओगे। उसके पास आत्मा को भी रखना। उसके चरणों में सिर ही मत झुकाना, आत्मा को भी झुका देना।
जब कभी कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाए, जिसके बाहर-भीतर सब एक हो; जिसके बाहर-भीतर नाद बज रहा हो; जिसके बाहर-भीतर ओंकार की गूंज उठ रही हो; जिसके बाहर-भीतर आनंद ही आनंद हो, समाधि-समाधि के फूल खिल रहे हों, फिर वहां शरीर को ही मत झुकाना। शरीर से ही उसके पास मत जाना। फिर आत्मा से सत्संग करना। नहीं तो जो गति मछली की हुई, वही गति तुम्हारी हो जाएगी।
यही तो हो रहा है। सत्संगों में भी जाते हो तुम, ऐसा नहीं कि नहीं जाते। कभी-कभी मंदिर भी जाते हो, मस्जिद भी जाते हो, गुरुद्वारे भी जाते हो। कभी-कभी साधु-संग भी करते हो। मगर ऊपर-ऊपर से। भीतर-भीतर से अपने को बचाए रखते हो। पछताओगे कभी। बुरी तरह पछताओगे। क्योंकि सत्संग तो भीतर से होना चाहिए। देह पास हो या न हो, चलेगा। आत्मा पास होनी चाहिए। आत्मा से किसी के पास बैठ जाने का नाम ही शिष्यत्व है।
उस मछली का रंग तो स्वर्ण जैसा, किंतु उसके मुख से भयंकर दुर्गंध निकलती थी।
यह कहानी तुम्हारी है। यह कहानी सबकी है। इन कहानियों को कभी भूलकर ऐसा मत सोचना कि ठीक है, कथाएं हैं; पुराणों की हैं। ये कथाएं तुम्हारी हैं। ये मनोवैज्ञानिक हैं। ये मनुष्य के मन की कथाएं हैं।
मल्लाहों ने उसे राजा को दिखाया। राजा उसे एक द्रोणी में रखवाकर भगवान के पास ले गया। उस समय मछली ने मुख खोला।
अब तुम थोड़ा सोचनाः मल्लाह नहीं समझे, समझ में आती है बात। मल्लाहों
ने न कभी सोना देखा, कैसे समझें? लेकिन राजा तो सोने में जीता था। राजा को भी दिखायी न पड़ा यह कि यह उसकी ही कथा है! ऊपर-ऊपर सोना था राजा के भी, भीतर-भीतर उसके भी तो दुर्गंध थी! उसको भी चमत्कार मालूम हुआ।
मल्लाहों को क्षमा कर दो। क्षमा किए जा सकते हैं। कभी सोना देखा नहीं, सोने की मछली सपने में नहीं देखी। राजा तो सोने की ही दुनिया में रहता था।
इसे तो अकल होती! मगर कौन अपने को देखता है? अपने पर आंख ही नहीं जाती।
अपने को आदमी देखता ही नहीं।
चीन में एक पुराना रिवाज था कि जब किसी कैदी को फांसी देते, तो फांसी देने के पहले उसके हाथ में आईना देते कि वह अपनी शकल देख ले।
बड़ी अजीब परंपरा! काहे के लिए--कोई आदमी मर रहा है, उसे तुम दर्पण दे रहे हो! यह एक बहुत प्राचीन परंपरा का हिस्सा था। वह परंपरा यह कहती है कि इस आदमी ने जिंदगीभर तो अपना चेहरा नहीं देखा, अब मरने के वक्त तो देख ले। कोई अपना चेहरा देखता ही नहीं। हम दूसरों में ही उलझे रहते हैं! दूसरों की निंदा में; दूसरों की आलोचना में। कौन गंदा, कौन बुरा, कौन पापी,

कौन अनाचारी, इसी में बीत जाता है समय। फुरसत कहां कि अपना चेहरा आईने में देख लें!
यह राजा को भी समझ में न आया! यह बात इतनी सीधी-साफ थी; इसमें उलझन कहां है? इसमें रहस्य कहां है? राजा को तो समझ में आना चाहिए था कि बाहर मैं सोने का हूं, जैसे यह मछली सोने की है। और भीतर मेरे दुर्गंध है, जैसे इसके भीतर दुर्गंध है। बात उसे तो खुल जानी चाहिए थी! उसे भी न खुली!
इस दुनिया में लोग अंधे की तरह जी रहे हैं। अपना पता ही नहीं है। दूसरों के साथ उलझे-उलझे आंखें जड़ हो गयी हैं। दूसरों को देखने में ही समर्थ हो गयी हैं। भीतर मुड़ने की कला खो गयी है। लकवा लग गया है तुम्हारी आंखों को। बस, एक ही तरफ देख पाती हैं। अब उनमें गतिमयता नहीं है, लोच नहीं है--कि कभी-कभी मुड़कर अपनी तरफ भी देख लें।
राजा को भी समझ में न आया। तो बुद्ध के पास ले गया।
मल्लाह हों कि सम्राट, गरीब हों कि अमीर, हारे हुए लोग हों कि जीते हुए लोग, सभी को बुद्ध के पास जाना ही होगा; वहीं रहस्य के पर्दे उठ सकते हैं। यहां गरीब भी सोए हैं, अमीर भी सोए हैं। प्रजा भी सोयी है, राजा भी सोए हैं। यहां सब अंधे और अंधे हैं। यहां अंधे अंधों का नेतृत्व कर रहे हैं! कबीर ने कहा हैः अंधा अंधा ठेलिया, दोनों कूप पड़ंत। यहां अंधे नेता हैं, अंधे अनुयायी हैं। अंधे अंधों का मार्ग-दर्शन कर रहे हैं! फिर अगर सभी कुएं में गिर गए हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
इस राजा को क्षमा नहीं किया जा सकता। लेकिन उसके बुद्ध के पास जाने में यह सूत्र है कि अंततः सभी को बुद्ध के पास जाना होगा, तो ही जीवन का राज खुलेगा। किसी बुद्धपुरुष के चरण गहने होंगे। किसी बुद्धपुरुष की छाया पकड़नी होगी। किसी बुद्धपुरुष के हाथ पकड़कर चलोगे, तो ही जीवन के उलझाव सुलझेंगे; समस्याएं समाधान में रूपांतरित होंगी। तो ही राह मिलेगी। जैसे ही मछली को बुद्ध के सामने रखा गया, मछली ने मुख खोला।
क्यों मछली ने बुद्ध को देखकर मुख खोला? याद आ गयी होगी। अवाक हो गयी होगी। मुंह खुला रह गया होगा। अरे! फिर?
ऐसे ही एक बुद्धपुरुष को कभी उसने जाना था। जाना भी था और चूक भी गयी।
जाना भी था और जान भी न पायी। वही दुख तो साल रहा है। बाहर सोने की हो गयी जिसकी कृपा से, उसकी कृपा से भीतर भी सोने की हो सकती थी।
पर लोग अक्सर पछताते हैं तब, जब पछताने में कुछ सार नहीं रह जाता। अब पछताए होत का, जब चिड़िया चुग गयी खेत।
रोती होगी, जार-जार रोती होगी। अचानक फिर देखकर... ।
और ध्यान रखनाः बुद्धपुरुषों के रूप कितने ही भिन्न हों, उनकी देहें कितनी ही भिन्न हों, उनके चेहरे कितने ही भिन्न हों--उनका भाव एक, उनके भीतर की ज्योति एक। दीए में भेद हो सकता है। मिट्टी के दीए कई तरह के बन सकते हैं। लेकिन दीए में जो ज्योति जलती है, उसका स्वाद एक, उसका गुण एक, उसका धर्म एक।
यह मछली कभी किसी एक बुद्ध के पास रही थी। अनंत बुद्ध हुए हैं। ध्यान रखनाः गौतम बुद्ध ने बहुत बार अपने से पहले हुए बुद्धों की कथाएं कही हैं। अनंत बुद्ध हुए हैं। काश्यप बुद्ध हजारों साल पहले बुद्ध से हुए। उन्हीं काश्यप बुद्ध की याद आ गयी होगी--फिर दीए को जला देखकर। फिर वही सुगंध! फिर वही रूप! फिर वही सौंदर्य! फिर वही प्रसाद! फिर वही आनंद की वर्षा! मछली का मुख खुला रह गया होगा।
अवाक जब कोई हो जाता है, तो मुंह खुला रह जाता है। ठिठक गयी होगी मछली। सोचा नहीं था सपने में कि फिर ऐसे व्यक्ति के दर्शन होंगे।
एक बार बुद्धपुरुष खो जाए, तो जन्म-जन्म लग जाते हैं। क्योंकि बुद्धपुरुष विरले हैं। हों भी, तो भी तुम उसके पास पहुंच पाओ, इसकी बहुत कम संभावना है। क्योंकि तुम वहां जाते हो, जो तुम्हारी तलाश है।
तुम राजनेता के पास जाते हो, क्योंकि पद की तुम्हें तलाश है। राजनेता तुम्हारे गांव में आए, तो तुम सब इकट्ठे हो जाते हो। कभी स्वागत करने, कभी जूते फेंकने। मगर इकट्ठे हमेशा हो जाते हो। तुम से रुका नहीं जाता। वहां तुम्हारे प्राण अटके हैं!

बुद्धपुरुष गांव में आएं भी, तो भी तुम शायद ही जाओ, क्योंकि बुद्धों
से तुम्हारा क्या लेना-देना! वह तुम्हारी आकांक्षा नहीं है। तुम वासना छोड़ना थोड़े ही चाहते हो; तुम वासना को पूरा करना चाहते हो। तुम बुद्धों से बचोगे। अगर बुद्ध रास्ते पर मिल जाएं, तो तुम बगल की गली से भाग खड़े होओगे। तुम बचोगे।
ऐसे लोग बचते हैं। बचने के लिए हजार बहाने खोजते हैं। तर्क-जाल बना लेते हैं। क्यों? क्योंकि उन्हें डर लगता है कि बुद्धपुरुष के पास गए और अगर कोई बात सुनायी पड़ गयी और कहीं समझ में आ गयी, तो अब तक जो-जो उन्होंने न्यस्त स्वार्थों का जाल फेंका है, अचिरवती नदी के किनारे जो वे मछली पकड़ने बैठे हैं, उसका क्या होगा! और वर्षों से मछली पकड़ने बैठे हैं। अभी तक पकड़ी है नहीं मछली। अब बुद्धपुरुषों के वचन सुन लें। ये कहते हैंः छोड़ो- छाड़ो जाल; यह नदी अचिर है। यह रहने वाली नहीं। इसमें पकड़ा तो भी न पकड़ने के बराबर है। ये सब पानी के बबूले हैं। यह सब माया है।
ऐसी बात अभी मत कहो। ऐसी बात कहो ही मत। ऐसी बात सुनो ही मत। अभी तो मछली तो पकड़ो पहले, फिर देखेंगे। मछली पकड़कर सुनना होगा, सुन लेंगे। लेकिन पहले मछली पकड़ में आ जाए!
तो एक तो बुद्धपुरुषों के पास कोई जाता नहीं। क्योंकि लोग वहीं जाते हैं, जहां उनकी आकांक्षाएं तृप्त होने की संभावनाएं हैं। बुद्धपुरुषों के पास आकांक्षाओं से मुक्त होना पड़ता है। और मजा और विरोधाभास कि जो आकांक्षाओं से मुक्त हो जाता है, वही तृप्त होता है। और जो आकांक्षाओं से भरा है, वह अतृप्ति और अतृप्ति में जलता है।
तुमने नर्क में लपटों में जलने की बात सुनी है, वह नर्क कहीं और नहीं है। वह तुम्हारी आकांक्षाओं का नर्क है, जिसमें तुम अभी जल रहे हो। इस भूल में मत पड़ना कि मरकर तुम नर्क में जाओगे। तुम नर्क में हो। नर्क में होने का अर्थ इतना ही होता हैः तुम्हारा मन वासना की लपटों से भरा है।
न मालूम कितने जन्म बीत गए, न मालूम कितने चक्कर इस आत्मा ने खाए होंगे! न मालूम कितनी दुर्गतियां भोगी होंगी! न मालूम कितनी पीड़ाएं झेली होंगी! न मालूम कितने उपद्रवों के बाद यह इस अचिरवती नदी में सोने की मछली हुई है। इसने सोचा भी नहीं होगा। आदमी रहकर बुद्ध नहीं मिलते, तो मछली होकर बुद्ध कैसे मिल जाएंगे!
लेकिन वह जो एक बुद्ध के पास होना हुआ था, वह जो बुद्ध के पास सांस लेना हुआ था, वह जो महापुण्य हुआ था, उसके कारण फिर-फिर आकस्मिक रूप से भी बुद्ध का मिलना हो सकता है।
अब यह बिल्कुल आकस्मिक हैः मछुओं ने पकड़ा मछली को; ले गए राजा के पास। राजा को समझ में न आया; ले आए बुद्ध के पास।
अब मछली का और बुद्ध से मिलना करीब-करीब असंभव है। कैसे होगा? बुद्ध मछली नहीं पकड़ते। मछलियां बुद्ध नहीं खोजतीं। यह मिलना होता कहां? मगर यह मिलना हुआ है।
वह जो बीजारोपण हुआ था, अधूरा-अधूरा हुआ था यद्यपि, वह आज भी फल ला रहा है! किसी बुद्धपुरुष के पास बैठने से जो थोड़ी सी भी श्वास तुमने ली हैं उसकी हवा की, वह जन्मों-जन्मों तक तुम्हें साथ देंगी। अपूर्व, अनजाने, आकस्मिक रूप से साथ देंगी। तुम्हारे जाने-अनजाने साथ देंगी।
उस मछली ने बुद्ध को देखते ही मुंह खोला, जिससे सारा जेतवन दुर्गंध से
भर गया। राजा ने भगवान के चरणों में तीन बार प्रणाम कर पूछाः भंते, क्यों इसका शरीर स्वर्ण जैसा और मुख से दुर्गंध क्यों निकलती है?
बुद्ध के पास जाने और बुद्ध के पास कुछ पूछने की प्रक्रिया है। बुद्ध
से तुम ज्ञानी की तरह कुछ नहीं पूछ सकते हो। ज्ञानी की तरह पूछा, तो बुद्ध उत्तर भी नहीं देंगे। बुद्ध से तो झुककर पूछो, तो ही उत्तर मिल सकता है। झोली फैलाओ, तो ही उत्तर मिल सकता है। इसलिए तीन बार प्रणाम करके, तीन बार झुककर। क्यों तीन बार? एक बार झुकने से न चलेगा?
तुम्हारा भरोसा नहीं। एक बार झुको--और बिल्कुल न झुको; अकड़े ही खड़े रहो। शायद दूसरी बार थोड़े और। शायद तीसरी बार झुक पाओ। भूल-चूक न हो जाए, इसलिए तीन बार। क्योंकि तुम झुको, तो ही बुद्ध उत्तर देते हैं। तुम्हारा

झुकना जब दिखायी पड़ जाए, प्रत्यक्ष हो जाए, तो ही उत्तर देते हैं। क्योंकि जो जानकार है, उसको बुद्ध उत्तर नहीं देते।
जानकार को क्या उत्तर देना? जो निर्दोष भाव से पूछता है, जो इस बात को स्वीकार करके पूछता है कि मैं अज्ञानी हूं, आप ज्ञान बरसाएं; मैं अंधेरे में हूं, आपकी रोशनी लाएं।...
लेकिन जो इस अकड़ से पूछता है कि रोशनी तो मेरे पास ही है। ठीक है, चलो, तुमसे भी मेल-ताल कर लें। देखें, तुम्हारे पास भी रोशनी है या नहीं? उत्तर तो मुझे मालूम ही है। तुमसे भी पूछे लेते हैं कि शायद मेल खा जाए, शायद तुम्हें भी ठीक उत्तर पता हो। अगर मुझ से मेल खा जाए, तो तुम्हारा उत्तर ठीक। अगर मेल न खाए, तो तुम्हारा उत्तर गलत। ऐसे लोगों को बुद्धपुरुष उत्तर नहीं देते। क्योंकि क्यों व्यर्थ बात करनी!
इस देश में यह बड़ी प्राचीन परंपरा है कि गुरु के पास कोई जाए, तो झुका हुआ, तो ही कुछ पाएगा। झुको। झुकोगे, तो भरे हुए लौटोगे। अकड़े रहोगे, खाली के खाली लौट आओगे।
पूछाः भंते! भगवान! क्यों इसका शरीर स्वर्ण जैसा, किंतु मुख से दुर्गंध निकलती है?
भंते भगवान का ही संक्षिप्त रूपांतरण है। अति प्रेम में भंते कहा जाता है। भगवान बड़ा शब्द है। जैसे आप अति प्रेम में तुम हो जाता है। और अति प्रेम में तू हो जाता है। ऐसे ही भगवान भंते हो जाता है।
अपूर्व प्रेम से भरकर उस राजा ने, अत्यंत विनय से भरकर, बुद्ध से प्रश्न पूछा।
भगवान ने अत्यंत करुणा से उस मछली की ओर देखा, और बड़ी देर तक देखते रहे। उतरने लगे उस मछली के अतीत में। पर्त-पर्त खोलने लगे होंगे उसकी अतीत स्मृतियों का जाल।
कुछ खोता नहीं; तुम अपने सारे अतीत को लिए बैठे हो। तुम्हें पता न हो, लेकिन जिसके हाथ में रोशनी है, वह तुम्हारे भीतर देख सकता है। तुम्हारी अचेतन पर्तों में जा सकता है। वह देख सकता हैः पहले तुम कहां थे, क्या थे, कैसे थे? क्या किया, कैसे यहां आए? कौन तुम्हें यहां ले आया? कैसे बीज तुमने बोए थे? कैसे कर्म तुमने किए थे? क्या है तुम्हारी अतीत स्थिति? क्योंकि तुम तुम्हारा अतीत हो। तुम हो वही, जो तुमने किया, और जो तुम अतीत में रहे।
इसलिए बुद्ध बड़ी देर तक चुप और बड़ी करुणा से उस मछली को देखते रहे। करुणा से इसलिए कि काश्यप बुद्ध जैसे महापुरुष का साथ मिला और यह गरीब मछली, यह गरीब प्राण, यह गरीब आत्मा चूक गयी! ऐसा अपूर्व साथ कैसे चूक गया? तो महाकरुणा है उनके हृदय में।
बड़ी देर तक चुप रहने के बाद वे बोलेः महाराज! यह मछली कोई सामान्य मछली नहीं; इसके पीछे छिपा लंबा इतिहास है।
हर एक के पीछे छिपा लंबा इतिहास है। कोई भी यहां नया नहीं है। तुम सब बड़े प्राचीन यात्री हो। इस रास्ते पर सदियों-सदियों चले हो। तुम कुछ नए आज चलने लगे हो संसार में, ऐसा नहीं है। अति पुरातन हो। उतने ही पुरातन हो, जितना पुरातन यह संसार है। तुम प्रथम से चल रहे हो। तुम इस संसार के साथ ही हो। अनेक-अनेक रूपों में, अनेक-अनेक ढंगों में; कभी वृक्ष, कभी पशु, कभी पक्षी, कभी मनुष्य। और घूमते रहे हो--मूर्च्छित। तुम्हें पक्का पता नहीं है। तुम्हें कुछ भी पता नहीं है कि तुम कहां से आए? कैसे आए? कौन हो? लेकिन बुद्धपुरुष की रोशनी में सारी पर्तें अपना राज खोल देती हैं।
बुद्ध का ध्यान तुम्हारे भीतर ऐसे जाता है, जैसे एक्स-रे की किरण जाए।
जो नहीं दिखायी पड़ता, वह दिखायी पड़ जाए।
बुद्ध ने कहाः यह काश्यप बुद्ध के शासन में कपिल नामक एक महापंडित भिक्षु था।
शासन शब्द को भी समझ लेना। बौद्ध और जैन परंपरा में राजाओं के शासन को शासन नहीं कहा जाता। उनका भी कोई शासन है? टुटपुंजिए हैं तुम्हारे राजा, तुम्हारे महाराजा, तुम्हारे राष्ट्रपति, तुम्हारे प्रधानमंत्री। बुद्ध और जैन परंपरा में शासन कहा जाता है बुद्धों का। वे ही शास्ता हैं।

क्योंकि उनसे ही शासन का जन्म होता है। और अपूर्व शासन का जन्म होता है। ऊपर से कोई थोपी नहीं जाती बात, लेकिन तुम्हारे भीतर से उपजती है। एक अनुशासन पैदा होता है, जो तुम्हारी अंतरात्मा से आता है। कोई तुम्हें जबर्दस्ती नहीं करता कि तुम ऐसे हो जाओ। कोई तुम्हें मारता-पीटता नहीं, न कोई दंड देता, न कोई पुरस्कार देता। न अदालतें हैं, न सिपाही हैं। बुद्धों का शासन तुम्हारे भीतर पैदा होता है।
बुद्धों के पास तुम बैठ भर जाओ कि धीरे-धीरे तुम उनके रंग में रंगने लगते। और धीरे-धीरे तुम पाते हो कि तुम्हारा आचरण बदला। और तुम्हारे बिना बदले बदला। चुपचाप बदला। जैसे सुबह हो जाती है, और पक्षी सोए थे, जाग जाते हैं। और वृक्ष जाग जाते हैं। ऐसे ही बुद्धों के पास बैठकर सोयी आत्माएं जागने लगती हैं। वही असली शासन है।
इसलिए बुद्धों का नाम है शास्ता; जिनके पास बैठकर शासन पैदा हो जाए।
जो कहें भी न तुम से; इतना भी न कहें कि ऐसा करो, कि शराब छोड़ दो, कि जुआ मत खेलो। जिनके पास बैठकर जुआ छूट जाए, शराब छूट जाए। बैठकर ही छूटे, तो कुछ अर्थ की। कहने से छूटे, तो बात व्यर्थ हो गयी। बुद्ध शासन देते नहीं, उनके पास शासन का जन्म होता है। सहज स्फुरणा होती है।
तो बुद्ध ने कहाः यह काश्यप बुद्ध के शासन में कपिल नामक एक महापंडित भिक्षु था।
महापंडित था। भिक्षु था। संन्यास धारण किया था। यह त्रिपिटकधर था। यह शास्त्रों का परमज्ञाता था। इसे तीनों पिटक याद थे; ज्ञानी था।
जैसे हिंदुओं के चार वेद, ऐसे बौद्धों के तीन पिटक। ज्ञानी था; महाज्ञानी था। तर्कनिष्ठ था। बड़ा बुद्धिमान था। बड़ा बौद्धिक था। लेकिन उतना ही अभिमानी था।
अक्सर ऐसा हो जाता हैः ज्ञान से अहंकार कटता नहीं, भर जाता है। ज्ञान
से अहंकार और मजबूत होकर छाती पर बैठ जाता है। तो चूक हो गयी। दवा जहर हो गयी। औषधि शत्रु हो गयी। औषधि बीमारी बन गयी।
ज्ञान का तो अर्थ ही यही है कि काट दे अहंकार को। अगर ज्ञान से तुम्हारे भीतर मैं की अकड़ बढ़ने लगे और ऐसा लगने लगेः मैं जानता; कौन मेरे जैसा जानता? कौन है जो मेरे मुकाबले है? मैं अद्वितीय, मैं बेजोड़! ऐसे भाव उठने लगें ज्ञान से, तो समझनाः चूक हो गयी। जल्दी सम्हल जाना। नहीं तो किसी दिन अचिरवती नदी में सोने की देह होगी और मल-मूत्र से भरी आत्मा होगी। बड़ी दुर्गंध उठेगी।
इसने अपने अभिमान में भगवान काश्यप के साथ धोखा किया।
अक्सर ऐसा हो जाता है। महावीर के साथ गोशालक ने धोखा किया। गोशालक महावीर का शिष्य था, लेकिन महापंडित, बड़ा ज्ञानी! स्वभावतः, धीरे-धीरे उसे ऐसा लगने लगा कि महावीर क्या जानते हैं! मैं भी जानता हूं सब। जो ये जानते हैं, वह मैं जानता हूं। तो फिर मुझ में कमी क्या है? फिर मैं तीर्थंकर क्यों नहीं? तो फिर मैं अपना अलग ही पंथ निर्मित करूंगा। उसने अपना अलग पंथ निर्मित किया। खुद तो भटका और अनेकों को भटकाया।
ऐसा बुद्ध का शिष्य था और उनका चचेरा भाई देवदत्त। राजघर से था। बुद्ध का चचेरा भाई था। उतने ही कुलीन घर से था। बचपन से दोनों साथ खेले थे। सुशिक्षित था, सुसंस्कृत था। आखिर यह अकड़ आनी शुरू हुई उसे कि फिर मैं बुद्ध क्यों न हो जाऊं? बुद्ध को छोड़कर अलग हो गया। बुद्ध को मार डालने की चेष्टाएं कीं--कि बुद्ध मिट जाएं तो मैं अकेला बुद्ध। फिर मेरी कोई भी प्रतिस्पर्धा न कर सकेगा।
ऐसा जीसस के साथ हुआ। जुदास जीसस का सबसे ज्ञानी शिष्य था, जिसने उनको तीस रुपए में बिकवाकर फांसी लगवा दी। वही एकमात्र सुशिक्षित था, बाकी सब अशिक्षित थे। कोई मछुआ था; कोई किसान था; कोई बागवान था; कोई लकड़हारा था। बाकी तो सब अशिक्षित थे। बारह शिष्यों में ग्यारह अशिक्षित, सामान्य, सीधे-सादे लोग थे। एक ही था पढ़ा-लिखा। एक ही था पंडित। वही धोखा दे गया! पंडित सदा धोखा दे जाता है। क्योंकि पंडित को जल्दी ही, देर-अबेर यह अकड़ आनी शुरू होती है कि मैं भी तो जानता हूं। हालांकि पंडित जानता कुछ भी नहीं। उधार शब्द हैं उसके पास। अपना कोई अनुभव नहीं है। बुद्ध जो कहते

हैं, पंडित भी वही कहेगा। दोनों एक ही शब्दों का उपयोग करते हैं। और यह भी हो सकता है कि पंडित बुद्ध से भी अच्छी तरह शब्द का उपयोग करे, और भी परिमार्जित शब्द का उपयोग करे, और भी तर्कनिष्ठ दर्शन का निर्माण करे। लेकिन बुद्ध के पास अपना अनुभव है। वे जो कहते हैं, वह उनके अनुभव से उपजता है। और पंडित के पास अपना कोई अनुभव नहीं। शास्त्रों के अध्ययन, मनन से उपजता है। पंडित के पास जो है, उधार है। इस उधार से अकड़ पैदा होती है। जिसके भीतर अपना स्व-ज्ञान पैदा होता है, उसकी तो सब अकड़ खो जाती है। उस स्व-ज्ञान की अग्नि में सब अहंकार भस्मीभूत हो जाता है।
यह महापंडित था। बड़ा अभिमानी था। इसने अपने अभिमान में, ज्ञान की अकड़ में अपने गुरु काश्यप के साथ धोखा किया। उन्हें छोड़ा ही नहीं, वरन उनके विरोध में संलग्न हो गया। जो इसने बहुत दिनों तक एक बुद्धपुरुष का सत्संग किया और उनके चरणों में बैठा और उनकी छाया में चला, उसके फल से इसे स्वर्ण-वर्ण मिला है।
इसके अनजाने भी, इसके न चाहते हुए भी, कम से कम इसकी देह स्वर्ण की हो गयी। बुद्धों के पास कभी-कभी अनजाने भी... ! तुम शायद इसलिए गए भी न थे। तुम किसी और कारण गए थे। लेकिन अगर पारस के पास संयोगवशात भी लोहा पहुंच जाए, तो सोना हो जाता है।
ऐसे इसकी देह तो स्वर्णमयी हो गयी। काश! इसके भीतर अहंकार न होता, तो इसकी आत्मा भी स्वर्णमयी हो गयी होती। अहंकार ने एक सख्त दीवाल खड़ी कर दी इसकी आत्मा के चारों तरफ। वह जो बुद्ध का प्रभाव था, काश्यप का जो प्रसाद था, वह भीतर तक प्रवेश न हो सका। अहंकार की दीवाल ने उसे बाहर-बाहर रखा। यह भीतर-भीतर अकड़ा रहा। यह भीतर-भीतर सोचता रहाः यह सब तो मैं भी जानता हूं। इसमें क्या नया है? यह सब तो मुझे पता है। इसमें कुछ ऐसी खास बात नहीं है। खैर, सुने लेता हूं। लेकिन इसमें मुझसे ज्यादा कुछ भी नहीं है। ऐसी अकड़-- वंचित रह गया। ऐसी अकड़ में चूक गया।
तो बाहर तो सुंदर हो गया, भीतर कुरूप रह गया। उस अंतर-कुरूपता के कारण
ही इसके मुख से दुर्गंध निकल रही है। और इसलिए भी कि इसी मुख से इसने उसे धोखा दिया, जिसने सिवाय अनुकंपा के, इस पर और कुछ भी न किया था। यही मुख काश्यप के विपरीत और विरोध में बोलता फिरा। यही मुख जो उनकी प्रशंसा के गीत गाता, उनकी निंदा के गीत गाया। इसलिए भी।
और यह जानता था कि जो मैं कह रहा हूं, जो मैं कर रहा हूं, वह गलत है। लेकिन अहंकार कहां सुनने देता अंतरात्मा की आवाज!
तुम भी बहुत बार जानते हो कि यह गलत है, फिर भी करते हो।
संत अगस्तीन का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि हे प्रभु! दुश्मनों से तो मैं निपट लूंगा; लेकिन तू ही बचाए, तो मैं अपने से बच सकता हूं। दुश्मनों से तो मैं बच लूंगा। लेकिन मुझे मुझ से कौन बचाएगा? तू बचा। यही मेरी प्रार्थना है। क्योंकि मैं वह करता हूं, जो नहीं करना चाहिए। और वह कभी नहीं करता, जो करना चाहिए। और सब मैं जानता हूं कि क्या गलत है और क्या ठीक है।
इसे पता था; सब जानते हुए, भलीभांति जानते हुए, इसने धूर्तता की, दगाबाजी की। अहंकार में चूक गया। करीब आते-आते दीए के और भटक गया अंधकार में। इसलिए भीतर से दुर्गंध उठती है।
राजा को इस कथा पर भरोसा न हुआ। तुमको भी नहीं होगा। अगर तुम मेरे पास
आओ और मैं कहूं कि पिछले जन्म में तुम यह थे। मछली की तो छोड़ो, तुम्हारी कहूं, तो भी भरोसा नहीं होगा। मछली की कहूं, तब तो तुम मानोगे ही नहीं--कि यह भी... इसका क्या प्रमाण? समझना इस बात को।
बुद्ध कह रहे हैं, तो भी राजा को भरोसा नहीं। शायद तीन बार झुका, तब शायद थोड़ा झुकना आ गया होगा। बुद्ध ने इतने वचन कहे, इस बीच अकड़ फिर लौट आयी है। अहंकार फिर मजबूत हो गया। तीन बार झुककर भी फिर वापस आ गया! अहंकार लौट-लौट आता है। तर्क लौट-लौट आता है। संदेह फिर-फिर पकड़ लेता है।
राजा को भरोसा न हुआ। वह बोलाः आप इस मछली से कहलवाएं, तो मानूं।
अब तुम थोड़ा सोचनाः बुद्ध के वचन पर भरोसा नहीं; मछली के वचन पर भरोसा
आ जाएगा! आदमी की मूढ़ता ऐसी है। बुद्ध कहते हैं, इस पर भरोसा नहीं; मछली कह

दे तो भरोसा आ जाए! हम क्षुद्र पर भरोसा करते हैं। हम व्यर्थ पर भरोसा करते हैं।
भगवान हंसे। हंसे इसलिए कि यह भी कैसी मूढ़ता। मैं कह रहा हूं, उस पर भरोसा नहीं। मछली कह देगी, उस पर भरोसा आ जाएगा!
हंसे और करुणा से उन्होंने इस राजा को देखा; वैसी ही करुणा से, जैसे पहले मछली को देखा था। क्यों? क्योंकि उनको लगा होगाः यह भी पास तो आकर बैठ गया, किसी दिन अचिरवती नदी में गिरेगा। सोने की देह होगी, मुंह से दुर्गंध निकलेगी। इसलिए करुणा से, दया से, गीली आंखों से इस राजा की तरफ देखा। इतनी बात सुनकर भी यह नहीं समझ पा रहा है! यह अभी भी उसी में उलझा है कि यह बात सच है कि झूठ है। इसका कोई मूल्य नहीं है। राज की बात साफ हो गयी कि बुद्धों के पास आओ, तो पूरे-पूरे आना, समग्र मन से आना। इतना ही राज है। यह भी समग्र मन से यहां नहीं है। यह कहता हैः आपकी बात पर मुझे भरोसा नहीं आता। मछली से कहलवाएं, तो मान लूंगा!
बुद्ध को दया आ रही है कि यह भी मछली के रास्ते पर चला; यह भी गिरेगा।
यह भी स्वर्ण की देह पा लेगा और दुर्गंध से भरी आत्मा होगी। फिर कहानी दोहरेगी।
ऐसा ही आदमी मूढ़ है। फिर-फिर वही दोहरता। फिर-फिर वही चूक। फिर-फिर उसी गड्ढे में हम गिर जाते हैं।
और फिर भगवान मछली से बोलेः याद कर! भूले को याद कर! तू ही कपिल है? मछली बोलीः हां भंते! मैं ही कपिल हूं।
अब तुम इस झंझट में मत पड़ना कि मछलियां कहीं बोलती हैं! अब तुम इस विचार में मत पड़ जाना कि यह बात कपोल-कल्पित है। अभी तक कहानी ठीक चल रही थी। मगर अब सब खराब हुआ। अब भरोसा नहीं आता।
ये कथाएं मनोवैज्ञानिक संकेत हैं। ये बोध-कथाएं हैं। ऐसा कभी हुआ, इस चिंता में पड़ने का कोई भी सार नहीं है। ये तो प्रतीक हैं। इनके पीछे सार है। उसे पकड़ लेना। जैसे छोटे बच्चों के लिए कहानियां कहनी होती हैं।
ईसप की कहानियां पढ़ीं तुमने? या पंचतंत्र की कहानियां पढ़ीं? जानवर बोलते हैं। खूब बोलते हैं। ईसप में जानवर बोलते हैं। पंचतंत्र में जानवर बोलते हैं। छोटे बच्चों की कहानियां हैं। छोटे बच्चों के लिए लिखी गयी हैं। लेकिन कहानी का मुद्दा कुछ और है। कहानी का मुद्दा नीचे जाकर प्रगट होता है। वह मुद्दा समझ में आ जाए, तो कहानी समझ में आ गयी।
तुम भी बुद्धों के लिए छोटे बच्चों से ज्यादा नहीं हो। ये सारी कथाएं तुम्हारे लिए गढ़ी गयी हैं, ताकि तुम समझ लो। ये कहने के ढंग हैं, ये किसी सत्य को प्रतिपादित करने के उपाय हैं। ये बोध-प्रसंग हैं। ये इतिहास नहीं हैं। ध्यान रखना। इनको इतिहास समझा, तो भूल हो जाएगी। तुम इनके मूल तत्व से वंचित रह जाओगे। ये संकेत हैं--कथा के रूप में, कहानी के रूप में, एक घटना के रूप में। बुद्ध ने जो कहना था, वह कह दिया। अगर बिना कथा के कहते, तो शायद तुम्हें समझ में भी न आता। इस तरह बात जल्दी से समझ में आ जाती है। हां, भंते! मछली ने कहा, मैं ही कपिल हूं। और उसकी आंखें आंसुओं से भर गयीं। गहन पश्चात्ताप; आंसू टपके होंगे उसकी आंखों से। और उस अपूर्व क्षण में, इतना बोलकर, वह मर गयी।
उसका मुंह खुला था। लेकिन दुर्गंध नहीं उठ रही थी। और जैसे ही पुरानी दुर्गंध धीरे-धीरे हवा उड़ाकर ले गयी, एक अपूर्व सुगंध वहां छा गयी।
वह मछली बुद्ध के सामने पश्चात्ताप करके मरी। किसी और बुद्ध के साथ धोखा किया था। लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है। किसी और बुद्ध से क्षमा मांग ली। क्षमा का शब्द भी नहीं बोली, लेकिन भाव से मांग ली।
राजा चूक गया; मछली पा गयी। ऐसी उलटी दुनिया है! राजा अभी भी बैठा देख रहा है। राजा के संबंध में कथा कुछ नहीं कहती। शायद सोच में पड़ा हो कि यह मछली से कैसे कहलवाया? कोई धोखा-धड़ी तो नहीं है? कोई बुद्ध वेन्ट्रीलोकिस्ट तो नहीं हैं।
तुमने वेन्ट्रीलोकिस्ट देखे न? मेरे एक संन्यासी हैं--सर्वेश। वे मूर्ति को बुलवा दें। गुड्डे को बुलवा दें। बोलते खुद ही हैं। उनका ओंठ भी नहीं हिलता। ओंठ बंद, और गुड्डे को बुलवा दें।

सोचा होगा राजा नेः ये कोई वेन्ट्रीलोकिस्ट तो नहीं हैं यह गौतम बुद्ध? मछली को बुलवा दिया! कहीं धोखा-धड़ी तो नहीं है? कोई और जालसाजी तो नहीं है! कहीं कोई टेपरेकार्ड इत्यादि तो नहीं छिपा रखा है? कि कहीं कोई ग्रामोफोन तो नहीं लगा रखा है? कि ऐसा लगे कि मछली बोल रही है और मछली सिर्फ मुंह हिला रही हो!
राजा तो चूक ही गया; मछली नहीं चूकी। अहंकारी चूक जाते हैं। मछली ने काफी भोग लिया दुख। पहली दफा चूक गयी थी बुद्ध को, इस बार नहीं चूकेगी। और एक क्षण में क्रांति घट गयी। सुवास फैल गयी। जैसे फूल खिला हो, ऐसे उसकी आत्मा खिल गयी और उड़ गयी। छोड़ गयी देह को। पहुंच गयी परम में।
एक सन्नाटा छा गया। बड़ी देर तक कोई कुछ नहीं बोला। ऐसे क्षणों में कोई बोले, तो क्या बोले! ठगे रह गए लोग। अवाक रह गए। लोग संविग्न हो गए। संविग्न महत्वपूर्ण शब्द है। संविग्न का अर्थ होता है, लोग भावाविभूत
हो गए। लोगों को अपनी कथा दिखायी पड़ने लगी। जो समझदार थे, जो वहां भिक्षु सच में ही बोध रखते थे, वे संविग्न हो गए। उन्हें अपनी कथा दिखायी पड़ गयी। उन्हें अपने जीवन का धोखा, अपने जीवन की बेईमानी दिखायी पड़ गयी। उनमें बहुत होंगे, जिनमें पांडित्य की अकड़ थी। शायद उनकी पांडित्य की अकड़ गिर गयी।
उस क्षण अचिरवती नदी में गिरने से बहुत लोग बच गए होंगे। उस क्षण बाहर-बाहर सोना और भीतर-भीतर दुर्गंध हो जाने की दुर्घटना से बहुत लोग बच गए होंगे।
कुछ उसमें ऐसे भी होंगे, जिन्होंने कहा होगा कि नहीं, ये सब कहानियां हैं। मैं कोई अकड़ा हुआ अहंकारी नहीं हूं। मेरा ज्ञान सच्चा है। यह रहा होगा पंडित, यह कपिल चूका। लेकिन मेरा ज्ञान सच्चा है। मैंने कोई किताबों से नहीं लिया है। यह मेरा है। शायद ऐसे लोग चूक भी गए होंगे।
लेकिन सकते में तो सभी आ गए। संविग्न तो सभी हो गए। उन्हें रोमांच हो आया। लोगों के रोएं खड़े हो गए। ऐसी अपूर्व घटना घटी। तब भगवान ने उस समय उपस्थित लोगों की चित्त-दशा को देखकर ये गाथाएं कहींः

मनुजस्स पमत्तचारिनो तण्हा बड्ढतिमालुवा विय।
सो पलवती हुराहुरं फलमिच्छं"व वनस्मिं वानरो।।

"प्रमत्त होकर--अहंकार में मूर्च्छित होकर--आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालवा लता की भांति बढ़ती है।"
मालवा लता देखी! वह जो बिना जड़ के फैल जाती है वृक्षों पर; जिसकी जड़ नहीं होती। ऐसी तृष्णा है। इसकी कोई जड़ नहीं है, फिर भी फैलती चली जाती है। एक जीवन से दूसरे जीवन में; दूसरे से तीसरे जीवन में। एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर, दूसरे से तीसरे पर। वृक्षों का शोषण करती है और फैलती चली जाती है। अपनी कोई जड़ें नहीं होतीं।
ऐसे ही तृष्णा की लता है। तुम्हारा शोषण करती है। तुम अपशोषित होते हो। तुम्हारा एक जीवन चूस लेती है, फिर दूसरा जीवन चूसती है। ऐसे तुम्हारे अनंत जीवन चूसती है और फैलती चली जाती है। और इसकी कोई जड़ें नहीं हैं। तृष्णा शोषक है। इसी ने तुम्हें दीन किया; इसी ने तुम्हें दरिद्र किया; इसी ने तुम्हें दुख से भरा; इसी ने तुम्हारे नर्क निर्मित किए। "प्रमत्त होकर--अहंकार में मूर्च्छित होकर--आचरण करने वाले मनुष्य की तृष्णा मालवा लता की भांति बढ़ती है। वह वन में फल की इच्छा से कूद-फांद करते बंदर की तरह जन्म-जन्मांतर में भटकता रहता है।"
और तुम्हारा भटकाव ऐसा है, जैसे बंदर कूदता है इस वृक्ष से उस वृक्ष पर; इस वृक्ष से उस पर उछल-कूद करता रहता है। ऐसे ही तुम एक योनि से दूसरी योनि में उछल-कूद कर रहे हो। तुम्हारे जीवन में कोई गंतव्य नहीं, कोई दिशा नहीं, कोई योजना नहीं, कोई अनुशासन नहीं। बंदर की भांति हो तुम।
वासना से भरा हुआ आदमी बंदर की भांति है। और तृष्णा मालवा लता है। सावधान होना इससे। तृष्णा की लता को उखाड़ फेंकना। और यह बंदरपन--एक इच्छा से दूसरी इच्छा--आज मकान बड़ा चाहिए, कल धन और चाहिए, परसों नयी पत्नी चाहिए,

फिर यह चाहिए, फिर वह चाहिए। कूदते फिरते हो। सारा जीवन ऐसे ही व्यर्थ हो जाता है।

यं एसा सहती जम्मी तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पबड्ढन्ति अभिवट्ठं"व वीरणं।।
"यह विषरूपी नीच तृष्णा जिसे अभिभूत कर लेती है, उसके शोक वर्षाकाल में वीरण--खस के तृण--की भांति वृद्धि को प्राप्त होते हैं।"
जैसे वर्षा में घास ऊग आता है, सब तरफ घास-पात फैल जाता है; ऐसे ही जिस व्यक्ति को यह तृष्णा पकड़ लेती है, जकड़ लेती है, उसके जीवन में घास-पात फैल जाता है। उसके जीवन में व्यर्थ का विस्तार हो जाता है। क्षुद्र ही क्षुद्र हो जाता है। उसके जीवन में गुलाब के फूल नहीं खिलते। बस, घास-पात होता है।

यो चेतं सहती जीम्मं तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति उदविन्दू"व पोक्खरा।।

"जो संसार में इस दुस्त्याज्य नीच तृष्णा को जीत लेता है, उसके शोक उस तरह गिर जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जल के बिंदु गिर जाते हैं।"
कुछ करना नहीं पड़ता। जो ठीक से देख लेता है तृष्णा को, इसके जाल को, इसकी मूर्च्छा को, इसके अहंकार को--जो जाग जाता है इसके प्रति--उसके जीवन से तृष्णा ऐसे ही विलीन हो जाती है, और ऐसे ही उसके जीवन से सारे शोक विलीन हो जाते हैं, जैसे कमल के ऊपर से जल के बिंदु अपने आप सरकते और गिर जाते हैं; बिना किसी प्रयास के गिर जाते हैं।
फर्क समझ लेना। लोग सोचते हैंः तृष्णा मिटाने को कुछ और करना पड़ेगा। कुछ और करोगे, तो नयी तृष्णा पैदा होगी। तृष्णा मिटाने को लोग कहते हैंः कुछ करना पड़ेगा, तब तृष्णा मिटेगी! तो फिर क्या करोगे?
पहले तो एक नयी तृष्णा बनानी पड़ेगी कि मोक्ष पाना है। मुक्ति पानी है। आवागमन से छुटकारा पाना है। यह नयी तृष्णा बनाओ कि मोक्ष पाना है। अब मोक्ष पाकर रहूंगा। और मोक्ष पाने में तृष्णा काटनी पड़ती है, इसलिए तृष्णा काटूंगा।
लेकिन तृष्णा तो कट जाए, यह नयी तृष्णा खड़ी हो गयी; इससे कुछ फर्क न पड़ा। फिर नया घास-पात ऊगेगा। पहले धन के नाम पर ऊगता था, अब धर्म के नाम पर ऊगेगा। पहले शरीर के नाम पर ऊगता था, अब आत्मा के नाम पर ऊगेगा। मगर ऊगेगा, फिर भी तुम घास-पात के ही रहोगे। तुम्हारे भीतर भूसा ही भरा रहेगा। तुम्हारे भीतर ज्योति प्रगट न होगी।
तो बुद्ध क्या कहते हैं? बुद्ध कहते हैंः मोक्ष की तृष्णा न करो; वह भी तृष्णा है। मुक्ति की आकांक्षा न करो, वह भी आकांक्षा है। फिर करो क्या? संसार की जो तृष्णा है, इसे समझो; जागो, होश से भरो। देखो, तृष्णा कैसे तुम्हें चलाती है! कैसा बंदर जैसा उछलवाती है! कैसा मूढ़ बनाती है! गौर से देखो। इसे देखो, इसको पहचानो। इसकी सारी प्रक्रिया को समझ लो। उस समझने में ही तृष्णा ऐसे विलीन होने लगती है, जैसे कमल के ऊपर से जल के बिंदु गिर जाते हैं।
सोका तम्हा पपतन्ति उदविन्दू"व पोक्खरा।।
तं वो वदामि भद्दं वो यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ उसीरत्थो"व वीरणं।
मा वो नलं व सोतो व मारो भिंज पुनप्पुनं।।

"इसलिए मैं तुम्हें जितने तुम यहां आए हो, तुम्हारे कल्याण के लिए कहता हूं, जैसे खस के लिए लोग उषीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ खोदो।"
तृष्णा की जड़ है मूर्च्छा। तृष्णा की जड़ है बेहोशी, आंख बंद किए जीए जाना। तृष्णा की जड़ है, अचेतना। तुम इस जड़ को खोदो। अचेतना को मिटा दो। ध्यान में जगो। होश से उठो, होश से बैठो। होश से करो, जो भी करना है।

क्रोध आए, तो बुद्ध यह नहीं कहते कि क्रोध को दबाओ। बुद्ध कहते हैंः होश से क्रोध को करो। और तुम चकित हो जाओगे। होश से कभी कोई क्रोध कर पाया? तुम जागकर क्रोध को करो। जब क्रोध पकड़े, तब झकझोरकर अपने को जगा लो। होशपूर्वक क्रोध को करो और तुम पाओगेः इधर होश उठा, उधर क्रोध गिरा। दोनों साथ नहीं होते। दोनों का कोई संग-साथ संभव नहीं है।
वासना उठे, कामवासना उठे, तो बुद्ध नहीं कहते कि दबाओ। कोई ज्ञानी नहीं कहता कि दबाओ। जो कहता है दबाओ, उसे कुछ भी पता नहीं है। वह महाअज्ञानी है। वह अंधा है और दूसरों को अंधा बनाएगा।
बुद्ध कहते हैंः जब कामवासना उठे, तब ध्यान करो। तब देखोः क्या उठ रहा है? क्यों उठ रहा है? पहले इससे क्या मिला? बहुत बार इसमें गिरे थे, क्या पाया? विश्लेषण करो। समझो। सिर्फ समझो। और जैसे-जैसे तुम्हारी समझ गहन होगी, वैसे-वैसे तुम पाओगेः वासना का धुआं गया।
"तृष्णा की जड़ खोदो। तुम्हें जल-प्रवाह में उत्पन्न सरकंडे की भांति बार-बार मार न तोड़े।"
बुद्ध कहते हैंः यह तृष्णा का शैतान नहीं तो तुम्हें बार-बार तोड़ेगा। बार-बार गिराएगा। बार-बार सताएगा।
दूसरा दृश्यः

भगवान वेणुवन में विहार करते थे। एक दिन भिक्षाटन को जाते हुए राह में एक सुअरी को देखकर ठिठक गए और फिर कुछ सोचकर मुस्कुराए और आगे बढ़े। एक सुअरी को देखकर... । आनंद स्थविर ने--जो उनके साथ सदा छाया की तरह लगा रहता था, उनका सेवक था--यह देखा कि बुद्ध ठिठके एक सुअरी को देखकर! कुछ सोचा। फिर मुस्कुराए और आगे बढ़े। आनंद अपनी जिज्ञासा को न रोक सका। और उसने भगवान से ठिठकने, फिर कुछ सोचने और फिर मुस्कुराने का कारण पूछा। शास्ता ने कहाः आनंद! यह सुअरी ककुसंध बुद्ध के शासन में एक मुर्गी थी।
और प्राचीन बुद्ध ककुसंध, उनके शासन में एक मुर्गी थी। भगवान ककुसंध
के वचनों को सुनकर और भगवान के विहार-स्थल के पास ही रहने के कारण उनके प्रति प्रीति को उत्पन्न हो गयी थी। जब वे बोलते, तो यह सदा पास आ जाती। समझ न भी सकती, तो भी सुनती। समझ कौन सकता है? तो भी सुनती। भावविभोर हो जाती, तन्मय हो जाती।
मुर्गी ही थी। कुछ ज्यादा सोच-विचार की संभावना भी न थी। आदमियों तक
की नहीं है! लेकिन सरल थी, निर्दोष थी। उनकी सुवास इस अज्ञानी मुर्गी को भी छू गयी थी।
भगवान जब भी बोलते, यह आसपास ही बनी रहती। इसे सत्संग का चाव लग गया था।
ऐसा हो जाता है। महर्षि रमण के पास एक गाय बनी रहती थी। यह तो अभी की बात है। वे जब बोलते, तो गाय निश्चित आ जाती। खिड़की में से सिर अंदर कर लेती। सुनती रहती! जब तक वे बोलते, बराबर सुनती रहती। जैसे ही बोलना बंद करते--जाती। रोज आती। इतना नियमित भक्त कोई भी नहीं था, जितनी गाय थी! जब गाय मरी, तो रमण महर्षि ने उसे वैसे ही सम्मान से विदा दी, जैसे कोई मनुष्य को देता है। उसकी समाधि बनवायी।
ऐसी ही यह मुर्गी रही होगी। जब भगवान ध्यान करते, तो यह अत्यंत निकट आकर खड़ी रहती थी। कभी-कभी आंखें बंद कर लेती थी। ज्यादा तो नहीं समझ सकती थी, लेकिन जैसा भगवान शांत बैठे, ऐसे ही यह भी शांति खड़ी हो जाती। देखतीः भगवान हिलते-डुलते नहीं; यह भी अडोल हो जाती। देखतीः उन्होंने आंखें बंद कीं, तो यह भी आंखें बंद कर लेती। ऐसे धीरे-धीरे इसको रस लगा; रस पगी। धीरे- धीरे सुवास पकड़ी। सत्संग जमा।
ऐसे उसने बहुत पुण्य अर्जन किया था। और उस पुण्य के कारण दूसरे जन्म में उवरी नाम की राजकन्या होकर उत्पन्न हुई थी। उस दूसरे जन्म में एक पाखानाघर में कीड़ों को देखकर पुलवक संज्ञा की भावना कर प्रथम ध्यान को प्राप्त हुई।

मुर्गी थी। ककुसंध के सान्निध्य का परिणामः राजकुमारी होकर पैदा हुई। जब राजकुमारी होकर पैदा हुई, तो एक दिन पाखाने में कीड़े दिखायी पड़े, उन कीड़ों को देखकर उसे अपूर्व बोध हुआ--कि ऐसी ही तो हमारी दशा है। जैसे कीड़े बिलबिला रहे हैं, ऐसे ही आदमी बिलबिला रहा है! और कीड़े भी सोचते पाखाने के कि बड़े मस्ती में हैं। संसार बसा रहे हैं। वे भी प्रेम में पड़ते। विवाह इत्यादि करते। बच्चे पैदा करते। सारा संसार जमाते। ऐसे ही तो हम भी हैं। हम में और इनमें भेद क्या है?
ऐसा उसे बोध हुआ। तो पहले ध्यान का फूल उसके जीवन में खिला था। उस पुण्य के कारण, उस ध्यान के कारण, उस ध्यान-धन के कारण, फिर ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुई। एक देवी की तरह उत्पन्न हुई। देवतालोक में उत्पन्न हुई। लेकिन देवलोक के सुख में मूर्च्छित हो गयी।
अक्सर ऐसा होता हैः दुख जगा देता है, सुख सुला देता है। इसलिए सुख से सावधान रहना। दुख इतना बड़ा अभिशाप नहीं जितना सुख है। क्योंकि दुख में तो कोई सो नहीं सकता। दुख की पीड़ा जगाए रखती है। सुख में आदमी सो जाता है। मुर्गी थी, तब ककुसंध बुद्ध का सत्संग करने का रस लिया। उसके परिणाम में राजकुमारी हुई। राजकुमारी थी, तो पाखाने में कीड़ों को देखकर इस बोध को उत्पन्न हो गयी कि सब असार है। और योनियों में भटकना बहुत हो चुका। कंप गयी होगी--कि कभी शायद मैं भी पाखाने का कीड़ा रही होऊं। या कभी हो जाऊं। उस अवस्था में मोह-तृष्णा क्षीण हो गयी, भवतृष्णा क्षीण हो गयी। जीवन को पकड़ने का जो भाव था, वह एकदम शिथिल हो गया। उस ध्यान के कारण देवलोक में उत्पन्न हुई।
लेकिन बुद्ध ने कहा, आनंद, समझना। देवलोक के सुख में मूर्च्छित हो गयी। और अब ध्यान-धन के चुक जाने के कारण इस पृथ्वी पर पुनः सुअर की बेटी होकर पैदा हुई है। आवागमन के इस चक्कर को देखकर मैं ठिठका, बुद्ध ने कहा। सोच में पड़ा। और फिर इसलिए मुस्कुराया कि कैसी मूढ़ता है! जागते-जागते फिर सो गए! उठते-उठते फिर गिर गए!
देवलोक से भी आदमी गिर जाता है, क्योंकि पुण्य एक दिन चुक जाते हैं। समाधि से नहीं कोई गिरता है; ध्यान से गिर जाता है। ध्यान और समाधि में यही फर्क है। ध्यान यात्रा है; तुम चाहो तो बीच से लौट सकते हो। समाधि मंजिल है; एक बार पहुंच गए, फिर लौटना नहीं है। क्योंकि समाधि में तुम खो जाओगे। बचता ही नहीं कोई लौटने वाला। जब तक निर्वाण न घट जाए, तब तक गिरने का डर है, संभावना है।
तो बुद्ध कहते हैंः मैं ठिठका। यह कैसा हुआ! मुर्गी थी, तब इतना पुण्य अर्जन किया और देवी होकर गिरी और सुअर की बेटी होकर पैदा हुई! तो चौंका; सोच-विचार में पड़ा। फिर हंसी भी आयी कि कैसा आदमी है! कैसी मूढ़ता है!
यह कथा सुनकर आनंद तथा अन्य भिक्षु जो बुद्ध के साथ भिक्षाटन को गए थे, महान संवेग को प्राप्त हुए। शास्ता ने उनमें पैदा हुए संवेग को देखकर नगर की वीथी में खड़े हुए ही इन गाथाओं को कहा।
बोलने के क्षण होते हैं, तभी कुछ बातें कही जाती हैं। जैसे लोहा गरम हो, तभी पीटा जाता है; तभी कुछ बन सकता है। तो सड़क पर खड़े हुए बुद्ध ने ये वचन कहे। क्योंकि लौटते-लौटते विहार तक संवेग खो जाए। आदमी का भरोसा क्या! ये जो भिक्षु साथ गए थे, इस घटना के आघात में एकदम चौकन्ने हो गए थे; इस घटना के आघात में बड़े जागरूक हो गए थे। उस जागरूकता के क्षण को चूका नहीं जा सकता है। इसलिए बुद्ध ने बीच सड़क में खड़े होकर ये वचन कहेः

यथापि मूले अनुपद्दवे दल्हे छिन्नोपि रुक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तण्हानुसये अनूहते निब्बत्तति दुक्खमिदं पुनप्पुनं।।

"जैसे दृढ़ मूल के बिल्कुल नष्ट न हो जाने से कटा हुआ वृक्ष फिर भी वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही तृष्णा और अनुशय के समूल नष्ट न होने से यह दुख-चक्र बार-बार प्रवर्तित होता है।"

तो बुद्ध ने कहा कि भिक्षुओ, पत्ते और शाखाएं मत काटते रहना; जड़-मूल से तृष्णा को काटना है। अगर जड़ बच गयी--मूल जड़ बच गयी--तो तुम पूरे वृक्ष को भी काट दो, फिर नए अंकुर निकल आते हैं।
ऐसा ही इस बेचारी सुअरी को हुआ। मुर्गी थी। अनजाने कुछ शाखाएं गिर गयीं। फिर राजकुमारी थी, तो संवेग की एक दशा में, भाव के एक प्रवाह में ध्यान फला। लेकिन तृष्णा जड़-मूल से नहीं गयी, तो स्वर्ग तक पहुंचकर वापस लौट आयी। फिर अंकुर आ गए। फिर तृष्णा ने पकड़ लिया!
सात अनुशय कहे हैं बुद्ध नेः काम; भवराग... । भवराग का अर्थ होता हैः मैं जीऊं; मैं सदा जीऊं; मैं बना रहूं, मैं कभी मिटूं नहीं। प्रतिहिंसा; मान; मिथ्यादृष्टि--जैसा है, उसको वैसा न देखना; जैसा है, उसको कुछ और करके, कुछ और बनाकर देखना; अपने मन के अनुकूल बनाकर देखना। संदेह और अविद्या--ये सात अनुशय हैं। ये सातों जड़ें हैं, जिन पर तृष्णा खड़ी है, जिन पर तृष्णा का वृक्ष बड़ा होता है। ये सातों अनुशय कट जाएं, तो तृष्णा कटती है! फिर उसमें कभी अंकुर नहीं आते।

यस्स छत्तिंसति सोता मनापस्सवना भुसा।
वाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं संकप्पा रागनिस्सिता।।

"जिसके छत्तीसों स्रोत संसार में प्रिय पदार्थों की तरफ बने रहते हैं, उसके रागपूर्ण संकल्प उसे दुर्दृष्टि की ओर बहा ले जाते हैं।"
और तुम अनंत रूपों में संसार की वस्तुओं की तरफ बह रहे हो। तुम्हारे
सब द्वार संसार की तरफ खुले हैं, जो तुम्हें दुर्दृष्टि में बहा ले जाते हैं।
इधर एक सुंदर स्त्री दिखायी पड़ गयी--और तुम बहे। यहां किसी की सुंदर कार दिखायी पड़ गयी--और तुम बहे। यहां किसी का बड़ा मकान दिखायी पड़ गया--और तुम बहे। यहां कोई सुंदर कपड़े पहनकर निकला है--और तुम बहे। जागकर चलना होगा।
इस तरह बुद्ध ने कहाः ये छत्तीस द्वार हैं, जो बहाते हैं। जो तुम्हें प्रतिपल पुकार रहे हैंः आ जाओ, बाहर आ जाओ। और यह जो लता है बिना जड़ की, यह बढ़ती चली जाती है, फैलती चली जाती है।

सवन्ति सब्बधि सोता लता उब्भिज्ज तिट्ठति।
तंच दिस्वा लतं जातं मूलं पांंय छिन्दथ।।

"ये स्रोत सभी तरफ बहते हैं। लता फूटकर निकलती है। उसी फूटी हुई लता
को देखकर उसके मूल को प्रज्ञा से काट डालो।"
तो बुद्ध कहते हैंः ये सात मूल, सात अनुशय हैं, इन्हें काटोगे कैसे? किस कुल्हाड़ी से काटोगे? प्रज्ञा की कुल्हाड़ी से।
प्रज्ञा का अर्थ होता हैः जागरूकता, अवेयरनेस। प्रज्ञा का अर्थ होता हैः प्रतिपल होशपूर्वक जीना; एक क्षण को भी बेहोशी में न करना कुछ। राह चलो, तो ऐसे चलना, जागे हुए। भोजन करो, तो जागे हुए। बोलो, तो जागे हुए। क्रोध, लोभ, मोह--कुछ भी आए, तुम जागे हुए रहना।
और एक अपूर्व घटना घट जाती है। जागरण के साथ ही जो तुम्हारे शत्रु हैं, तुम्हारे पास आने बंद हो जाते हैं। और जो तुम्हारे मित्र हैं, वही आते हैं। जागरण के साथ घृणा खो जाती है, प्रेम बचता है। मूर्च्छा में प्रेम खो जाता है, घृणा बचती है। जागरण में क्रोध खो जाता, करुणा बचती है। मूर्च्छा में करुणा खो जाती, क्रोध बचता है।
बुद्ध ने कहा हैः जैसे किसी घर में दीया जला हो और घर का मालिक जगा हो,
तो चोर उस घर की तरफ नहीं आते। पहरेदार सजग हों; घर में दीया जला हो; खिड़कियों से रोशनी बाहर आती हो और मालिक चलता-फिरता हो, तो चोर उस तरफ नहीं आते। दूर-दूर रहते हैं।
मालिक सोया हो; घर का दीया बुझा पड़ा हो; घर में गहन अंधकार हो; पहरेदार शराब पीकर पड़ा हो; फिर चोरों के लिए निमंत्रण है। तुमने खुद ही निमंत्रण

भेज दिया! फिर चोर न आएं, तो क्या करें! चोरों को कसूर मत देना। चोरों को दोषी मत ठहराना। तुम ही दोषी हो।
ऐसी ही मन की दशा है। जब मन में होश का दीया जगा होता है, जब तुम्हारा ध्यान पहरे पर बैठा होता है, जब तुम्हारा मालिक शराब पीकर खोया नहीं रहता, मूर्च्छा में डूबा नहीं रहता... ।
और शराबें बहुत तरह की हैं। अहंकार की शराब है; उसको पीकर कपिल नाम का भिक्षु महापंडित था, लेकिन गिरा--गर्त में गिरा। भयंकर दुर्गंध वाली मछली हुआ। सुख भी शराब है; उसको पीकर राजकुमारी, जो देवलोक पहुंच गयी थी, वहां से गिरी। और कैसी गिरी कि सुअर की बेटी हुई! किस बुरी तरह खोया!
मूर्च्छा गिराती है, क्योंकि मूर्च्छा शत्रुओं को निमंत्रण है। और होश पहुंचाता है, क्योंकि होश के साथ वही बचता है, जो शुभ है।
होश में जो हो, वही पुण्य; बेहोशी में जो हो, वही पाप। इसे तुम कसौटी मानना।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ चार प्रवचन

धम्मपद का पुनर्जन्म

पहला प्रश्नः भगवान बुद्ध बार-बार कहते हैं कि यही बुद्धों का शासन है। आप भी प्रायः इसी भाषा में बोलते हैं। तो क्या एक बुद्ध सभी बुद्धों की ओर से बोल सकता है? यदि हां, तो अतीत में हुए बुद्धों में मतभेद क्यों रहा?

बुद्धत्तव का स्वाद एक है; मतभेद दिखता हो, तो तुम्हारे कारण दिखता होगा। तुम्हारी व्याख्या के कारण मतभेद निर्मित होता होगा। तुम्हारी समझ विकृति लाती होगी। अन्यथा बुद्धों ने सदा एक ही बात कही है।
भाषाएं अलग हैं; क्योंकि युग अलग होते हैं, तो भाषा बदल जाती है। शब्द भिन्न हैं, लेकिन भाव भिन्न नहीं हैं। भाव भिन्न हो ही नहीं सकता। इस मनोदशा से खोजने जाओगे, तो अभेद पाओगे।
लेकिन लोगों को सिखाया गया है कि भेद है। भेद ही नहीं, विपरीतता है। जैन घर में पैदा हुए, तो महावीर और बुद्ध में भेद है। महावीर ठीक, बुद्ध गलत। बौद्ध घर में पैदा हुए, तो बुद्ध ठीक; महावीर गलत, कृष्ण गलत। हिंदू घर में पैदा हुए, तो मोहम्मद गलत, क्राइस्ट गलत।
ठीक बताने के पहले गलत पकड़ा दिया जाता है। ठीक को समझाने के लिए गलत
का उपयोग किया जाता है। और एक को जब तुमने जोर से पकड़ लिया, और सबके विपरीत है, ऐसी धारणा बना ली, तो फिर यह धारणा तुम्हारे जीवनभर तुम्हारी आंखों को धोखा देती रहेगी।
इन धारणाओं के कारण भेद दिखायी पड़ता है, अन्यथा जरा भी भेद नहीं है। भेद हो ही नहीं सकता। भेद का उपाय नहीं है। जहां सारे अंतर के कलुष गिर गए, जहां सारे विचार शांत हो गए, जहां व्यक्ति मन से मुक्त हो गया--वहां कैसा भेद!
यह हो सकता है कि महावीर ने किसी एक बात पर जोर दिया; बुद्ध ने किसी दूसरी बात पर जोर दिया। यह भी इसलिए हुआ कि जो सुनने वाले थे, उनकी क्षमता, उनकी पात्रता, उनकी संभावना, इस सब को देखकर बात कही गयी है। लेकिन सत्य के संबंध में रत्तीभर भी भेद नहीं हो सकता।
फिर सत्य के संबंध में सारे बुद्ध मौन हैं; भेद होगा भी कैसे? प्रक्रियाओं में भेद हो सकता है। कोई कहता हैः बैलगाड़ी से जाओ। कोई कहता हैः रेलगाड़ी से जाओ। कोई कहता हैः हवाई जहाज से चले जाओ। यह प्रक्रियाओं में भेद हो सकता है। लेकिन जहां पहुंचना है, जो मंजिल है, वहां तो बैलगाड़ी भी छूट जाएगी; हवाई जहाज भी छूट जाएगा; रेलगाड़ी भी छूट जाएगी।
मंजिल पर पहुंचकर तो वाहन छूट जाएंगे। मन ही छूट जाएगा। सब दर्शन छूट जाएंगे। सब दृष्टियां छूट जाएंगी। वहां तो तुम भी न बचोगे। भेद करने वाला भी न बचेगा। वहां अभेद होगा। वहां समरसता होगी।
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः बुद्धों में कभी कोई मतभेद नहीं है। लेकिन तुम्हें मतभेद दिखता है, यह सच है। जो तुम्हें दिखता है, वह होना ही चाहिए, इस भ्रांति में मत पड़ना। तुम्हें तो कभी-कभी तुमने ही सुबह जो लंगोट टांग दिया था रस्सी पर सूखने को, वही रात भूत दिखायी पड़ने लगता है! तुम्हें तो कभी-कभी रास्ते में पड़ी रस्सी सांप दिखायी पड़ने लगती है!
तुम्हारे देखने की क्षमता शुद्ध नहीं है। तुम्हें तो कुछ का कुछ दिखायी पड़ता है। तुम्हें तो वही दिखायी पड़ता है, जो तुम मान लेते हो। तुम्हारी धारणा तुम्हारी दृष्टि पर पर्दा डाल देती है। तुम्हें तो क्षुद्र बातों में भूल हो जाती है, तो इन विराट, इन असीम सत्यों के संबंध में अगर तुमसे भूल हो जाए तो कुछ आश्चर्यजनक नहीं है।
मैं यह भी नहीं कह रहा कि तुम मान लो कि भेद नहीं है। तुमने यह मान लिया, तो फिर तुमसे दूसरी भूलें होनी शुरू हो जाएंगी। तब तुम अभेद को देखने की कोशिश करने लगोगे। और कहीं भेद भी होगा--प्रक्रियाओं में भेद होगा, विधियों में भेद होगा--तो तुम वहां भी अभेद देखने की कोशिश करने

लगोगे। वचनों में भेद होगा; शब्दों में भेद होगा; कहने की अभिव्यक्तियां भिन्न होंगी। कोई बुद्ध गाकर कहता, कोई बुद्ध बिना गाए कहता; कोई बुद्ध चुप रहकर कहता, कोई बोलकर कहता। अगर तुमने अभेद देखने की चेष्टा शुरू कर दी, तो भी गलती हो जाएगी। तुम तो जो करोगे, गलत होगा। तुम मिटो, तब जो होता है, वही सही है। तुम जाओ, विदा हो जाओ। तुम बीच में न आओ, तब जो होता है, वही सही है।
तो तुमसे मैं यह नहीं कह रहा हूं कि सैद्धांतिक रूप से तुम मान लो कि कोई भेद नहीं है। तो कुरान में भी वही लिखा है, जो वेद में है। और धम्मपद में भी वही लिखा है, जो बाइबिल में है। ऐसा नहीं कह रहा हूं तुमसे। मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि तुम्हारा मन जब तक है, तब तक तुम भेद देखो तो गलती है, अभेद देखो तो गलती है। मन से सत्य को जानने का कोई द्वार ही नहीं है। मन के पार उठो। सोचने के पार चलो। विचार से मुक्त हो जाओ। निर्विचार में तुम्हें दिखायी पड़ेगा अभेद।
लेकिन ख्याल रखनाः अभेद का मतलब यह नहीं है कि एक-एक शब्द बुद्ध ने वही कहा है, जो महावीर ने कहा है। सार तत्व एक है।
बुद्ध के उदाहरण अलग। होंगे ही। जीसस के उदाहरण अलग। होंगे ही। जीसस
एक अलग परंपरा से आए हैं। अलग कहानियां सुनी हैं बचपन में उन्होंने। अलग भाषा सीखी है। अलग भाषा का ढंग सीखा है। जब वे बोलेंगे, तो उसमें पुरानी बाइबिल का प्रभाव होगा।
बुद्ध में वह प्रभाव कहीं भी न मिलेगा। बुद्ध ने कुछ और सीखा है। किसी
और परंपरा में जन्मे हैं। किसी और भाषा-स्रोत से आए हैं। उनके वचनों में उपनिषद की भनक होगी। उनके वचनों में उपनिषद की भाषा होगी।
तो ये भेद होंगे, लेकिन ये भेद ऊपरी हैं। जैसे-जैसे तुम पर्तें उघाड़ोगे और भीतर जाओगे, वैसे-वैसे अभेद होने लगेगा। जिस क्षण तुम बुद्ध के हृदय को समझ लोगे, उस दिन तुमने महावीर को समझा, कृष्ण को समझा, मोहम्मद को, जरथुस्त्र को, सब को समझा। जिन्होंने जाना है, उन सब को समझा।
लेकिन बुद्ध के हृदय में उतरने के लिए, पहले तुम्हें अपने हृदय में उतरना होगा। जितने गहरे तुम अपने भीतर जाओगे, उतने ही बुद्ध के भीतर जा सकते हो। उससे ज्यादा नहीं।
ख्याल रखनाः तुम अपने से ज्यादा कुछ भी नहीं जान सकते हो। तुम अपने से ऊपर नहीं देख सकते हो। इसलिए अगर अपने से ऊपर देखना हो, तो अपने से ऊपर उठना पड़े। और अपने से ज्यादा जानना हो, तो अपने से ज्यादा होना पड़े। क्योंकि तुम्हारा होना ही तो तुम्हारा जानना बनता है।

ऐसा समझो कि एक अंधा आदमी रोशनी को जानना चाहता है, पर आंख उसके पास नहीं है। कैसे जाने? अंधा रोशनी नहीं जान सकता। पहले आंख चाहिए।
पश्चिम के एक बुद्धपुरुष प्लोटिनस ने कहा हैः तुम वही देख सकते हो, जो तुम्हारे भीतर मौजूद हो, उससे अन्यथा नहीं। सूरज मौजूद है आंख में तुम्हारी, इसलिए तुम सूरज को देख सकते हो। आंख सूरज का हिस्सा है, रोशनी से बनी है, इसलिए रोशनी को देख सकते हो। और कान ध्वनि से निर्मित है, इसलिए ध्वनि को सुन सकते हो।
कान नहीं हैं जिसके पास, जो बहरा है, फिर तुम कितने ही बड़े कलाविद लाओ, बड़े-बड़े संगीतज्ञ लाओ, कुछ भी न होगा। बहरे को कुछ सुनायी न पड़ेगा। और हो सकता है, बहरा मानता हो कि जब मुझे नहीं सुनायी पड़ता, तो ध्वनि हो ही नहीं सकती! और अंधा मानता हो कि जब मुझे नहीं दिखायी पड़ता, तो रोशनी हो कैसे सकती है! सूरज नहीं, चांद नहीं, तारे नहीं। तुम जानते हो कि हैं। लेकिन तुम्हारे पास आंख है। तुम्हारे पास भी आंख न होती, तो तुम भी न जानते।
ऐसे ही बुद्धत्व को देखने की भी आंख होती है। उसी आंख को तो तीसरा- नेत्र कहा है। जब तुम्हारे पास वह तीसरा-नेत्र होगा, तब तुम बुद्ध को पहचानोगे। बुद्ध को पहचाना, तो समस्त बुद्धों को पहचाना। एक सदगुरु को जान लिया, एक सदगुरु का स्वाद ले लिया तो समस्त गुरुओं का स्वाद आ गया।

बुद्ध ने कहा हैः सागर को कहीं से भी चखो--खारा; ऐसे ही बुद्धपुरुष हैं; कहीं से भी चखो, एक ही स्वाद है उनका। इस घाट, उस घाट; इस किनारे, उस किनारे; कहां से तुम सागर को चखते हो; कुछ भेद नहीं पड़ता।
लेकिन आंख वालों के पीछे अंधों की जमातें हैं। आंख वाले कुछ कहते हैं, अंधे कुछ समझते हैं। आंख वाले कुछ कहते हैं, अंधे कुछ पकड़ते हैं! सुंदर परमात्मा के गीत गाने वालों के पीछे बहरों की जमातें हैं। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, जैन हैं, बौद्ध हैं--ये अंधे और बहरों की जमातें हैं। ये कुछ का कुछ पकड़ते हैं। ये कुछ का कुछ समझते हैं। और इनकी भीड़ है। यही प्रतिपादक हैं। यही हकदार हो जाते हैं। इनकी ही व्याख्या स्वीकृत होने लगती है!
बुद्ध तो बुद्धुओं के हाथ में पड़ जाते हैं। फिर जो अर्थ होता है, वह अनर्थ है--अर्थ नहीं है। फिर भेद हो जाते हैं। फिर बड़े भेद मालूम पड़ते हैं। जहां जरा भी भेद नहीं, वहां इतनी दीवालें खड़ी हो जाती हैं!
ये भेद सांप्रदायिक हैं। धर्म में कोई भेद नहीं है। धर्म एक है, संप्रदाय अनेक हैं। और जिसको धर्म दिख जाएगा, वह संप्रदाय से मुक्त हो जाता है। लेकिन कैसे तुम्हें दिखे?
मैं तुमसे सोच-विचार को नहीं कह रहा हूं कि तुम खूब सोचो-विचारो, सिर पटको। इससे कुछ भी न होगा। तुम सिर से मुक्त होओ। ध्यान में उतरो।
बुद्ध कैसे बुद्ध बने? ध्यान से बुद्ध बने। महावीर कैसे जिन बने? ध्यान से जिन बने। तुम भी ध्यान में उतरो।
जिन सीढ़ियों से उतरकर बुद्धपुरुष जागे हैं, उन्हीं सीढ़ियों से तुम भी उतरो। जैसे-जैसे अपने भीतर गहराई बढ़ेगी, शांति बढ़ेगी, शून्य बढ़ेगा, वैसे- वैसे तुम पाओगेः बुद्ध के वचनों के नए अर्थ प्रगट होने लगे। जिस दिन बुद्ध के वचनों के पूरे अर्थ तुम्हारे सामने प्रगट हो जाएंगे, उस दिन सब बुद्धों का सार समझ में आ गया। तब तुम भी कह सकोगेः यही बुद्धों का शासन है।

दूसरा प्रश्नः आपने कल स्वर्ण मछली की जो कथा कही, वह शास्त्रों में बहुत भिन्न प्रकार की दी हुई है।

मैं चश्मदीद गवाह हूं। तुम शास्त्र में बदल लो। मेरी अर्ज है-- शास्त्र में सुधार कर लो। मुझे पता हैः शास्त्र में भिन्न रूप से दी गयी है बात। क्योंकि जिन्होंने शास्त्र संगृहीत किए हैं, वे ढाई हजार साल पहले हुए। उस समय जो उन्हें उचित लगा, उन्होंने इकट्ठा किया। ढाई हजार साल में मनुष्य ने बड़ी यात्रा कर ली है। गंगा का बहुत पानी बह गया है। ढाई हजार साल में मनुष्य की भाषा परिष्कृत हुई है; विचार परिष्कृत हुए हैं; चेतना नए-नए ढंगों में विकसित हुई है।
आज कथा को वैसे ही कह देना, जैसी ढाई हजार साल पहले कही गयी थी, गलत होगा; बुद्ध के साथ अन्याय होगा। ढाई हजार साल में जैसे आदमी बदला है, ऐसे ही कथा को भी बदलना चाहिए। तो ही आज के आदमी को पकड़ में आएगी। ढाई हजार साल पहले जो कथा लिखी गयी थी, वह तो ऐसा है, जैसे खदान से निकाला गया अनगढ़ हीरा। कोई जौहरी होगा, तो पहचान लेगा। लेकिन साधारण आदमी अनगढ़ हीरे को न पहचान पाएगा। पहले तो उस हीरे को निखारना होगा, साफ करना होगा, तराशना होगा। उस हीरे पर चमक लानी होगी। उस हीरे से धूल, असार झाड़ना होगा, तब साधारण आदमी पहचान पाएगा।
सारी कथाएं, शास्त्रों में जो दी गयी हैं, अनगढ़ हीरे हैं। जब मैं उन्हें कहता हूं, तो मैं तराशकर कहता हूं।
जिस आदमी ने कोहिनूर खोजा था, तब वह अनगढ़ हीरा था। उसे पता भी नहीं था
कि यह कोहिनूर है। बहुत दिन तक तो उसके बच्चे उससे खेलते रहे। मिल गया था पड़ा हुआ नदी के किनारे। उसका खेत था नदी के किनारे। नदी उसके खेत से होकर बहती थी। रेत में पड़ा मिल गया था यह। चमकदार पत्थर लगा; सुंदर रंगीन पत्थर लगा; वह उठा लाया था बच्चों के खेलने के लिए।
शायद तुमने कहानी न सुनी हो। कहानी बड़ी अदभुत है। कैसे गोलकुंडा खोजा गया? यह पहला हीरा था, जो गोलकुंडा में मिला।

एक रात एक संन्यासी इस आदमी के घर में मेहमान हुआ, और उस संन्यासी ने कहा कि तू कब तक इस ऊबड़-खाबड़ जमीन में, कम उपजाऊ जमीन में मेहनत करता रहेगा? मैं ऐसी जमीनें जानता हूं, जो सोना उगलती हैं। मैं ऐसी जमीनें जानता हूं, जो हीरे उगलती हैं।
वह तो प्रतीक की भाषा बोल रहा था। वह तो यह कह रहा था कि बड़ी उपजाऊ जमीन मैं जानता हूं। लेकिन उस रात किसान सो न सका। सपने आने लगे उसे कि फिर मैं भी इस जमीन को बेच-बाचकर ऐसी जमीन खोजूं, जो हीरा उगलती है, सोना उगलती है।
तो उस जमीन को उसने बेच दिया, और गया खोज में ऐसी जमीन की, जहां हीरे उगले जाते हैं। वह हीरों की खोज में भटकता रहा, भटकता रहा। उसके सब पैसे खतम हो गए। कहीं ऐसी कोई जमीन न मिली, जो हीरे उगलती हो। हीरे की पहचान ही नहीं थी... ।
मीरा ने कहा नः जौहरी होना चाहिए। जौहरी की गति जौहरी जाने, घायल की गति घायल जाने।
जिस खेत को छोड़ आया है, उसमें हीरा मिला था। वह उसके बच्चे खेलते थे।
और संसार का सब से बड़ा हीरा साबित हुआ। और वह तलाश में घूम रहा था ऐसी जमीन की, जहां हीरे उगले जाते हों! सब पैसे खतम हो गए। जो जमीन बेच दी थी, वह सब फिजूल चली गयी।
थका-हारा, बरबाद होकर घर वापस लौटा। लेकिन इन हीरों की तलाश में कई जौहरियों से मिलना हो गया था रास्ते में, मार्ग में। हीरे खोजता फिरता था, तो जौहरियों से भी बात करनी पड़ी।
जब तुम परमात्मा को खोजने निकलोगे, तो सदगुरु भी मिल ही जाएंगे, साधु- संग भी होगा। क्योंकि परमात्मा को खोजोगे कहां!
जब आदमी हीरा खोजता है, तो जौहरियों से पूछेगा। तो धीरे-धीरे थोड़ी हीरे की परख भी आ गयी। घर लौटकर आया, बच्चे हीरे से खेल रहे थे। वह तो नाचने लगा। वह तो पागल हो गया। उसने कहाः हद्द हो गयी! यह पत्थर तो मैं ही लाया था वर्षों पहले! वह पत्थर बिका। आज वही दुनिया का सब से बड़ा हीरा है।
फिर उसने लाख कोशिश की कि उसका खेत उसे वापस मिल जाए। फिर उसे वापस नहीं मिल सका। क्योंकि खबर उड़ गयी कि वहां हीरे हैं। वहीं गोलकुंडा की पहली खदान बनी, जहां से संसार के श्रेष्ठतम हीरे निकले। वह एक किसान ने बेच दी थी--हीरों की तलाश में। अंधा आदमी और क्या करे!

मगर उस एक हीरे से ही इतना मिल गया कि जन्मों-जन्मों तक नहीं चुका होगा। कई पीढ़ियां प्रसन्नता से जी ली होंगी। उस हीरे का जितना वजन था, आज जो कोहिनूर हीरा है, उसका वजन सिर्फ एक तिहाई बचा है। लेकिन कीमत करोड़ों गुना ज्यादा हो गयी है। बात क्या हुई? उसको बार-बार निखारा गया है, बार-बार तराशा गया है। तराशते-तराशते उसका वजन तो कम हो गया, लेकिन उसका सौंदर्य बहुत बढ़ गया है।
ऐसे ही शास्त्र हैं, उन्हें बार-बार तराशना होता है। उनमें कचरा-कूड़ा इकट्ठा हो जाता है, उसे अलग कर देना होता है। समय धूल जमा जाता है; धूल झाड़नी होती है। फिर ढाई हजार साल में मनुष्य ने जो परिष्कार किया है, वह परिष्कार शास्त्रों में भी होना चाहिए। नहीं तो शास्त्र पीछे पड़ जाते हैं।
यही तो कारण है, लोगों की शास्त्रों में श्रद्धा उठ गयी। क्योंकि कोई इतनी हिम्मत नहीं करता कि शास्त्रों को तराशे। शास्त्र सब बचकाने मालूम पड़ने लगे हैं। शास्त्र सब थोथी कहानियां मालूम होने लगे हैं। कारण? कारण इतना ही है कि ढाई हजार साल या पांच हजार साल पहले जो किताब लिखी गयी थी, वह आज के आदमी से बहुत दूर पड़ गयी है; उससे कोई संबंध नहीं रहा। उसमें और आदमी के बीच कोई सेतु नहीं रहा।
अब दो ही उपाय हैंः या तो आदमी को पांच हजार साल पीछे ले चलो, तब वह उस शास्त्र को समझे। या शास्त्र को पांच हजार साल आगे लाओ, तो आदमी शास्त्र को समझे। आदमी को तो पीछे ले जाया नहीं जा सकता। ले जाने की जरूरत भी नहीं है। ले जाना हितकर भी नहीं होगा।

पहले तो जा ही नहीं सकता कोई पीछे। अब जो बच्चा जवान हो गया, उसको बच्चा कैसे बनाओगे? और जब तक वह बच्चा न हो जाए वापस, तब तक खिलौनों से खेलेगा नहीं। वे जो खिलौने बड़े सार्थक थे, वे बचपन में सार्थक थे; अब व्यर्थ हो गए। अगर उन खिलौनों में प्राण डाले जा सकें, अगर उन खिलौनों को फिर सार्थक अर्थ दिया जा सके कि जवान व्यक्ति को भी उनमें अर्थ दिखायी पड़ने लगे, तो फिर मूल्यवान हो जाएंगे।
तो या तो जवान को बच्चा बनाओ, और या फिर बच्चे के खिलौनों को तराशो; नयी जिंदगी दो; नया अर्थ दो; नयी कलमें लगाओ; नए फूल खिलने दो।
आदमी को तो पीछे ले जाया नहीं जा सकता। वही तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु कर रहे हैं। वे चाहते हैंः तुम पीछे चलो। इसलिए धर्म को मानने वाले अक्सर बुद्धिहीन लोग मिलेंगे, जिनके पास बुद्धि ढाई हजार साल पुरानी है। आज की दुनिया में वे बुद्धिहीन हैं। धर्म को मानने वाला थोड़ा मूढ़ मालूम पड़ता है, उसका कारण है। क्योंकि वह जो ढाई हजार साल पुराना शास्त्र है, मूढ़ को ही समझ में आ सकता है; समझदार को समझ में नहीं आ सकता। बुद्धिहीनता अनिवार्य है, तो ही तुम रामायण और गीता और वेद को पकड़कर बैठ सकते हो। नहीं तो नहीं बैठ सकते।
विचारशील आदमी हमेशा धर्म विरोधी हो जाता है, नास्तिक हो जाता है! क्या कारण होगा? यह तो बात उलटी हो गयी। विचारशील आदमी को आस्तिक होना चाहिए; विचारहीन को नास्तिक होना चाहिए। मगर होता उलटा है। विचारशील आदमी नास्तिक हो जाता है; और विचारहीन, जड़-बुद्धि, मंद-बुद्धि आस्तिक हो जाता है।
इन मंदबुद्धियों के कारण आस्तिकता डूबी जा रही है। इन मंदबुद्धियों
के कारण कोई विचारशील आदमी आस्तिक होने में संकोच करता है, डरता है। मंदिर जाने में दस बार सोचता है कि जाना, कि नहीं जाना! क्योंकि वहां जो जमात है, उस जमात के साथ बैठना भी अपमानजनक मालूम पड़ता है।
दुनिया बढ़ती जाती है, शास्त्र तो मुर्दा होते हैं, बढ़ नहीं सकते हैं। बार-बार चाहिए कोई, जो शास्त्रों को फिर पुनरुज्जीवित करे। फिर खींचकर समसामयिक बना दे। जब शास्त्र समसामयिक हो जाता है, तो विचारशील आदमी को समझ में आता है। वही मैं कर रहा हूं।
कहानी से मुझे लेना-देना नहीं है। उसमें से कुछ छूट जाए, मुझे फिकर नहीं है। उसमें कुछ नया जोड़ना पड़े, फिकर नहीं है। उसकी आत्मा फिर से प्रज्वलित हो जाए, फिर रोशन हो जाए।
और मैं तुम से कह दूं कि मैं चश्मदीद गवाह हूं। इसलिए अगर शास्त्र में
और मुझ में तुम्हें कभी भी ऐसा लगे कि कुछ भेद है, तो शास्त्र में तत्काल सुधार कर लेना। उसका मतलब शास्त्र पीछे पड़ गया।
जिस ढंग से मैंने कहानी कही, बुद्ध अगर पैदा हों आज, तो इसी ढंग से कहेंगे। हां, बुद्ध-पंडित नहीं कह सकता इस ढंग से। बुद्ध-पंडित तो उसी ढंग से कहेगा, जैसा बुद्ध ने ढाई हजार साल पहले कही थी। वह लकीर का फकीर है। मैं कोई लकीर का फकीर नहीं हूं। मैं फकीर हूं, लकीरों को अपने पीछे चलाता हूं। लकीरों को आगे नहीं चलने देता। मैं उनके पीछे नहीं चलता। लकीरें मेरी मालिक नहीं हैं। मैं उनका मालिक हूं।
मैं जो कहता हूं, उसका मालिक हूं। मैं कहता ही तब हूं, जब मुझे दिखायी पड़ता है कि ऐसा है। अन्यथा नहीं कहता।
कहानी में मैंने बहुत बदलाहट की है, बहुत परिष्कार किया है। खूब निखारा है। तराशा है। उसको मनोवैज्ञानिक अर्थ दिया है--ऐतिहासिक की जगह।
इतिहास में क्या रखा है? जो कुछ है, मन की ही पर्तों में छिपा है। ऐतिहासिक अर्थ देने का मतलब होता है कि सिर्फ बुद्धिहीनों को समझ में आएगा। सिर्फ बुद्धू राजी होंगे। तो धर्म का पतन होता है इस तरह।
ध्यान रखनाः श्रद्धा का अर्थ तर्क का अभाव नहीं होता। श्रद्धा का अर्थ होता है, तर्कातीत दशा; तर्क के पार निकल गयी दशा। श्रद्धा तर्क से नीची नहीं है। श्रद्धा तर्क से ऊपर है। मगर तर्क जो नहीं कर सकता, वह भी श्रद्धा करता है। और तर्क जिसने खूब किया है, और कर-करके पाया है कि तर्क

से कुछ सार नहीं मिलता, उसके जीवन में भी श्रद्धा का जन्म होता है। यही फर्क ख्याल में ले लेना।
तुम्हें और मंदिर-मस्जिदों में जो लोग मिलेंगे, वे तर्क से नीचे वाली श्रद्धा से भरे हैं। वे कहते हैंः तर्क करो ही मत। तर्क से वे घबड़ाते हैं।
तर्क उनकी श्रद्धा को नष्ट कर देगा।
जो श्रद्धा तर्क से नष्ट हो जाती हो, दो कौड़ी की है। जो आस्तिकता नास्तिकता से डरती हो, भयभीत हो, उसका क्या मूल्य है? कोई मूल्य नहीं। मैं तुम्हें एक ऐसी आस्तिकता दे रहा हूं, जो नास्तिकता से होकर गुजरती है; जो नास्तिकता के पार है; जो ईश्वर को मान नहीं लेती किसी भय के कारण। इसलिए नहीं मान लेती कि और लोग मानते हैं। मैं तुम्हें ऐसी आस्तिकता दे रहा हूं, जो नहीं कहने की क्षमता रखती है। और नहीं कह-कहकर ही हां तक पहुंचती है।
जो हां नहीं कह-कहकर पैदा होती है, उसमें प्राण होते हैं, बल होता है।
जो नहीं कहना जानता ही नहीं, जिसे नहीं कहने का साहस नहीं, वह भी हां कहता है। उसकी हां नपुंसक होती है।
मैं इन धम्मपद के वचनों को तराश रहा हूं। तुम्हारे योग्य बना रहा हूं। ढाई हजार साल का ख्याल तो करो। ढाई हजार साल में बहुत कुछ बदला है। जब बुद्ध बोले थे, तब फ्रायड नहीं हुआ था; मार्क्स नहीं हुआ था; आइंस्टीन नहीं हुआ था। अब फ्रायड हो चुका है, मार्क्स हो चुका है, आइंस्टीन हो चुका है। इनको कहीं इंतजाम देना पड़ेगा; इनको जगह देनी पड़ेगी; नहीं तो तुम बचकाने मालूम पड़ोगे।
अगर तुम्हारी कहानी वैसी की वैसी रहे, जैसी फ्रायड के पहले थी, तो फिर फ्रायड का क्या करोगे? फ्रायड ने जो अंतर्दृष्टि दी, उसे समाविष्ट कहां करोगे? और अगर समाविष्ट नहीं की तो तुम्हारी कहानी गलत हो जाएगी। क्योंकि फ्रायड ने जो अंतर्दृष्टि दी है, उसे समाविष्ट करना ही होगा। और मार्क्स ने जो भाव दिया है, उसे समाविष्ट करना ही होगा। आइंस्टीन ने जो नए द्वार खोले हैं, वे तुम्हारी कहानियों में भी खुलने चाहिए, नहीं तो तुम्हारी कहानियां पिछड़ जाएंगी।
मैं ढाई हजार साल में जो हुआ है, उसे आंख से ओझल नहीं होने देता। मुझे बुद्ध की कहानी से अपूर्व प्रेम है। इसीलिए जो ढाई हजार साल में हुआ है, उसे मैं समाविष्ट करता हूं। जिस ढंग से मैं कह रहा हूं, उसमें मार्क्स भी भूल नहीं निकाल सकेगा; और फ्रायड भी नहीं निकाल सकेगा; और आइंस्टीन भी नहीं निकाल सकेगा। तो कहानी समसामयिक हो गयी। उसकी भाव-भंगिमा बदल गयी, उसका रूप बदल गया। उसने नयी देह ले ली। उसका पुनर्जन्म हुआ।
यह धम्मपद का पुनर्जन्म है। यह धम्मपद को नयी भाषा, नया अर्थ, नयी भंगिमा, नयी देह, नए प्राण देने का प्रयास है। और जब फिर से जन्म हो जाए धम्मपद का, जैसे बुद्ध आज बोल रहे हों, तभी तुम्हारी आत्मा में संवेग होगा; तभी तुम्हारी आत्मा में रोमांच होगा। तभी तुम आंदोलित होओगे। तभी तुम कंपोगे, डोलोगे।
इसलिए जब भी तुम्हें भेद दिखायी पड़े, तब शास्त्र में जल्दी से जाकर संशोधन कर लेना। उतना जोड़ देना या उतना घटा देना। और तुम कभी हानि में न रहोगे।

तीसरा प्रश्नः बुद्ध के पास पश्चात्ताप के तीव्र क्षणों में स्वर्ण मछली को अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण हुआ। क्या बुद्ध के पास प्रसाद के क्षणों में भी पूर्व-जन्मों का स्मरण होता है--कृपा कर कहिए।

नहीं --प्रसाद के क्षणों में तो समय मिट जाता है। आनंद के क्षणों में
तो समय तिरोहित हो जाता है, समय बचता ही नहीं। कैसा अतीत? कैसा भविष्य? वर्तमान भी नहीं बचता आनंद के क्षणों में। आनंद के क्षण में समय होता ही नहीं; शाश्वतता होती है। इसको ख्याल में लो।
दुख के क्षण में समय होता है। जितना दुख होता है, उतना ज्यादा समय होता है। तुमने कभी अवलोकन कियाः तुम बैठे हो किसी प्रियजन की खाट के पास

और प्रियजन मर रहा है, तो रात बड़ी लंबी हो जाती है--बड़ी लंबी हो जाती है! समय खूब बड़ा हो जाता है। काटे नहीं कटती रात! बार-बार घड़ी देखते हो। सोचते होः घड़ी बंद तो नहीं हो गयी! कांटा आज धीमे-धीमे क्यों घूम रहा है? दुख जितना सघन है, उतना ही सघन समय हो जाता है। रात लंबाने लगती है। सुबह आती नहीं मालूम होती है।
और तुम्हारा प्रियजन मिलने आया है; तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिल गयी, और तुम आनंद-उल्लास से भरे हो। समय सिकुड़कर छोटा हो जाता है। रात ऐसे बीत जाती है--अभी आयी, अभी गयी! पल में बीत गयी! घड़ी--ऐसा लगता है--भाग रही है आज। समय इतनी तेजी से जाता है कि पता नहीं चलता, कब चला गया। ऐसा तुमने निरीक्षण किया होगा।
जब तुम सुख में होते हो, तो समय तेजी से भागता लगता है। और जब तुम दुख में होते हो, तब समय की चाल धीमी हो जाती है; मंथर हो जाती है गति।
इस मनोवैज्ञानिक सत्य को खूब स्मरण रखो। यह तो साधारण सुख-दुख की बात है। जिसको जन्मों-जन्मों के दुख की पीड़ा का ख्याल हो जाए, उसकी समय की अवधारणा बड़ी प्रगट हो जाती है, बड़ी प्रगाढ़ हो जाती है। और जिसे अंतरतम के शाश्वत आनंद का बोध हो जाए, उसका समय विलीन हो जाता है, बिल्कुल शून्य हो जाता है।
ऐसा समझोः दुख में समय लंबा मालूम होता है। महादुख में बहुत लंबा हो जाता है, अंतहीन हो जाता है, अनंत हो जाता है। सुख में छोटा हो जाता है। महासुख में बहुत अल्प हो जाता है। आनंद में बिल्कुल शून्य हो जाता है। जीसस का एक वचन है। इस सदी के बड़े विचारक बर्ट्रेंड रसल ने उसकी बड़ी निंदा की है। और कोई भी ऊपर से देखेगा, तो निंदा करेगा। जीसस ने कहा हैः जो पाप करेंगे, वे नर्क में अनंत काल तक सड़ेंगे। अनंत काल तक! यह बात जरा तर्कनिष्ठ नहीं मालूम होती। पाप कितना किया है, उस हिसाब से सड़ना चाहिए। नर्क में सड़ाओ--चलो, ठीक। मगर कुछ हिसाब तो हो!
एक आदमी ने किसी की हत्या की; वह भी नर्क में सड़ेगा अनंतकाल तक। और एक आदमी ने दो पैसे चुराए, वह भी नर्क में सड़ेगा अनंतकाल तक। तो यह तो अन्याय हो गया। यह तो बड़ी अंधेर-नगरी हो गयी। टका सेर भाजी, टका सेर खाजा हो गया। कुछ हिसाब तो हो!
रसल ने खुद कहा है कि मैंने अपनी जिंदगी में जितने पाप किए, नहीं किए नहीं कहता; जितने पाप किए, कठोर से कठोर न्यायाधीश भी मुझे चार साल से ज्यादा की सजा नहीं दे सकता। और अगर वे पाप भी जोड़ लिए जाएं, जो मैंने किए नहीं, सिर्फ सोचे--करना चाहता था, मगर किए नहीं--तो आठ साल की सजा हो सकती है। कठोर से कठोर व्यक्ति! लेकिन अनंतकाल तक नर्क में सड़ना होगा? आगों में जलाया जाऊंगा; भूखा रखा जाऊंगा; प्यासा रखा जाऊंगा, अनंत काल तक? तो यह तो मेरे पापों से भी बड़ा पाप हो गया परमात्मा के नाम पर!
तब तो इसका मतलब यह हुआ कि परमात्मा सड़ाने में रस ले रहा है! किसी तरह
का दूसरों को दुख देने में मजा लेने वाला है; शैतान है। जरा सा बहाना मिला कि अनंतकाल तक सड़ा दोगे! और मजा यह है कि तुम्हीं ने वासनाएं दीं, तुम्हीं ने यह प्रकृति पैदा की, जो मुझे पाप में ले गयी, और तुम्हीं फिर सजा देने आ गए! और सजा भी बेबूझ।
बर्ट्रेंड रसल ने एक किताब लिखी हैः व्हाय आई एम नाट ए क्रिश्चियन-- मैं ईसाई क्यों नहीं हूं? --उसमें सारे तर्क दिए हैं कि इन-इन कारणों से मैं ईसाई नहीं हूं। उसमें एक तर्क यह भी है कि ईसाइयत अन्यायपूर्ण है। लेकिन मैं तुमसे कहना चाहता हूं कि जीसस के वचन का अर्थ मनोवैज्ञानिक है। रसल चूक गए; अर्थ को समझे नहीं। तर्क को पकड़ लिया, लेकिन अर्थ से चूक गए। जीसस के वचन का यह अर्थ है कि नर्क का दुख इतना सघन है कि एक क्षण भी अनंत मालूम होगा। एक क्षण के लिए भी नर्क में फेंके गए, तो ऐसा लगेगा कि सदा के लिए। यह दुख इतना सघन है कि इस दुख की सघनता के कारण समय अनंत मालूम होगा।
दूसरी तरफ से समझो। तुमने सदा तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासियों को कहते सुना है, सुख क्षणभंगुर है। इसका मतलब यह नहीं कि सुख क्षणभर ही रुकता है। गलत बात है। सुख कभी-कभी काफी देर रुकता है। लेकिन सुख सदा

क्षणभंगुर मालूम होता है, यह बात सच है। क्योंकि सुख के समय में समय छोटा हो जाता है। मेरी बात समझे!
यह हो सकता है कि सुख काफी देर रुके; क्षणभंगुर होना जरूरी नहीं है। तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़े, वर्षों तक यह प्रेम चल सकता है और वर्षों तक तुम सुख इससे पा सकते हो। लेकिन फिर भी जो वचन है, वह सही है कि सुख क्षणभंगुर है। उसका मतलब इतना ही है कि ये वर्ष तुम्हें ऐसे लगेंगे, जैसे क्षण जैसे बीत गए।
तुमने हिंदी फिल्मों में देखा होगाः कैलेंडर में से तारीखें एकदम उड़ती जाती हैं! एकदम हवा तारीखों को उड़ाए जाती है। ऐसा ही सुख में तारीखें उड़ जाती हैं। सुख हिंदी फिल्मों जैसा है। दिन गुजरते हैं; महीने गुजरते हैं; वर्ष गुजरते हैं; मगर इतनी तेजी से गुजरते हैं!

सुख अपने स्वभाव के कारण समय को छोटा कर देता है। फिर आनंद की तो बात
ही अलग। आनंद का तो अर्थ हैः परम सुख।
सुख का अर्थ हैः दुख गया, मगर राह देख रहा है किनारे पर खड़ा, कि कब सुख
से आपका छुटकारा हो, तो मैं फिर आऊं। कभी ज्यादा दूर नहीं जाता। सुख में दुख ज्यादा दूर नहीं जाता। ऐसे दरवाजे के पास खड़ा हो जाता है निकलकर, कि ठीक है; आप थोड़ी देर सुख भोगो। फिर मैं आ जाऊं।

सुख और दुख साथ-साथ हैं। आनंद का अर्थ हैः दुख सदा को गया। और जब दुख
ही चला गया सदा को, तो सुख भी चला गया सदा को। सुख दुख का जोड़ा है। वे साथ-साथ हैं। आनंद तो एक परम शांति की दशा है--जहां न दुख सताता, न सुख सताता। जहां कोई सताता ही नहीं। जहां कोई उत्तेजना नहीं होती। सुख की भी उत्तेजना है।
तुमने देखाः कभी-कभी तो सुख की उत्तेजना दुख से ज्यादा हो जाती है। अब एकदम तुमको लाटरी मिल जाए, तो हार्टफेल हो जाए। सुख में कभी-कभी लोग मर जाते हैं, हृदय का दौरा पड़ जाता है। सम्हाल ही नहीं पाते, इतनी उत्तेजना हो जाती है। हृदय इतने जोर से धड़कता है कि कुछ धड़कन बीच में खो जाती है, कि ठप्प हो जाती है।
मैंने सुना हैः एक आदमी हर महीने एक रुपए की टिकट लाटरी की खरीद लेता था। कभी उसको मिली नहीं थी। किसको मिलती है! मगर इस आशा में खरीद रहा था बीस साल से। और अगर तुम किसी चीज के पीछे चलते ही रहो, चलते ही रहो, तो सावधान रहना--कभी मिल सकती है।
वासना करने का सब से बड़ा खतरा यह है कि कभी पूरी हो सकती है; तब असली अड़चन आती है। जब तक पूरी नहीं होती है, ठीक है। एक रुपया ही जाता था। कोई बड़ा भारी दुख नहीं हो जाता था। एक रुपए के जाने में कोई मरता, कि कोई जीता! एक रुपया गया, कोई हर्जा नहीं था। आदी हो गया था। हर महीने एक रुपए की खरीद लेता था। बात खतम हो गयी।
एक आदत थी, एक शगल बन गयी थी, एक व्यसन। ठीक था। मगर एक दिन खबर आ गयी; आदमी आया खबर लेकर लाटरी के दफ्तर से। पतिदेव तो गए थे आफिस; पत्नी थी। पत्नी बहुत घबड़ा गयी, क्योंकि एक लाख रुपया इकट्ठा! कभी सौ रुपए भी इकट्ठे हाथ नहीं पड़ते थे। तनख्वाह इसके पहले कि मिले, कि उधारी हो जाती थी। एक लाख रुपया! पत्नी ने सोचा कि मुश्किल हो जाएगी। पति सम्हाल न सकेगा इतना सुख। वह घबड़ायी। ईसाई थी। पास ही पादरी रहता था। पादरी के पास गयी कि आप कुछ करो। यह लाख रुपया मिला है। मेरे पति को कुछ हो न जाए। वैसे ही उनका दिल कमजोर है।
पादरी ने कहाः तुम घबड़ाओ मत; मैं आता हूं। पादरी आया। बैठ गया। जब पतिदेव वापस लौटे, तो पादरी ने कहाः सुनो, तुम्हें लाटरी मिली है, दस हजार रुपए मिले हैं। धीरे-धीरे... सोचा कि धीरे-धीरे मात्रा में देना है। लाख कहूं इकट्ठा, दिक्कत होगी। दस हजार... फिर दस हजार... ऐसे धीरे-धीरे कहूंगा।
कहाः दस हजार रुपए तुम्हें लाटरी में मिले हैं।

पति ने कहाः सच में! अगर सच में मिले हैं, तो पांच हजार तुम्हें दिए।
यह सुनते ही पादरी तो गिरा। उसका हार्टफेल हो गया। उसने यह नहीं सोचा था कि मुझ को भी इसमें मिलने वाले हैं।
सुख गहरी उत्तेजना पैदा कर सकता है। सुख भी एक तरह की तकलीफ है, एक तरह
का ज्वर है। दुख तो है ही ज्वर; सुख भी ज्वर है। सुख भी थकाता है--यह तुमने देखा! सुख को भी तुम ज्यादा देर बर्दाश्त नहीं कर सकते। थकाने लगता है; उबाने लगता है।
कितनी देर सुख को बर्दाश्त कर सकते हो? इसीलिए दुख बाहर खड़ा रहता है।
वह कहता है, जब तुम सुख से थक जाओ, मैं हाजिर हूं सेवा के लिए।
जब तुम दुख से थक जाते हो, तब तुम फिर सुख की खोज करने लगते हो। सुख से
थक गए, फिर दुख की खोज करने लगते हो। तुमने देखाः सुख में भी तुम्हारा मन दुख की खोज करने लगता है। दुख के नए जाल बुनने लगता है।
आनंद वैसी दशा का नाम है, जहां न तो सुख रहा, न दुख रहा। परम शांति हो गयी, परम विश्राम की घड़ी आ गयी। उस परम विश्राम में कहां समय!
तुम पूछे होः "बुद्ध के पास पश्चात्ताप के तीव्र क्षणों में स्वर्ण मछली को अपने पूर्व-जन्मों का स्मरण हुआ। क्या बुद्ध के पास प्रसाद के क्षणों में भी पूर्व-जन्मों का स्मरण होता है?"
प्रसाद के क्षणों में कौन फिकर करता है पूर्व-जन्मों की! इस जन्म की
भी कौन फिकर करता है! आने वाले जन्मों की भी कौन फिकर करता है! चिंताएं विलुप्त हो जाती हैं। जहां चिंताएं नहीं हैं, वहां कोई अतीत नहीं, कोई भविष्य नहीं है। जहां मन ही नहीं है, वहां कैसा समय? इसलिए नहीं। पश्चात्ताप में, दुख में ही पुराने की याद आती है।
तुमने देखाः बूढ़े आदमी लौट-लौटकर पीछे देखते रहते हैं। आगे तो कुछ देखने को बचता भी नहीं। मौत खड़ी है। वह मौत की दीवाल! और रोज पास सरके जा रहे हैं। क्यू छोटा होता जा रहा है। आगे जो लोग खड़े थे, वे गुजरने लगे, जाने लगे। मौत उन्हें ले जाने लगी। अब अपना भी नंबर आता होगा। अब ज्यादा देर नहीं है। आगे तो कुछ देखने को है नहीं। आगे देखने में डर लगता है। पीछे देखने लगते हैं। बूढ़ा आदमी सदा अतीत की खोजता है; अतीत की सोचता है। इसलिए बूढ़े आदमी कहते हैंः अरे! वे दिन सुख के, स्वर्ण दिन, सतयुग, रामराज्य! ये सब बूढ़े आदमियों की बातें हैं। उसका सारा स्वर्णयुग पीछे है। वह कहता है, अच्छे दिन गए। अब वे दिन कहां, जब घी इस भाव बिकता था! अब वे दिन कहां?
और तुम यह मत सोचना कि इसमें कुछ सचाई है। घी जरूर इसी भाव बिकता था,
यह भी सच है। मगर उस वक्त भी जो बूढ़े थे, वे भी पीछे देख रहे थे। वे अपने समय की सोच रहे थे--जब घी इस भाव बिकता था!
तुम ऐसा कोई समय नहीं खोज सकते, जब बूढ़ों ने अपने पीछे का न सोचा हो, और कहा न हो कि पहले दिन अच्छे थे। अब कहां वे बातें रहीं! अब तो सब बिगड़ गया। अब न वे लोग रहे, न वे सुख के दिन रहे।
बूढ़ा पीछे-पीछे लौटकर देखता है। बूढ़ा पीछे से बंधा होता है, अतीत से बंधा होता है। पश्चात्ताप में होता है। जो नहीं कर पाया वह और कर लेता! दिन निकल गए स्वर्ण जैसे! दुख पकड़ता है। पीड़ा पकड़ती है। रोता है।
छोटे बच्चे भविष्य की सोचते हैं। उनका स्वर्णयुग आगे होता है। और यही बात जातियों के संबंध में सच है, राष्ट्रों के संबंध में सच है। जवान वर्तमान की सोचते हैं; बच्चे भविष्य की; बूढ़े अतीत की। जो समाज बूढ़ा हो जाता है, वह भी अतीत की सोचता है।
जैसे यह भारत। यह बूढ़ा समाज है। इस जमीन पर सबसे बूढ़ी जाति है। यह सदा पीछे की सोचती है--वेद, रामराज्य, सतयुग--सदा पीछे की सोचती है। इसको आगे कुछ दिखता नहीं।
अमेरिका बच्चों जैसा राष्ट्र है; कोई तीन सौ साल की उसकी उम्र है। वह हमेशा भविष्य की सोचता है--आगे। पीछे तो कुछ है भी नहीं सोचने को। बहुत से बहुत जाओ तो वाशिंगटन, लिंकन। और कहां जाओगे? तो पीछे ज्यादा जाने को जगह भी नहीं है। थोड़े बहुत दौड़े--और खतम; इतिहास खतम हो जाता है।
भारतीय मन को पीछे जाने की खूब सुविधा है। कितने ही पीछे जाओ, कभी कुछ खतम नहीं होता। और चले जाओ, और चले जाओ, चलते ही चले जाओ। अनंत पड़ा है अतीत।

रूस जवान है; वर्तमान की सोचता है। न अतीत की, न भविष्य की। अभी जो है,
जो यह क्षण हाथ में है, इसको भोग लो। आगे का क्या पक्का! पीछे तो जो था, गया। जातियां, व्यक्ति, समाज, राष्ट्र--सबकी सोचने कीशृंखला, तर्क-सरणी एक जैसी होती है।
और जो व्यक्ति जानता है कि न तो मैं जवान हूं, न बूढ़ा हूं, न बच्चा हूं--
वह कहां की सोचे! जो जानता है कि बचपन भी शरीर का, जवानी भी शरीर की, बुढ़ापा भी शरीर का; जो जानता है, चैतन्य न तो बच्चा होता, न जवान होता, न बूढ़ा होगा; वह कहां की सोचे? उसके पास सोचने को कुछ नहीं बचता। उसका सोचना खो जाता है। उसका समय विलीन हो जाता है। इसी क्षण में प्रसाद होता है।
जब तुम जानते होः तुम आत्मा हो, कालातीत; जब तुम जानते होः समय के पार तुम्हारा अस्तित्व है, यह समय की धारा के पार तुम्हारा होना है; जिस दिन तुम ऐसा जानते हो--उस दिन प्रसाद; उस दिन आनंद; उस दिन समाधि; उस दिन निर्वाण। उस समाधि की दशा में कोई स्मरण नहीं होताः न अतीत का, न भविष्य का, न वर्तमान का।
दुख गया--समय घटा। सुख गया--समय मिटा।
इसी को खोजो। इसी परम दशा को खोजो, जहां समय मिट जाए। समय ही जंजाल है; समय ही संसार है।
और मिट जाता है समय। जब तुम ध्यान में बिल्कुल शांत हो जाते हो, समय मिट जाता है। इसलिए ध्यान के बाद जब तुम वापस आओगे, और कोई तुमसे पूछे कि कितनी देर ध्यान में रहे, तो तुम उत्तर न दे पाओगे। कोई ध्यानी कभी नहीं दे पाया। हां, घड़ी देखकर तुम बता सकते हो कि जब ध्यान में गया था, तब नौ बजे थे। अब साढ़े नौ बजे हैं। तो घड़ी में आधा घंटा हुआ।
लेकिन कोई तुमसे पूछेः घड़ी की छोड़ो, क्योंकि वहां तो भीतर घड़ी नहीं थी। यह तो तुम लौटकर बता रहे हो। जब गए, तब की बताते हो। जब आए, तब की बताते हो। यह आधा घंटे में भीतर कितना समय बीता? तो ध्यानी नहीं कह सकता कि कितना समय बीता। वह कहेगाः कोई उपाय नहीं कहने का। वहां समय होता ही नहीं। जीसस से उनके एक शिष्य ने पूछा है, कि तुम्हारे प्रभु के राज्य में सब
से खास बात क्या होगी? तो जीसस ने कहाः देअर शैल बी टाइम नो लांगर--वहां समय नहीं होगा। यह खास बात कही जीसस ने। बड़ी अजीब सी बात कही। शायद पूछने वाले ने सोचा भी नहीं होगा सपने में कि जीसस से यह उत्तर मिलेगा--कि वहां समय नहीं होगा।
मगर इस उत्तर में सब आ गया। जहां समय नहीं, वहां मन नहीं। जहां मन नहीं, वहां वासना नहीं, तृष्णा नहीं। जहां वासना नहीं, तृष्णा नहीं, वहां संसार नहीं। समय मिटा, तो सब मिट गया। समय हमारा सपना है।
दुनिया में दो तरह के ढंग हैं होने के। एक तो समय में होना; वह संसार।
और एक समय के बाहर-बाहर होना; वही संन्यास।
ऐसे जीयो समय में कि समय की जलधार तुम्हें छू न पाए। ऐसे चलो समय में
कि समय तुम पर रेखाएं न खींच पाए।
यही कबीर ने कहा हैः ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया। समय कोई रेखा न खींच पाया। समय की धूल न जमी। दर्पण, जैसा था स्वच्छ, वैसा का वैसा रख दिया।
ध्यान उसी महत्वपूर्ण कला का नाम है। समय में जी भी लेता है आदमी और समय छूता भी नहीं। वहीं आनंद है, वहीं मुक्ति है।

चौथा प्रश्नः धर्म यदि शुद्ध नियम है, महानियम है, तो तृष्णा भी नियमानुकूल है; वह मनुष्य की कृति नहीं है। और नियमानुकूल होकर तृष्णा का भी उपयोग होना चाहिए। फिर उसे दुख ही दुख क्यों कहा जाता है?

क्योंकि वह दुख है। दुख भी नियमानुकूल है। और दुख का उपयोग है। और दुख
का उपयोग करना है।
.बुद्ध ने चार आर्य सत्य कहे हैं। पहला आर्य सत्यः दुख है। दूसरा आर्य सत्यः दुख का कारण है। तीसरा आर्य सत्यः दुख-मुक्ति संभव है। चौथा आर्य सत्यः दुख-मुक्ति के उपाय हैं।

दुख का उपयोग है। दुख के बिना, दुख को जाने बिना, दुख से गुजरे बिना कोई निखरता नहीं। दुख निखारता है, मांजता है। दुख ऐसे है, जैसे सोने को अग्नि में डालो; ऐसा आदमी दुख में पड़कर शुद्ध होता है। लेकिन सोने को अग्नि में डालो, इसका यह अर्थ नहीं कि फिर सोना अग्नि में ही रहे। शुद्ध हो गया, फिर निकालो।
दुख में जाने का उपयोग है; दुख के बाहर आने का उपयोग है। दुख व्यर्थ नहीं है, यह बात तो सच है। दुख व्यर्थ होता, तो संसार की कोई जरूरत न थी। दुख व्यर्थ होता, तो दुख की भी कोई जरूरत न थी। दुख का सृजनात्मक उपयोग है। क्या दुख का उपयोग है? दुख तुम्हें जगाता है। कल की कहानी तुमने समझी! बुद्ध ठिठककर खड़े हो गए हैं एक सुअरी को देखकर। कुछ सोचे। फिर हंसे। आनंद ने पूछाः क्या हुआ! क्यों ठिठके सुअरी को देखकर? क्यों सोचे? क्या सोचे? फिर हंसे क्यों?
तो बुद्ध ने कहाः यह सुअरी, अतीत में ककुसंध नाम के बुद्ध हुए, उस समय मुर्गी थी। उनके आसपास घूमती थी। वे बोलते, तो यह सुनने जाती थी। वे ध्यान को बैठते, तो यह भी पास ध्यान लगाकर बैठ जाती थी। इसका ककुसंध से प्रेम हो गया था, लगाव हो गया था। जानती ज्यादा नहीं थी। मुर्गी कितना जाने! लेकिन बुद्ध की हवा एक चुंबक की तरह इसे खींचती रही, खींचती रही। ऐसे अनजाने इसने ध्यान का धन कमाया। ऐसे अनजाने, आकस्मिक रूप से इसने पुण्य अर्जन किया। उस पुण्य अर्जन के कारण यह राजकुमारी होकर पैदा हुई। फिर जब राजकुमारी थी, तो पाखाने में एक दिन इसने कीड़ों को सरकते देखा। उनको, कीड़ों को देखकर इसे स्मरण आया--एक गहन स्मरण आया--कि यही तो हमारी भी दशा है। जैसे कीड़े सरक रहे हैं मल-मूत्र में, ऐसे ही तो हम संसार में सरक रहे हैं।
इस संसार में सरकना मल-मूत्र में सरकने जैसा ही है। नौ महीने बच्चा मां के पेट में रहता; मल-मूत्र का ही कीड़ा होता है। मल-मूत्र में ही सरकता है। फिर पैदा हो जाने के बाद भी चाहे तुम मल-मूत्र में मत सरको, लेकिन मल-मूत्र तुम में सरकता है। और तुम करते ही क्या हो? एक तरफ से डाला, दूसरी तरफ से निकाला! और तुम्हारी वासनाएं क्या हैं, आकांक्षाएं क्या हैं? मल-मूत्र में सरकने की ही हैं। तुम्हारी कामवासना का आकर्षण क्या है? मल-मूत्र का ही आकर्षण है।
यह सब उसे दिखायी पड़ गया। एक क्षण में जैसे किसी ने छाती में भाला भोंक दिया। उन कीड़ों को सरकते देखकर वह ध्यान को उपलब्ध हुई। मरी तो स्वर्ग में देवी की तरह पैदा हुई। खूब संचित हो गया पुण्य। स्वर्ग तक उड़ी पुण्य के पंखों पर।
और बुद्ध ने कहाः इसलिए मैं हंसा कि फिर जब स्वर्ग से पुण्य समाप्त हो गए, तो अब यह सुअर की बच्ची होकर पैदा हुई; सुअरी होकर पैदा हुई। इसलिए मैं हंसा कि कैसा जाल है! मुर्गी थी; वहां से स्वर्ग तक उठ गयी। फिर स्वर्ग से गिरकर सुअरी हो गयी। क्यों? क्योंकि स्वर्ग में इतना सुख था कि ध्यान इत्यादि भूल गयी। स्वर्ग में इतना सुख था, कौन फिकर करता है ध्यान की, धर्म की?
इसलिए तुम्हारे देवता सब से ज्यादा भ्रष्ट होते हैं। तुम्हारी कथाएं हैं शास्त्रों में; तुम देवताओं से ज्यादा भ्रष्ट लोग न पाओगे! देवता का मतलब हैः जो सुख ही सुख में जीता है; जहां दुख है ही नहीं। दुख न होने से दंश नहीं है। दंश न होने से निखार नहीं होता। निखार नहीं होने से देवता करें क्या? एक-दूसरे की स्त्रियों को भगाएं! और करें क्या? आखिर कोई काम भी चाहिए न! स्वर्ग में करोगे क्या? बैठे-ठाले क्या करोगे? उर्वशियों को नचाओ; बैंड-बाजे बजाओ; या कोई ऋषि-मुनि अगर देवता बनने की स्थिति में आ रहा है, तो उनको डिगाओ! करोगे क्या?
तो बड़ी राजनीति है स्वर्ग में। कोई बेचारा गरीब ऋषि किसी जंगल में बैठकर उपवास करके ध्यान कर रहा है; उधर इंद्र का आसन डोलने लगता है कि यह आदमी ज्यादा अगर उपवास कर ले, और ज्यादा व्रत-नियम कर ले, और ज्यादा पुण्य अर्जन कर ले, और ज्यादा ध्यान कर ले, तो कहीं ऐसा न हो कि मेरी गद्दी पर

कब्जा जमाने का हकदार हो जाए! कहीं इतना पुण्य अर्जन न कर ले कि इंद्र हो जाए! तो मुझे हटना पड़े। तो बड़ी राजनीति है।
तुम दिल्ली का ही विस्तार पाओगे स्वर्ग में, जरा बड़े पैमाने पर। कुछ भेद नहीं है। वही जालसाजियां, वही कूटनीति, वही एक-दूसरे की टांग पकड़कर खींचना। वही दल-बदल भी पाओगे। और बाकी समय काम क्या है? शराब ढालो और अप्सराओं को नचाओ! और करोगे क्या?
तो स्वर्ग में तो भूल गयी सब ध्यान, भूल गयी अंतर्यात्रा। तो जो पुण्य
का अर्जन था, वह चुक गया। सभी कमायी गयी चीजें एक दिन चुक जाती हैं। तो अब गिरी है सुअरी होकर। इसलिए हंसा।
तो ख्याल रखनाः सारे भारतीय धर्मों ने एक बात कही है, जो बड़ी महत्वपूर्ण है। इस पर सब राजी हैं--जैन, हिंदू, बौद्ध। और वह यह बात है कि स्वर्ग से सीधे कोई मोक्ष नहीं जाता। स्वर्ग से मोक्ष का रास्ता ही नहीं है। अगर मोक्ष जाना हो, तो पहले संसार में आना पड़ता है। मोक्ष जाने का रास्ता संसार से है। इसलिए मनुष्य योनि में आना ही पड़ेगा--देवता को भी। क्यों स्वर्ग से मोक्ष का रास्ता नहीं है? होना तो यह चाहिए, गणित तो
यह कहेगा कि वहां से तो बिल्कुल करीब ही होना चाहिए; कि जरा आगे बढ़े कि मोक्ष में पहुंच गए! स्वर्ग से जरा आगे बढ़े तो मोक्ष में पहुंच गए!
नहीं; लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि स्वर्ग में इतना सुख है कि मोक्ष की याद ही भूल जाती है। सुख शराब जैसा है; सुला देता है। दुख जगाता है। दुख में आदमी सो नहीं पाता। और जागरण से कोई मोक्ष जाता है--निद्रा, तंद्रा से नहीं।
तो तुम्हारे देवता तो सोए-सोए से हैं। होंगे ही। इसलिए जब बुद्ध को परम ज्ञान उत्पन्न हुआ, तो कथाएं कहती हैं कि देवता उनके चरणों में आए; स्वयं ब्रह्मा आया उनके चरणों में फूल चढ़ाने। क्यों? क्योंकि बुद्धत्व देवत्व से बड़ा है।
बुद्धत्व का अर्थ हैः व्यक्ति सुख-दुख से मुक्त हो गया। देवत्व का अर्थ हैः व्यक्ति दुख से मुक्त होकर सुख में चला गया। एक बंधन हटा, दूसरा बंधन आया। लोहे के बंधन हटे, सोने के बंधन आ गए। जंजीरें पहले लोहे की थीं; अब सोने की हैं, हीरे जड़ी हैं।
मगर ख्याल रखनाः हीरे जड़ी जंजीरें ज्यादा खतरनाक हैं लोहे की जंजीरों से। क्योंकि लोहे की जंजीरों को तो तोड़ने का मन भी होता है। हीरे की जंजीरों को कौन तोड़ता है? लोग उनको आभूषण मानते हैं, उनको बचाते हैं। तुम्हें अगर हीरे की जंजीरें पहना दी जाएं, तो तुम कभी न तोड़ोगे। और कोई तुम्हें मुक्त करने आएगा, तो तुम उसको दुश्मन समझोगे--कि मेरे आभूषणों से मुक्त कर रहे हो!
स्वर्ग से कोई मोक्ष नहीं चाहता। मोक्ष चाहने का कोई कारण नहीं मालूम होता। लौटना पड़ता है मनुष्य योनि में। मनुष्य योनि चौराहा है। वहां से नीचे भी जा सकते हैं, ऊपर भी जा सकते हैं। और वहां से अतिक्रमण भी संभव है। मनुष्य योनि से नीचे जा सकते हैं; नर्क में जा सकते हैं; दुख में, और महादुख में। या सुख में, स्वर्ग में। और तीसरी दशा है--द्वंद्वातीत; दोनों से मुक्त हो जा सकते हैं। वही मोक्ष है।
तुमने पूछाः "तृष्णा को दुख ही दुख क्यों कहा जाता है?"
क्योंकि तृष्णा दुख ही दुख है। तृष्णा तुम्हें भिखारी बनाती है। जितनी तृष्णा, उतना भिखमंगापन।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा।
एक तो इतनी हंसीं दूसरे ये आराइश
जो नजर पड़ती है, चेहरे पे ठहर जाती है
मुस्कुरा देती हो मुंह फेर के जब महफिल में
एक धनक टूटकर सीनों में बिखर जाती है। गर्म बोसों से तराशा हुआ नाजुक पैकर जिसकी इक आंच से हर रूह पिघल जाती है मैंने सोचा है, तो सब सोचते होंगे शायद

प्यास इस तरह भी क्या सांचे में ढल जाती है। क्या कमी है जो करोगी मेरा नजराना कबूल चाहने वाले बहुत, चाह के अफसाने बहुत
एक ही रात सही गर्मी-ए-हंगामा-ए-इश्क
एक ही रात में जल मरते हैं परवाने बहुत। फिर भी इक रात में सौ तरह के मोड़ आते हैं काश तुमको कभी तनहाई का अहसास न हो
ठीक समझी हो, गया भी तो कहां जाऊंगा
याद कर लेना मुझे कोई भी जब पास न हो।
आज की रात बहुत गर्म, बहुत गर्म सही
रात अकेले ही गुजारूंगा चला जाऊंगा।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा।
वासना के द्वार पर लोग खड़े भीख ही मांगते रहते हैंः
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा।
वे दरवाजे न कभी खुले हैं, न खुलते हैं। तुम्हारे कहने की भी कोई जरूरत नहीं।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो
यह प्रेमी कह रहा है प्रेयसी से कि तुम परेशान मत होओ। दरवाजा खोलो भी मत। यह मन को समझाना भर है। दरवाजा खुलता कब है? दरवाजा किसके लिए खुला? वासना के द्वार से कौन तृप्त हुआ है?
दरवाजा बंद है। सदा से बंद है। सदा बंद ही रहेगा। दरवाजा खुलना जानता
ही नहीं। लेकिन आदमी अपने को समझा लेता है। आदमी कहता हैः कोई बात नहीं। तुम परेशान मत होओ।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो
और तुम्हारा कृपा रूपी दरवाजा मत खोलो। मत परेशान होओ।
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा।
यह सांत्वना है, यह अपने को समझा लेना है कि मैं अपने से जा रहा हूं; तुम्हें कष्ट नहीं देना चाहता।
एक तो इतनी हंसीं दूसरे ये आराइश
एक तो तुम इतनी सुंदर, और फिर ऐसाशृंगार!
जो नजर पड़ती है, चेहरे पे ठहर जाती है
मुस्कुरा देती हो मुंह फेर के जब महफिल में
एक धनक टूटकर सीनों में बिखर जाती है
एक इंद्रधनुष जैसे टूटकर बिखर जाता है सीनों में--तुम्हारी मुस्कुराहट से।
गर्म बोसों से तराशा हुआ नाजुक पैकर
जैसे तुम्हारे शरीर को चुंबनों में ही ढाला गया हो और चुंबनों में ही बनाया गया हो!
गर्म बोसों से तराशा हुआ नाजुक पैकर
जिसकी इक आंच से हर रूह पिघल जाती है
मैंने सोचा है, तो सब सोचते होंगे शायद
प्यास इस तरह भी क्या सांचे में ढल जाती है।
क्या कमी है जो करोगी मेरा नजराना कबूल
चाहने वाले बहुत, चाह के अफसाने बहुत
एक ही रात सही गर्मी-ए-हंगामा-ए-इश्क
एक ही रात में जल मरते हैं परवाने बहुत।
प्रेमी सोचता है, एक भी रात संग-साथ हो जाए!
एक ही रात सही गर्मी-ए-हंगामा-ए-इश्क
प्रेम के हंगामे की गर्मी अगर एक रात के लिए भी मिल जाए, तो भी बहुत। एक ही रात में जल मरते हैं परवाने बहुत
फिर भी एक रात में सौ तरह के मोड़ आते हैं
काश तुमको कभी तनहाई का अहसास न हो

ठीक समझी हो, गया भी तो कहां जाऊंगा
याद कर लेना मुझे, कोई भी जब पास न हो।
आज की रात बहुत गर्म, बहुत गर्म सही
रात अकेले ही गुजारूंगा चला जाऊंगा।
वासना से भरा हुआ आदमी सदा तो अकेला है। कब साथ होता है यहां? कब किसका साथ होता है? साथ होकर भी कहां साथ होता है? हाथ हाथ में भी होकर कहां हाथ में होता है? यहां कौन किसके साथ है? यहां कोई किसी के साथ हो भी नहीं सकता। उपाय नहीं है। यहां सब अकेले हैं। वासना केवल भ्रम पैदा करती है, सपने पैदा करती है।
तुम परीशान न हो, बाबे-करम वा न करो
और कुछ देर पुकारूंगा, चला जाऊंगा।
वासना सभी को भिखमंगा बना देती है। न कभी द्वार खुलते, न कभी भिक्षापात्र भरता। वासना सभी की आंखों को आंसुओं से भर देती है। वासना सभी के हृदय में कांटे बो देती है। वासना महादुख है।
मगर इसका यह अर्थ नहीं कि वासना का कोई उपयोग नहीं है। यही उपयोग है
कि वासना तुम्हें जगाए, झंझोड़े; दुख, पीड़ा, अंधड़ उठें; और तुम चौकन्ने हो जाओ; तुम सावधान हो जाओ। वासना को देख-देखकर एक बात अगर तुम समझ लो, तो दुख का सारा सार निचोड़ लिया--कि मांगना व्यर्थ है। मांगे कुछ भी नहीं मिलता। दौड़ व्यर्थ है, दौड़कर कोई कहीं नहीं पहुंचता।
इतनी समझ आ जाए दुख में कि दौड़कर कोई कहीं नहीं पहुंचता और तुम रुक जाओ; इतनी समझ आ जाए कि मांगकर कुछ भी नहीं मिलता और तुम्हारी सब मांगें चली जाएं, तुम्हारी सब प्रार्थनाएं चली जाएं, तुम भिक्षापात्र तोड़ दो--उसी क्षण संन्यास का फूल खिल जाता है।
संन्यास का अर्थ क्या होता है? इतना ही अर्थ होता हैः इस संसार में न कुछ मिलता है, न मिल सकता है। दौड़ है, आपाधापी है, खूब संघर्ष है, लेकिन संतुष्टि नहीं। जिसने यह देख लिया, जिसके भरम टूटे, जिसके सपन टूटे, जिसके ये सारे भीतर चलते हुए झूठे ख्याल दुख से टकरा-टकराकर खंडित हो गए, बिखर गए, उसको बड़ा लाभ होता है। लाभ होता है कि वह अपने में थिर हो जाता है। वासना तुम्हें अपने से बाहर ले जाती है। वासना सदा बहिर्यात्रा है।
और जब वासना व्यर्थ है--ऐसा दिखायी पड़ जाता है, दुख ही दुख है... ।
इसलिए बुद्ध कहते हैं कि दुख ही दुख है। इसलिए नहीं कि बुद्ध को कोई वासना की निंदा करनी है। बुद्ध क्यों निंदा करेंगे! बुद्ध निंदा करना जानते ही नहीं। बुद्ध केवल तथ्य की घोषणा करते हैं।
आए न पिया
बैरागिन जगी रही रात,
जलाए दीया।
बौराई पीड़ा ने कर दिए,
नीलाम
सपने खुले बाजार।
दूर के ऊंचे पहाड़ों में,
खुलते रहे
गुमनाम दिशा-द्वार।
संन्यासी तन ने चुपचाप,
सब झेल लिया।
आए न पिया।
झीलों का दर्पण गहरा गया। खड़ा-खड़ा
ऊंघता रहा गगन
माटी से फूल के दुलार को, लुटा-लुटा
देखता रहा चमन।
बनजारे मन ने दुख भी जिया, सुख भी जिया।

आए न पिया।
जिसकी तलाश है, वह मिलता नहीं। दुख मिल जाता है, सुख मिल जाता है; जिसकी तलाश है, वह मिलता नहीं।
बनजारे मन ने दुख भी जिया,
सुख भी जिया।
आए न पिया।
अकेलापन भरता नहीं, मिटता नहीं।
दुख तुम्हें बार-बार चोट करके जगने की सूचना देता है। दुख जैसे अलार्म है कि उठो, बहुत सो लिए। जगो, बहुत सो लिए। जगो, बहुत स्वप्न देख लिए। सुबह हो गयी। दुख जगाता है। और अगर तुम दुख से जाग जाओ, तो दुख के प्रति तुम्हारे मन में अनुग्रह का भाव होगा। और उन सब के प्रति भी, जिन्होंने तुम्हें दुख दिया।
इसलिए शत्रुता मिट जाती है जागे हुए पुरुष की। किससे शत्रुता? सब ने साथ दिया। अपनों ने साथ दिया सो दिया ही, परायों ने भी साथ दिया। परायों ने दुख दिए सो दिए ही दिए, अपनों ने भी दुख दिए। सब ने साथ दिया; सब ने जगाया; सब ने झंझोड़ा। किसी ने सोने न दिया।
जिस दिन तुम जागोगे, उस दिन धन्यवाद का भाव होगा--उन सब के प्रति, उन सब स्थितियों के प्रति--जिन में कभी तुम बड़े बेचैन हुए थे, बड़े तिलमिलाए थे। उनके प्रति भी तुम कहोगे कि धन्यभागी हूं। क्योंकि वह न होता, तो यह जागरण भी न होता।
मेरे हरदम साथ रहो तुम,
कितना अच्छा लगता है!
धुला-धुला-सा हो जाता मन
फगुनाहट से भर जाता तन
चौगुन चाव भरे बतियाते
लगते हैं आपस में आंगन।
तुलसी के चौरे पर दीप
जलाना अच्छा लगता है
हरदम मेरे साथ रहो तुम!
हर मौसम रंगों से भरता
हर दर्पण का रूप निखरता
छलक-छलक पड़ता खालीपन
कोना-कोना धूप संवरता
हर अंदाज सही हो जाता
जीवन सच्चा लगता है
हरदम मेरे साथ रहो तुम!
मगर हरदम कौन किसके साथ रह सकता है? और जीवन सच्चा लगता है!
सच्चा लगना एक बात; सच्चा हो जाना बिल्कुल दूसरी बात। लगने में धोखा है। कितना तो तुमने धोखा खाया! कितनी बार तो धोखा खाया! कितनी बार तो तुमने कहा कि बस, अब आ गए। अब मिल गया मन का मीत! अब मिल गया, जिसे चाहा था। फिर चूके। फिर दो दिन बाद पता चला कि नहीं, यह भी पड़ाव है, मंजिल नहीं। बढ़ना होगा। आगे जाना होगा। धर्मशाला थी, सराय थी। रुक लिए रात; सुबह फिर बनजारा हो जाना है। सुबह फिर यात्रा पर निकल जाना है।
ऐसे जन्मों-जन्मों में कितने पड़ाव संसार में डाले; मंजिल कहां है?
बुद्ध का यह कहना कि जीवन दुख ही दुख है, तुम्हें जगाने को है। और ऐसा
मत समझना कि दुख का उपयोग नहीं है। यही उपयोग है। दुख से ही पार होकर निर्वाण है।

पांचवां प्रश्नः
दिल को तुम से प्यार क्यूं
यह न बता सकूंगा
तुम को नजर में रख लिया
दिल जिगर में रख लिया

खुद मैं हुआ शिकार क्यूं
यह न बता सकूंगा
आपके घाट तक आ चुका हूं, क्या आपकी ओर से संन्यास रूपी नौका का सहारा
पा सकूंगा?

पूछा है मनहर ने। जब पूछा था, तब तक वे संन्यासी नहीं थे। अब संन्यासी हैं; नाव में सवार हो गए हैं। लेकिन बात ठीक कही है।
शिष्य और गुरु के बीच जो संबंध है, उसे समझाने का, कहने का कोई उपाय नहीं! इस जगत की सब से ज्यादा उलझी पहेलियों में एक है। क्यों?
इस जगत में जितने और संबंध हैं--मां का, पिता का, भाई का, बहन का, पति- पत्नी का, मित्र का--वे सारे संबंध सांसारिक हैं। वे सारे संबंध पौदगलिक हैं। वे सारे संबंध माया के हैं, सपने के हैं, निद्रा के हैं।
इस जगत में एक ही किरण है, जो इस जगत की नहीं है, वह हैः गुरु-शिष्य का संबंध। इस जगत में होकर भी--घटता तो यहीं है, इसी पृथ्वी पर, इन्हीं वृक्षों के तले, इन्हीं चांद-तारों के नीचे--इस पृथ्वी पर होकर भी इस पृथ्वी का नहीं है। कुछ पार का है। जैसे अंधेरे घर में एक किरण उतर आयी हो छप्पर के छेद से। अंधेरे में है, लेकिन किरण अंधेरे की नहीं है। कहीं पार से आती है, कहीं दूर से आती है।
अगर तुम किरण का सहारा पकड़कर चल पड़ो, अगर किरण को तुम अपना यात्रा-पथ बना लो, जल्दी ही अंधेरे के बाहर हो जाओगे। जल्दी ही खोज लोगे चांद को, जहां से किरण आती है। प्रकाश के स्रोत तक पहुंच जाओगे किरण को पकड़कर। गुरु-शिष्य का संबंध सब से अपूर्व है, विस्मयकारी है; कुछ ऐसा है, जैसा
हो नहीं सकता, फिर भी होता है! कुछ ऐसा है, जैसा होना नहीं चाहिए जीवन के हिसाब में, हिसाब के कुछ बाहर है।
मगर इससे तुम यह मत समझ लेना कि सभी शिष्यों के जीवन में ऐसा घट जाता है। शिष्य औपचारिक भी हो सकता है, तब कुछ भी नहीं घटता। शिष्य किसी गहरी वासना के कारण भी शिष्य हो सकता है, तब नहीं घटता। फिर वासना चाहे सांसारिक हो चाहे आध्यात्मिक--कुछ भेद नहीं पड़ता।
मेरे पास लोग आ जाते हैं। एक व्यक्ति ने संन्यास लिया। मैंने उनसे पूछाः किसलिए संन्यास लेते हो? उन्होंने कहाः नौकरी खोज रहा हूं बहुत दिन से, मिलती नहीं। सोचा, संन्यासी होने के बाद आपकी कृपा हो जाएगी, तो नौकरी मिल जाएगी।
अब इस संन्यास में क्या संबंध बनेगा? कैसे बनेगा? यह तो संबंध टूट गया! बनने की बात कहां है? यह तो बनने के पहले टूट गया! यह तो बात ही गलत हो गयी।
कोई अपने बच्चों को ले आते हैं। किसी बच्चे का विकास नहीं हुआ ठीक से, रिटार्टेड है। हो तो गया पंद्रह साल का, लेकिन मानसिक-उम्र तीन-चार साल से ज्यादा नहीं है। कहते हैंः संन्यास दे दीजिए इसको! क्यों? कि शायद आपके आशीर्वाद से ठीक हो जाए!
जो सज्जन अपने बेटे को संन्यास दिलाने आए थे, मैंने कहाः आपका क्या इरादा है? उन्होंने अभी संन्यास लिया नहीं! बोले कि मैं सोचूंगा। अभी और बहुत झंझटें हैं।
बच्चे को संन्यास दिलाने लाए हैं; खुद संन्यास लेने की हिम्मत नहीं है! संन्यास से कुछ प्रयोजन भी नहीं है। संन्यास की समझ भी नहीं है। संन्यास को कोई औषधि समझ रहे हैं, कोई चिकित्सा समझ रहे हैं--कि यह बच्चा ठीक हो जाएगा। तब तो संबंध बनेगा ही नहीं।
लेकिन ये तो संसारिक बातें हुईं। अगर आध्यात्मिक आकांक्षा से भी संन्यास लेते हो, तो भी बात नहीं बनती। जैसे कोई कहता हैः मानसिक शांति चाहिए! जब कोई कहता है कि नौकरी चाहिए, तब तो किसी को भी समझ में आ जाएगा-- बात गलत है। लेकिन जब कोई कहता हैः मानसिक शांति चाहिए, तो तुम न कहोगे कि बात गलत है। मैं तुमसे कहना चाहता हूं, तब भी बात गलत है।
संन्यास से कुछ भी चाहिए, तो बात गलत है। जहां चाह है, वहां संसार है, संन्यास कहां! संन्यास तो अकारण होना चाहिए, अहेतुक होना चाहिए। आनंद से

फलित होना चाहिए। मौज से निकलना चाहिए। अपना लक्ष्य अपने में होना चाहिए। कुछ भी चाहते हो, तो अड़चन होगी।
मानसिक शांति चाहिए! मानसिक अशांति क्यों है? क्योंकि बहुत चाहें हैं जिंदगी में; उन चाहों ने मन को उद्वेलित कर दिया है। उन चाहों के कारण तनाव है। तनाव के कारण अशांति है। अब यह एक और नयी चाह बढ़ा रहे हो! और अशांत हो जाओगे। अब मानसिक शांति चाहिए!
और ध्यान रखनाः धन मिलना आसान है; मानसिक शांति मिलनी इतनी आसान नहीं। क्योंकि धन तो बड़ी क्षुद्र बात है। खोजते रहो, मिल ही जाएगा। कानूनी ढंग से न मिले, तो गैर-कानूनी ढंग से खोज लेना; मिल जाएगा। कोई उपाय कर लेना; चुनाव लड़ लेना। जो पास में हो, वह लगा देना; फिर कई गुना मिल जाएगा। धन तो पाया जा सकता है; लेकिन मानसिक शांति? मानसिक शांति कोई वस्तु तो नहीं कि तुम मुट्ठी बांध लोगे उस पर! मानसिक शांति कोई ऐसी चीज तो नहीं कि कहीं बिकती है; खरीद लोगे। मानसिक शांति कोई ऐसी चीज तो नहीं कि अभ्यास करने से मिल जाएगी। मानसिक शांति तो मिलती है समझ से।
इसलिए बुद्ध ने कहाः प्रज्ञा से... । जब तुम समझोगे कि अशांति के कारण क्या हैं, उसी समझ में अशांति के कारण समाप्त हो जाएंगे। जो शेष रह जाएगा, वह मानसिक शांति है। इसलिए मानसिक शांति कोई चाह ही नहीं सकता। चाह ही तो अशांति का कारण है। चाहा--कि चूके; और अड़चन बढ़ जाएगी। ऐसे ही अड़चन काफी है! तो ऐसे लोगों को मैं कहता हूंः वैसे ही अशांति काफी है; अब और अशांति क्यों लेनी? इतना ही काफी है। इससे मन नहीं भर रहा है! अब मानसिक शांति की भी चाह है! इस झंझट में न पड़ो। ज्यादा अच्छा यही होः क्यों मन अशांत है, इसको समझो; इसके भीतर प्रवेश करो। और तुम पाओगेः अशांति इसीलिए है कि बहुत सी वासनाएं हैं, और कोई वासना कभी पूरी नहीं होती। नहीं पूरी होती, तो अशांति--अशांति--अशांति।
इस समझ का परिणाम यह होता है कि वासनाएं छूट जाती हैं। और जहां वासना नहीं है, वहां जो है, वही मानसिक शांति है। उस मानसिक शांति में निर्वाण का फूल लगता है। लेकिन तुम्हारे कुछ कोशिश करने से नहीं लगता है। तुम्हारी चेष्टा से नहीं लगता। तुम्हारी चेष्टा से तो वही पैदा होगा, जो तुमसे पैदा हो सकता है।
निर्वाण का फूल तो परमात्मा से आता है, वह तो प्रसाद है। वह तो अनंत से आता है। तुम सिर्फ झेलने वाले होते हो। तुम पैदा करने वाले नहीं होते। तुम सिर्फ स्वीकार करने वाले होते हो; अंगीकार करने वाले होते हो। वह तो उतरता है। उसका अवतरण होता है। वह मौजूद ही है। सिर्फ जिस दिन तुम्हारी हृदय की भूमिका तैयार हो जाएगी, अचानक तुम पाओगेः वह फूल उतर आया। तैर गया तुम पर।
भर गया तुम्हें।
वासना थी, तो खाली-खाली रहे। वासना से खाली हुए, तो परमात्मा से भरे।
फिर उसे कुछ भी नाम दोः निर्वाण कहो, मोक्ष कहो, सत्य कहो, सच्चिदानंद कहो।
फिर नामों का भेद है।
तुमने पूछा हैः "दिल को है तुमसे प्यार क्यों, यह न बता सकूंगा!"
बताया भी नहीं जा सकता। इसलिए नहीं कि भाषा में कहना कठिन है, बल्कि इसलिए कि तुम्हें भी पता नहीं है। शिष्यत्व ऐसी अपूर्व घटना है कि शिष्य को भी पता नहीं होताः क्यों घट रही है? कैसे घट गयी?
"दिल को है तुमसे प्यार क्यूं
यह न बता सकूंगा
तुम को नजर में रख लिया
दिल जिगर में रख लिया
खुद मैं हुआ शिकार क्यूं
यह न बता सकूंगा"
ठीक है बात। कोई उपाय बताने का नहीं। कोई कभी नहीं बता पाया। यह बात बताने की है भी नहीं। यह बात तो चुप-चुप भीतर सम्हालने की है।
बतियाओ मत
मौसम चुप रहने का
ठंडी हवाओं से कह दो

रुक जाएं
अंधियारी छाहों से कह दो झुक आएं
मजबूर समां है
चुप-चुप सब सहने का
मौसम चुप रहने का
बतियाओ मत।
दर-दर चहकती खामोशियां
रोको तो
गुमराह निगाहों को भी कुछ टोको तो
अब समय नहीं है
लहरों में बहने का
मौसम चुप रहने का
बतियाओ मत।
सपने पंसारी की
दुकान बन बैठे
याद की मदारिन ने
भोले दिल ऐंठे
लाचार जुबां है
दर्द न कुछ कहने का
मौसम चुप रहने का
बतियाओ मत।
अब तुम्हारे जीवन में चुप रहने की घड़ी आयी। अब कुछ तुम्हारे जीवन में हुआ, जिसे कहा नहीं जा सकता; कभी नहीं कहा जा सकता। यह शुभ घड़ी है। यह एक नया सूत्रपात है। यह परमात्मा की तुम्हारे जीवन में पहली झलक है, पहली कौंध, पहली बिजली!
बतियाओ मत
मौसम चुप रहने का
अब चुप-चुप इसे साधो। अब चुप-चुप इसे भीतर बांधो। अब चुप-चुप इसमें रमो।
और नाव पर तो तुम मेरी सवार हुए। अब पुराने किनारे से सब मन के नाते टूट जाने दो। अब पुराने किनारे से सब धागे हटा लो। अब कोई रस्सी बंधी न रहे, नहीं तो कई बार ऐसा होता है, नाव में भी सवार हो जाते और कहीं नहीं पहुंचते।
तुमने कहानी सुनी है न!
एक रात कुछ लोगों ने शराब पी ली। पूर्णिमा की चांदनी रात थी। शराब की मस्ती, गीत गाते नदी तट पर पहुंच गए। नाव मछुए बांधकर चले गए थे किनारे से। नाव में चढ़ गए। पतवारें उठा लीं। खूब खेया। नशे में थे। खेते ही रहे। सुबह जब भोर होने लगी और ठंडी हवाएं आने लगीं; थोड़ा नशा उखड़ा, थोड़ा नशा
कम हुआ, तो एक शराबी ने कहाः कोई भाई जरा किनारे उतरकर देख ले कि हम कितनी दूर निकल आए और किस दिशा में निकल आए! रातभर खेते रहे, न मालूम कहां आ गए हों?
एक उतरा और किनारे पर पेट पकड़कर खूब हंसने लगा। पूछने लगे दूसरे कि बात क्या है! उसने कहा कि बात बड़े मजे की है। हम कहीं गए नहीं। क्योंकि हम नाव को किनारे से छोड़ना तो भूल ही गए। वह तो किनारे जंजीर से बंधी है। पतवार तो हमने बहुत चलायी--सच--मगर हम जहां थे, वहीं हैं!
नाव में बैठकर भी जरूरी नहीं कि यात्रा हो जाए। किनारे से जंजीरें खोलनी पड़ेंगी। और ध्यान रखनाः एकाध जंजीर नहीं है, बहुत जंजीरें किनारों से बंधी हैं। इधर धन की जंजीर है। इधर पद की जंजीर है। इधर मोह की जंजीर है। इधर प्रतिष्ठा की जंजीर है। न मालूम कितनी जंजीरें किनारों से बंधी हैं! उन सबको काटना पड़ेगा।

मैं तुम्हारे हाथ में पतवार दे सकता हूं। मैं तुम्हें कह सकता हूं कि
ये जंजीरें खोलो। लेकिन यह करना तुम्हें पड़ेगा।
तुम्हारी जंजीरें मैं नहीं खोल सकता। क्योंकि जो जंजीरें दूसरा खोल दे, उससे असली स्वतंत्रता घटित नहीं होती।
मेरे खोलने से क्या होगा! अगर जंजीरों से तुम्हारा मोह है, तो मैं मुंह भी न मोड़ पाऊंगा कि तुम फिर जंजीरें बांध लोगे। अगर जंजीरों से तुम्हारा लगाव है, तो वे फिर बंध जाएंगी।
तुम्हीं जागो और जंजीरें खोलो। बुद्ध ने कहा हैः बुद्धपुरुष तो केवल इशारा करते हैं; चलना तो तुम्हें ही पड़ता है।

आखिरी प्रश्नः आप कहते हैं कि सुख की खोज में से ही दुख मिलता है। फिर क्यों सारा अस्तित्व सुख की खोज में व्यस्त मालूम होता है?

सुख पाना है--यह सच है। लेकिन सुख पाने से नहीं पाया जा सकता। सुख परोक्ष आता है, प्रत्यक्ष नहीं। यह सुख की कीमिया ठीक से समझ लो।
सुख पाना है--यह स्वाभाविक है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति सुख पाने में लगा है। लेकिन शायद ही कभी कोई इस बात को समझ पाता है कि मैं दुखी क्यों हूं! सुख तो पाने के लिए दौड़ता है, लेकिन दुखी क्यों हूं? और जब तक मैं दुखी होने के कारणों को नहीं बदलता, तब तक मैं कितना ही दौडूं, मैं सुख न पा सकूंगा।
मैंने सुना हैः एक कौवा एक दिन उड़ा जा रहा था। और एक कोयल ने पूछा कि चाचा! कहां जा रहे हो बड़ी तेजी में! उसने कहाः मैं पूरब जा रहा हूं, क्योंकि पश्चिम में लोग मेरे गीतों को पसंद नहीं करते।
उस कोयल ने कहाः चाचा! मगर गीत यही गाए पूरब में, तो वहां भी कोई पसंद न करेगा। ये गीत ही आपके ऐसे गजब के हैं! बजाय पूरब जाने के, आप अपने गीत के ढंग बदलो।
लोग सुख खोज रहे हैं और लोग दुख पैदा कर रहे हैं! सारी ऊर्जा दुख पैदा करने में लगी है और मन का एक छोटा सा हिस्सा सुख खोजने में लगा है! यह नहीं हो सकता है। यह कैसे होगा?
तुम्हारा पूरा जीवन दुख निर्मित करने में लगा है। समझो। ज्यादा उचित यही होगा कि तुम दुख क्यों पैदा हो रहा है, इसकी खोज में लगो। इसकी खोज ही तुम्हें उस जगह ले आएगी, जहां सुख फलता है। दुख न हो, तो सुख हो जाता है। और अभी तुम अगर कभी थोड़ा-बहुत सुख पा भी लिए; ज्यादा देर टिकेगा नहीं। दुख के सागर में सुख बूंदों जैसा होगा, बबूलों जैसा होगा--अभी हुआ, अभी मिटा। और तुम्हें और भी दुखी कर जाएगा।
यह तुमने ख्याल किया कि सुख के बाद दुख और भी सघन हो जाता है। जैसे रास्ते पर अंधेरे में जा रहे हैं, कुछ-कुछ दिखायी पड़ रहा है। अमावस सही, लेकिन कुछ-कुछ दिखायी पड़ रहा है। किसी तरह चले जा रहे हो। फिर एक तेज-तर्रार कार गुजर जाती है पास से। उसके तेज प्रकाश में तुम्हारी आंखें चौंधिया जाती हैं। कार चली गयी, फिर तुम्हें कुछ नहीं दिखायी पड़ता। जो पहले दिखायी पड़ता था, वह भी नहीं दिखायी पड़ता। घड़ीभर को तो तुम एकदम अंधे हो जाते हो।
ऐसा ही होता है। जीवन में दुख है, सुख कभी-कभी कौंध जाता है। उसके बाद
और दुखी हो जाते हो।
तुमने फर्क देखा! एक भिखारी सड़क पर बैठा। यह भिखारी ही है। यह सदा से भिखारी है। तुम्हें लगता है, बहुत दुखी है। तुम गलती में हो। तुम्हें जो लगता है, यह बहुत दुखी है, वह इसीलिए लगता है कि तुम सोचते होः अगर मुझे भीख मांगनी पड़े, मुझे भिखमंगा होना पड़े, तो कितना दुख न होगा! इतना दुख इसे नहीं हो रहा है। हां, तुम्हें होगा।
तुम्हारे पास मकान था, पत्नी थी, कार थी, दुकान थी--सब था। फिर खो गया। दिवाला निकल गया। दीवाली निकलते-निकलते दिवाला निकल गया। अब तुम भी भिखमंगे के पास बैठ गए। तुम यह मत सोचना कि तुम्हें जो दुख हो रहा है, वह भिखमंगे को भी हो रहा है। भिखमंगा हो सकता है मस्त भी हो। भिखमंगा तुमसे

कहे भी कि अरे यार, क्यों इतने परेशान हो रहे हो! सब चलता है। सब मजे से चल रहा है। काहे इतने उदास! थोड़े दिन में रच-पच जाओगे। मैं सिखा दूंगा सब धंधा। इसकी भी कला है। तुम मुझसे सीख लो।
मगर तुम्हारा मन नहीं लगता, क्योंकि तुमने थोड़ा सा सुख देखा है। उस सुख की तुलना में यह महादुख मालूम पड़ता है।
एक यहूदी कथा हैः एक गरीब यहूदी अपने रबी के पास गया। रबी से उसने कहा
कि गुरुदेव! कुछ रास्ता बताओ। मैं मरा जा रहा हूं। एक ही कमरा है हमारे पास। उसमें मैं रहता, मेरी पत्नी रहती, मेरे बारह बच्चे रहते। मेरे पिता, मेरी मां, मेरी पत्नी की मां, मेरी पत्नी के पिता, मेरी एक विधवा बहन, उसके दो बच्चे! और अभी-अभी घर में मेहमान आ गए हैं! पागल हुए जा रहे हैं हम। इसके पहले कि कुछ हो जाए--या तो मैं किसी को मार डालूं या मैं मर जाऊं--ऐसी हालत हो रही है। एक ही कमरा, उसी में खाना बनाते, उसी में बच्चे पैदा होते, उसी में मेहमान भी रहते हैं। कुछ रास्ता बताओ।
यहूदी धर्मगुरु बड़े अनुभवी लोग होते हैं। उसने कहाः तुम एक काम करो। तेरे पास गाय-भैंस इत्यादि हैं? उसने कहा, हैं। तीन भैंसें हैं, दो गाएं हैं, दस बकरियां हैं, भेड़ें भी हैं, कुत्ता भी है, घोड़ा भी है। उसने कहाः तू उन सब को भी अंदर ले आ। उसने कहाः आप होश में हैं? मैं क्या कह रहा हूं--कि मैं मरा जा रहा हूं। आप कह रहे हैं, इनको भी अंदर ले आ! उसने कहाः तू मेरी बात मान और सात दिन बाद आकर मुझे बताना।
जब गुरु ने कहा है, तो कुछ राज होगा। हिम्मत तो नहीं होती यह करने की उसकी। घर जाता है, बड़ा सोचता है। पत्नी से कहता है कि हद्द हो गयी! मैं मुसीबत लेकर गया था। महा मुसीबत का रास्ता बता दिया।
पत्नी कहती हैः लेकिन जब गुरु ने कहा... । जैसे कि पत्नियां अक्सर गुरुओं को मानने वाली होती हैं, उसने कहाः जब गुरु ने कहा, तो मानना ही पड़ेगा। अब जो भी हो। सात दिन झेल लेंगे। मगर जब कहा है, तो कुछ राज होगा! तो लाना पड़ा। अब सब भैंसें और गाएं और घोड़े और कुत्ते और... ! वहां तो जगह बैठने की भी न रही। खड़े-खड़े मुश्किल से गुजारा हो। सात दिन तो बिल्कुल पगला गए सब। सात दिन पूरे हुए, तो भागा एकदम। गुरु के चरण पकड़ लिए और कहा कि बचाओ गुरुदेव!
उसने कहा कि अब तुम एक काम करो, वह सब जानवरों को बाहर निकाल दो। आनंद
से नाच उठा कि धन्य है! ऐसा सुख मुझे कभी नहीं हुआ था। यह बात ही इतना सुख दे रही है!
जाकर सब निकाल दिया। पांच-सात दिन बाद धर्मगुरु आया। उसने कहाः कहो! उसने कहाः बड़ा आनंद है गुरुदेव! ऐसी सुख की राहत की सांस कभी जिंदगी में न ली थी। और कमरा इतना बड़ा मालूम पड़ता है! और काफी जगह है। दो-चार मेहमान आ जाएं, तो कोई अड़चन नहीं है। आपने भी आंखें खोल दीं!
अक्सर ऐसा हो जाता हैः बड़े दुख के बाद छोटा सा सुख बड़ा मालूम होता है।
और बड़े सुख के बाद छोटा सा दुख बड़ा मालूम होता है।
"आप कहते हैं, सुख की खोज में से ही दुख निकलता है।"
हां, सुख की खोज में से दुख निकलता है। क्योंकि तुम दुख को नहीं खोजते; तुम दुख को नहीं खोदते। तुम दुख को नहीं निरीक्षण करते। और दौड़े चले जाते हो। सुख की चीख-पुकार मचाए रखते हो और दुख तुम पैदा करते चले जाते हो। ज्ञानी वह है, जो सुख की तो फिकर नहीं करता है, जो दुख का निरीक्षण करता है, जो दुख के राज खोजता है--कि क्यों दुख है? किस कारण दुख है? क्या आधार है दुख का? और जैसे-जैसे दुख की समझ बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे आधार गिरते जाते हैं। क्योंकि तुम्हीं तो पैदा कर रहे हो उन्हें।
तुम्हीं अपना दुख पैदा कर रहे हो। तुम अपने हाथ हटाते जाते हो। जहां- जहां समझ आ गयी, वहां-वहां हाथ हट जाता है। और जहां दुख नहीं पैदा होता, वहीं सुख पैदा होता है। सुख अलग से खोजने की जरूरत नहीं है। उसी खोज में अड़चन है।
दुख का यही तो उपयोग है कि अगर तुम उसे समझ लो, तो सुख हो जाए। अगर पूरा समझ लो, तो आनंद हो जाए।
दर्द भी जरूरी है।

माटी की भूख जगी
माटी की ही प्यास
जीते रहे प्राणों को
अनछुए अहसास
आंगन की गंधों में
सिमट आयी दूरी है।
दर्द भी जरूरी है।
खामोशियां भरती रहीं
छंदों में रंग
दर्पण ने कर डाले
सब सपने बदरंग
बिना जिए, बिना मरे
जिंदगी अधूरी है।
दर्द भी जरूरी है।
कभी बढ़े कभी घटे
अनबुझे फासले
बदनामी ढोते रहे
मंजिल के काफिले
अनदेखे सपनों की
छाया सिंदूरी है।
दर्द भी जरूरी है।
दर्द का भी बड़ा उपयोग है। और वह उपयोग है कि तुम उसे देखो, पहचानो, विश्लेषण करो, खोदो, समझो। उसी समझ से तुम्हारे भीतर सुख का अवतरण होता है। सुख को खोजने मत जाओ, दुख में उतरो। और जब मैं कह रहा हूं कि दुख में उतरो, तो मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम अपने लिए दुख पैदा करो। दुख वैसे ही काफी है। कुछ और पैदा करने की जरूरत नहीं है।
कुछ मूढ़ ऐसे हैं कि वे समझ गए कि दुख में उतरने का मतलब है कि और दुख पैदा करो। भोजन भी है, तो उपवास करो। इसकी कोई जरूरत नहीं है। दुख वैसे ही काफी हैं।
तपश्चर्या का यही अर्थ है कि जब दुख हो, तो उसमें जागो। लेकिन लोग मूढ़ हैं। उन्होंने उलटा अर्थ ले लिया। उन्होंने अर्थ ले लिया कि अपने लिए दुख पैदा करो। पहले सुख पैदा करने की कोशिश करते थे, अब वे दुख पैदा करने की कोशिश कर रहे हैं। पहले सोचते थे कि किसी तरह कमरे में एअर कंडीशनर लग जाए। अब? अब उन्होंने धूनी रमा ली। अब वे आग जलाकर उसके पास बैठे मर रहे हैं! मगर मूढ़ता पुरानी की पुरानी है।
पहले सोचते थे, सुंदर वस्त्र; अब नंग-धड़ंग बैठे हैं! पहले सोचते थे कि अच्छा बिस्तर, अच्छा सोने का स्थान; अब इतने से काम नहीं चल रहा कि वे साधारण बिस्तर पर सो जाएं। जो है उस पर सो जाएं। अब उन्होंने कांटों को बिस्तर बना लिया है! अब खीले लगाकर उन्होंने अपनी विशेष शय्या बना ली है! यह मूढ़ता है! यह एक अति से दूसरी अति पर जाना है।
और ध्यान रखनाः भोगी की मूढ़ताएं हैं, योगी की मूढ़ताएं हैं। और दोनों
से जो जागता है, वही ज्ञानी है।
नहीं तो योगी की मूढ़ता पकड़ लेती है! भोगी की मूढ़ता से छूटे किसी तरह,
तो योगी की मूढ़ता पकड़ लेती है! इधर भोगी है कि एक-एक बात सुख ही सुख मिले, इसी कोशिश में करता है। और उधर योगी है कि हर चीज से दुख मिले, इसकी कोशिश में रहता है। अगर रास्ता साफ-सुथरा है, उस पर वह न चलेगा। जहां कांटे पड़े हैं, वहां चलेगा। क्योंकि दुख! तपस्वी है! तपश्चर्या करनी है! अगर वृक्ष में छाया है, तो वहां न बैठेगा। धूप में खड़ा रहेगा। पास कंबल है, ओढ़कर सो जाता। तो नदी में खड़ा है! ठंड सह रहा है! यह मूढ़ता ने ढंग बदल लिया, लेकिन मूढ़ता नहीं गयी।

न तो दुख पैदा करने की जरूरत है, न सुख खोजने की जरूरत है। दुख इतना काफी है। परमात्मा ने जितना जरूरी है, उतना तुम्हें दिया है; उसका उपयोग

कर लो। उसको समझ लो। उसी समझ में से तुम्हें सूत्र मिल जाएंगे। उन्हीं सूत्रों से मुक्ति है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ पांच प्रवचन

तृष्णा को समझो

तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो"व बाधितो।
सांंजनसंगसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय।। 281।।

यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बंधनमेव धावति।। 282।।

न तं दल्हं बंधनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजंच।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।। 283।।

एतं दल्हं बंधनमाहु धीरा
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुंच।
एतप्मि छेत्त्वान परिब्बजन्ति
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय।। 284।।

ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं सयं कतं मक्कटक्को"व जालं।
एतम्पि छेत्त्वान बजन्ति धीरा
अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय।। 285।।

मुंच पुरे मुंचपच्छतो मज्झे मुंच भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जतिजरं उपेहिसि।। 286।।

तुष्णा को समझा, तो बुद्ध को समझा। क्योंकि तृष्णा को समझ लेने से ही तृष्णा गिर जाती है; और फिर जो शेष रह जाता है, वही बुद्धत्व है।
बुद्ध को समझने के लिए गौतम बुद्ध को समझना जरूरी नहीं है। बुद्ध को समझने के लिए स्वयं के बुद्धत्व में उतरना जरूरी है। उसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। उससे अन्यथा जिसने समझने की कोशिश की, वह पंडित होकर रह जाएगा। और पांडित्य अज्ञान से भी बदतर है।
अज्ञानी तो निर्दोष होता है; पांडित्य बड़े अहंकार से भर जाता है। अज्ञान के कारण कोई सत्य से नहीं वंचित है; अहंकार के कारण वंचित है। मिटाना है अहंकार को। और अहंकार मिट जाए, तो सब अज्ञान अपने से मिट जाता है।
लेकिन, तृष्णा को समझो, इसका क्या अर्थ? भाषाकोश में अर्थ दिया है। या तृष्णा के संबंध में विचारकों ने, दार्शनिकों ने बहुत बातें कही हैं, सिद्धांत प्रतिपादित किए हैं; उन्हें समझें!
नहीं; उन सिद्धांतों को समझने से तृष्णा के संबंध में समझ लोगे, लेकिन तृष्णा को नहीं समझ पाओगे। तृष्णा को समझने का कोई बौद्धिक उपाय नहीं है। तृष्णा को समझा जा सकता हैः केवल अस्तित्वगत अर्थ में।
तृष्णा में जी रहे हो; जागकर जीने लगो। चल तो रहे हो तृष्णा में; होश सम्हाल लो। अभी भी तृष्णा पकड़ती है, लेकिन तुम बेहोश हो। तुम जरा होश से भर जाओ। और जब तृष्णा पकड़े, तो समझोः कहां से उठती है? कैसे उठती है? क्यों उठती है? कहां ले जाती है? और बार-बार के परिभ्रमण में भी हाथ क्या लगता है?
कोल्हू का बैल जैसे चलता रहता है, ऐसे तृष्णा में हम जुते हैं। और एक
ही स्थान पर कोल्हू का बैल चक्कर काटता है! यात्रा होती भी नहीं; कहीं जा भी नहीं रहा है। बस, वहीं चक्कर काट रहा है!
ऐसे ही तुम भी जन्मों-जन्मों में कहीं नहीं गए हो। उसी जगह चक्कर काट रहे हो! पुनरुक्ति है। जैसे-जैसे जागोगे, वैसे-वैसे यह दिखायी पड़ेगा कि यह यात्रा नहीं है, यात्रा का भ्रम है। पहुंचना तो हो नहीं रहा है; सिद्धि तो

फलित नहीं हो रही है; हाथ तो कुछ आ नहीं रहा है; उलटे जा रहा है। पा तो कुछ भी नहीं रहे, अपने को गंवा रहे हो।
यह जैसे-जैसे साफ होने लगेगा और तृष्णा की प्रक्रिया स्पष्ट होने लगेगी, उस स्पष्ट होने में ही तृष्णा से छुटकारा हो जाता है।
तृष्णा से छूटने के लिए कोई उपाय नहीं करने पड़ते। जो उपाय करता है, वह तृष्णा को समझा ही नहीं। जिसने तृष्णा समझी, उपाय की नहीं पूछता। समझना ही उपाय है। समझ लिया कि तृष्णा गिरी!
तुम्हें दिखायी पड़ गया कि सांप रास्ते पर है। तुम छलांग लगाकर अलग हो जाते हो। तुम पूछते नहींः कैसे छलांग लगाऊं? कैसे रास्ता छोडूं? अब क्या करूं? सांप सामने है--क्या करूं? ऐसा अगर तुम पूछ रहे हो, तो एक ही बात सिद्ध होती है कि तुम्हें सांप अभी दिखायी नहीं पड़ा। किसी ने कहा है कि सांप है, और तुमने माना है। लेकिन तुम्हें नहीं दिखायी पड़ा।
घर में आग लगी हो तो--बुद्ध निरंतर कहते थे--घर में आग लगी हो तो आदमी छलांग लगाकर बाहर निकल जाता है। लेकिन अगर कोई पूछे कि मेरे घर में आग लगी है, मैं बाहर कैसे निकलूं, तो एक बात समझ लेनाः उसने सुना है कि उसके घर में आग लगी है; अभी देखा नहीं है। किसी ने कहा है कि घर में आग लगी तेरे। लेकिन उसके अनुभव में बात नहीं उतरी। इसलिए पूछता हैः कैसे? कैसे उपाय है समय को टालने का। कैसे उपाय है और थोड़ा समय इसी मकान में रह लेने का, स्थगित करने का।
जब मकान में आग लगती है, तो आग का दर्शन ही छलांग बन जाता है। दर्शन में और छलांग में इंचभर का फासला नहीं होता; तत्क्षण छलांग घट जाती है। इसलिए बुद्ध ने कहा है कि तृष्णा दिखायी पड़ जाए--दिखायी पड़ जाए कि मेरे घर में आग लगी है, तो उसी दृष्टि में, उसी दर्शन में रूपांतरण है।
आज के सूत्र इसी तृष्णा में जागने के सूत्र हैं।
पहला दृश्यः

भगवान वेणुवन में विहार करते थे। उनके अग्रणी शिष्य महाकाश्यप स्थविर का एक शिष्य ध्यान में अच्छी कुशलता पाकर भी एक स्त्री के सौंदर्य को देखकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो गया।
उसके परिवार ने इस स्थिति को महापतन मानकर उस युवक को घर से निकाल दिया। वह और तो कुछ जानता नहीं था, सो चोरी करके जीवन-यापन करने लगा। अंततः चोरी करते रंगे हाथों पकड़ा गया। राजा ने उसे प्राणदंड की आज्ञा दी।
जिस समय जल्लाद उसे मारने के लिए ले जा रहे थे, उस समय भिक्षाटन के लिए जाते हुए महाकाश्यप स्थविर ने उसे देखा। वह तो उन्हें भूल ही चुका था। लेकिन उन्होंने उसे पहचान लिया। महाकाश्यप उसके पास गए और अत्यंत करुणापूर्वक उससे बोलेः पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो। ध्यान नौका है। ध्यान एकमात्र नौका है--मृत्यु से अमृत की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, असत से सत की ओर। स्मरण करो--स्मरण करो--पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो।
स्थविर की यह करुणासिक्त वाणी, यह शून्यसिक्त संदेश उसके श्वास-श्वास में समा गया। वह संवेग को उत्पन्न हुआ। वह रोमांचित हुआ। उसके प्राणों में ध्यान की स्मृति फिर ताजी और हरी हो गयी। वह तत्क्षण ऐसे ध्यान को उपलब्ध हो गया, जैसे कि कोई स्वप्न से जागे।
जल्लाद उसे वधस्थल पर ले जाकर मारना चाहे, तो मार न सके। वह ऐसा ज्योतिर्मय हो उठा था! उसकी प्रभा अदभुत थी। उसकी शांति ऐसी थी कि कोई चाहे, तो छू ले! उसका अहोभाव ऐसा था कि जल्लाद भी अनदेखा न कर सके। और उसे अब कोई भय भी नहीं था।
ध्यान में भय कहां? ध्यान में मृत्यु ही कहां?
उसकी वह अपूर्व दशा, वह आनंद दशा ऐसी थी कि जल्लाद बजाय उसकी गरदन काटने के उसके चरणों में झुक गए। यह खबर राजा तक पहुंची। राजा स्वयं अपनी आंखों से देखने आया। ऐसा अलौकिक सौंदर्य देख, आश्चर्यचकित हो, उसने बंदी को छोड़ देने की आज्ञा दी।

फिर राजा उसे लेकर बुद्ध के चरणों में उपस्थित हुआ। यह रूपांतरण कैसे हुआ? क्षणभर में! महाकाश्यप का एक वचन सुनकर! इतनी सी बात से--कि स्मरण कर, पूर्व के ध्यानों का स्मरण कर; यह जागरण फलित हो गया?
ऐसे वचन तो, राजा ने कहा, मैंने भी बहुत बार सुने हैं, फिर मुझे जागरण क्यों फलित नहीं हुआ? महाकाश्यप के प्रवचन मैं भी सुनता हूं, फिर मैं क्यों अंधा का अंधा हूं? और यह महापापी है, फिर ऐसी क्रांति! भिक्षु था पहले यह--सुना मैंने। फिर पतित हुआ; भ्रष्ट हुआ; एक स्त्री के मोह में पड़ा। फिर और पतित हुआ। फिर चोर बना। अब रंगे हाथों पकड़ा गया है। मृत्युदंड दिया था इसे। और महाकाश्यप का एक वचन सुनकर कि ध्यान को स्मरण कर, स्मरण कर पूर्व के ध्यानों को, एकदम ज्योतिर्मय हो उठा! जहां अमावस थी, वहां पूर्णिमा हो गयी।
राजा पूछने लगा बुद्ध को कि मैं जानना चाहता हूं प्रभु! यह कैसे हुआ? बुद्ध ने कहाः ध्यान के जादू से। और फिर बंदी की ओर उन्मुख होकर ये गाथाएं कहीं।
इन गाथाओं को सुन और भगवान की सन्निधि पुनः पा वह बंदी तत्क्षण अर्हत्व को उपलब्ध हुआ अर्थात उसका ध्यान समाधि बन गया।
पहले इस दृश्य को ठीक से हृदय में बैठ जाने दें, फिर हम सूत्रों में जाएंगे।
भगवान वेणुवन में विहार करते थे।
विहार शब्द विशिष्ट अर्थ वाला है। विहार का अर्थ होता हैः जो मिट गया
और फिर भी जी रहा है; जिसकी जीने में कोई वासना नहीं रही। जो जीने के लिए एक क्षण भी आतुर नहीं है, फिर भी जी रहा है।
विहार का अर्थ हैः जिसका जीवन-कार्य पूरा हो गया है, लेकिन अतीत की शारीरिक संपदा के कारण जी रहा है। जैसे तुम साइकिल चलाते हो, पैडल मारते हो। दो मील तक पैडल मारकर साइकिल चलायी, फिर तुम पैडल चलाना बंद कर दिए। तो भी फर्लांग दो फर्लांग साइकिल पुरानी गति के आधार पर चल जाएगी, पैडल बिना मारे चल जाएगी। ऐसी ही घटना घटती है विहार में।
जब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध हो जाता है, तो उसने पैडल मारने बंद कर दिए। लेकिन जन्मों-जन्मों पैडल मारे हैं, तो जन्मों-जन्मों की जो संचित शक्ति है, वह अपने आप काम करती रहती है कुछ वर्षों तक; कुछ फर्लांगों तक वह व्यक्ति और भी जीता चला जाता है। लेकिन जीने में अब उसकी कोई इच्छा नहीं।
और ऐसा भी मत समझना कि उसकी मरने में कोई इच्छा है! न तो जीने में कोई इच्छा है, न मरने में कोई इच्छा है। तुम कहोगेः जब जीने में कोई इच्छा नहीं, तो मर क्यों नहीं जाता? उसकी इच्छा ही कोई नहीं; चुनाव ही कोई नहीं। जीए तो ठीक; मरे तो ठीक। जो हो, वही ठीक। उसका अपना कोई संकल्प नहीं। ऐसा हो, ऐसा ठीक। वैसा हो, वैसा ठीक। मौत आ जाए तो स्वागत। जीवन चलता रहे तो स्वागत। भीतर कोई अपेक्षा नहीं।
ऐसी चित्तदशा में जो आदमी जीता है, उसके जीवन का नाम विहार। यह अपूर्व घटना है। यह ऐसी घटना है, जो कभी-कभी घटती है। इसलिए तो एक प्रांत का नाम ही विहार पड़ गया। बुद्ध वहां जीए। इस ढंग से जीए। उस याद में प्रांत का नाम विहार पड़ गया। उन्हीं गांवों में, उन्हीं रास्तों पर बुद्ध ऐसे जीए कि जब जीने का कोई कारण न रह गया था; जैसे वासना का सब तेल चुक गया, फिर भी बाती थोड़ी देर जलती है। बाती ही जलती है; अब तेल नहीं बचा। वासना का तेल समाप्त हो गया; अब दीए की बाती ही जलती है। पहले तो आग ने जला दिया तेल को; अब आग जलाती बाती को।
और यह प्रतीक बुद्ध के संदर्भ में और भी सार्थक है। क्योंकि बुद्ध ने परम दशा को निर्वाण कहा। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीप का बुझ जाना।
दीप में जब तक तेल है वासना का, तब तक जीवन दुख है, तब तक जीवन नरक है।
तब तक जीवन जलन है--घाव और पीड़ाएं और हजार संताप और चिंताएं! जब तृष्णा का तेल चुक गया, तो जीवन एक परम शांति है। अब बाती जल रही है। जल्दी ही बाती भी बुझ जाएगी। बाती कितनी देर जलेगी? बाती तो तेल से जलती है; जब तेल समाप्त

हुआ और बाती जलने लगी, तो अब ज्यादा देर न जलेगी। फिर जब बाती भी जलकर शांत हो जाएगी, तो उस स्थिति को कहते हैंः दीए का निर्वाण।
बुद्ध ने कहाः ऐसे ही जीवन की वासना का तेल चुक जाता है, फिर आदमी थोड़े दिन जीता है--वह विहार।
विहार प्रीतिकर शब्द है। आनंदमग्न दशा में जीता--विहरता! चलता नहीं, फिर भी चलता। धारा के साथ बहता। जीवन से कोई विरोध, संघर्ष नहीं रह जाता। सब तरह समर्पित होता! न कोई योजना होती; न कोई भविष्य होता; न कोई अतीत होता। यह क्षण काफी होता। यह क्षण अपने में पूरा होता।
इस विहार के बाद एक दिन दीया बुझ जाता; बाती भी जल गयी; तब निर्वाण। तब कहां जाता व्यक्ति? तब महाशून्य में लीन हो जाता। जिस मूलस्रोत से आया था, उस मूलस्रोत में गिर जाता है। जैसे बादल समुद्र से उठते, फिर हिमालय पर बरसते। फिर गंगा बनते। फिर जाकर सागर में गिर जाते हैं। वहीं, जहां से हम आते हैं, वापस पहुंच जाते हैं; वही अस्तित्व का सागर--उसे परमात्मा कहो, कहना चाहो तो; मोक्ष कहो, निर्वाण कहो--जो मर्जी हो। लेकिन एक बात ख्याल में रहे कि अंततः मूलस्रोत में गिर जाने में ही परम शांति है।
जब तक हम अपने मूलस्रोत से न मिल जाएं, तब तक बेचैनी रहेगी। हम अपने घर
से दूर-दूर, भटके-भटके, अजनबी रास्तों पर, अजनबी लोगों के बीच... । जब हम वापस घर लौट आए, तो विश्राम।
भगवान वेणुवन में विहार करते थे। उनके अग्रणी शिष्य महाकाश्यप स्थविर का एक शिष्य ध्यान में अच्छी कुशलता पाकर भी एक स्त्री के सौंदर्य को देखकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो गया!
महाकाश्यप--बुद्ध के श्रेष्ठतम शिष्यों में एक; श्रेष्ठतम भी कहो, तो
भी चूक न होगी, तो भी अतिशयोक्ति न होगी। महाकाश्यप से ही झेन संप्रदाय का जन्म हुआ। और इस छोटे से दृश्य में भी तुम झेन संप्रदाय का रस पाओगे, स्वाद पाओगे, उसकी पहली झलक पाओगे।
मैंने तुम से बहुत बार झेन के जन्म की कथा कही हैः कि एक सुबह बुद्ध फूल लेकर आए--कमल का फूल--और बैठकर उस फूल को देखते रहे!
प्रवचन सुनने भिक्षु इकट्ठे हुए थे। लेकिन वे कुछ बोले नहीं। एकटक फूल को ही देखते रहे। सन्नाटा छा गया। लोग बड़े जिज्ञासु होकर बैठे थे सुनने को। और बुद्ध बोले नहीं--बोले नहीं--बोले नहीं। फिर बेचैनी होने लगी। लोग एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि मामला क्या है? ऐसा कभी नहीं हुआ था कि बुद्ध चुप रहे हों। बोलने आए थे, तो बोले थे कुछ। आज क्या हुआ है? लोगों की यह बेचैनी, और एक-दूसरे की तरफ देखना, और इशारे करना देखकर महाकाश्यप जोर से हंसने लगा। उसकी हंसी... । बुद्ध ने आंखें ऊपर उठायीं; महाकाश्यप को पास बुलाया; और फूल महाकाश्यप को भेंट दे दिया। और कहाः महाकाश्यप! तुझे मैं वह देता हूं, जो वाणी से नहीं दिया जा सकता। इन शेष सब को मैंने वह दिया, जो वाणी से दिया जा सकता है। तुझे वह देता हूं, जो अव्याख्य है, जो वाणी से परे है। यह फूल सम्हाल। यह प्रतीक है। यह तेरी संपदा।
यह झेन संप्रदाय का जन्म था--वाणी के परे, शास्त्र के परे। कोई नहीं जानता बुद्ध ने क्या दिया! बुद्ध ने बुद्धत्व दिया। जैसे एक दीए की ज्योति दूसरे बुझे दीए पर पहुंच जाए।
बुझा दीया कोई जले दीए के करीब ले आए। एक क्षण आता है, जब छलांग लग जाती है। दोनों दीए जल उठते हैं। जो जल रहा था दीया, उसका तो कुछ भी नहीं खोता; जो बुझा था, उसे सब कुछ मिल जाता है।
बुद्ध के पास से कुछ भी नहीं गया और महाकाश्यप को सब मिल गया! फिर इसी ढंग से झेन एक गुरु के द्वारा दूसरे गुरु को दिया गया है।
महाकाश्यप का एक शिष्य ध्यान में अच्छी कुशलता पाकर भी... ।
ध्यान रखनाः ध्यान में अच्छी कुशलता पाकर भी पतन हो जाता है। जब तक ध्यान समाधि न बन जाए, तब तक पतन की संभावना है। सच तो यह है कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, वैसे-वैसे पतन की संभावना बढ़ती है।
तुम कहोगेः यह तो बात उलटी हुई! यह बात उलटी नहीं है। जैसे-जैसे तुम पहाड़ की चोटी के करीब पहुंचने लगते हो, वैसे-वैसे गिरने का खतरा बढ़ता है।

रास्ते संकरे होने लगते हैं। ऊंचाई तुम्हारी बढ़ गयी होती है; खाई-खड्ड गहरे होने लगते हैं। क्योंकि जितने तुम ऊंचे होते हो, उतनी खाई गहरी होती है। जरा फिसले कि गिरे। और जरा फिसले, तो बुरी तरह गिरे। जितनी ऊंचाई से गिरोगे, उतनी भयंकर चोट होगी। कोई सीधे-सपाट रास्ते पर गिर जाता है, तो उठकर खड़ा हो जाता है। लेकिन कोई पहाड़ की ऊंचाई से गिरता है, तो शायद समाप्त ही हो जाए! उठकर खड़े होने की क्षमता ही न बचे! हड्डी-पसलियां टूट जाएं। या प्राणांत ही हो जाए।
तब तक खतरा रहता है, जब तक कि तुम पहाड़ के शिखर पर पहुंचकर बैठ नहीं गए। उस पहाड़ के शिखर पर बैठ जाने का नाम समाधि। समतल भूमि से शिखर तक पहुंचने के बीच का मार्ग ध्यान। और जैसे-जैसे ध्यान बढ़ता है, वैसे-वैसे खतरा बढ़ता है।
तो मत सोचना मन में ऐसा कि ध्यान में अच्छी कुशलता पाकर और पतित हो गया! तभी कोई पतित होता है।
तुम तो पतित हो ही नहीं सकते। तुम्हारे पतित होने का अर्थ क्या होगा? तुमने कभी भोगभ्रष्ट ऐसा शब्द सुना? योगभ्रष्ट शब्द सुना होगा। भोगभ्रष्ट तो कोई होता ही नहीं! भोग में तो जो है, वह भ्रष्ट है ही। वह तो खाई-खड्ड में जी ही रहा है। और गिरने का उपाय नहीं है।
तुमने नर्क से किसी को गिरते सुना? और कहां गिरोगे? और गिरने को जगह कहां है? स्थान कहां है? आखिरी जगह तो पहले ही पहुंच गए!
स्वर्ग से लोग गिरते हैं; नर्क से नहीं गिरते। जिन्हें गिरने से डर लगता हो, उन्हें नर्क जाना चाहिए। नर्क में बड़ी सुविधा है, बड़ी सुरक्षा है। वहां कोई गिरता ही नहीं! वहां से कभी कोई भ्रष्ट नहीं होता।
स्वर्ग में खतरा है। जैसे-जैसे ऊंचे बढ़े, खतरा बढ़ा। जितनी ऊंचाई आयी, उतना खतरा भी बढ़ा। खतरा भी बढ़ता है, साथ ही साथ शिखर भी करीब आ रहा है। दो बातें एक साथ होने लगती हैं। शिखर करीब आ रहा है; अगर मिल गया, तो सदा के लिए मुक्त हो जाओगे। समाधान हो जाएगा। फिर कहीं जाने को न बचा। जब जाने को न बचा, फिर भी नहीं गिर सकते। क्योंकि अब जाते ही नहीं; चलते ही नहीं; उठते ही नहीं। ठहर गए, थिर हो गए। समाधि यानी थिरता।
इसलिए कृष्ण ने समाधिस्थ को कहाः स्थितप्रज्ञ, जिसकी प्रज्ञा स्थिर
हो गयी, थिर हो गयी। अकंप हो गयी। जब अकंप हो गए, चलते ही नहीं, तो फिर गिरोगे नहीं। ध्यान में गति है; समाधि में गति का अंत है। पहुंच गए मंजिल पर। ध्यान यात्रा है; भटकने का उपाय है। और जैसे-जैसे ध्यान की ऊंचाई बढ़ती है, वैसे-वैसे भटकने की, गिरने की संभावना बढ़ती है। ज्यादा से ज्यादा सावधानी की जरूरत पड़ती है।
फिर एक कारण से और भी गिरने का खतरा बढ़ता है। अगर बाहर की ही बात होती
कि खाई-खड्ड बड़े हो गए, तो थोड़े सम्हलकर चलने से चल जाता। लेकिन भीतर भी एक खतरा है। क्योंकि तुम्हारी वासनाएं इसके पहले कि समाधि मिल जाए, तुम पर आखिरी हमला करेंगी। कोई भी जल्दी हार नहीं जाना चाहता!
जब तुम ध्यान के शुरू-शुरू कदम उठाते हो, तो वासना बहुत चिंता नहीं लेती। कोई खतरा नहीं है। लेकिन जब तुम शिखर के करीब पहुंचने लगते हो, तो वासना को साफ होने लगता है कि अब मेरी मौत करीब आयी। दो-चार कदम और कि मैं मरी! इस आदमी का पहुंचना और मेरा मरना एक ही है।
तृष्णा का मरना और तुम्हारा पहुंचना एक ही है। तृष्णा मरे, तो तुम पहुंचो। तुम पहुंचे, तो तृष्णा मरी। तो तृष्णा आखिरी जोर मारेगी।
इसलिए तुम कहानियां पढ़ते हो ऋषि-मुनियों की--कि नग्न अप्सराएं उनके आसपास नाचने लगीं। ये अप्सराएं कहां से आती हैं? स्वर्ग से नहीं आतीं। उर्वशियां स्वर्ग में नहीं बसतीं। उर्वशियां तुम्हारे उर में बसती हैं, इसलिए उनका नाम उर्वशी है। वे तुम्हारे हृदय में बसी हैं। वे तुम्हारी ही कामवासना से उठती हैं। वे तुम्हारी ही तृष्णा का आखिरी हमला हैं। तृष्णा आखिरी चेष्टा कर रही है। आखिरी जाल फेंक रही है। इसके पहले कि पराजय हो जाए, पूरा जोर मारती है।

तो यह जो महाकाश्यप का शिष्य है, ध्यान में अच्छी कुशलता पा लिया था, फिर एक स्त्री के सौंदर्य को देखकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो गया। त्याग कर दिया उसने भिक्षुवेष का। संन्यास त्याग दिया और गृहस्थ हो गया।
भूला ध्यान। भूला मार्ग। तृष्णा जीती, वह हारा। तृष्णा जीती, चेतना हारी।
बड़े घर का बेटा था। कुलीन घर का बेटा था। समृद्ध घर का बेटा था। तो कभी कुछ कमाया तो था नहीं। कमाना जानता नहीं था। फिर हो गया था भिक्षु, सो कमाने का प्रश्न ही न बचा था।
ध्यान रखनाः अगर राजा का बेटा साम्राज्य खो दे, तो सिवाय भिखारी होने
के और कोई उपाय नहीं रह जाता। या चोर हो जाए। दो ही उपाय बचते हैं। सम्राट के बेटे ने कभी कुछ किया तो था नहीं, जो कर सके। सम्राट ही हो सकता था। एक ही कला जानता था--सिंहासन पर बैठने की। अब सिंहासन गया। तो अब दो ही विकल्प बचते हैंः या तो भिखारी हो जाए, या चोर हो जाए। और जिसमें थोड़ा भी सम्मान है, वह भिखारी होने की बजाय चोर होना पसंद करेगा।
यह युवक जब घर आया, तो उसके परिवार ने इसे महापतन मानकर उसे घर से निकाल दिया।
वे दिन बड़े अदभुत थे। अब दुनिया बदली है। अब तो तुम संन्यस्त हो जाओ,
तो घर के लोग समझेंगेः महापतन हो गया! वे दिन और थे। संन्यस्त कोई होता था, तो घर के लोग सौभाग्य मानते थे। चलो! एक व्यक्ति तो संन्यस्त हुआ घर में! एक दीया तो जला! एक फूल तो खिला! लोग सम्मानित होते थे। और जब कभी कोई संन्यास से भ्रष्ट होता था, तो घर के लोगों की पीड़ा का अंत नहीं रह जाता था।
घर के लोगों ने इसे महापतन मानकर उसे घर से निकाल दिया।
यह अपमानजनक था परिवार के गौरव के लिए। यह परिवार के स्वाभिमान के लिए भयंकर चोट थी--कि उनका बेटा बुद्ध के पास जाकर, महाकाश्यप जैसे अदभुत व्यक्ति के शिष्यत्व को स्वीकार करके, और पतित हो जाए! यह उनकी चेतना-धारा पर बड़ा लांछन था। उन्होंने बेटे को निकाल बाहर कर दिया।
वह और कुछ तो जानता नहीं था, सो चोरी करके जीवन-यापन करने लगा।
ध्यान रहेः एक भूल हो, तो उसके पीछे हजार भूलें आती हैं। इस दुनिया में न तो गुण अकेले आते, न दुर्गुण अकेले आते। एक गुण जीवन में आए, तो उसके पीछे कतार बंधे हुए और गुण आ जाते हैं। और एक दुर्गुण जीवन में आए, तो उसके पीछे कतार बंधे हुए और दुर्गुण आ जाते हैं!
इसलिए बहुत सोच-सोचकर चुनाव करना। क्योंकि जब तुम एक का चुनाव करते हो, तब तुमने एक का चुनाव नहीं किया; उसके साथ अनजाने अनेक का चुनाव कर लिया, जिनका तुम्हें पता भी नहीं, जो कतार बांधे पंक्तिबद्ध पीछे खड़े हैं! जिस आदमी ने एक झूठ बोला, उसे हजार झूठ बोलने पड़ेंगे! एक झूठ बोलते वक्त ठीक से समझ लेना कि तुम हजारों झूठ बोलने का निर्णय ले रहे हो--सिर्फ एक झूठ बोलने का निर्णय नहीं।
अक्सर मन कहता है कि जरा सा झूठ है, बोल देने से क्या बनता है? एक दफा बोले, खतम हुई बात; फिर गंगा स्नान कर आएंगे, या मंदिर दान दे देंगे, या ब्राह्मणों को बुलाकर भोजन करवा देंगे, या यज्ञ-हवन करवा लेंगे! कुछ कर लेंगे इसका प्रतिकार, पश्चात्ताप। जरा सा झूठ है, इसके पीछे क्यों झंझट में पड़ना!
जब भी कोई बोलता है, जरा सा झूठ बोलता है। लेकिन जरा सा झूठ और बड़े झूठ
को लाता है। और बड़ा झूठ और बड़े झूठ को लाता है। सिलसिला शुरू हो जाता है! तुम एक झूठ बोलोः तुम पाओगे कि तुम्हें अनंत झूठ बोलने पड़ रहे हैं। क्योंकि एक झूठ की रक्षा के लिए उससे बड़ा झूठ बोलना पड़ता है, नहीं तो उसकी रक्षा कैसे होगी?
एक छोटा सा सत्य बोलो, और तुम पाओगेः उसके साथ गुणों कीशृंखला आती है।
एक सत्य दूसरे सत्य को बोलने में समर्थ बनाता है। सत्य बोलो; प्रामाणिकता, निष्ठा, ईमानदारी, आस्था चुपचाप तुममें पैदा होने लगती हैं। एक सत्य का आघात तुम्हारे भीतर न मालूम कितनी सुगंधियों को बिखेर जाता है! और ऐसा ही असत्य का आघात दुर्गंधों को बिखेर जाता है।

इस युवक ने सुंदर स्त्री को चुनते समय सोचा भी न होगा कि चोरी करनी पड़ेगी। कौन सोचता है? चोरी करते वक्त सोचा भी न होगा कि प्राणदंड मिलेगा। कौन सोचता है? ऐसे ही तो आदमी बेहोश चल रहा है; इसी का नाम बेहोशी है!
जब मैं तुम से कहता हूंः होश, तो मतलब समझ लेना। जो भी तुम करो, बहुत होश से सोचकर, विचारकर, ध्यानपूर्वक करना। क्योंकि प्रत्येक कदम किसी दिशा में तुम्हें अग्रसर कर रहा है। कहीं ऐसा न हो कि तुम जाल में उलझते चले जाओ। ऐसे ही बहुत उलझ गए हो। ऐसे ही जन्म-जन्म उलझ गए हैं। ऐसे ही सारा यात्रा-पथ कांटों से भर गया है! अब थोड़ा फूंक-फूंककर चलो।
अंततः चोरी करते वह रंगे हाथों पकड़ा गया।
और ध्यान रखनाः निन्यानबे दफा धोखा दे दो, सौवीं बार पकड़े ही जाओगे।
मन यह भी कहता है--कि अगर कुशलता से धोखा दिया, तो कौन पकड़ेगा? कैसे पकड़ेगा! लेकिन चाहे कितनी ही देर लगे, चोरी पकड़ ही जाएगी; देर-अबेर हो सकती है, अंधेर नहीं हो सकता है। जीवन का शाश्वत नियम है। और ऐसा ही पुण्य के संबंध में समझना। आज पुण्य का फल न मिले; कल पुण्य का फल न मिले; कितनी ही देर हो जाए, लेकिन फल मिलता है। आज नहीं कल; कल नहीं परसों; परसों नहीं और आगे। मगर एक न एक दिन तुमने जो बीज बोए हैं, उनकी फसल पकती है। और जो तुमने बोया है, वही तुम्हें काटना पड़ता है। जैसा बोया है, वैसा ही काटना पड़ता है। जहर बोया, तो जहर काटना पड़ता है। अमृत बोया, तो अमृत। नीम को पानी देते रहोगे, तो कड़वे फल हाथ लगेंगे। आम को पानी दोगे, तो मीठे फल हाथ लगेंगे।
यह सीधा सा गणित है। लेकिन इस गणित को भी हम समझ नहीं पाते, क्योंकि देर-अबेर लगती है। आज चोरी की और दस साल बाद पकड़े जाओगे। भूल ही चुकोगे तब तक, कि चोरी की थी। दोनों में संबंध जोड़ना मुश्किल हो जाएगा!
तुम्हें पता है, अफ्रीका में ऐसी आदिम जातियां हैं अभी भी, जिनको इस सदी के आने तक इस बात का पता नहीं था कि बच्चे संभोग से पैदा होते हैं! क्योंकि नौ महीने का वक्त निकल जाता है। उनके पास समय को नापने का कोई माध्यम नहीं। उनको पता ही नहीं था कि बच्चे संभोग से पैदा होते हैं। फिर हर संभोग से बच्चा पैदा होता भी नहीं। फिर बच्चा तो आज प्रवेश करेगा गर्भ में, पैदा तो नौ महीने बाद होगा। नौ महीने का हिसाब! नौ महीने बाद! तो बात ही भूल गयी।
वे आदिम जातियां ऐसा ही मानती रही हैं सदियों से कि परमात्मा की देन
है बच्चा; इसका संभोग से कुछ लेना-देना नहीं! जब पहली दफे उन्हें यह कहा गया, तो उन्हें भरोसा ही न आया। उन्हें बड़ी कठिनाई हुई।
ऐसी ही हमारी जीवन-दशा है। तुमने कभी कोई काम किया था; दस साल बीत गए। तुम भूल-भाल चुके। और बुरे काम हम जल्दी भूल जाते हैं। बुरे काम कौन याद रखना चाहता है! क्योंकि बुरे काम को याद रखने से भी कांटा चुभता है। मन को पीड़ा होती है। बुरे काम को तो हम पोंछ देना चाहते हैं; दूर अंधेरे में फेंक देते हैं। अचेतन की गर्त में डाल देते हैं।
तो हर आदमी ने अपने मन के नीचे गहरे में तलघरा बना रखा है, वहां हम फेंकते जाते हैं। जो भी हमें नहीं जंचता कि करना था, नहीं करना था; ठीक नहीं हुआ; हो गया किसी तरह; उसे हम उस तलघरे में डालते जाते हैं। उस तलघरे में सब तरह के सांप-बिच्छू, सब तरह के जहर इकट्ठे होते रहते हैं। एक न एक दिन वे निकलेंगे। एक न एक दिन उठेगा धुआं। एक न एक दिन तुम्हारे बैठकखाने में धुआं भरेगा; तब तुम बड़े हैरान होओगे कि यह कहां से आता है!
जब तुम्हें दुख झेलने पड़ते हैं, तब तुम सोचते भी नहीं कि तुमने कभी बीज बोए थे इनके। कर्म के सिद्धांत का बस, इतना ही अर्थ है कि जो तुमने पाया है आज, वह कभी किया था। और जो तुम आज कर रहे हो, वह कभी पाओगे।
चोरी करते वह युवक रंगे हाथ पकड़ा गया। राजा ने उसे प्राणदंड की आज्ञा दी। जिस समय जल्लाद उसे मारने को ले जा रहे थे, उस समय भिक्षाटन के लिए जाते हुए महाकाश्यप स्थविर ने देखा।
बुद्ध की ऐसी व्यवस्था थी; उनके हजारों संन्यासी थे। स्वभावतः, इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न था कि प्रत्येक नया युवक, नया संन्यासी, नया दीक्षित, किसी पुराने दीक्षित संन्यासी का शिष्य बन जाता था। बुद्ध दीक्षा देते थे, लेकिन उसे सौंप देते थे किसी को।

यह युवक महाकाश्यप को सौंपा गया था। बुद्ध ने जब इसे महाकाश्यप को सौंपा था, इसका अर्थ ही साफ है कि इसमें बड़ी संभावना दिखी होगी ध्यान की। महाकाश्यप सबसे बड़े ध्यानी शिष्य थे बुद्ध के। इसीलिए तो झेन संप्रदाय का जन्म उनसे हुआ।
झेन ध्यान शब्द का ही रूपांतरण है। ध्यान है संस्कृत। पाली में ध्यान
हो जाता है झान। जब झान चीन पहुंचा, तो हो गया चान। और जब चीन से जापान पहुंचा, तो हो गया झेन। मगर ध्यान का ही रूपांतरण है।
सबसे बड़े ध्यानी शिष्य थे महाकाश्यप। अलग-अलग शिष्य थे, अलग-अलग गुणवत्ताएं थीं। महाकाश्यप की गुणवत्ता एक थी कि उनका ध्यान अदभुत था; उनका ध्यान निर्मलतम था; उनका ध्यान शुद्धतम था। वे पारस पत्थर थे। जो उनके पास आ जाता, सोना हो जाता; ध्यानी हो जाता।
जब बुद्ध ने इस युवक को महाकाश्यप को सौंपा था कि सम्हालो इसे, इसी में सूचना है कि इस युवक की बड़ी संभावनाएं थीं। यह समाधिस्थ हो सकता था, तभी बुद्ध ने सौंपा था। और शायद तीव्रता से बढ़ा होगा ध्यान में; गति से गया होगा।
जो गति से जाता है, उसके गिरने की संभावना भी ज्यादा होती है। जो धीरे- धीरे जाता है, वह सम्हल-सम्हलकर जाता है। एक-एक कदम, धीरे-धीरे, मजबूत करके जाता है। जो धीरे-धीरे जाता है, उसके गिरने की संभावना कम होती है। देर से पहुंचता है। जो जल्दी जाता है, वह जल्दी पहुंच सकता है, लेकिन बहुत खतरा यह है कि वह जल्दी ही गिर भी जाए।
जिस समय जल्लाद उसे मारने ले जा रहे थे, महाकाश्यप भिक्षा मांगने निकले थे। महाकाश्यप ने देखाः जल्लाद उसे जंजीरों में बांधे वधस्थल की तरफ ले जा रहे हैं। वह तो उन्हें भूल ही चुका था।
वह भूलता नहीं, तो चूकता ही क्यों? जिसको एक साधारण सी स्त्री में ज्यादा सौंदर्य दिखायी पड़ा महाकाश्यप की बजाय, वह उसी क्षण भूल गया। वह उसी क्षण चूक गया। कहां महाकाश्यप का सौंदर्य! सदियों से लोग, जिन्होंने ध्यान साधा है, महाकाश्यप की याद करते हैं। आज तो बीते ढाई हजार साल हो गए। लेकिन अब भी चीन में, जापान में, थाईलैंड में, बर्मा में--जहां-जहां बौद्धों की अभी भी परंपरा जीवित है--लोग पूछते हैं महाकाश्यप के संबंध में। अब भी विचार करते हैं, अब भी पूछते हैंः महाकाश्यप को बुद्ध ने क्या दिया था?
ढाई हजार साल में भी यह प्रश्न अभी जीवंत है कि महाकाश्यप को जो फूल दिया था, उसमें क्या दिया था? महाकाश्यप को क्या दिया था बिना शब्दों के? जो किसी को नहीं दिया, वह महाकाश्यप को दिया था; तो उसका अर्थ हुआः असली चीज महाकाश्यप को मिली। औरों के हाथ शब्द लगे, सिद्धांत लगे, ज्ञान लगा। महाकाश्यप के हाथ ध्यान लगा। और ध्यान तो आखिरी संपदा है। क्या दिया था महाकाश्यप को?
महाकाश्यप उज्ज्वलतम शिष्य हैं बुद्ध के। महाकाश्यप दूसरे बुद्ध हैं बुद्ध की परंपरा में। और इस युवक को महाकाश्यप में सौंदर्य न दिखायी पड़ा! और एक स्त्री में सौंदर्य दिखायी पड़ा!
मूल कथा में जो बात कही है, वह मैंने छोड़ दी है।
कल किसी ने पूछा था कि आप मूल कथा में से कभी-कभी कुछ छोड़ देते हैं, कभी कुछ जोड़ देते हैं।
कारण से ऐसा करता हूं। मूल कथा में तो कहा हैः किसी स्त्री के गुह्य स्थान को देखकर... । मैंने उसे छोड़ दिया। वह अभद्र मालूम होता है।
जो किसी स्त्री के गुह्य स्थान को देखकर महाकाश्यप को छोड़ दिया, वह भूल ही गया महाकाश्यप को। जैसे कोई मल-मूत्र के कीड़े को सोने के सिंहासन पर बिठा दे, और फिर मल-मूत्र को देखकर वह सोने के सिंहासन से सरक जाए, वापस गिर जाए अपनी नाली में, अपने कीचड़ में--ऐसा कुछ हुआ।
वह भूल ही चुका था। शिष्य भूल सकता है, लेकिन गुरु नहीं भूल सकता।
जन्मों-जन्मों के बाद भी गुरु पहचान लेगा।

जीसस ने कहा हैः जन्मों-जन्मों के बाद भी मैं तुम्हें पहचान लूंगा।
उस आखिरी दिन भी मैं तुम्हें पहचान लूंगा, जिस दिन परमात्मा के सामने निर्णय होगा। जो मेरे हैं, उन्हें मैं पहचान लूंगा।
ठीक कहा है। शिष्य भूल सकता है। शिष्य की स्मृति कितनी! गुरु कैसे भूल सकता है? गुरु की स्मृति पूर्ण हो गयी है। शिष्य पर तो जो खिंचता है, वह पानी पर खींची लकीर जैसा है। अभी बना, अभी गया! बना भी नहीं और गया। एक कान से गया, दूसरे कान से निकल गया। गुरु तो जैसे हीरे पर खींची गयी लकीर है। वह तो उन्हें भूल ही चुका था। महाकाश्यप को आते देखकर उसे कुछ दिखायी
ही न पड़ा। वह तो अपनी जंजीरों में बंधा, अपनी भवतृष्णा से परेशान; सोचता जा रहा होगा कि अब फांसी लगने वाली है। कैसे बचूं? क्या करूं? कैसे भाग जाऊं? रिश्वत खिलाऊं? या कि मरना ही पड़ेगा? वह तो हजार चिंताओं में घिरा होगा। उसके आस-पास तो बहुत बादल रहे होंगे। उसका सूरज तो बिल्कुल ढंका रहा होगा। उसे कहां फिक्र कि कौन रास्ते पर गुजर रहा है!
तुम भी समझोः तुम्हें फांसी लग रही हो, तो तुम रास्ते पर देख पाओगे कि कौन गुजरा, किसने जयरामजी की? कुछ नहीं दिखायी पड़ेगा। कोई तुम्हें कह दे कि तुम्हारे घर में आग लगी है, फिर तुम भागोगे दुकान से। फिर रास्ते में कौन मिला, कौन नहीं मिला--तुम फिर फिकर न करोगे। याद भी न आएगी। दूसरे दिन अगर कोई पूछे कि कल कहां भागे जाते थे? मैंने जयरामजी की, तो आपने उत्तर भी न दिया! तुम कहोगेः छोड़ो भी भाई! घर में आग लगी थी। जयरामजी का उत्तर देने के लिए वहां था कौन! मेरे प्राण तो घर में पहुंच चुके थे, देह ही थी। मुझे कुछ दिखायी नहीं पड़ा।
यह तो भिक्षु--पतित भिक्षु--फांसी के लिए ले जाया जा रहा है। लेकिन महाकाश्यप ने उसे पहचान लिया। महाकाश्यप उसके पास गए।
शिष्य कितना ही भटके और कितना ही दूर चला जाए, गुरु की करुणा में कोई अंतर नहीं पड़ता। पड़ जाए अंतर, तो वह गुरु गुरु नहीं। फिर वह साधारणजन है। वह नाता फिर साधारण था। उसमें कुछ बड़ी महत्ता की बात न थी। अगर गुरु की करुणा अपार न हो, उसकी क्षमा अपार न हो, तो वह गुरु नहीं। यही तो उसकी गुरुता है।
अगर कोई और होता, कोई अहंकारी जीव होता, कोई तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरुओं और तुम्हारे तथाकथित महात्माओं जैसा महात्मा होता, तो मुंह फेरकर निकल जाता--कि लगने दो फांसी। अच्छा हुआ! यही होना ही चाहिए। और शायद जल्लादों से कहता कि फांसी देने के पहले कुछ कोड़े भी लगा देना मेरी तरफ से। यह इस योग्य है। यह नरक में सड़ेगा। और अपने दूसरे शिष्यों से कहा होता कि देखो, क्या गति होती है मुझे छोड़ने पर! यह गति होती है। सावधान! कभी मुझे छोड़कर कहीं जाना मत। औरों को डरवाता। शायद जाकर उस मरणासन्न युवक के घाव पर थोड़ा नमक छिड़कता--कि देख! अब भोग। चेताया था; नहीं चेता। जो कहा था, नहीं सुना। अब परिणाम भोग। और एक तरह की प्रसन्नता अनुभव करता। आह्लादित होता कि पहले ही कहा था, जो मेरी नहीं सुनेगा, उसको यह फल मिलने ही वाला है। नहीं; लेकिन महाकाश्यप ने उसके पास जाकर अत्यंत करुणा से उसे कहाः पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो।
गुरु वही, जिसकी क्षमा अपार हो। अपार अर्थात जिस पर कोई सीमा और शर्तबंदी न हो। क्षमा जिसका स्वभाव हो। क्षमा उससे ऐसे ही बहती है, जैसे फूल से गंध बहती है; दीए से रोशनी बहती है। क्षमा उससे ऐसे ही बहती है, जैसे पहाड़ों से जल उतरता है। जैसे मेघों से वर्षा होती है। क्षमा उसे करना नहीं पड़ता; क्षमा उसका स्वभाव है। सहज है, बेशर्त होती है।
सोचा नहीं महाकाश्यप ने कि इसको क्षमा करना ठीक? इस जघन्य अपराधी को,
इस भ्रष्ट संन्यासी को? नहीं; यह क्षमा का पात्र नहीं।
जो गुरु पात्र-अपात्र का भेद करे, वह गुरु नहीं। गुरु के लिए तो सभी पात्र हैं। और चूकना स्वाभाविक है, मनुष्य के लिए क्षम्य है। इसलिए चूकने पर कोई इतना नाराज होने की बात नहीं है।
ध्यान रखना फर्क। गुरु ने यह याद नहीं दिलाया कि तूने क्या-क्या पाप किए, जिसका फल भोग रहा है! गुरु ने याद दिलायाः पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो। गुरु सदा विधायक की याद दिलाता है, निषेधात्मक की नहीं।

जो तुम्हें निषेधात्मक की याद दिलाएं, उनसे सावधान रहना। वे गुरु नहीं हैं। वे हत्यारे हैं। वे तुम्हारी हत्या कर रहे हैं। और वही किया जा रहा है। तुम्हारे तथाकथित गुरु तुम्हें याद दिलाते हैं तुम्हारे पापों की, तुम्हारे भ्रष्टाचरण की, तुम्हारे जघन्य अपराधों की। तुम नर्क में सड़ोगे--इसकी याद दिलाते हैं। तुम्हें भयभीत करते हैं। तुम्हें डराते हैं। तुम्हारे तथाकथित मंदिर और मस्जिद तुम्हारे डर से जीते हैं। तुम्हारा भगवान, तुम्हारे भय का ही सघन रूप है और कुछ भी नहीं। तुम्हें डरा दिया गया है। तुम कंपते हुए, घुटने टेके हुए भगवान की प्रार्थना करते हो!
जरा भीतर झांककर देखनाः प्रार्थना में भय के अतिरिक्त कुछ और है? अगर
भय के अतिरिक्त कुछ और नहीं, तो यह प्रार्थना कैसी! क्योंकि प्रार्थना में भय तो हो ही नहीं सकता। प्रार्थना में तो सिर्फ प्रेम होता है। और जहां प्रेम है, वहां भय नहीं। और जहां भय है, वहां प्रेम नहीं।
महाकाश्यप ने उसके पापों का स्मरण नहीं दिलाया। न तो कहाः देख, एक साधारण सी स्त्री को देखकर दीवाना हो गया! और शरीर में रखा क्या है पागल? मल-मूत्र की गठरी है। ऐसा कुछ भी नहीं कहा। यह भी नहीं कहा कि तूने चोरी की! थोड़ा तो सोच! किस कुलीन घर से आता है? संन्यासी रह चुका है! ठीकरों के लिए चोरी करने गया!
नहीं, यह बात ही याद नहीं दिलायी। यह बात याद दिलाने की है ही नहीं। क्योंकि जो बात याद दिलायी जाती है, वह मजबूत हो जाती है। क्योंकि उस पर ध्यान जाता है। ध्यान पोषण है। ध्यान जल सींचना है।
सदगुरु याद दिलाता है तुम्हारे भीतर पड़े हुए शुभ की, तुम्हारे भीतर पड़े हुए परमात्मा को आह्वान करता है। तुम्हारे पाप को विचार में भी नहीं लाता। वह विचारने योग्य नहीं, उपेक्षा के योग्य है। उस पर ध्यान भी देने की जरूरत नहीं है। क्योंकि अगर उस पर ज्यादा ध्यान दोगे, तो ऐसा ही होगा, जैसे कोई अपने घाव को बार-बार उघाड़-उघाड़कर, पट्टी खोल-खोलकर देखे। घाव भरेगा नहीं। जैसे कोई घाव को कुरेद-कुरेदकर देखे कि अभी भरा कि नहीं भरा? तो कैसे भरेगा? घाव को भूल जाना जरूरी है, तो ही भरता है।
गुरु ने कहाः पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो। गुरु ने कहाः देख, कैसी ऊंचाई पर उड़ा जाता था; कैसे पंख तुझे लग गए थे! मंजिल बड़े करीब थी। शिखर आया ही आया था। स्वर्ण शिखर परमात्मा के मंदिर के चमकते हुए दिखायी पड़ने लगे थे। याद कर! उस घड़ी की याद कर!
पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो। ध्यान नौका है। ध्यान एकमात्र नौका हैः मृत्यु से अमृत की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, असत से सत की ओर।
जैसे उपनिषद कहते हैंः असतो मा सदगमय--मुझे असत से सत की ओर ले चलो। मृत्योर्मा अमृतंगमय--मुझे मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। तमसो मा ज्योतिर्गमय--मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो।
हिंदू प्रार्थना करते हैं परमात्मा से। बुद्ध के जगत में कोई परमात्मा नहीं है। बुद्ध कहते हैंः ध्यान नौका है। प्रार्थना से क्या होगा? बैठो इस नाव में, और चलो असत से सत की ओर। आओ इस नाव में, करो यह निमंत्रण स्वीकार, और चलो अंधकार से प्रकाश की ओर। चलो ले चलते हैं तुम्हें। बुद्ध कहते हैंः बनाओ मुझे मांझी अपना। ले चलते हैं तुम्हें उस पार, जहां कोई मृत्यु नहीं।
ऐसी याद दिलायी महाकाश्यप नेः स्मरण करो--स्मरण करो--पूर्व के उत्पादित ध्यानों का स्मरण करो। इतने जोर से कि एक क्षण को भूल ही गया होगा कि कैदी के हाथ में जंजीरें हैं। एक क्षण को भूल ही गया होगा कि मृत्यु प्रतीक्षा कर रही है। एक क्षण को भूल ही गया होगा कि मेरे चारों तरफ सिपाही खड़े हैं। यह महाकाश्यप की उज्ज्वल, भव्य उपस्थिति, यह महाकाश्यप का दिव्यरूप, यह महाकरुणा! बरस गयी होगी उस पर! नहा गया होगा इसमें।
एक क्षण को भूल ही गए बीच के जो वर्ष आए--स्त्री के साथ भाग जाना, संन्यास छोड़ देना, चोरी करना, पाप करना, पकड़े जाना--जैसे कोई दुख-स्वप्न समाप्त हो गया। आंख खुल गयी। एक क्षण को यह दस-पंद्रह वर्षों का जो समय रहा

होगा, पुछ गया, अलग हो गया। फिर लौट गया उस घड़ी में जहां से गिरा था। फिर उस घड़ी में थिर हो गया।
और ध्यान रखना, आदमी के संबंध में यह समझ लेना बहुत-बहुत जरूरी है। आदमी ऐसा ही है, जैसा तुम्हारा रेडियो। सब स्टेशन उपलब्ध हैं। सिर्फ जो स्टेशन तुम्हें पकड़ना हो, उस पर कांटे को ले जाना जरूरी है। पाप का स्टेशन भी उपलब्ध है। तुम उसमें संलग्न हो जाओ, तो पापी हो जाते हो। पुण्य का स्टेशन भी उपलब्ध है; एक क्षण में कांटा हट जाए और पुण्य पर लग जाए, तो तुम पुण्य को उपलब्ध हो जाते हो।
मनुष्य में सारी संभावनाएं हर समय मौजूद हैं। जिस संभावना की तरफ तुम्हारी चेतना बह उठे, वही वास्तविक हो जाती है। इसे खूब गहरे पकड़ लो। पापी से पापी व्यक्ति एक क्षण में पुण्यात्मा हो सकता है।
कुछ ऐसा नहीं कि तुमने दिल्ली लगा दिया रेडियो पर, तो अब गोवा नहीं लग सकता। कुछ ऐसा नहीं कि गोवा लग गया, तो अब काबुल नहीं लग सकता। सारी दुनिया की ध्वनि तरंगें तुम्हारे रेडियो के पास से गुजर रही हैं; तुम जिसे पकड़ लोगे, तुम्हारा रेडियो उसी को प्रतिध्वनित करने लगेगा। ऐसा ही मनुष्य है। ध्यान क्या है? ध्यान है परम सत्य की तरफ तुम्हारी तरंगों को जोड़ देना। होश क्या है? वह जो है--वस्तुतः जो है--उसके साथ अपना संबंध जोड़ लेना। बेहोशी क्या है? जो नहीं है, उसमें खो जाना। मूर्च्छा क्या है? नींद में पड़ जाना, यंत्रवत हो जाना।
न तो कोई पापी है, न कोई पुण्यात्मा है। अगर तुम पापी बने हो, यह तुम्हारा चुनाव है। अगर तुम पुण्यात्मा हो, यह तुम्हारा चुनाव है। न कोई संसारी है, न कोई संन्यासी। तुम्हारे भीतर दोनों मौजूद हैं। तुम जिससे जुड़ जाओ, वही हो जाते हो। तुम जैसा संकल्प कर लो, वही हो जाते हो। तुम संसारी हो जाते हो। तुम संन्यासी हो जाते हो।
और तुम कभी विचार करके देखना; कभी खोजबीन करना। दुकान पर बैठे-बैठे कभी तुम संन्यासी हो जाते हो। एक क्षण को सब असार दिखने लगता है। एक क्षण को कुछ सार नहीं दिखता--इस धंधे में, इस गोरखधंधे में, इन ग्राहकों में; इस रुपए इकट्ठे करने में; इस तिजोड़ी के भरने में--एक क्षण कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। और कभी-कभी ऐसा हो जाता हैः मंदिर में बैठे थे प्रार्थना करने और दुकानदार हो जाते हो! प्रार्थना तो भूल जाती है, किसी ग्राहक से झंझट करने लगते हो। सोचने लगते हो, मोल-तोल करने लगते हो।
मैंने सुना हैः एक स्त्री मंदिर जाती थी रोज और मंदिर के पुजारी को कहती थी, कभी मेरे पति को भी समझाओ; वे बड़े अधार्मिक हैं!
अक्सर ऐसा हो जाता है। अगर तुम थोड़ी पूजा-पाठ कर लेते हो, तो तुम समझते
हो सारी दुनिया अधार्मिक है, क्योंकि तुम धार्मिक हो गए! तुम अगर कभी प्रवचन सुन आते हो किसी का, तो तुम बड़ी अकड़ से लौटते हो सारी दुनिया की तरफ देखते हुए--कि बेचारे! अब गए नरक ये सब। इधर मुझे देखो!
तो वह स्त्री सोचती थी--क्योंकि नियम से मंदिर जाती; फूल चढ़ाती; आरती उतारती--तो सोचती थीः पति भ्रष्ट है। पति किसी काम का नहीं है। अज्ञानी है! समझा-बुझाकर एक दिन पुरोहित को ले आयी अपने घर।
पति बगीचे में टहल रहा था। सुबह पांच बजा होगा। पत्नी अपने पूजागृह में घंटी बजाकर पूजा कर रही थी। पुरोहित ने पूछाः आपकी पत्नी ने मुझे निमंत्रण दिया है। वह कहां है? पति ने कहाः अब आप न पूछें तो अच्छा। इस समय वह सब्जी वाली से लड़-झगड़ रही है।
सब्जी वाली से! पांच बजे सुबह! कौन सब्जी वाली पांच बजे सुबह मिल गयी! यहां कोई दिखायी तो पड़ता नहीं, पुजारी ने कहा। तो उसने कहाः यहां नहीं, बाजार में। बहुत झंझट हो रही है। एक-दूसरे की गरदन पकड़ने को जूझी जा रही हैं!
यह पत्नी अपने पूजागृह में बैठी सुन रही है। वह तो क्रोध से बाहर निकल आयी। उसने कहा कि हद्द हो गयी झूठ की! मैं यहां पूजा कर रही हूं। तुम्हें पता है। और तुम पुजारी से इस तरह की झूठी बातें बोल रहे हो!

उसके पति ने कहाः अब तू सच कह। घंटी तो तू बजा रही थी, वह मुझे भी सुनायी पड़ रही थी, पुजारी को भी सुनायी पड़ रही थी। लेकिन सच तू बता। मैंने जो कहा, वह झूठ है?
पत्नी एक क्षण चौंकी। झूठ तो नहीं था। हाथ में तो घंटी बज रही थी, लेकिन भीतर-भीतर वह चली गयी थी बाजार। आज मेहमान घर आने वाले थे और वह उसी विचार में लगी थीः क्या सब्जी खरीद लाना! क्या नहीं खरीद लाना! कैसे स्वागत करना मेहमानों का! बेटी को देखने आते थे, इसलिए स्वागत की पूरी तैयारी करनी जरूरी थी। और वहां बाजार में, इसी मन के हिसाब में, पहुंच गयी थी दुकान पर सब्जी खरीदने और एक सब्जी वाली बड़े ज्यादा दाम बता रही थी। बात बिगड़ गयी थी। हालत ऐसी आ गयी थी कि एक-दूसरे की गरदन पर झपटने ही वाली थीं! तभी इस पति ने कहा था।
तुम्हारा मन मंदिर में बैठकर भी संसारी हो सकता है। संसार में होकर
भी संन्यासी हो सकता है। तुम पर सब निर्भर है। तुम किस लोक के लिए अपने को खुला छोड़ते हो... ।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि छोड़कर भागो कहीं। भागकर कहां जाना है? सिर्फ चित्त का नया सरगम बिठाओ; सिर्फ चित्त का नया संगीत बनाओ। सिर्फ चित्त को परमात्मा की तरफ मोड़ने की कला सीखो। सिर्फ उस तरफ बहो। रहो कहीं भी, बहो उस तरफ। जीओ कहीं भी, याद उसकी रहे। उठो-बैठो कहीं भी, श्वास उसके साथ जुड़ी रहे; फिर सब हो जाएगा।
स्थविर की यह करुणासिक्त वाणी, यह शून्यसिक्त संदेश, उस युवक की श्वास-श्वास में समा गया।
समा ही जाएगा। ऐसी क्षमा कौन न पी जाएगा! शायद डरा होगा देखकर स्थविर
को पहले तो--कि अब शायद कुछ और दुर्वचन सुनने पड़ेंगे! अब मरते वक्त ये और दुख देने आ गए! अब शायद निंदा होगी। लेकिन निंदा नहीं हुई। याद दिलायी गयी ध्यानों की। कोई निषेधात्मक बात नहीं कही गयी; विधेय की तरफ पुकारा गया। फिर सामने खड़े इस बुद्धपुरुष को देखकर, इस शांति, इस करुणा को देखकर,
इस शून्य से उठता हुआ जो प्रसाद है, उसको अनुभव करके वह संवेग को उत्पन्न हो गया।
संवेग का अर्थ होता हैः वह वहां नहीं रहा सिपाहियों के बीच घिरा हुआ, संवेग को उपलब्ध हो गया, मतलब वह वहां पहुंच गया, जहां पंद्रह-बीस साल पहले भिक्षु था; महास्थविर का शिष्य था; महाकाश्यप के चरणों में बैठता था। बीच के दिन मिट गए; जैसे पुछ गए; जैसे हुए ही नहीं; जैसे किसी कहानी में पढ़े थे; किसी और की जिंदगी का हिस्सा थे; अपनी जिंदगी का हिस्सा ही न थे।
वह संवेग को उत्पन्न हुआ; रोमांचित हुआ। कहां अभी चिंताओं से भरा था, कहां अब उमंग से भर गया!
वही ऊर्जा जो चिंता बन रही थी, उमंग बन गयी। रोआं-रोआं रोमांचित हो गया। ध्यान का शब्द फिर जगा गया। उसके प्राणों में ध्यान की स्मृति फिर ताजी और हरी हो गयी। वह तत्क्षण ऐसे ध्यान को उपलब्ध हो गया, जैसे कोई स्वप्न से जागे। एक दुखस्वप्न देखा था--किसी स्त्री के मोह में पड़ने का, फिर चोरी करने का, फिर पकड़े जाने का--एक दुखस्वप्न देखा था। आंख खुल गयी। सुबह हो गयी।
जल्लाद उसे वधस्थल पर ले जाकर मारना चाहे, तो मार न सके।
फिर तुम्हें याद दिला दूं। मूल कथा कहती है कि उन्होंने मारा, तलवारें उठायीं। लेकिन तलवार व्यर्थ हो गयी। शस्त्र उसे काट न सके। उसे मैंने बदल दिया है। क्योंकि वह बात अवैज्ञानिक मालूम होती है। नहीं तो जीसस को सूली कैसे लगती? नहीं तो सुकरात को जहर कैसे काम करता? खुद बुद्ध विषाक्त भोजन से मरे। महावीर पेचिश की बीमारी से मरे। रामकृष्ण कैंसर से मरे। रमण भी कैंसर से मरे। मंसूर की गरदन कैसे काटी जा सकती थी?
नहीं; वह बात योग्य नहीं है। इसलिए मैंने उसे बदला है। मैं फिर भी कहता हूंः जल्लाद उसे वधस्थल पर ले जाकर मारना चाहे, तो मार न सके। वह ऐसा ज्योतिर्मय हो उठा था--इसलिए। इसलिए नहीं कि उन्होंने तलवारें चलायीं और तलवारें काम नहीं कीं। तलवारें किसको देखती हैं! तलवारें अंधी हैं। तलवारें जड़ हैं। तलवारें कैसी रुक सकती हैं! तलवारें कब रुकीं! किसके लिए

रुकीं! तलवारों पर इतना भरोसा मत करो। मैं चेतना पर भरोसा करता हूं, इसलिए इतना फर्क किया।
मैं कहता हूंः जल्लाद नहीं मार सके। तलवारें! तलवारें तो काट डालतीं। जल्लाद नहीं मार सके। जल्लाद चैतन्य हैं। जल्लादों के भीतर भी तो परमात्मा उतना ही छिपा है, जितना किसी और के भीतर। और अगर चोर एक क्षण में रूपांतरित हो सकता है, तो जल्लाद क्यों नहीं रूपांतरित हो सकते?
इस चोर की क्रांति उन्होंने अपनी आंखों से देखी। इन्होंने यह घटना अपनी आंख से देखी। एक क्षण पहले यही आदमी चिंताओं से भरा हुआ, आंसुओं से दबा हुआ, डरता, कंपता हुआ चल रहा था। और फिर महाकाश्यप का मिलन और इस आदमी का रूपांतरण देखा, मेटामारफोसिस देखी। देखाः यह कुछ का कुछ हो गया। यह और का और हो गया। उसके बाद जैसे इसके हाथ पर जंजीरें नहीं थीं। उसके बाद जैसे कोई मौत नहीं थी। यह मस्ती से चलने लगा। इसमें एक सुगंध फूटने लगी। यह जल्लादों ने देखा अपनी आंख से--कि कुछ हो गया। उन्होंने भी गौर से देखा होगाः क्या हुआ? उनकी भी आंखें टिक गयी होंगी इसकी ज्योति पर।
तुमने देखाः जब तुम चिंता से भरे होते हो, तो तुम्हारे पास एक कालिमा होती है; तुम्हारे चेहरे के पास एक काला मंडल होता है। और जब तुम आनंद से भरे होते हो, तो तुम्हारे पास एक रोशन प्रभामंडल होता है, एक रोशनी होती है।
और यह तो बड़ी क्रांति थी। यह अपने पुराने ध्यान को अचानक उपलब्ध हो गया। ये बीच के दिन आए कि नहीं, ऐसे समाप्त हो गए। यह फिर उसी ऊंचाई पर उड़ने लगा। जल्लादों ने अपनी आंख से देखा थाः इसके पंख लग गए, अचानक पंख लग गए! इसकी ज्योतिर्मय दशा को देखकर वे इसे न मार सके।
मैं तलवारों पर भरोसा नहीं करता। मेरा भरोसा आदमी पर है। इसलिए इतना फर्क करता हूं कहानी में। वह बात मुझे नहीं जमती कि उन्होंने मारा और तलवारें काम नहीं आयीं।
हालांकि कृष्ण कहते हैंः नैनं छिंदंति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। मुझे शस्त्र नहीं छेद सकते, मुझे आग नहीं जला सकती। मगर वे किस मुझ की बात कर रहे हैं? वे शरीर की बात नहीं कर रहे हैं; वे आत्मा की बात कर रहे हैं। नहीं तो कृष्ण खुद भी तो शस्त्र के छिद जाने से मरे। लेटे थे विश्राम करने एक वृक्ष के नीचे और किसी ने धोखे से, भूल से तीर चला दिया। उनके पैर में लगा। उससे मरे।
नैनं छिंदंति शस्त्राणि? कृष्ण खुद तो मरे तीर के छिद जाने से! तो ये कृष्ण किसी और की बात कर रहे हैं। ये अंतरतम की बात कर रहे हैं। वहां शस्त्र नहीं छिदते। और कृष्ण को भी जलाया गया होगा। जब मर गए होंगे तो चिता पर रखा गया होगा। देह तो जलती है। देह तो कटती है। देह तो मरणधर्मा है। देह के भीतर छिपा हुआ अमृत है।
तो मैं यह नहीं मान सकता कि इस कैदी की स्थिति बुद्ध और कृष्ण और क्राइस्ट से ऊपर हो गयी थी। यह मैं नहीं मान सकता। जल्लादों ने मारा ही नहीं--यह मैं मान सकता हूं। जल्लाद ठिठक गए; उनके हाथ से तलवारें गिर गयीं--यह मैं मान सकता हूं। वे मारने के योग्य हिम्मत न जुटा पाए--यह मैं मान सकता हूं। इसलिए इतना फर्क किया।
तुमने कल पूछा था कि आप फर्क क्यों कर देते हैं कभी?
फर्क इसलिए कर देता हूं कि ये कहानियां ढाई हजार साल पहले लिखी गयी थीं। ढाई हजार साल बीत गए; इन ढाई हजार सालों में आदमी के चित्त ने बड़ी क्रांतियां देखीं, बड़े रूपांतरण देखे। आदमी प्रौढ़ हुआ है।
बच्चों की कहानी में एक बात लिखी जा सकती है। जवानों की कहानी में वही बात नहीं लिखी जा सकती। बच्चों की कहानियां बच्चों की कहानियां हैं। ये जब लिखी गयी थीं, तब आदमी की चित्त-दशा इतनी प्रौढ़ नहीं थी।
जल्लाद उसे वधस्थल पर ले जाकर मारना चाहे, तो मार न सके, वह ऐसा ज्योतिर्मय हो उठा। और उसे तो अब कोई भय था ही नहीं। ध्यान में भय कहां! ध्यान में मृत्यु कहां! उसकी वह अपूर्व दशा, वह आनंद दशा--जल्लाद भी उसके चरणों में झुक गए! यह खबर राजा तक पहुंची। राजा स्वयं अपनी आंखों से देखने

आया। ऐसा अलौकिक सौंदर्य देख, आश्चर्यचकित हो, उसने बंदी को छोड़ देने की आज्ञा दे दी।
ध्यान में सौंदर्य है। समाधि में परम सौंदर्य है। ध्यान के अतिरिक्त
और कोई सौंदर्य नहीं है। सौंदर्य चाहते हो, तो ध्यान को चाहो। प्रसाधन के साधनों से कोई सुंदर नहीं हो जाएगा। और यह देह तो अभी सुंदर, अभी कुरूप हो जाती है। यह देह अभी जवान है, अभी बूढ़ी हो जाएगी। इस देह पर भरोसा मत करो। भीतर के सौंदर्य पर भरोसा करो, क्योंकि वही सदा साथ रहने वाला है।
लेकिन राजा भी चकित था। कैसे यह हुआ! तो वह बुद्ध के चरणों में कैदी को लेकर उपस्थित हुआ। पूछा उसनेः यह रूपांतरण कैसे हुआ? मैं जानना चाहता हूं। यह क्रांति कैसे घटी? बुद्ध ने कहाः ध्यान के जादू से।
और तो कोई जादू जगत में है ही नहीं। ध्यान का ही एकमात्र जादू है।
जादू! क्यों जादू कहें इसे? क्योंकि यही तुम्हें मृत्यु से अमृत में
ले जाता है। और बड़ा जादू क्या होगा? मृण्मय को चिन्मय बना देता है! और बड़ा जादू क्या होगा? क्षणभंगुर को शाश्वत बना देता है! और बड़ा जादू क्या होगा? नर्क को महाआनंद में रूपांतरित कर देता है! और बड़ा जादू क्या होगा?
बुद्ध ने कहाः ध्यान के जादू से। और तब उन्होंने बंदी की ओर उन्मुख होकर ये गाथाएं कहीं।

तसिणाय पुरक्खता पजा परिसप्पन्ति ससो"व बाधितो।
सांंजनसंगसत्ता दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय।।

"तृष्णा के पीछे पड़े प्राणी बंधे खरगोश की भांति चक्कर काटते हैं।
संयोजनों में फंसे लोग पुनः-पुनः चिरकाल तक दुख पाते हैं।"

यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेव पस्सथ मुत्तो बंधनमेव धावति।।

"जो सांसारिक बंधनों से छूटकर एकांत में वास करता है और फिर एकांत को छोड़कर संसार तृष्णा के वन की ओर दौड़ता है, उसके लिए क्या कहा जाए! यही कहा जाए कि वह मुक्त होकर भी बंधन की ओर जा रहा है!"
ये उस कैदी से कहे गए वचन हैं।

न तं दल्हं बंधनमाहु धीरा यदायसं दारुजं बब्बजंच।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।।

"जो लोहा, लकड़ी या रस्सी का बंधन है, उसे बुद्धिमान पुरुष दृढ़ बंधन नहीं कहते हैं। वस्तुतः दृढ़ बंधन तो मणि, कुण्डल, पुत्र और स्त्री के प्रति इच्छा का होना है।"
इच्छा ही बांधती है। इच्छा ही बंधन है। जो तृष्णा में है, वह कारागृह में है। जो कहता हैः यह मुझे मिल जाए, यह मुझे मिल जाए; यह मिलेगा, तो मैं सुखी होऊंगा; यह नहीं मिलेगा, तो मैं दुखी होऊंगा--ऐसी जिसकी अपेक्षा है, वह बंधन में है; वह सदा दुख में ही रहेगा।
तृष्णा का अर्थ हैः जैसा मैं हूं, जो मैं हूं, इससे मेरी तृप्ति नहीं। कुछ और चाहिए। सदा कुछ और चाहिए! और ऐसा नहीं कि कुछ और मिलने से तृप्ति हो जाएगी! जो भी तुम्हारे पास होगा, उसी से तृप्ति नहीं होती। जो पास हो गया, उसी से अतृप्ति हो जाती है। जो दूर है, उसमें तृप्ति दिखायी पड़ती है। दूर के ढोल सुहावने। वह सदा दूर मालूम पड़ता है सुख। जैसे-जैसे पास आते जाते हो, दुख होता जाता है। जो मुट्ठी में आ जाता है, वही व्यर्थ हो जाता है। यह तृष्णा की आदत है। जो मिल जाए, व्यर्थ; और जो नहीं मिला है, वही सार्थक। ऐसा आदमी कैसे सुखी होगा? ऐसे आदमी ने तो दुख का बिल्कुल पूरा इंतजाम
कर रखा है। जब मिलेगा, तो अर्थहीन हो जाएगा; और जब तक नहीं मिला है, तब तक उसमें सुख मिलता है! जब तक नहीं मिला है, सुख कैसे मिल सकता है? सिर्फ आशा, कल्पना, सपना! और जब मिलता है, तब सब सुख समाप्त हो जाता है।

एतं दल्हं बंधनमाहु धीरा ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुंच।
एतम्पि छेत्त्वान परिब्बजन्ति अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय।।

"धीरपुरुष इसी को दृढ़ बंधन कहते हैं, जो शिथिल होकर भी मनुष्य को गिराता है और जिसे तोड़ना कठिन है। धीरपुरुष अपेक्षारहित होकर तथा काम-सुखों को छोड़कर इस बंधन को तोड़ते हैं और प्रव्रजित होते हैं।"
जो समझदार है, धीर है, जो बुद्धिमान है, वह इस सत्य को देख लेता है कि तृष्णा की दौड़ में सिर्फ नए-नए नर्क निर्मित होते हैं। जो धीर है, जो बुद्धिमान है, वह इस सत्य को देख लेता है कि मैं जैसा हूं, जहां हूं, उसी में तृप्त हो जाऊं, तो यहीं स्वर्ग बरस जाता है।
तुम जरा प्रयोग करके देखो। ये बातें प्रयोग की हैं। तुम जो हो, जैसे हो, जहां हो, एक क्षण को समग्र स्वीकार कर लो कि इससे अन्यथा की मेरी कोई चाह नहीं। अचानक तुम पाओगेः आकाश खुल गया, बादल छंट गए। अचानक तुम पाओगेः दुख नहीं रहा। दुख हो कैसे सकता है फिर! उस संतुष्टि में दुख समाप्त हो जाता है।
स्वर्ग तुम बनाते, नर्क तुम बनाते। नर्क तुम बनाते तृष्णा से; तृष्णा
से मुक्त होकर स्वर्ग बन जाता है। तुम्हारी मर्जी; तुम अगर नर्क ही चाहते हो, तो बनाते रहो, लेकिन फिर रोओ मत। फिर कहो मत कि मैं दुखी क्यों हूं! फिर तुम्हारा संकल्प है। फिर तुम्हारी स्वतंत्रता है। फिर कहो मत कि दुखी क्यों हूं!
लेकिन मजा यह है कि दुख तुम निर्मित करते हो और फिर रोते-चिल्लाते हो
कि मैं दुखी क्यों हूं! जैसे कि कोई और का जिम्मा है तुम्हें सुखी करने का! मंदिर में जाकर भगवान को कहते हो कि मुझे सुखी बनाओ। मैं दुखी क्यों हूं? मुझे दुखी क्यों बनाया? जैसे उसका जिम्मा है!

कोई जिम्मेवार नहीं है। बुद्ध के इस वचन को स्मरण रखनाः तुम्हारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेवार नहीं है। तुम जो हो, तुम्हीं जिम्मेवार हो। यह सत्य तुम्हारे हृदय में बैठ जाए, तो इसी क्षण क्रांति शुरू हो जाए। तब तुम दुख के जिम्मेवार हो। अगर तुम दुख ही चाहते हो, दुख बनाए चले जाओ। कोई तुम्हें रोकता नहीं। तुम्हारी स्वतंत्रता परम है।
अगर तुम सुख चाहते हो, तो इस सत्य को समझो कि दुख कैसे पैदा होता है! तृष्णा से पैदा होता है। तुम्हारे पास दस हजार रुपए हैं, तो तुम दुखी। क्योंकि तुम कहते हो, जब तक लाख न हो जाएं, कोई कैसे सुखी हो सकता है! लाख हो जाएंगे, तुम सोचते हो, सुखी हो जाओगे! जब लाख हो जाएंगे, तब दस लाख मन मांगेगा, क्योंकि मन का अनुपात वही रहेगा। दस हजार था, तो लाख मांगता था-- दस गुना। जब लाख हो जाएंगे, मन दस लाख मांगेगा। फिर तुम दुखी रहोगे। तुम्हारे और मन की अपेक्षा में कभी तालमेल होने वाला नहीं है। दस लाख
हो जाएंगे, तो फिक्र मत करना तुम कि कुछ फर्क पड़ने वाला है। करोड़ मांगेगा मन। मन का अंतर उतना ही रहेगा। मन तुम से आगे छलांग लगाता हुआ चलता है। तुम जहां हो, वहां से दस कदम आगे होगा। वह कहेगाः यहां आ जाओ, तो सुख हो जाएगा। मन तुम्हारे दुख को बनाए चला जाता है। तुमसे दस कदम आगे होता है, तुम हमेशा लक्ष्य से दस कदम पीछे होते हो, इसलिए दुख है। दस कदम पीछे का दुख! अब क्या करें?
एक ही उपाय है कि तुम जहां हो, वहीं उसी अवस्था को स्वीकार कर लो। बुद्ध उसे कहते हैं--तथाता। स्वीकार कर लो। जैसा है, ठीक है।
और यह ठीक है--ऐसा किसी जबर्दस्ती से मत कर लेना, नहीं तो कुछ फायदा नहीं। भीतर तो मन जाल बुनता ही रहेगा। इसलिए धीरता से, समझ से, बुद्धि से, प्रज्ञा से, समझकर रुकना।
नहीं तो अक्सर लोग सांत्वना कर लेते हैं कि ठीक है। अब जो नहीं मिलता, जाने दो। अपनी सामर्थ्य भी नहीं है। अब ज्यादा झंझट में कौन पड़े? जितना है, इतने से राजी हो जाओ। मगर यह सांत्वना है, संतोष नहीं। सांत्वना में तुम सुखी न हो जाओगे। तुम असंतोष के नए रास्ते खोज लोगे।

मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि हम सब तरह से संतोष में जीते हैं, फिर भी सुख नहीं है!
अब यह हो ही नहीं सकता। यह असंभव है। जैसे आग गरम है, उसका स्वभाव है। ऐसे संतोष का स्वभाव सुख है। यह हो ही नहीं सकता।
वे कहते हैंः हम संतोष में जीते हैं, लेकिन फिर भी सुख नहीं है। और बेईमान सुखी हैं। और चोर, और तस्कर, और राजनेता, सब तरह के बेईमान मजा कर रहे हैं, और हम संतोषी! और हम भगवान की पूजा भी करते हैं, भजन भी करते हैं। चोरी नहीं करते। झूठ नहीं बोलते। बेईमानी नहीं करते। किसी को धोखा नहीं देते। किसी से झंझट नहीं लेते। अपने रास्ते आते, अपने रास्ते जाते। और हम सुखी नहीं हैं? तो क्या कारण होगा?
सांत्वना को ये संतोष समझ रहे हैं। इनका इरादा यह है कि बेईमान को जो बेईमानी करने से मिल रहा है, वह इनको संतुष्ट होने से मिलना चाहिए! तो फिर बेचारा बेईमान इतना कष्ट मुफ्त ही भोग रहा है! तुम कष्ट भी नहीं भोगना चाहते, उपलब्धि भी वही करना चाहते हो जो बेईमान कर रहा है।
तुम चाहते हो कि हम अपने घर में भजन-कीर्तन करते हैं, हम को लोग प्रधानमंत्री क्यों नहीं बनाते! मोरारजी भाई को क्यों बनाते हैं? तो बयासी साल हजार तरह की झंझटें भी झेलनी पड़ती हैं। कितनी धक्का-मुक्की! कहां-कहां से खींचे जाते! कहां-कहां से निकाले जाते! कहीं कामराज योजना; कहीं कुछ; कहीं कुछ!
मगर कुछ लोग जिद्द ही कर लेते हैं। वे कहते हैंः चाहे सौ-सौ जूते खाएं, तमाशा घुसकर देखेंगे; पर देखेंगे। चाहे कितनी पिटाई हो, मगर जाकर बीच में ही तमाशा देखना है।
तुम चाहते हो कि तुम अपने घर में बैठे रहो और शंकरजी के सामने घंटी बजाते रहो और तुम को लोग प्रधानमंत्री बना दें। नहीं बनाते, तो तुम कहते हो, बड़ा धोखा हो रहा है। मुझ जैसा सीधा-सादा आदमी, विनम्र चित्त, निरअहंकारी और ये मगरूरजी भाई देसाई! ये प्रधानमंत्री? और मैं विनम्र, निरअहंकारी, अपने घर में बैठा हनुमान चालीसा पढ़ता हूं और कुछ करता भी नहीं हूं। मुझे लोग प्रधानमंत्री क्यों नहीं बना रहे हैं?
अब तुम परेशान हो। तुम्हारी परेशानी... तुम ने सांत्वना को संतोष समझा। इरादे तुम्हारे भी अच्छे नहीं हैं। हनुमान चालीसा भी तुम गलत इरादे से पढ़ रहे हो। तुम सोचते हो कि शायद हनुमानजी कंधे पर बिठाकर तुम को दिल्ली ले जाएं!
संतोष बड़ी और बात है। संतोषी दुख जानता ही नहीं। क्योंकि संतोषी की अपेक्षा नहीं है। अपेक्षा की छाया है दुख। अपेक्षा गयी, तो दुख गया। संतोषी केवल सुख ही जानता है। और जैसे-जैसे संतोष बढ़ने लगता है, वैसे- वैसे सुख महासुख होने लगता है।
"धीरपुरुष इसी को दृढ़ बंधन कहते हैं--तृष्णा को--जो शिथिल होकर भी मनुष्य को गिराती है, जिसे तोड़ना कठिन है। धीरपुरुष अपेक्षारहित होकर तथा काम-सुखों को छोड़कर इस बंधन को तोड़ते और प्रव्रजित होते हैं।"

ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं सयं कतं मक्कटक्को"व जालं।
एतम्पि छेत्त्वान बजन्ति धीरा अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय।।

"जो राग में अनुरक्त हैं, वे अपने बनाए स्रोत में वैसे ही फंस जाते हैं, जैसे मकड़ी अपने बनाए जाले में फंस जाती है। धीरपुरुष इस स्रोत को छेदकर और सब दुखों को छोड़कर आकांक्षारहित हो प्रव्रजित होते हैं।"
दूसरा दृश्यः

राजगृह में प्रतिवर्ष एक विशेष समारोह में नटों के खेलों का आयोजन होता था। एक बार जब नटों का खेल हो रहा था, तब राजगृह नगर के श्रेष्ठी का उग्गसेन नामक पुत्र एक नट-कन्या के खेल को देखकर उस पर मोहित हो उसी से अपना विवाह कर नटों के साथ हो लिया। वह उनके साथ घूमते हुए थोड़े ही वर्षों में नट-विद्या में निपुण हो गया। फिर एक उत्सव में भाग लेने वह भी राजगृह

आया। उसका खेल देखने स्वभावतः हजारों लोग इकट्ठे हुए। वह नगर के सब से बड़े सेठ का बेटा था--नगरसेठ का बेटा था।
उस दिन जब भगवान भिक्षाटन को निकले, तो श्रेष्ठीपुत्र उग्गसेन साठ हाथ ऊंचे दो भवनों के बीच में बंधी रस्सी पर चलकर अपना खेल दिखाना शुरू करने ही वाला था। लेकिन भगवान को देखकर सभी दर्शक उग्गसेन की ओर से मुख मोड़कर भगवान को देखने लग गए! उग्गसेन उदास हो बैठ रहा।

भगवान ने उसे उदास देख महामौद्गल्यायन स्थविर से कहाः मौद्गल्यायन। उग्गसेन को कहो कि अपना खेल दिखाए। बेचारा उदास और दुखी होकर बैठ गया! फिर भगवान ने उसे प्रसन्न करने को कहाः मैं भी देखूंगा उग्गसेन! तू खेल दिखा।
फिर उग्गसेन खूब प्रसन्न होकर साठ हाथ ऊंची बंधी रस्सी पर स्वयं को सम्हालने के नाना प्रकार के खेल दिखाने लगा। तब शास्ता ने कहाः उग्गसेन, ये खेल अच्छे हैं। लोगों का मनोरंजन भी करेंगे। लेकिन मनोरंजन से होता क्या! जब तक मनोभंजन न हो! सार तो इनमें जरा भी नहीं है। मनोरंजन में ही तो जीवन व्यर्थ गए। और यह जीवन भी व्यर्थ चला जाएगा। तू तमाशा दिखाते-दिखाते तमाशे में ही समाप्त हो जाएगा? सार इनमें जरा नहीं उग्गसेन!
जितने समय में तूने स्वयं को रस्सी पर सम्हालना सीखा, इतने समय में तो
तू ध्यान पर अपने को सम्हाल लेता। और रस्सी पर सम्हलकर कहां पहुंचेगा? चेतना में सम्हल। वह तुझे जीवन-मरण के पार ले जाता, अगर ध्यान में सम्हल जाता।
उग्ग्सेन बुद्धिमान व्यक्ति को समय से मुक्त हो परम सत्य में लीन होना सीखना चाहिए। तू मेरे पास आ। मैं तुझे वह परम कला और परम कीमिया सिखाऊंगा।
और तब भगवान ने यह गाथा कहीः

मुंच पुरे मुंचपच्छतो मज्झे मुंच भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो न पुन जतिजरं उपेहिसि।।
"भूत को छोड़ो, भविष्य को छोड़ो और वर्तमान को भी छोड़ो--इस तरह इन्हें छोड़कर संसार के पार हो और मुक्त-मानस होकर तुम फिर जन्म और जरा को नहीं प्राप्त होओगे।"
उग्गसेन मेरे पास आओ, मैं तुम्हें परम कीमिया सिखाऊंगा।
पहले हम इस दृश्य को समझें।
राजगृह में प्रतिवर्ष एक विशेष समारोह में नटों के खेल का आयोजन होता था। एक बार जब नटों का खेल हो रहा था, तब राजगृह नगर के श्रेष्ठी का उग्गसेन नामक पुत्र एक नट-कन्या के खेल को देखकर उस पर मोहित हो उसी से अपना विवाह कर नटों के साथ हो लिया।
आदमी जिससे प्रेम करता है, वैसा ही हो जाता है। प्रेम सावधानी से करना। प्रेम अपने से श्रेष्ठ से करना। अपने से निकृष्ट से प्रेम करोगे, तो वैसे ही हो जाओगे। प्रेम रसायन है। जिससे प्रेम करोगे, वैसे ही हो जाओगे। तुमने देखाः जो लोग धन को प्रेम करते हैं, उनके चेहरे पर वैसा ही घिसा- घिसापन दिखायी पड़ने लगता है, जैसे घिसे सिक्कों पर दिखायी पड़ता है। जो लोग नोटों को प्रेम करते हैं, उनके चेहरे पर देखा! वैसे ही घिसे-पिटे नोट की हालत हो जाती है। गंदा! न मालूम कितने हाथों से गया! न मालूम कितने-कितने हाथों से उतरा।
जो आदमी जिसको प्रेम करता है, वैसा ही हो जाता है। कहानियां तुमने पढ़ी होंगी कि जब कोई धनी मरता है, तो सांप होकर अपने खजाने पर बैठ जाता है। वह पहले ही से सांप था। तुम मरने के बाद की बात कर रहे हो! वह पहले ही से सांप बना बैठा था फन मारे। उसका कोई और काम नहीं था।
धनी धन को भोगता थोड़े ही है, धन की रक्षा करता है। भोगने की क्षमता ही
खो जाती है! भोगने के लिए तो धन को छोड़ने की कला चाहिए।
दो फकीर एक नदी के पास आकर रुके। उनमें एक फकीर सदा कहता था कि धन में कुछ सार नहीं। धन बिल्कुल बेकार है। और कभी धन पास नहीं रखता था। और दूसरा

फकीर कहता थाः वक्त पर जरूरत पड़ सकती है। कभी बीमारी है, कभी झंझट है, कभी अड़चन है, कभी यात्रा है, कभी भोजन की जरूरत है। थोड़ा साथ रखना चाहिए। धन काम का है।
दोनों नदी के किनारे आकर रुके। सांझ होने के करीब है। और उस पार जाना जरूरी है। और जो मांझी है, वह कहता है कि एक रुपए से कम नहीं लूंगा। क्योंकि मैं थका-मांदा हूं और यह मैं आखिरी बार जा रहा हूं। फिर अब मैं दुबारा आऊंगा नहीं। दिनभर हो गया मेहनत करते-करते।
तो जिस फकीर के पास रुपए थे, उसने एक रुपया दिया। वे दोनों फकीर नदी पार कर लिए। जब नाव से उतरे तो जिसके पास रुपया था, उसने कहाः अब कहो! अब अपने विवाद का निर्णय कर लो। अगर आज यह रुपया मेरे पास न होता, तो हम उसी तरफ रह गए होते। वहां जंगली जानवरों का भय है। रात बचना मुश्किल था। नदी पार उतर गए, तो अब बच जाएंगे। अब धर्मशाला पहुंच जाएंगे। गांव आ गया। अब निश्चिंत होकर रात सो लेंगे। तुम क्या कहते हो?
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहाः हम धन के कारण नहीं उतरे। तुम धन दे सके उसको, एक रुपया दे सके, इस कारण उतरे। रुपया होने से नहीं उतरे, क्योंकि होने से क्या होता था! अगर तुम देने को राजी न होते। उतर सके देने के कारण। विवाद फिर अपनी जगह खड़ा हो गया!
धनी तो अक्सर धन को भोग नहीं पाता। क्योंकि धन भोगना हो, तो धन को भी देना पड़ता है। उपनिषदों में परम वचन हैः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः, जिन्होंने छोड़ा, उन्होंने भोगा। संसार में भी धन छोड़ो, तो ही भोग सकते हो। यहां छोड़ना ही भोगने का सूत्र है।
मगर ध्यान रखनाः जो धन इकट्ठा करने लगता है, वह खुद ही धन जैसा जड़ हो जाता है। जो पद की आकांक्षा में रहता है, उसका अहंकार घना होता चला जाता है। तुम जो चाहोगे, वही हो जाओगे।
अब यह उग्गसेन नगरश्रेष्ठी का पुत्र था, सब से बड़े धनी का पुत्र था। राजगृह बिहार की सब से धनी नगरी थी। उस सब से धनी नगरी के सब से बड़े धनी का बेटा था। लेकिन एक नट-कन्या, एक मदारी की लड़की के प्रेम में पड़ गया, तो मदारी हो गया।
ये छोटी-छोटी कहानियां बड़ी सूचक हैं, बड़ी मनोवैज्ञानिक हैं। इनको तुम ऐसे ही पढ़ लोगे, तो इनका मजा, इनका स्वाद तुम्हें नहीं आएगा। इनमें धीरे- धीरे उतरना। तुम जरा गौर करना। तुमने जिससे दोस्ती की है, आखिर में तुमने पाया नहीं कि तुम उसी जैसे हो गए?
दोस्ती की तो बात छोड़ो, किसी से दुश्मनी भी अगर कर ली, तो भी उस जैसे हो जाओगे। क्योंकि उसी का चिंतन करोगे। उसी का हिसाब रखोगे। वह कैसी चालें चल रहा है, वैसी चालें तुम चलोगे। उस से कैसे रक्षा करनी, इसका विचार करते रहोगे। सदा उसका विचार करते-करते तुम भी उस जैसे हो जाओगे। दुश्मन भी एक जैसे हो जाते हैं। क्योंकि दुश्मनी भी एक ढंग की दोस्ती है।
नट-कन्या के खेल को देखकर उस पर मोहित हो उससे विवाह कर नटों के साथ हो लिया।
सुसंस्कृत परिवार का बेटा, ऐसे गांव-गांव घूमने वाले सड़क-छाप मदारियों के साथ हो गया!
मोह गिराता है। मोह उठा भी सकता है। अगर बुद्ध जैसे व्यक्ति से मोह हो जाए, तो तुम्हारी आंखें आकाश की तरफ उठने लगीं। तुमने जमीन पर सरकना बंद कर दिया। बुद्ध को देखने के लिए ऊपर देखना पड़ेगा, चांद-तारों की तरफ देखना पड़ेगा।
जब मंसूर को सूली हुई, वह खिलखिलाकर हंसने लगा। और किसी ने भीड़ में से पूछा कि मंसूर! तुम्हारे हंसने का कारण? क्योंकि तुम मर रहे हो!
ऊंचे खंभे पर उसे सूली लगायी जा रही थी। मंसूर ने कहा कि मैं इसलिए खुश हूं कि एक लाख आदमी मुझे देखने इकट्ठे हुए हैं। और एक लाख आदमियों की आंखें पहली दफे थोड़ी ऊपर उठीं, क्योंकि मुझे देखने के लिए इस ऊंचे खंभे की तरफ देखना पड़ रहा है। यही क्या कम है कि तुम्हारी आंखें जमीन में गड़ी-गड़ी रही हैं सदा, आज चलो मेरे बहाने ऊपर उठीं! और हो सकता है कि मुझे देखकर तुम्हें परमात्मा की थोड़ी याद आए! और मेरे आनंद को देखकर तुम्हें याद आए

कि परमात्मा जिसके साथ हो जाता है, वह मरने में भी खुश है। और परमात्मा जिसके साथ नहीं, वह जीवन में भी दुखी है। यह तुम भूल न सकोगे। तुम्हें मेरी मुस्कुराहट याद रहेगी; कभी-कभी तुम्हें चौंकाएगी। कभी-कभी तुम्हारे सपनों में उतर आएगी। कभी-कभी शांत बैठे क्षणों में मेरी तस्वीर तुम्हें फिर-फिर याद आएगी। चलो, यही क्या कम है! मेरा इतना ही उपयोग हो गया! मरना तो सभी को पड़ता है। एक लाख आदमियों के दिल में मेरी तस्वीर टंगी रह जाएगी। शायद उन्हें परमात्मा की याद दिलाएगी।
जब तुम बुद्ध के प्रेम में पड़ते हो, तो धीरे-धीरे तुम में बुद्धत्व छाने लगता है। इसलिए साधु-संग की बड़ी महिमा है। उसका मतलब इतना है कि उनके प्रेम में पड़ जाना, जो तुम से आगे गए हैं। जो तुम से दो कदम भी आगे हैं, उनके प्रेम में पड़ जाना। कम से कम दो कदम तो तुम्हें आगे जाने में सहायता मिल जाएगी।
अपने से पीछे लोगों के प्रेम में मत पड़ना, नहीं तो तुम गिरोगे।
वह उनके साथ घूमते-घूमते थोड़े ही वर्षों में नट-विद्या में निपुण हो गया। और तो सीखता भी क्या! नट से प्रेम करोगे, नट हो जाओगे। नट हो गया।
फिर एक उत्सव में भाग लेने वह भी राजगृह आया।
लोक-लाज भी खो दी होगी। संकोच भी खो दिया होगा। यह भी फिकर न की कि उस गांव में मेरा पिता सब से बड़ा धनी है, प्रतिष्ठित है। राजा के बाद उसी का नंबर है। उस गांव में मैं मदारियों के खेल दिखाऊंगा--यह उचित है?
लेकिन एक समय आता है, जब तुम धीरे-धीरे बेशर्मी में भी ठहर जाते हो। वह
भी जड़ हो जाता है। शर्म भी नहीं उठती; लज्जा भी नहीं उठती!
उसका खेल देखने स्वभावतः हजारों लोग इकट्ठे हुए।
खेल से ज्यादा तो उसको देखने इकट्ठे हुए--कि यह भी कैसा दुर्भाग्य! इतनी बड़ी संपत्ति, इतनी सुविधा, इतने संस्कार, इतनी सभ्यता में पैदा हुआ आदमी और इस तरह गिरेगा!
उस दिन जब भगवान भिक्षाटन को निकले, तो श्रेष्ठीपुत्र उग्गसेन साठ हाथ ऊंचे दो भवनों के बीच में बंधी रस्सी पर चलकर अपना खेल दिखाना शुरू करने वाला ही था--सब तैयारी हो गयी थी--लेकिन भगवान को देखकर सभी दर्शक उग्गसेन की ओर से मुख मोड़कर भगवान को ही देखने लगे।
बुद्ध की मौजूदगी! एक क्षण को लोग भूल गए तमाशा। एक क्षण को लोग भूल गए उग्गसेन को। एक क्षण को लोग भूल गए मनोरंजन को। यहां आ रहा है कोई, जिसका मन समाप्त हो गया। यहां आ रहा है कोई, जो दूसरे लोक की खबर लाता। यह प्रसादपूर्ण बुद्ध का आगमन, यह उनके पीछे भिक्षुओं का आगमन! यह बुद्ध का आकर अचानक वहां खड़े हो जाना! एक क्षण को लोग भूल ही गए। जहां इतना विराट घट रहा हो, वहां क्षुद्र की कौन चिंता करता!
उग्गसेन उदास हो बैठ रहा। भगवान ने उसे उदास देख अपने एक शिष्य महामौद्गल्यायन से कहा, मौद्गल्यायन! उग्गसेन को कहो, अपना खेल दिखाए। और मैं भी उसका खेल देखूंगा, प्रसन्न होकर दिखाए।
सदगुरु इस तरह के उपाय भी करता है। तुम्हें उठाना हो तुम्हारी भूमिका से, तो तुम्हारी भूमिका तक उसे आना पड़ता है। तुम्हें तुम्हारे खाई-खड्ड से निकालना हो, तो उसको भी अपने शिखर को छोड़कर तुम्हारे गड्ढे में आना पड़ता है।
उग्गसेन का पिता बुद्ध का शिष्य था। शायद बहुत बार रोया होगा बुद्ध
के पास। शायद बहुत बार कहा होगा कि क्या होगा मेरे बेटे का! यह कैसा पतन हुआ!
और ध्यान रखना, उन दिनों के धनपति और आज के धनपतियों में बड़ा फर्क है। तुम जानते होः सेठ शब्द उन दिनों के श्रेष्ठी शब्द से आया है। अब तो सेठ एक तरह की गाली है। उन दिनों श्रेष्ठी... । जो व्यक्ति बड़े श्रेष्ठ थे, वे ही कहे जाते थे श्रेष्ठी। जिनके भीतर एक आत्मिक संपन्नता थी। बाहर का धन तो ठीक था; जिनके पास भीतर का धन भी था।
इस उग्गसेन के पिता ने बुद्ध के लिए सारा धन बहाया था। कहते हैंः एक बार तो ऐसा हुआ था कि बुद्ध गांव आए। उनके ठहरने के लिए एक बगीचे को खरीदना था। लेकिन बगीचे को बेचने वाला दुष्ट और जिद्दी प्रकृति का था। उसने कहा,

उतने रुपए में बेचूंगा, जितने रुपए मेरी जमीन पर बिछाओगे। पूरी जमीन ढंक जाए रुपयों से, उतने रुपयों में बेचूंगा।
यह हजार गुना मूल्य मांग रहा था; या लाख गुना मूल्य मांग रहा था। लेकिन उग्गसेन के पिता ने फिर भी वह बगीचा खरीद लिया। जमीन पर रुपए बिछाकर! जितने रुपए जमीन पर बिछे, उतने रुपए देकर।
एक महिमाशाली व्यक्ति रहा होगा। बुद्ध के पास रोया होगा बहुत बार इस बेटे के लिए। कहा होगाः कुछ करें। आप कुछ करें, तो ही अब कुछ हो सकता है। अब हमारे हाथ के बाहर की बात है।
शायद इसीलिए बुद्ध उस दिन गए। गए ताकि उग्गसेन को खींच लें। उग्गसेन
का तमाशा देखा, सिर्फ इसीलिए कि उग्गसेन के भीतर बुद्ध के प्रति थोड़ा भाव पैदा हो जाए। जैसे कोई मछली को पकड़ने के लिए कांटे में आटा लगाता है न, ऐसे बुद्ध ने थोड़ा सा आटा लगाया कांटे में। उग्गसेन फंस गया। बुद्ध जैसा व्यक्ति बंसी डाले, फंसो न तो क्या हो!
इसीलिए तो बुद्धपुरुषों के संबंध में यह बात लोक प्रचलित हो गयी कि उनसे लोग सम्मोहित हो जाते हैं; कि लोग उनके मेस्मेरिज्म में आ जाते हैं; कि लोग उनके हाथ में बंध जाते हैं। उनसे सावधान रहना, जरा दूर-दूर रहना। उनसे जरा बचकर रहना!
बुद्ध ने कहाः मैं भी तेरा खेल देखने आया उग्गसेन।
अब बुद्ध को क्या इस खेल में हो सकता है? सारे संसार का खेल जिसके लिए व्यर्थ हो गया, उसको किसी के रस्सी पर चलने में क्या सार हो सकता है? लेकिन अगर उग्गसेन को अपनी तरफ लाना है, तो उग्गसेन की तरफ जाना होगा।
तो गुरु कई बार शिष्य की भूमिका में उतरता है। कई बार उसका हाथ पकड़ने वहां आता है, जहां शिष्य है। अगर शिष्य वेश्यागृह में है, तो गुरु वहां आता है। और अगर शिष्य कारागृह में है, तो गुरु वहां आता है। इसके सिवाय कोई उपाय भी नहीं।
उग्गसेन अति आनंदित हो उठा। उसने तो यह सोचा भी नहीं था। ऐसा धन्यभाग
कि बुद्ध और उसका तमाशा देखने आएंगे! इसका तो सपना भी नहीं देखा था! यह तो सोच भी नहीं सकता था। बुद्ध ने तो किसी का खेल कभी नहीं देखा। किसी का तमाशा कभी नहीं देखा।
उसने बहुत तरह के खेल दिखाए; बड़ी उमंग, बड़े उत्साह से।
तब शास्ता ने उससे कहाः उग्गसेन, ये खेल बड़े अच्छे हैं; लोगों का मनोरंजन भी करेंगे। लेकिन तमाशा आखिर तमाशा है। तमाशे में ही जिंदगी गंवा देगा? मनोरंजन तो ठीक है। असली बात तो तब घटती है, जब मनोभंजन होता है।
मनोरंजन तो मन की खुशामद है। वही तो अर्थ है मनोरंजन शब्द का--मन की खुशामद। मन पर मक्खन लगाना। वही मनोरंजन है--मन जो कहे, वैसा ही करते रहना। मन जहां ले जाए, उसके साथ चले जाना। मन कहे शराबघर; मन कहे वेश्याघर; मन कहे सिनेमा; मन कहे यह, मन कहे वह; उसी के पीछे चलते रहना।
इसी तरह तो संसार है। संसार का अर्थ होता हैः मन के पीछे चलना। चैतन्य
को मन के पीछे चलाना अर्थात संसार।
मनोभंजन चाहिए, बुद्ध ने कहा। और यह भी कोई कला है! अगर कला ही दिखानी है, तो आ मैं तुझे सिखाऊं। रस्सी पर चलने में क्या रखा है? यह तो साठ हाथ ऊंची बंधी है न, मैं तुझे शिखरों पर चलना सिखाऊं, बादलों पर चलना सिखाऊं। मैं तुझे ध्यान में सधना सिखाऊं।
उससे ऊपर और कुछ भी नहीं है। कोई रस्सी उतने ऊपर नहीं बांधी जा सकती।
और जो ध्यान में चलता है, उससे बड़ा कुशल कोई कलाकार नहीं है। क्योंकि ध्यान में अपने को साधना, ठीक रस्सी पर चलने जैसा ही है। बाएं गिरे, दाएं गिरे; पूरे वक्त सम्हालना पड़ता है। अब गिरे, तब गिरे। और खतरा हर वक्त! लेकिन ध्यान में जो सम्हल जाता है, एक दिन समाधिस्थ हो जाता है, फिर कोई गिरना नहीं है।
तूने स्वयं को रस्सी पर सम्हालना सीखा, इतने समय में तो उग्गसेन, तू ध्यान भी सम्हाल सकता था!
जितनी देर में तुम धन कमाते हो, ध्यान भी कमाया जा सकता है। जितनी देर तुम संसार में लगाते हो, उतनी देर में परमात्मा भी पाया जा सकता है। इसी

ऊर्जा से, इसी क्षमता से परम मिल सकता है। तुम क्षुद्र में गंवाते हो।
कंकड़-पत्थर बीनते रहते हो, जब कि हीरे की खदानें बिल्कुल पास थीं।
उग्गसेन! बुद्धिमान व्यक्ति को जीवन-मरण के पार जाने की कला सीखनी चाहिए। तू आ। मेरे पास आ। मैं तुझे वह परम कला और परम कीमिया सिखाऊंगा।
क्या है वह परम कीमिया? वही इस सूत्र का अर्थ है।
"भूत को छोड़ो, भविष्य को छोड़ो, वर्तमान को भी छोड़ो।"
क्योंकि मन को छोड़ना हो--मनोभंजन करना हो--तो समय को छोड़ना जरूरी है।
मन है क्या? भूत की स्मृतियां; जो हो चुका उसकी स्मृतियों का जाल, स्मृति।
और भविष्य की योजनाएं, भविष्य की कल्पनाएं, आकांक्षाएं। वर्तमान की चिंता, फिकर।
अगर ठीक से समझो, तो मन और समय पर्यायवाची हैं। इसलिए जो भी ध्यान को उपलब्ध हुए, उन्होंने कहाः कालातीत है ध्यान; समय के पार है ध्यान। मनातीत और कालातीत एक ही अर्थ रखते हैं।
तो बुद्ध ने कहा हैः "भूत को छोड़, भविष्य को छोड़, वर्तमान को छोड़--यह है असली कला--इस तरह इन्हें छोड़कर संसार के पार हो जा। मुक्त-मानस होकर, मन से मुक्त होकर, तू फिर जन्म और जरा को प्राप्त नहीं होगा।"
उग्गसेन को ऐसे वचन सुनकर बोध हुआ। और जैसे बिजली कौंधी, ऐसे भगवान के वचन उसके प्राणों में कौंधे। फिर उसने क्षणभर भी न खोया। वह रस्सी से उतर भगवान का भिक्षु हो गया। और जब मरा तो अर्हत्व को पाकर मरा। वह सच ही परम नट-विद्या को उपलब्ध होकर मरा। भगवान ने वचन पूरा किया।
इसमें एक बात, अंतिम बात समझ लेनी चाहिए।
यह आदमी था तो जुआरी। इसलिए मैं अक्सर कहता हूंः धर्म व्यवसायियों के लिए नहीं, जुआरियों के लिए है। यह आदमी था तो जुआरी। बाप की बड़ी संपत्ति, बाप का बड़ा उत्तराधिकार छोड़कर एक मदारी की बेटी के साथ हो लिया था। था तो आदमी हिम्मत का। गलत भी गया था, तो डरा नहीं था जाने में। दांव पर सब लगा दिया था। इस साधारण सी युवती के लिए, झोली टांगे हुए मदारी, गांव-गांव भटकते होंगे, इनके साथ हो लिया था राजमहल छोड़कर। था तो आदमी जुआरी, दांव पर लगा दिया था सब।
ऐसे आदमी बड़े काम के भी होते हैं! अगर कभी बुद्धपुरुषों से मिलना हो जाए, तो फिर वे देर नहीं करते। अगर नीचे जाने में सब दांव पर लगा सकते हैं, तो ऊपर जाने में क्यों दांव पर नहीं लगा सकेंगे!
दुकानदार हमेशा डरता रहता है। न नीचे जाता, न ऊपर जाता। जाता ही नहीं कहीं। यहीं कोल्हू के बैल की तरह घूमता रहता है। सोचता ही रहता हैः करूं कि न करूं? इसमें फायदा कितना, हानि कितनी, लाभ कितना? इतना धन लगेगा! ब्याज भी मिलेगा कि नहीं मिलेगा? इससे सार क्या होगा? चिंता-फिकर में ही, हिसाब-किताब में ही, गणित बिठालने में ही समय बीत जाता है।
यह आदमी था तो जुआरी, बाप की सारी संपत्ति को लात मार दी। बाप ने कहा
भी होगा शायद कि देख, तू क्या कर रहा है! दाने-दाने को मुहताज हो जाएगा! उसने कहा होगाः कोई फिकर नहीं; जिससे लगाव हो गया, उसके साथ जाता हूं। आप अपनी संपत्ति सम्हालो। आपकी प्रतिष्ठा सम्हालो। मैं प्रतिष्ठा खोता हूं। धन खोता हूं। सब खोता हूं। लेकिन जिससे मोह हो गया, उसके साथ जाता हूं। मैं सब दांव पर लगाता हूं।
था तो आदमी हिम्मतवर, था तो साहसी। इसीलिए दूसरी घटना भी घट सकी। जब बुद्ध ने उसे पुकारा... रस्सी पर खड़ा था। और जब बुद्ध ने कहा कि यह भी कोई कला है उग्गसेन! तू मेरे साथ आ, मैं तुझे असली कला सिखाता हूं। तू ध्यान में सम्हल जा। तू जीवन-मरण के पार हो जा।
बुद्ध ने फांस लिया। किया सम्मोहन! फेंका जाल। बुद्ध देखने क्या रुके, उग्गसेन को सदा के लिए अपने साथ ले गए।
उग्गसेन के मन में जैसे बिजली कौंध गयी। बात तो सच है। और उसे समझ में
भी आ गयी यह बात--कि नटी के प्रेम में पड़ा, तो नट हो गया। काश! बुद्ध के प्रेम में पड़ जाऊं, तो बुद्धत्व मेरा है।
और दांव लगाने में तो कुछ था ही नहीं। अब दांव को कुछ था भी नहीं। यह तमाशागिरी थी, यह दांव पर लगती थी, लग जाए। और यह भी वह देख चुका था कि जो

हजारों लोग देखने इकट्ठे हुए थे; जब बुद्ध आए, तो उसकी तरफ पीठ करके खड़े हो गए। तो मनोरंजन से मनोभंजन बड़ा है, इसका प्रत्यक्ष साक्षात्कार हो गया। और उसने भी देखी होगी, बुद्ध की यह महिमा; बुद्ध का यह रूप; बुद्ध का यह प्रसाद; बुद्ध के साथ चलती यह शांति की हवा, यह आनंद की लहर, यह सुगंध! क्षण में बुद्ध का हो गया। उसी क्षण भिक्षु हो गया। सोचा भी नहीं। यह भी न कहा कि कल आऊंगा। कल कभी आता भी नहीं। यह भी न कहा कि सोचने का थोड़ा मौका दें। नहीं; उतरा रस्सी से और चरणों में गिर गया। उस गिरने में ही क्रांति
घट गयी।
ऐसा जो समर्पण कर सकता है--एक क्षण में--बुद्धि को बिना बीच में लाए, उसका हृदय से हृदय का संबंध जुड़ जाता है।
वह बुद्ध का हो गया। बुद्ध उसके हो गए। जब मरा तो अर्हत्व को पाकर मरा।
अर्हत्व का अर्थ होता हैः जिसका ध्यान समाधि बन गया, अर्हत हो गया जो। जिसके सारे शत्रु नष्ट हो गए। काम, क्रोध, मोह, लोभ, तृष्णा--सब समाप्त हो गए। जिसके सब शत्रु समाप्त हो गए, जो सब के पार आ गया। ऐसे व्यक्तित्व को अर्हत्व कहा जाता है। अर्हत परम दशा है।
शास्त्र कहते हैंः वह सच ही परम नट-विद्या को उपलब्ध होकर मरा। बुद्ध
ने जो वचन दिया था, वह पूरा किया गया था।
बुद्ध के वचन खाली नहीं जाते हैं। जिनमें हिम्मत है उनके साथ चलने की,
वे निश्चित पहुंच जाते हैं।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ छः प्रवचन

बुद्धत्व का कमल

पहला प्रश्नः उस सुबह बुद्ध ने मौन की परम संपदा महाकाश्यप को प्रतीक फूल देकर दी। फूल सुबह खिलता है और सांझ मुर्झा जाता है। पर झेन की परंपरा आज तक जीवंत है। फूल की क्षणभंगुरता और झेन की जीवंतता को कृपा करके हमें समझाइए।

यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। ठीक से समझना और याद रखना।
बुद्ध ने क्षणभंगुर को ही स्वीकार किया है। जो है, क्षणभंगुर है।
क्षणभंगुर से अन्य कुछ भी नहीं है। इसलिए बुद्ध के विचार को क्षणिकवाद का नाम मिला।
प्रतिपल बदलाहट हो रही है। फूल ही नहीं बदल रहा है, पहाड़ भी बदल रहे हैं। फूल ही नहीं कुम्हला रहा है, चांद-तारे भी कुम्हला रहे हैं।
बुद्ध ने कहा हैः जो जन्मा है, वह मर रहा है। मृत्यु की प्रक्रिया जन्म के साथ ही शुरू हो गयी। कोई दिनभर जीएगा, कोई सौ वर्ष जीएगा, कोई हजार वर्ष, कोई करोड़ वर्ष, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। लेकिन प्रत्येक वस्तु प्रतिक्षण गल रही है, मर रही है, विलीन हो रही है। फूल उसका प्रतीक है; और जीवंत प्रतीक है। सुबह खिलता है, सांझ मुर्झा जाता है। सुबह ऐसे प्रगट होता है, जैसे सदा रहेगा; और सांझ ऐसे खो जाता है, जैसे कभी नहीं था। ऐसा ही तो जीवन है। जब होता है, तो ऐसा भरोसा लगता है कि सदा रहेंगे। प्रत्येक को यही भ्रांति है।
जब तुम दूसरे को मरते देखते हो, तब भी यह ख्याल कहां आता कि मैं भी मरूंगा! जब तुम दूसरे की लाश को चिता पर चढ़े देखते हो, तो सोचते होः बेचारा! उस पर दया खाते हो; अपने पर दया नहीं खाते।
जब भी चिता जलती है, तुम्हारी ही चिता जलती है। और जब भी मौत रास्ते से गुजरती है, तुम्हारी ही मौत गुजरती है। कभी पूछने मत भेजना कि किसकी लाश निकली! हर बार तुम्हारी ही लाश निकलती है।
लेकिन आदमी इस भ्रांति में रहता है कि मैं तो रहूंगा। सदा दूसरे मरते हैं; मैं कहां मरता हूं! और इस तर्क में थोड़ा बल भी मालूम होता है। क्योंकि कभी अ मरा, कभी ब मरा, कभी स मरा; तुम तो नहीं मरे। तुम तो अपनी मृत्यु को नहीं देख पाओगे, इसलिए तुमने तो सिर्फ अपना जीवन ही देखा। मरे तो तुम भी हो, बहुत बार मरे हो, पर मृत्यु देखने के पहले ही व्यक्ति मूर्च्छित हो जाता है। मृत्यु के भय से मूर्च्छित हो जाता है।
मृत्यु को जो देखने में समर्थ हो जाता है, वह तो मुक्त हो गया; फिर उसका कोई जन्म नहीं। जो मृत्यु में शांति से, जागरूकता से, समाधिपूर्वक लीन हो गया, फिर लौटकर नहीं आता। उसे तो जीवन का राज ही समझ में आ गया।
तो बुद्ध ने कहा हैः सारा जीवन क्षणभंगुर है। जैसे नदी बह रही है, ऐसा जीवन बह रहा है। सब चीजें बदल रही हैं। बच्चे जवान हो रहे हैं; जवान बूढ़े हो रहे हैं; बूढ़े मर रहे हैं। सब चीज सतत धारा की तरह बह रही है। फूल उसका बड़ा उपयुक्त प्रतीक है।
लेकिन इस सारी क्षणभंगुरता के पीछे, इस सारी क्षणभंगुरता के पार, कुछ
है जो शाश्वत है। उसी को बुद्ध ने कहाः एस धम्मो सनंतनो। धर्म शाश्वत है; शेष सब मरता है; शेष सब विनष्ट होता है।
बुद्ध जिसे धर्म कहते हैं, उसे ही लाओत्सू ने ताओ कहा। बुद्ध जिसे धर्म कहते हैं, उसी को महावीर ने आत्मा कहा। बुद्ध जिसे धर्म कहते हैं, उसी को हिंदू, मुसलमान, ईसाई परमात्मा कहते हैं। ये अलग-अलग नाम हैं। क्षणभंगुर तभी हो सकता है, जब सबकी पृष्ठभूमि में कुछ शाश्वत हो। बैलगाड़ी चलती है, चाक घूमता है; लेकिन कील नहीं घूमती, जिस पर चाक घूमता है। अगर कील भी घूम जाए, तो फिर चाक वहीं गिर जाए; फिर चाक नहीं घूम पाए। चाक के घूमने के लिए एक कील चाहिए, जो न घूमती हो। परिवर्तन के लिए कुछ नित्य चाहिए, जिस पर परिवर्तन टंगा रहे। नहीं तो परिवर्तन किस पर टंगेगा!

बचपन था, जवानी आयी, बुढ़ापा आया। जीवन था, मौत आयी। तुम्हीं बच्चे थे, तुम्हीं जवान हुए। सब बदल गया। और फिर भी पीछे कोई खड़ा है। नहीं तो कैसे कहोगे कि मैं बच्चा था, मैं जवान हुआ! संबंध ही टूट जाएगा। बचपन खतम हुआ, जवानी शुरू हुई; बीच में दोनों के कोई जोड़ न रहेगा। तुम कभी न कह पाओगे कि मैं बच्चा था; अब मैं जवान हो गया। जरूर कोई एक सूत्र भीतर बह रहा है। सारे परिवर्तन के बीच कुछ है, जो अपरिवर्तित है। उस कुछ को बुद्ध ने धर्म कहा है। ठीक ही कहा है। धर्म का अर्थ होता हैः स्वभाव। धर्म का अर्थ होता हैः सारी प्रकृति के पीछे छुपा हुआ अंतिम रहस्य।
सब बदलता दिखायी पड़ रहा है; सुबह फूल खिला, सांझ मुर्झा गया। कल फिर फूल खिलेगा, फिर मुर्झाएगा। अनंत बार खिला है, अनंत बार मुर्झाया है। लेकिन फूल में कुछ सौंदर्य है, जो शाश्वत है। वह सौंदर्य फूल का धर्म है। तुमने एक गुलाब का फूल देखा; दूसरा गुलाब का फूल देखा; तीसरा गुलाब का फूल देखा। सब फूल मुर्झा जाते हैं। लेकिन फिर भी कुछ गुलाब में गुलाबीपन है। फिर भी कुछ गुलाब में पकड़ में न आने वाला सौंदर्य है। काटने जाओगे गुलाब को, विश्लेषण करोगे, नहीं पकड़ में आएगा, पकड़ के बाहर है। लेकिन हर गुलाब को तुम पहचान लेते होः यह गुलाब का फूल है। कैसे पहचान लेते हो? दो गुलाब के बीच कुछ गुलाबीपन जरूर होगा, जो एक जैसा है; जो मूलतः एक जैसा है। नहीं तो एक गुलाब से दूसरे गुलाब का क्या संबंध!
फिर, गुलाब का फूल है, चमेली का फूल है, कमल का फूल है--इन सबके बीच भी कुछ है, जो शाश्वत है। और गहरे जाओ, तो वह जो खिलना, जिसको हम फूलना कहते हैं, वह जो फूल होने की आत्मा है, वह जो खिलाव है, वह एक ही है। जब गुलाब का फूल खिलता और कमल का फूल खिलता--उनके रूप अलग, ढंग अलग, व्यक्तित्व अलग, देह अलग, गंध अलग--सब अलग, आकार अलग, लेकिन खिलना तो एक ही जैसा है। चाहे घास का फूल खिले और चाहे कमल का फूल खिले, खिलना तो एक जैसा है। वह जो खिलावट है, वह उनका धर्म है।
फिर फूलों को छोड़ो। एक फूल खिलता है और एक सुंदर युवती खिलती है। आकाश में तारा खिलता है। ये जो इतनी अनंत अभिव्यक्तियां होती हैं, इनमें बड़ा भेद है। लेकिन इन सबके और गहरे चलो, तो तुम पाओगेः सबके भीतर खिलने की एक परम अभीप्सा है।
तुमने देखा, हमारे पास एक शब्द है--प्रफुल्लता। वह फूल से ही बना है। अर्थ तो होता हैः आनंद; लेकिन बना है फुल्लता से, फूलने से। प्रफुल्लता! जब कोई आनंदित होता है, तब उसमें भी कुछ खिलता है।
तुम आनंदित आदमी में देख सकते हो, कुछ खिलता हुआ। और दुखी आदमी में देख सकते हो, कुछ बंद हो गया। दुखी आदमी बंद हो जाता है; अपने में सिकुड़ जाता है; संकुचित हो जाता है। प्रसन्न--प्रफुल्लित--खिल जाता है। प्रफुल्लित आदमी के पास तुम एक तरह की सुवास पाओगे, जैसी फूलों में होती है। एक तरह का रंग, एक तरह का निखार पाओगे, जैसा फूलों में होता है। आनंदित आदमी के पास तुम्हें गंध मिलेगी; तुम्हें वैसा ही आनंद-अहोभाव मिलेगा, जैसा फूलों में होता है।
इसलिए फूल आनंद के प्रतीक बन गए। और इसलिए मंदिरों में लोग फूल ले जाते हैं चढ़ाने। वे प्रतीक हैं। क्योंकि परमात्मा को तुम अपना सिकुड़ापन कैसे चढ़ाओगे! अपना फूलापन चढ़ाओगे। उसके चरणों में तुम प्रफुल्लित होकर अपने को निवेदन करोगे।
ये फूल तो प्रतीक हैं, जो तुम चढ़ा आते हो। इन्हीं को चढ़ाकर तृप्त मत हो जाना। ये तो संकेत हैं। ये तो इस बात की खबर हैं कि तुम परमात्मा के चरणों में चढ़ने योग्य तभी होओगे, जब तुम फूल की तरह खिले होओगे। जब तुम फूल बन गए होओगे, तभी तुम उसके चरणों में चढ़ने की पात्रता पाओगे। तुम फूल बनो, तो ही उसके चरण पा सकोगे। फूल बनने का अर्थ हैः तुम तृप्त हुए। तुम जो होना चाहते थे, हो गए।
गुलाब की झाड़ी पर गुलाब नहीं होता, तो तुमने ख्याल किया, कुछ खाली- खाली लगती है; कुछ खोया-खोया लगता है। जब गुलाब की झाड़ी पर फूल खिलता है, तो झाड़ी दुल्हन की तरह सजी होती है! मगन होती है! फूल के बाद फिर कुछ और नहीं

है। अंतिम चरण आ गया। जहां तक आना था, वहां तक आना हो गया; मंजिल आ गयी; अपना घर आ गया।
ऐसा ही तो बुद्धपुरुषों में होता हैः खिल गए; अब कहीं और जाने को न रहा। जो था, वह सुगंध में बिखेर दिया। पवन उसे ले चला दूर-दूर, अनंत की दिशाओं में।
बुद्ध को मरे पच्चीस सौ साल हो गए, लेकिन जिनको भी थोड़ी सी समझ है, उन्हें आज भी उनकी सुगंध मिल जाती है। जिन्हें समझ नहीं थी, उन्हें तो उनके साथ मौजूद होकर भी नहीं मिली। जिनमें थोड़ी संवेदनशीलता है, पच्चीस सौ साल ऐसे खो जाते हैं कि पता नहीं चलता; फिर बुद्ध जीवंत हो जाते हैं। फिर तुम्हारे नासापुट उनकी गंध से भर जाते हैं। फिर तुम उनके साथ आनंदमग्न हो सकते हो। समय का अंतराल अंतराल नहीं होता; न बाधा बनती है। सिर्फ संवेदनशीलता चाहिए।
हालांकि ऐसे लोग भी थे, जो बुद्ध को देखने गए और जिन्होंने कहाः भाई! हमें तो कुछ दिखायी नहीं पड़ता!
अंधे रहे होंगे; बहरे रहे होंगे; जड़ रहे होंगे। दुख से बंद रहे होंगे। रंध्र भी नहीं होगी उनमें, जहां से बुद्ध की ज्योति प्रवेश कर जाए। सब द्वार-दरवाजे बंद करके अपने कारागृह में रहे होंगे। बुद्ध बाहर-बाहर रह गए। गंध आयी, द्वार से लौट गयी। प्रकाश आया, द्वार से लौट गया। और तुमने कहाः हमें तो भाई कुछ दिखायी नहीं पड़ता।
देखने के लिए आंखें चाहिए। देखने के लिए खुलापन चाहिए। तुम वही देख सकते हो, जो तुम थोड़े-थोड़े अर्थों में होने लगे। तुम खिलो, तो तुम खिले हुए को देख सकोगे। तुम बंद हो तो तुम बंद को ही देख पाओगे। समान समान को समझ पाता है। तुम वही जान पाते हो, जो तुम हो।
इसलिए चोर चोर को पहचान लेता है। हजार आदमियों की भीड़ में एक चोर दूसरे चोर को पहचान लेता है। जेबकतरा जेबकतरे को पहचान लेता है। बेईमान बेईमान को पहचान लेता है। साधु ही साधु को पहचान पाएगा।
तुम वही पहचान सकते हो, जिसकी तुम्हारे भीतर थोड़ी अनुभूति होनी शुरू
हो गयी। दीया सूरज को पहचान सकता है; हालांकि दीया बड़ा छोटा है, मगर रोशनी तो वही है; प्रकाश तो वही है; प्रकाश का गुणधर्म तो वही है। बूंद सागर को पहचान सकती है; सागर होना जरूरी नहीं है। लेकिन कम से कम बूंद तो हो जाओ! क्योंकि बूंद में भी सागर का सारा तत्व आ गया। एक बूंद को समझ लो, तो सब सागरों की कथा समझ ली।
वैज्ञानिक अगर एक बूंद का विश्लेषण कर लेते हैं, तो वे कहते हैंः हमें पानी के सारे राज पता हो गए। फिर जल कहीं भी होगा; यहां ही नहीं, चांद-तारों पर कहीं होगा, तो भी हमने उसका राज समझ लिया। जल कहीं भी होगा, तो एच टू ओ ही होगा। वह उद्जन और आक्सीजन से ही मिलकर बनेगा। कहीं भी जल होगा, ऐसा ही होगा। एक बूंद जल को समझ लिया, तो सारे अस्तित्व में जहां-जहां जल है, सब समझ में आ गया।
बुद्धत्व को समझना हो, तो एकाध पखुड़ी तो तुम्हारी कम से कम खुले। न सही पूरी कली फूल बने, एकाध पखुड़ी खुले, एकाध खिड़की खुले, एकाध वातायन से गंध आए।
तो फूल प्रतीक है परिपूर्णता का। क्षणभंगुरता का भी प्रतीक है, परिपूर्णता का भी प्रतीक है। जीवंतता का भी प्रतीक है।
फूल से ज्यादा जीवंत तुमने कोई चीज देखी! हालांकि सुबह खिलता, सांझ मुर्झा जाता। और उसी के पास पड़ा हुआ पत्थर, सदियों से पड़ा है, फिर भी पत्थर पत्थर है। फूल फूल है। पत्थर जीवंत नहीं मालूम होता; जड़ है; शायद इसीलिए ज्यादा देर जीता है। फूल इतना जीवंत है कि ज्यादा देर जी कैसे सकता है! जितनी जीवंतता होगी, जितनी जीवंतता की गहराई होगी, उतनी ही जल्दी स्वप्न की तरह जीवन उड़ जाएगा।
फूल और बातों का भी प्रतीक है। जैसे योग में मनुष्य का जो अंतिम चक्र
है, उसको सहस्रार कहा है। कहा हैः सहस्रदल-कमल। जैसे मनुष्य की चेतना जब परिपूर्ण रूप से प्रगट होती है, तो हजार-हजार पखुड़ियों वाला कमल खिलता है।

इसलिए बुद्ध को, महावीर को, और अवतारी पुरुषों को हमने कमल पर खड़ा किया है। वह सिर्फ सूचक है। कोई ये कमल पर ही खड़े नहीं रहे। ये कोई नाटक-मंडली में नहीं थे कि कमल पर खड़े रहे! और कमल पर खड़े-खड़े करोगे भी क्या! लेकिन कमल प्रतीक है। ये पूरे खिल गए। ये पूरे खिलाव पर सवार हो गए--यह मतलब है। इनके भीतर कुछ भी अनखिला न रहा।
तो बुद्ध का उस दिन हाथ में कमल के फूल को लेकर महाकाश्यप को दे देना,
इन सब बातों की सूचना थी।
फिर, फूल बिना कुछ कहे बहुत कुछ कहता है। मौन है उसका वक्तव्य। हालांकि खूब बोलता है फूल; वाणी से नहीं बोलता। तुम ठिठके खड़े रह जाते हो।
कभी-कभी फूल तुम्हें ऐसा आकर्षित कर लेता है; कभी-कभी फूल में तुम्हें इस जगत का सर्वाधिक सौंदर्य झलकता हुआ दिखायी पड़ जाता है। फूल की कोमलता! फूल का चुप मौन-संगीत! बोलता नहीं, फिर भी अभिव्यक्ति है!
ऐसा ही तो बुद्धपुरुष का वक्तव्य है। ऐसा ही तो उस दिन बुद्ध चुप रहे। फूल को देखते रहे। महाकाश्यप समझा कि इस घड़ी में बुद्ध फूल ही हैं, और कुछ भी नहीं। आज बोलेंगे नहीं; आज जैसे फूल चुपचाप निवेदन करता है, वैसा ही निवेदन कर रहे हैं। आज तो वे ही समझ पाएंगे बुद्ध को, जो शून्य की भाषा समझ सकते हैं। महाकाश्यप समझ पाया। वह अकेला था, जो शून्य की भाषा समझ सकता था।
फिर, फूल को जब तुम देखते हो... जैसा बुद्ध ने उस सुबह देखा, शायद तुमने वैसा कभी देखा ही न हो। फूल को भी देखने-देखने के ढंग हैं। देखने वाले पर निर्भर करता है।
बगीचे में फूल खिले हैं; एक माली को ले आओ। वह तत्क्षण सोचने लगेगाः किन को तोड़ लूं, किन को बेच दूं बाजार में; कितने पैसे मिल जाएंगे! उसे फूल में सिर्फ पैसे दिखायी पड़ेंगे। वह रुपए गिनने लगेगा।
किसी वैज्ञानिक को ले आओ। वह भी फूल को देखेगा। सोचने लगेगाः किन रासायनिक द्रव्यों से मिलकर बना है? वह विश्लेषण करने में लग जाएगा। वह फूल को तोड़कर जल्दी अपनी प्रयोगशाला में भागना चाहेगा--कि देख लूं छांटकर, काटकर, विश्लेषण करके कि क्या इसका राज है!
तुम एक कवि को लाओ। उसे न तो रुपए-पैसे दिखायी पड़ेंगे--उसे फूल को बाजार में बेचना नहीं है। बेचने की बात ही उसे जघन्य अपराध मालूम होगी। उसे फूल का विश्लेषण भी करना पाप मालूम होगा। फूल को तोड़ना ही पाप है। फिर फूल को खंड-खंड करना सौंदर्य की हत्या है। वह भी फूल को देखेगा और शायद उसके भीतर एक गीत उमगे। वह फूल की प्रशंसा में एक गीत गाए; स्तुति करे।
और तुम किसी नर्तक को ले आओ। शायद वह, फूल जैसे हवा में नाच रहा है, ऐसा उसके आसपास नाचने लगे।
तुम किसी चित्रकार को ले आओ। वह अपनी रंग-तूलिका लाकर जल्दी ही केनवास पर इस फूल को उतारने में लग जाएगा। इसका प्रतिबिंब पकड़ने में लग जाएगा। क्योंकि यह फूल तो खो जाएगा। इसके पहले कि खो जाए, इसे शाश्वत कर देना है। इसके पहले कि यह खो जाए, इसके भागते हुए सौंदर्य को पकड़ लेना है।
अलग-अलग लोग अलग-अलग ढंग से एक ही फूल को देखेंगे।
बुद्ध ने कैसे देखा? बुद्ध उस दिन आए। राह पर किसी ने उन्हें कमल का फूल भेंट कर दिया था। बे-मौसम का फूल था।
इस कथा के पीछे एक और कथा है। उस कथा को भी समझो।
एक गरीब आदमी सुबह उठा। उसने अपने मकान के पीछे पोखरे में कमल का बे- मौसम फूल खिला देखा। ऐसा कभी नहीं देखा था उसने। यह समय न था फूल खिलने का।
इस समय फूल कभी खिलता ही नहीं था कमल का।
उसने फूल तोड़ा और सोचा कि कौन इसके दाम दे सकेगा! सम्राट ही दे सकता है दाम। और तो कोई पहचानेगा क्या! बे-मौसम का हो कि मौसम का हो, फूल फूल है। सम्राट तक कैसे पहुंच पाएगा!
ऐसा सोचता वह राजमहल की तरफ जाता था; तब उसे राह पर वजीर का रथ आता हुआ मिला। वजीर ने उसके हाथ में बे-मौसम का फूल देखा। रथ रोका। और कहाः कितना लेगा इसका?

उस गरीब आदमी की हिम्मत कितनी; उसने कहा कि सौ रुपए मिल जाएं। वजीर ने कहा कि हजार दूंगा, फूल मुझे दे। जब वजीर ने कहाः हजार रुपए दूंगा, फूल मुझे दे; तब वह गरीब आदमी थोड़ा चौंका। उसने सोचाः मामला इतने सस्ते में बेच देने जैसा नहीं लगता। और यह वजीर ही है। काश! सम्राट से मिलना हो जाए, तो पता नहीं कितना मिले! उसने कहा कि नहीं; नहीं बेचूंगा। क्षमा करें। माफ करें। बेचूंगा ही नहीं। दस हजार रुपए देने को वजीर राजी था। लेकिन उसने कहाः नहीं; अब बेचना ही नहीं है मुझे। जैसे-जैसे रुपए बढ़ाता गया वजीर, वैसे-वैसे उसने कहाः मुझे बेचना नहीं है।
वजीर जा रहा था बुद्ध के दर्शन को। उसने सोचा, बुद्ध के चरणों में बे- मौसम का फूल! चाहे कितने में ही मिल जाए, ले लेने जैसा है। बुद्ध के चरणों में रखने जैसी चीज है। लेकिन उस गरीब आदमी ने नहीं बेचा। उस आदमी का नाम था सुदास। वह एक चमार था।
जैसे ही वजीर का रथ गया कि राजा का रथ आया। तब तो वह बड़ा प्रसन्न हो गया। सोचने लगाः आज ये सब कहां जा रहे हैं सुबह-सुबह! राजा ने भी फूल देखा; रथ रुकवाया। बोलेः इसके कितने दाम लेगा? जितना मांगेगा, उससे दस गुना देंगे। अब तो सुदास बड़ी मुश्किल में पड़ गया। जितना मांगे, उससे दस गुना मिल सकता है! दस हजार मांगे, तो लाख मिल सकता है। दस लाख मांगे, तो करोड़ मिल सकता है!
उसने कहाः महाराज! मैं गरीब आदमी। बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं! एक प्रार्थना है, इतना दाम देकर आप इस फूल का करोगे क्या! वजीर भी बहुत दाम दे रहा था। मेरी तो बुद्धि चकरा गयी। मैं तो सोचकर निकला था कि कोई पांच रुपए भी दे दे, तो बहुत। बड़ी हिम्मत करके मैंने सौ मांगे थे, जानते हुए कि वजीर नाराज होगा और गुस्सा करेगा। लेकिन वह हजार देने को तैयार था। फिर दस हजार देने को तैयार था। अब आप हैं कि आपने मुझे और उलझन में डाल दिया। आप कहते हैं, जितना मांगेगा, उससे दस गुना मिलेगा; फूल मुझे दे दे। और फिर सुबह-सुबह आप सब जा कहां रहे हैं आज?
उस सम्राट ने कहाः तुझे पता नहीं! भगवान बुद्ध का आगमन हुआ है। शायद उनके आने से ही बे-मौसम का फूल खिला है। शायद उनकी मौजूदगी का ही परिणाम है, प्रसाद है। उन्हीं के दर्शन को जा रहा हूं। और यह फूल किसी भी कीमत पर मुझे चाहिए। बहुत लोगों ने कमल के फूल बुद्ध के चरणों में चढ़ाए होंगे, लेकिन बे-मौसम... ! यह बात ही विशिष्ट है। यह मेरे ही हाथ से होनी चाहिए। तू मांग ले, जो तुझे मांगना है।
लेकिन तुम जानते हो, सुदास को क्या हुआ! सुदास ने कहाः प्रभु! फिर मुझे क्षमा कर दें। फिर मैं ही उनके चरणों में यह फूल चढ़ाऊंगा।
अभी तक सुदास परेशान था, अब सम्राट परेशान हो गए। दस गुना देने की तैयारी है और यह गरीब आदमी क्या कह रहा है!
सुदास ने कहा कि क्षमा करें मुझे। मैं गरीब आदमी हूं। बेचने चला था। मुझे पता ही नहीं था कि भगवान का आगमन हुआ है। धन्यवाद आपका! लेकिन अब बेच न सकूंगा। जब आप इतना दाम देकर चरणों में चढ़ाने जा रहे हैं, तो चरणों में चढ़ाने में जरूर ज्यादा रस होगा, ज्यादा आनंद होगा। मैं ही चढ़ा लूंगा। गरीब तो हूं ही, तो गरीब तो रहा ही आऊंगा। क्या फर्क पड़ता है! इतने दिन गरीबी में गुजार दिए, आगे भी गुजार दूंगा। मगर फूल सुदास ही चढ़ाएगा।
ऐसे उस दिन बुद्ध जब प्रवचन को आते थे, तो मार्ग पर सुदास ने उनके चरणों में फूल रख दिया था। वही फूल महाकाश्यप को दिया था।
वह फूल भी अदभुत था। सुदास का बड़ा दान था; बड़ी कुरबानी थी; बड़ा त्याग था। फूल साधारण नहीं था। एक तो बे-मौसम खिला था। फिर एक गरीब आदमी ने सम्राट को धुतकारा था। और एक गरीब आदमी ने कह दिया थाः अब फूल नहीं बिकेगा। फूल अनूठा था। बुद्ध उसी फूल को लेकर आकर प्रवचन-सभा में बैठ गए। और उस फूल को देखने लगे।
मैंने कहाः चित्रकार एक ढंग से देखेगा; वैज्ञानिक और ढंग से; कवि और ढंग से; माली और ढंग से। बुद्ध ने कैसे देखा? बुद्ध का ढंग सबसे भिन्न होगा; सबसे अनूठा और सबसे पार।

जब बुद्ध उस फूल को देखते रहे, तो सिर्फ साक्षी मात्र थे। कोई विचार
भी भीतर नहीं था। फूल के संबंध में कोई धारणा भी नहीं थी। फूल सुंदर है, असुंदर है; ऐसा है, वैसा है--ऐसी कोई तरंग नहीं उठ रही थी। बुद्ध निस्तरंग उस फूल को लिए बैठे थे। फूल था; बुद्ध थे। दोनों मौजूद थे। दोनों पूरी तरह मौजूद थे। दोनों की मौजूदगी का मिलन हो रहा था। लेकिन कहीं कोई शब्द, कहीं कोई विचार, कहीं कोई प्रत्यय, कहीं कोई तरंग नहीं थी।
उस साक्षीभाव में ही बुद्ध का संदेश था। वही महाकाश्यप ने पकड़ा।
महाकाश्यप को पूरा सूत्र मिल गया। झेन संप्रदाय की बुनियाद पड़ी। क्या था सूत्र? साक्षी हो जाओ। ऐसे चुप हो जाओ कि तुम्हारे भीतर कोई विचार न उठे।
जब तुम कुछ देखो, तो निर्विचार देखो। चैतन्य तो हो, लेकिन विचार न हो।
दर्पण बन जाओ।
अगर दर्पण बन जाओ, तो जो है, वही झलके। जो है, वही झलके, तो सत्य मिल गया। जब तक तुम विचार करोगे, तब तक झलक विकृत होती रहती है; कुछ का कुछ दिखायी पड़ता है। तुम्हारे विचार रंग जाते हैं। तुम सोचकर ही पहले से बैठे होः ऐसा है, वैसा है। तो जो है, वही नहीं दिखायी पड़ता है। तुम्हारी आंख पहले ही धुएं से भरी है। तुम्हारे दर्पण पर पहले से ही धूल जमी है।
उस सुबह संदेश क्या था बुद्ध का? दर्पण हो जाओ। वह फूल तो प्रतीक ही था। उस फूल से भी बड़ी बात जो बुद्ध कह रहे थे, वह थी साक्षीभाव। वे कह रहे थेः ऐसे देखो--जगत को ऐसे देखो--जैसे मैं इस फूल को देख रहा हूं। सिर्फ शुद्ध दृष्टि हो। इसी शुद्ध दृष्टि को बुद्ध ने सम्यक दृष्टि कहा है--ठीक दृष्टि।
ठीक दृष्टि यानी भीतर कोई दृष्टि ही न हो; सिर्फ दर्शन हो। ठीक दृष्टि यानी तुम्हारा कोई भाव न हो, कोई मंतव्य न हो; सिद्धांत न हो, शास्त्र न हो। सूना आकाश हो भीतर। उस सूने आकाश से जगत को देखो; तब तुम वही देख लोगे, जो है। तुम वही देख लोगे, जो छिपा है, अदृश्य है। नहीं तो तुम कुछ का कुछ देखते रहोगे।
फूल तो प्रतीक था। फूल तो बाहर था। बुद्ध ने उस दिन अपने भीतर का पूरा फूल भी प्रगट किया। बाहर फूल था, भीतर फूल था। बाहर कमल था, भीतर कमल था। दो कमलों का मिलन हो रहा था।
इन दो कमलों के मिलन को देखकर महाकाश्यप हंसा; प्रफुल्लित हुआ। यह अपूर्व घटना थी। इसलिए बुद्ध ने यह कमल महाकाश्यप को भेंट कर दिया और कहा अपने संन्यासियों को--कि जो मैं शब्द से कह सकता था, तुम्हें दे दिया; और जो शब्द से नहीं कह सकता था और नहीं कहा जा सकता था, वह मैं महाकाश्यप को दे रहा हूं। निःशब्द दे रहा हूं महाकाश्यप को।
फिर ऐसे ही झेन की परंपरा में एक गुरु दूसरे गुरु को निःशब्द में देता रहा है।
एक कथा और।
महाकाश्यप की परंपरा में हुआ बोधिधर्म। फिर बोधिधर्म चीन गया; और भारत से झेन की परंपरा चीन पहुंची। बोधिधर्म भारतीय गुरुओं में अट्ठाइसवां गुरु था।
चीन में बोधिधर्म नौ वर्ष तक दीवाल की तरफ मुंह किए बैठा रहा। लोग आते थे, तो उनकी तरफ देखता नहीं था। पीठ ही किए रहता था। लोग पूछते भी कि बहुत भिक्षु हमने देखे; बहुत संत देखे; मगर आप हमारी तरफ पीठ क्यों किए हैं? तो बोधिधर्म कहताः जो मेरी आंखों में पड़ने के योग्य होगा, जब उसका आगमन होगा, तब देखूंगा। अभी देखने से कुछ सार नहीं है। अभी तो दीवाल देखूं कि तुम्हें देखूं, सब बराबर है। दीवाल ही है चारों तरफ। तुम भी दीवाल हो!
नौ वर्ष बाद वह व्यक्ति आया, जिसकी प्रतीक्षा बोधिधर्म ने की थी। बोधिधर्म को भी महाकाश्यप मिला; जैसे बुद्ध को महाकाश्यप मिला था। उस व्यक्ति ने आकर अपना एक हाथ तलवार से काटकर बोधिधर्म को भेंट किया और कहाः जल्दी से इस तरफ मुंह करो अन्यथा गरदन भी भेंट कर दूंगा! फिर क्षणभर बोधिधर्म नहीं रुका। जल्दी से घूमा। वह नौ साल जो दीवाल को देखता रहा था, वह घूमा और उसने कहा कि तो तुम आ गए! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में था।

क्योंकि जो सब देने को तैयार हो, गरदन देने को तैयार हो, वही मेरे संदेश को झेल सकता है।
इस व्यक्ति को बोधिधर्म ने अपना संदेश दे दिया, जो बुद्ध ने महाकाश्यप को दिया था। वह क्या है संदेश? शब्द में कहने का उपाय नहीं।
यह नौ वर्ष तक दीवाल का साक्षी रहा था। बुद्ध तो थोड़ी देर फूल के साक्षी रहे थे। बोधिधर्म नौ वर्ष तक दीवाल को देखता रहा था। यह नौ वर्ष का साक्षीभाव था, जो उसने इस व्यक्ति को दे दिया।
फिर यह व्यक्ति गुरु हुआ। बोधिधर्म वापस लौट गया चीन से भारत की तरफ। भारत कभी पहुंचा नहीं। कहीं हिमालय में खो गया होगा। और खो जाने को बेहतर जगह है भी नहीं।
फिर यह व्यक्ति, जिसको बोधिधर्म दे आया था, बूढ़ा हुआ; और इसे भी अपने शिष्य की तलाश थी। इसके आश्रम में पांच सौ भिक्षु थे। इसने एक दिन खबर की कि अब मुझे शिष्य की तलाश है। जो भी सोचता हो कि योग्य हो गया है, वह मेरे द्वार पर आकर लिख जाए धर्म का सार चार पंक्तियों में।
जो सबसे बड़ा पंडित था, महापंडित था, स्वभावतः उसी ने हिम्मत की। उसी
ने बड़े डरते-डरते हिम्मत की। क्योंकि वे जानते थे अपने गुरु को कि उसे धोखा नहीं दिया जा सकता। औरों ने तो हिम्मत ही नहीं की, विचार ही नहीं किया। लेकिन एक ने हिम्मत की, जो सबसे बड़ा पंडित था, जिसे शास्त्र कंठस्थ थे। वह रात चोरी से गया; वह भी दिन में नहीं; रात जाकर गुरु के द्वार पर चार पंक्तियां लिख आया। उसने पंक्तियां लिखी थीं कि--
मन दर्पण की भांति है
इस पर विचारों-विकारों की धूल जम जाती है
उस विचार-विकार की धूल को पोंछ दें
यही धर्म का सार है।
दूसरे दिन सब में खबर पहुंच गयी कि बात तो कह दी है; बिल्कुल ठीक कह दी। लेकिन गुरु प्रसन्न नहीं था। गुरु ने पढ़े वचन; लेकिन चुप रहा; कोई वक्तव्य न दिया। लोग सोचने लगेः यह ज्यादती है। इससे सुंदर और वचन क्या लिखा जाएगा! इसमें तो सारा सार आ गया।
यह खबर चलती थी; विवाद चलता था; भिक्षु इस पर एक-दूसरे से चर्चा करते थे। ऐसे दो भिक्षु चर्चा करते भोजनालय से निकलते थे कि आश्रम के भोजनालय में जो व्यक्ति चावल कूटने का काम करता था, वह इन दोनों की बातें सुनकर हंसने लगा।
वह बारह साल से चावल ही कूट रहा था। बारह साल पहले आया था, तब गुरु ने उससे पूछा थाः तू धर्म जानना चाहता है या धर्म के संबंध में जानना चाहता है? तो उसने कहा थाः संबंध में जानकर क्या करूंगा! धर्म ही जानना है। तो गुरु ने कहा थाः तो फिर जा और अब चौके में चावल कूट। जब जरूरत होगी, मैं आ जाऊंगा। अब तू मेरे पास मत आना।
तो बारह साल से यह आदमी चुपचाप चावल कूट रहा था। बुद्ध थोड़ी देर चुप रहे थे फूल को हाथ में लेकर। बोधिधर्म नौ साल दीवाल के सामने बैठा रहा था। और यह व्यक्ति! इसका नाम थाः हुईनेंग; यह बारह साल से चुपचाप चावल कूट रहा था!
लोग जानते नहीं थे कि इसका कोई अस्तित्व है। सुबह से उठता, सांझ तक चावल कूटता रहता। रात गिर पड़ता। सुबह फिर उठकर चावल कूटता। बारह साल तक सिर्फ चावल कूटा। न अखबार पढ़ा। न किसी से बात की। न किताब पढ़ी। न कभी किसी से बोला। बारह साल में इसका सब शांत हो गया था। यह साक्षीभाव को उपलब्ध हो गया।
यह बारह साल में पहला मौका था, जब किसी ने इसको हंसते देखा। वे दोनों भिक्षु चौंके। यह ऐसा ही था, जैसे कि तुम पत्थर पड़ा हो और एकदम उसको चलते हुए देखो। बारह साल! किसी ने सोचा भी नहीं था कि यह हंसता भी है, कि इसमें प्राण भी हैं, कि आत्मा भी है! इसका कोई विचार ही नहीं करता था। बड़े-बड़े सवाल थे विचारने को। कौन इसकी फिकर करता था!
इसको जोर से हंसते देखकर वे दोनों ठिठके। उन्होंने कहाः तुम क्यों हंसे? और बारह साल से तुम्हें किसी ने हंसते नहीं देखा! बात क्या हुई आज!

जैसे महाकाश्यप हंसा था, ऐसे हुईनेंग हंसा। और हुईनेंग ने कहा कि मैं इसलिए हंसा कि ये पंक्तियां जो लिखी हैं, जिसने भी लिखी हों, महामूढ़ है। अब तो और भी चौंकाने वाली बात हो गयी। उन्होंने कहा कि चावल कूटते तेरी जिंदगी बीत गयी और तू समझता है, तू ज्ञानी है! और हमारे आश्रम के सबसे बड़े महापंडित को महामूढ़ कहता है! तो तू इनसे बेहतर पंक्तियां लिख सकता है? उसने कहाः लिख तो सकता हूं, लेकिन मैं लिखना भूल गया हूं। अगर तुम लिख दो, तो मैं बोल दूंगा। चलो अभी।
वह गया और उसने जाकर कहा कि पोंछ दो ये पंक्तियां दूसरे की लिखी हुई। मैं जो कहता हूं, लिखो।
पहली पंक्तियां थीं कि--
मन दर्पण की भांति है
इस पर विचार-विकार की धूल जम जाती है
उसे पोंछ दो
यही धर्म का राज है।
हुईनेंग ने कहाः
कैसा दर्पण! कहां का दर्पण!
मन कोई दर्पण नहीं है
धूल जमेगी कहां?
ऐसा जिसने जान लिया, उसने धर्म को जाना।
मन का कोई दर्पण ही नहीं है, धूल जमेगी कहां? जिसने ऐसा जान लिया, उसने धर्म को जाना।
इस व्यक्ति को मिली संपदा। जो संपदा बुद्ध ने महाकाश्यप को दी थी, वह संपदा बूढ़े गुरु ने हुईनेंग को दे दी।
ऐसी बड़ी अनूठी घटनाओं से झेन की परंपरा चलती रही है। लेकिन सदा संवाद शून्य का है, साक्षी का है।

दूसरा प्रश्नः बौद्ध-साहित्य में एक अपूर्व प्रसंग है। एक समय विमलकीर्ति ने अपने पांच सौ शिष्यों को बुद्ध के पास उपदेश लेने भेजा और स्वयं अस्वस्थ होकर वैशाली में रहे। बुद्ध ने सारिपुत्र, मौद्गलपुत्र, महाकाश्यप, सुभूति, पूर्णमैत्रायणीपुत्र, महाकात्यायन, अनिरुद्ध, उपाली, राहुल, आनंद और अन्य सभी बोधिसत्वों को एक-एक करके विमलकीर्ति के पास जाकर स्वास्थ्य का समाचार लाने को कहा। पर आश्चर्य, सभी ने कहा कि वे इस योग्य नहीं कि उनके स्वास्थ्य के संबंध में पूछने जाएं। और इस असमर्थता के लिए स्पष्ट कारण कहे। और अंत में बुद्ध के कहने पर महासत्व मंजुश्री सभी को लेकर विमलकीर्ति के पास गए और उनके बीच अदभुत संवाद घटा।
ओशो! महासत्व विमलकीर्ति की विस्मयजनक गुणवत्ता को हमें कहिए। और यह
भी समझाइए कि सभी प्रमुख शिष्य और बोधिसत्व उनके पास जाने में क्यों कर झिझके और किस अदम्य साहस के वश महासत्व मंजुश्री उनके पास जा पाए?

बड़ी महत्वपूर्ण कथा है।
विमलकीर्ति संन्यासी नहीं था; विमलकीर्ति गृहस्थ था। विमलकीर्ति ने कभी घर नहीं छोड़ा। क्योंकि विमलकीर्ति का भी कहना यही थाः छोड़ना क्या! पकड़ना क्या! जो छोड़ता है, उसने यह बात मान ही ली कि मैंने पकड़ा था। जो त्यागता है, उसने यह बात मान ही ली कि मेरा था।
समझना। जब तुम कहते हो, मैंने धन त्याग दिया, तो तुम क्या घोषणा कर रहे हो? तुम परोक्ष से यह घोषणा कर रहे हो कि धन मेरा था। त्याग में भी घोषणा यही है कि मेरा था।
विमलकीर्ति कहता थाः वास्तविक त्याग तो वही है, जो जानता है, मेरा नहीं है तो त्यागूं कैसे? पकडूं कैसे? छोडूं कैसे? पकड़ना भी गया; छोड़ना भी गया। वही वास्तविक त्याग है।
इसलिए विमलकीर्ति ने कभी घर नहीं छोड़ा। पत्नी नहीं छोड़ी। बच्चे नहीं छोड़े। दुकान नहीं छोड़ी। काम नहीं छोड़ा। उसकी दृष्टि बड़ी पैनी थी। और

जिन्होंने छोड़ा था, उन्हें वह झंझट में डालता था। रास्ते पर कहीं मिल जाता... ।
मौद्गल्यायन लोगों को समझा रहा था एक रास्ते परः कि छोड़ो; संसार असार है। आ गया विमलकीर्ति। उसने कहाः असार है, तो छोड़ें क्यों? असार है ही-- इतना जानना काफी है। जब असार को कोई छोड़ता है? जब असार ही है, तो छोड़ने को बचा क्या?
मौद्गल्यायन को उसने घबड़ा दिया। ऐसे उसने बुद्ध के सारे शिष्यों को परेशान कर रखा था। वह खुद भी बुद्ध का शिष्य था। लेकिन अनूठा था। और सब शिष्य संन्यस्त थे, दीक्षित हुए थे, भिक्षु थे। वह संसार में था। वह परम संन्यासी था।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कहता। मैं चाहता हूंः तुम विमलकीर्ति बनो। तुम जहां हो, वहीं समझो। जैसे हो, वैसे ही रहो। भीतर बोध जगे। ऊपर की क्षुद्र बातों में मत पड़ो।
पत्नी छूटे, यह सवाल नहीं है। पत्नी के प्रति मेरी पत्नी है, यह भाव छूट जाए; इतना काफी है। कौन किसका है? पत्नी तुम्हारी कैसे? तुम पत्नी के कैसे? सब मालकियत झूठी है। सब स्वामित्व झूठा है। इतना समझ आ जाए... ।
तो ध्यान रखना, यह तो समझ में नहीं आता। पहले तुम कहते होः धन मेरा।
फिर कहते होः मैंने धन छोड़ा। मगर स्वामित्व तो कायम रहा। जब था, तब भी था। अब छोड़ा, अब भी है।
मेरे एक परिचित हैं। कई वर्ष पहले उन्होंने घर-गृहस्थी छोड़ दी; धन इत्यादि छोड़ दिया। मगर वे कहते फिरते हैं अभी भी; तीस साल हो गए, अभी भी कहते हैंः मैंने लाखों रुपए पर लात मार दी!
मैं उनको मिलने गया एक बार, तो मैंने कहा कि लात लग नहीं पायी मालूम होता है! लग गयी होती, तो अब उसकी बकवास... ! तीस साल हो गए! बात खतम हो गयी। तीस साल पहले लात चलायी थी, अब इसकी कोई चर्चा तीस साल तक करता है! और अभी भी तुम बड़े रस से कहते हो कि लाखों रुपयों पर लात मार दी! हजारों पर मारते, तो इतना मजा न आता। सैकड़ों पर मारते, तो कुछ खास बात ही न थी। करोड़ों पर क्यों नहीं मारी? करोड़ों पर मारो, तो और रस आएगा! अरबों पर मारो, तो और रस आएगा। मगर यह रस क्या खबर दे रहा है?
लाखों पर लात मार दी, यह नयी अकड़ है। लाख तुम्हारे थे? अब भी तुम मानते हो, तुम्हारे थे? तुमने यह हिम्मत की कैसे लात मारने की? जो तुम्हारा नहीं उस पर तुमने लात मारी कैसे? तुम हो कौन?
लात तो हम उसी को मार सकते हैं, जो अपना हो; जिस पर मालकियत हो। तीस साल चले गए; लात चूकती ही चली गयी है। लात मारने का सवाल ही नहीं। सिर्फ समझ की बात है। यहां अपना क्या है? हम नहीं थे, तब भी सब था। हम नहीं होंगे, तब भी सब ऐसा ही होगा। इस दो दिन की जिंदगी में अपना-तेरा कर लेने का सब भ्रम है। विमलकीर्ति बुद्ध के भिक्षुओं को बड़ी दिक्कत में डाल देता था। खुद बुद्ध का परम शिष्य था। लेकिन अनूठा था। अकेला था, जिसने घर-द्वार नहीं छोड़ा। और उससे सभी डरते थे। क्योंकि वह ऐसे प्रश्न उठाता था, जिनके उत्तर नहीं हो सकते थे। जैसे कोई समझा रहा है... ।
बुद्ध के भिक्षु जाते थे समझाने। किसी वृक्ष के नीचे सारिपुत्र बैठा
है और लोगों को समझा रहा हैः ध्यान करो। और आ गया विमलकीर्ति। तो पसीना छूट जाता सारिपुत्र को। क्योंकि वह खड़े होकर ऐसे सवाल उठा देता कि मुश्किल खड़ी कर देता। वह कहताः ध्यान करो! कौन करे ध्यान? करने वाला कौन? और कृत्य से कभी ध्यान हुआ है? ध्यान कृत्य है? करने में तो अहंकार है। और हर कृत्य अहंकार को मजबूत करता है।
इसलिए विमलकीर्ति कहताः ध्यान किया नहीं जाता। ध्यान होता है। करने
का शब्द वापस ले लो। कहो मत किसी से कि ध्यान करो। ध्यान कोई क्रिया है? ध्यान अक्रिया है--नान एक्शन।
ध्यान में करते क्या हो? सब करना छूट जाता है। करोगे कैसे? ध्यान में
तो बस होते हो। यह माला फेरनी, या घंटी बजानी, या जप करना--यह ध्यान नहीं है। क्योंकि इसमें तो करना जारी है। इसमें तो उपद्रव जारी है। इसमें तो मन का व्यापार जारी है।

जब मन का सब व्यापार रुक जाता है, तो माला कैसे फिरेगी? माला का फिरना
भी मन का ही व्यापार है। राम-राम, राम-राम कौन जपेगा? जब मन का व्यापार ही रुक गया, तो रामजी भी गए! फिर राम-राम जपना नहीं हो सकता। यह जपने में कुछ फर्क नहीं है। पहले काम-काम, काम-काम जपते थे। फिर राम-राम, राम-राम जपने लगे। इससे क्या फर्क पड़ता है!
कोई आदमी बैठा रुपैया-रुपैया जपता रहता है। कोई आदमी कुछ और जपता रहता है। मगर यह सब जपने में मन का व्यवसाय है; मन की क्रिया है। और मन की क्रिया जारी रहेगी, तो मन जिंदा रहेगा।
तो विमलकीर्ति कहता कि वापस ले लो शब्द अपने, सारिपुत्र! क्षमा मांग
लो इन लोगों से! ऐसा उसने सारे बुद्ध के शिष्यों को परेशान कर रखा था। और वह कहीं भी आ जाता मौके-बेमौके। और वह ऐसे बेबूझ प्रश्न खड़े कर देता था, जिनके उत्तर किसी के भी पास नहीं थे।
इसीलिए जब उसके पांच सौ शिष्य बुद्ध के दर्शन करने आए और उनसे खबर बुद्ध को मिली कि विमलकीर्ति बीमार है, स्वभावतः उन्होंने अपने प्रमुख शिष्यों को कहा कि तुम जाओ, विमलकीर्ति के स्वास्थ्य का समाचार पूछ आओ। मगर कोई जाने को राजी नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि क्षमा करिए। क्योंकि हम तो स्वास्थ्य का समाचार पूछने जाएंगे; वे कोई झंझट खड़ी करेंगे। वे वहीं चार आदमियों के सामने बेइज्जती करवा देंगे।
और वही हुआ। जब मंजुश्री गया और उसने पूछाः आप बीमार! तो विमलकीर्ति
ने कहाः सारा संसार बीमार है। यह कोई पूछने की बात है! यहां सभी दुख में पीड़ित हैं। जन्म बीमारी; जीवन बीमारी; जरा बीमारी; मृत्यु बीमारी। सब बीमारी है। तुम क्या पूछने आए हो? बेचारा मंजुश्री पूछा कि मेरा मतलब कि आपका स्वास्थ्य इत्यादि ठीक नहीं है! तो विमलकीर्ति ने कहा कि मैं तो सदा ठीक हूं। और जो ठीक नहीं है, वह मैं नहीं हूं।
अब ऐसे आदमी से स्वास्थ्य का समाचार पूछने जाना भी मुश्किल! क्योंकि
वह वहीं फजीहत हो गयी! कोई राजी नहीं था। उन्होंने कहाः क्षमा करें; हमारी योग्यता नहीं है। हमें उस आदमी के पास न भेजें। वह तो सिंह के मुंह में जाना है। वह कुछ न कुछ... वे बीमार हैं कि नहीं, हमें पक्का नहीं। हो सकता है सिर्फ बहाना हो हम को उलझाने का!
और सच बात यही थी कि विमलकीर्ति बीमार नहीं था। और ऐसे ही लेट रहे थे।
वह इन्हीं बोधिसत्वों की प्रतीक्षा कर रहे थे कि आ जाएं, तो इनको दुरुस्त किया जाए कि किसकी खबर पूछने आए हो? कौन बीमार? कैसा बीमार? बीमारी क्या है? देह बीमारी है, तो जो भी देह में है, वही बीमार है। देह उपाधि है और इसकी कोई औषधि कहां? तुम सोचते हो, तुम बीमार नहीं हो? अगर तुम बीमार नहीं हो, तो जगत में क्यों हो? जगत में तो आते ही वे हैं, जो बीमार हैं। जब कोई बीमार नहीं रह जाता, तो जगत से मुक्त हो जाता है। फिर उसका निवास मोक्ष में है। फिर यहां नहीं। जो स्वस्थ हो गया, जो स्वयं में स्थित हो गया, फिर यहां कहां! फिर तो गया परलोक। फिर तो खो जाता है यहां से।
वे सब जानते थे। विमलकीर्ति के ढंगों से वे परिचित थे। यह जैसे एक परीक्षा थी बोधिसत्वों की। सबने इनकार कर दिया। सिर्फ मंजुश्री राजी हुआ। मंजुश्री क्यों राजी हुआ? यह भी समझने जैसा है।
मंजुश्री भी अनूठा शिष्य है। वह अकेला है, जिसमें अहंकार नहीं है। इसलिए राजी हुआ। चलो, विमलकीर्ति दो-चार थपेड़े मारेंगे, तो क्या हर्जा है! चोट लगने वाला वहां भीतर कोई है नहीं, जिस पर चोट लग जाए। वहां अहंकार नहीं है। वहां अहंकार की रेखा भी नहीं है, तो चोट कैसे लगेगी?
मंजुश्री अकेला है बुद्ध के शिष्यों में, जो शून्यभाव में है। जब उससे कहा, तो वह तत्क्षण चलने को राजी हो गया। और उसने और सबको भी ले लिया साथ कि आओ भाई! जो होगा देखना। तुम डरते हो; तुम खड़े रहना। मैं चला जाऊंगा सिंह के मुंह में; और जो होगा देख लेना।
मंजुश्री गया और उसने सवाल किए। और हर सवाल के उत्तर में विमलकीर्ति
ने चांटा मारा। लेकिन एक भी चांटा मंजुश्री को लगा नहीं। मंजुश्री खरा उतरा। विमलकीर्ति ने उसका धन्यवाद किया। ऐसे ही व्यक्ति की तलाश थी। चलो; बुद्ध के शिष्यों में एक पारस-पत्थर बना!

विमलकीर्ति ने इधर झंझोरा; उधर झंझोरा। सोचा कि किसी तरह प्रतिक्रिया
हो जाए; क्रोधित हो जाए; अशांत हो जाए; सोचने लगे एक क्षण को मन में कि कहां फंस गए! हम भी मना कर दिए होते, जैसे सबने किया था। अब यह सब के सामने फजीहत हो रही है! लेकिन फजीहत का कोई सवाल ही नहीं है। अहंकार की फजीहत होती है; शून्य की क्या फजीहत! मंजुश्री वैसे ही रहा; जैसा आया था, वैसा ही रहा-- एकरस। जरा भी उद्विग्नता नहीं हुई। जरा भी अशांति नहीं हुई।
दूसरों की अकड़ क्या थी? दूसरों की अड़चन यह थी कि वे तो सब थे भिक्षु, संन्यासी; और विमलकीर्ति था गृहस्थ। पहले तो गृहस्थ के घर संन्यासी पूछने जाए कि कैसे हो! यही बात ठीक नहीं। क्योंकि संन्यासी तो ऊपर और गृहस्थ नीचे। और इसीलिए बुद्ध भेजना चाहते थे कि संन्यासी का यह अहंकार जाना चाहिए। कौन ऊपर? कौन नीचे? यह भी अहंकार ही है कि हम कैसे जाएं!
तुमने देखा, जैन मुनि को नमस्कार करो, तो वह हाथ जोड़कर नमस्कार नहीं करता। मुनि कैसे नमस्कार करे गृहस्थ को!
एक सम्मेलन था। आचार्य तुलसी ने बुलाया। मुझे भी भूल से बुला लिया! काफी वर्ष हो गए। मोरारजी भी निमंत्रित थे; तब वे वित्तमंत्री थे।
इसके पहले कि सम्मेलन में सब लोग भाग लें, जो विशिष्ट अतिथि थे दस-पांच, उनको आचार्य तुलसी ने विशेष रूप से अलग मिलने के लिए व्यवस्था की थी। तो मैं भी गया; मोरारजी गए; और भी जो दो-चार लोग थे, वे गए। सब ने नमस्कार किया और आचार्य तुलसी ने तो आशीर्वाद दिया। वे तो नमस्कार कर नहीं सकते।
किसी और को तो अखरा भी नहीं; लेकिन मोरारजी को अखर गया। मोरारजी को यह बात जंची नहीं कि मैं नमस्कार करूं और आप आशीर्वाद दें! उन्होंने तत्क्षण प्रश्न उठा दिया कि क्षमा करिए; लेकिन यह बात शोभा नहीं देती। हमने हाथ जोड़कर नमस्कार किया; आपने नमस्कार का उत्तर नहीं दिया! क्या कारण है इसका? और दूसरा सवाल, उन्होंने कहा, यह भी मैं पूछना चाहता हूं--और यह संगोष्ठी बुलायी है प्रश्नों के लिए, चर्चा करने के लिए, तो चलो इसी से संगोष्ठी शुरू हो--कि आप ऊपर चढ़कर क्यों बैठे हैं और हम सब लोग नीचे बैठे हैं! हां, सभा हो; ठीक है! कोई आदमी ऊंचाई पर बैठे; नहीं तो लोग देख न पाएं। मगर यह तो संगोष्ठी है। दस-बारह लोग तो हैं ही कुल। तो आप नीचे क्यों नहीं बैठे हैं? संगोष्ठी कैसे चले! वह तो खतम होने के करीब आ गयी शुरू में ही! तुलसी
जी बेचैन होने लगे। उत्तर क्या दें! उत्तर है भी क्या! इतनी भी हिम्मत नहीं कि उतर आएं नीचे, कि कहें कि ठीक है यह बात; भूल हो गयी। ऊपर बैठने की कोई जरूरत नहीं थी। छोटी सी बैठक है। नीचे साथ-साथ बैठ जाएंगे। इतनी भी हिम्मत नहीं है कि हाथ जोड़कर नमस्कार कर लें, कि क्षमा करें; भूल हो गयी। इतना ही बोले कि मुनि कैसे गृहस्थ को नमस्कार करे! शास्त्र में वर्जना हैः मुनि गृहस्थ को नमस्कार न करे।
मगर यह कोई उत्तर है! मुनि तो विनम्र होना चाहिए। गृहस्थ को नमस्कार
भी न कर सके, तो गृहस्थ की महानिंदा हो गयी।
और कहा कि मुनि को ऊपर बैठना चाहिए।
तो मोरारजी भाई ने कहा कि आप तो अपने को क्रांतिकारी संत कहलवाते हैं। थोड़ी क्रांति करिए। ये तो बातें कुछ जंचती नहीं कि मुनि को ऊपर बैठना चाहिए!
मैंने देखा, यह तो मामला बिगड़ा ही जाता है। यह तो बातचीत अब कुछ हो नहीं सकती। यह तो विवाद हो गया। मैंने तुलसीजी को कहा कि अगर आप कहें, तो मैं मोरारजी को जवाब दूं!
उन्होंने सोचाः चलो, भार टला। उन्होंने कहाः बड़ी खुशी से आप जवाब दें। तो मैंने मोरारजी को कहा कि वे ऊपर बैठे हैं--एक नासमझी। आपको अखर रही है--यह दूसरी नासमझी। छिपकली देखते हैं! वह और ऊपर बैठी है! वह महामुनि है। आप छिपकली से परेशान नहीं हो रहे कि छिपकली छप्पर पर क्यों बैठी है! बैठी रहने दो। आपको अखरा क्यों? जिस कारण वे बैठे हैं, उसी कारण आपको अखर रहा है। कुछ भेद नहीं है। आपने हाथ जोड़कर नमस्कार किया; बात खतम हो गयी। दूसरा उत्तर दे ही--ऐसी अपेक्षा क्यों! इतनी स्वतंत्रता तो दूसरे को देनी चाहिए कि उसको उत्तर देना हो दे; न देना हो न दे। आपने नमस्कार किया, इससे आपकी

सज्जनता प्रगट हुई। उन्होंने नहीं जवाब दिया, इससे उनकी दुर्जनता प्रगट हुई। लेकिन अब आप खड़े होकर विवाद कर रहे हैं; अदालत में मुकदमा चलाइएगा, कि हमने हाथ जोड़े... ! तो आपके हाथ जोड़ने में भी हेतु था कि आपके भी हाथ जुड़ने चाहिए! प्रत्युत्तर की आकांक्षा थी।
तो मैंने कहाः मुझे कुछ बहुत भेद नहीं दिखायी पड़ता। उनमें अगर थोड़ी समझ होती, तो उतरकर नीचे आ गए होते। और अगर आपको ज्यादा अखर रहा है, आप भी ऊपर चढ़ जाएं। हम लोग नीचे बैठे रहेंगे। कोई अड़चन नहीं है। आप दोनों ही ऊपर बैठ जाएं। झंझट खतम हुई।
अहंकार बड़ी कठिनाइयां खड़ी करता है; बड़ी अड़चनें खड़ी करता है।
उस दिन से तुलसीजी भी नाराज हैं; मोरारजी भी नाराज हैं! उस दिन के बाद दोनों का रुख सख्त हो गया। स्वाभाविक!
बुद्ध भेजना चाहते हैं अपने बोधिसत्वों को, जो करीब-करीब बुद्धत्व के
आ गए हैं। लेकिन करीब-करीब जानना--अभी बुद्ध हो नहीं गए। सिर्फ एक बुद्ध हुआ है--मंजुश्री। जब उससे कहा, तो वह खड़ा हो गया।
और मंजुश्री को भी विमलकीर्ति ने बहुत झंझेड़ा है। लेकिन वह सदा आनंदित होता था। विमलकीर्ति को देखकर सभा में अकेला वही था, जो आनंदित होता था। और सोचता थाः आज कुछ महत्वपूर्ण बात विमलकीर्ति जरूर कहेंगे। वही गया।
और विमलकीर्ति ने सब तरह से चांटे मारे, और सब तरफ से धक्के दिए। मगर
वह अकंप रहा। पूरा शास्त्र है, अदभुत शास्त्र हैः विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र। उसमें लंबी चर्चा है। विमलकीर्ति चोट पर चोट करते हैं और मंजुश्री अकंप हैं। वह प्रश्न पूछे चला जाता है। वह विनम्र भाव से वे जो कहते हैं, उसे समझने की कोशिश करता है। अंततः विमलकीर्ति स्वीकार कर लेते हैं कि यही एक व्यक्ति है, जो शून्यभाव में जी रहा है।
यह परीक्षण था।
विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र पढ़ना; खूब ध्यान से पढ़ना; क्योंकि विमलकीर्ति का एक-एक वक्तव्य कोहिनूर हीरे जैसा है। उसने जो भी कहा है वह परम सत्य है। जैसेः ध्यान किया नहीं जा सकता। जब सब करना छूट जाता है, तब ध्यान। मोक्ष पाया नहीं जा सकता। जब सब पाना छूट जाता है, तब जो शेष रहता है, वही मोक्ष है। त्याग किया नहीं जा सकता। जो किया जाए, वह भोग ही होगा। जब बोध परिपूर्ण हो जाता है, तब असार असार दिखायी पड़ जाता है; सार सार। न कुछ छोड़ना पड़ता है, न कुछ पकड़ना पड़ता है। सब चुपचाप घट जाता है। विमलकीर्ति परम संन्यासी हैं।

तीसरा प्रश्नः ध्यान, प्रवचन और कीर्तन--और फिर काम-धंधा! बहुत भद्दा लगता है! कैसे करते रहें?

भद्दा क्यों लगता है? किसको लगता है? विमलकीर्ति की जरूरत है तुम्हें!
भद्दा! तो नया अहंकार तुम पोष रहे हो कि मैं कीर्तन करने वाला; मैं ध्यान करने वाला; मैं प्रवचन सुनने वाला; मैं सत्संग करने वाला--कैसे दुकानदारी करूं?
यह तो नया मैं हो गया! यह तो छूटे नहीं, और बंधे। इससे तो भला यही था कि
न प्रवचन सुनते, न कीर्तन करते, न ध्यान करते; चुपचाप शांति से अपनी दुकान करते। कम से कम यह अहंकार तो न होता।
एक दिन मोहम्मद ने अपने परिवार के एक युवक को कहा कि तू पड़ा-पड़ा सोया रहता है सुबह; कभी-कभी मेरे साथ चला कर मस्जिद। सुबह की नमाज भी हो जाएगी; टहलना भी हो जाएगा। ताजी हवा; सूरज का निकलना; पक्षियों के गीत। तू पड़ा-पड़ा क्या करता है?
कई बार कहा, तो एक दिन वह युवक उनके साथ हो लिया। गया मस्जिद; मोहम्मद
ने नमाज पढ़ी। वह भी खड़ा-खड़ा कुछ-कुछ गुन-गुन करता रहा होगा। जब लौटने लगे, तो उसे बड़ी अकड़ आ गयी।

गरमी के दिन थे और लोग अभी भी अपने-अपने घरों के सामने बिस्तरों पर सोए थे। उसने मोहम्मद से कहाः हजरत! जरा इन पापियों की तरफ तो देखिए! अभी तक सो रहे हैं! यह कोई समय सोने का है! यह प्रभु-प्रार्थना का समय है! इन पापियों की क्या गति होगी हजरत? मरकर ये कहां जाएंगे?
मोहम्मद तो एकदम चौंके। यह पहली दफे गया था। कल तक यह भी सोया रहा था।
आज अचानक यह पुण्यात्मा हो गया! और इसकी गुन-गुन भी देखी होगी। इसको कुछ आता-वाता तो होगा नहीं; चला गया था। साथ-साथ खड़ा हो गया। देखता होगा कि मोहम्मद झुके, तो झुक जाता होगा।
मोहम्मद रुक गए। उन्होंने कहाः तू मुझे क्षमा कर। मुझसे बड़ी भूल हो गयी, जो मैं तुझे मस्जिद ले गया। तेरी तो नमाज हुई नहीं, मेरी नमाज खराब हो गयी। तू घर जा भाई! और मैं फिर वापस मस्जिद जाकर नमाज करूं।
वह युवक कहने लगाः क्यों? तो मोहम्मद ने कहा कि तू न आता, वही अच्छा था। कम से कम दूसरों को पापी तो न समझता था। कम से कम यह पुण्यात्मा होने का दंभ तो तुझ में नहीं था। यह तो बड़ी गलती मुझसे हो गयी। मुझे क्षमा कर। अब ऐसी भूल दुबारा न करूंगा। अब भूलकर तुझ से न कहूंगा कि मस्जिद चल। तू घर जा; बिस्तर पर सो जा। मुझे जाने दे मस्जिद; मैं फिर नमाज करके आ जाऊं। और क्षमा मांग लूं परमात्मा से कि मुझसे बड़ी भूल हो गयी।
तुम से मैं क्षमा मांगूं या क्या करूं! बड़ी गलती हो गयी, जो तुम्हें ध्यान में लगाया; कि कीर्तन में रस लेने को कहा। इसलिए नहीं कहा था कि जीवन भद्दा हो जाए।
ख्याल करना। जब तुम सोचोगे कि दुकान पर बैठना भद्दा है, तो बाकी सब दुकानदार पापी हो गए। जब तुम सोचोगे कि दुकान पर बैठना भद्दा है, तो उसका मतलब हुआ कि तुम्हारा अहंकार बड़ा धार्मिक रूप ले रहा है। बड़ी भयंकर बात हो रही है!
अहंकार का सांसारिक रूप तो स्थूल होता है, धार्मिक रूप बहुत सूक्ष्म होता है। तुम्हारे पास धन है बहुत; यह अहंकार बहुत स्थूल है। यह तो बुद्धू को भी दिखायी पड़ जाता है। लेकिन तुमने त्याग कर दिया धन का, यह अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। यह तो बुद्धिमानों को भी दिखायी नहीं पड़ता। तुमने इतने उपवास कर लिए, इतने व्रत कर लिए; एक अकड़ भीतर होने लगती है। और अकड़ ही तो मारे डाल रही है। अकड़ ही संसार है।
अब तुम कहते होः "ध्यान, प्रवचन और कीर्तन--और फिर काम-धंधा! बहुत भद्दा लगता है! कैसे करते रहें?"
अगर छोड़ना ही हो तो प्रवचन, कीर्तन और भजन छोड़ दो। धंधा मत छोड़ना। मेरी सारी चेष्टा यहां यही है कि तुम्हें जीवन में परमात्मा का अनुभव हो।
तुम्हें जीवन की सामान्य स्थितियों में परम के दर्शन हों। तुम्हें ग्राहक में दिखायी पड़े।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम जैसे तराजू मारते रहे पहले, वैसे ही मारते रहना। मैं यह कह रहा हूंः तुम्हें ग्राहक में परमात्मा दिखायी पड़े। तुम सेवा कर रहे हो उसकी। अगर तुम्हारा ध्यान और कीर्तन और भजन ठीक जा रहा है, तो तुम्हारा तराजू मारना बंद हो जाएगा। तुम्हारा ध्यान, प्रवचन, कीर्तन ठीक जा रहा है, तो ग्राहक को भी तुम ऐसे नहीं देखोगे कि मछली फंसी। तुम ग्राहक में भी परमात्मा देखोगे। तुम ग्राहक को धोखा नहीं दोगे। जरूर तुम्हें भी दो पैसे चाहिए जीने के लिए, तो तुम कहोगे कि चार आने की चीज है, और दो पैसे मुझे भी चाहिए। तुम लूटोगे नहीं। तुम्हारी लूटने की वृत्ति नहीं होगी।
निश्चित, तुम्हें भी कुछ चाहिए; और मैं नहीं कहता कि तुम्हें कुछ भी नहीं लेना है। तुम्हें कुछ लेना है। लेकिन तुम साफ करके लोगे कि दो पैसे मुझे, मेरी सेवा के। उतना तुम्हारा हक है।
लेकिन काम-धंधा छोड़ने को मैं नहीं कहूंगा। जीवन रूपांतरित होना चाहिए। भगोड़ेपन से क्या होगा? तुम दुकान छोड़कर भाग भी गए, तो करोगे क्या! तुम जहां बैठोगे, जैसे रहोगे, उसमें से ही कुछ न कुछ निकल आएगा और तुम्हारी पुरानी दुनिया फिर शुरू हो जाएगी।

तुमने सुना, एक संन्यासी मर रहा था। बूढ़ा हो गया था। उनका शिष्य--एक ही शिष्य था उनका--उनके पास गया और कहाः गुरुदेव! अब जाते वक्त कुछ आखिरी संदेश! गुरु ने कहा मरते वक्तः एक ही बात ख्याल रखना, बिल्ली कभी मत पालना। और इतना कहकर वे मर गए।
बिल्ली कभी मत पालना! वह युवक बड़ा हैरान हुआ कि हद्द हो गयी! बहुत वेद-पुराण-कुरान सब देखे; मगर बिल्ली मत पालना, ऐसा न तो मूसा ने कहा, न मनु ने कहा, न मोहम्मद ने, न महावीर ने, किसी ने नहीं। ये गुरुदेव का दिमाग या तो मरते वक्त खराब हो गया! कुछ शक तो होता था कि सठिया गए हैं। अब यह हद्द हो गयी! अब किसी को अगर मैं कहूं भी कि मेरे गुरुदेव यह कह गए मरते वक्त कि बिल्ली मत पालना, तो लोग मुझ पर भी हंसेंगे। सो उसने किसी से न कहा।
और जो होना था, सो हुआ। उसने बिल्ली पाल ली। जो गुरु के जीवन में घटा था, जिसके कारण वे कह गए थे कि ऐसा मत करना... । वह रुक नहीं सका; जो गुरु के जीवन में घटा, वैसा ही शिष्य के जीवन में घटा।
गुरु के जीवन में क्या घटा था? वे सब घर-द्वार छोड़कर जंगल चले गए थे।
एक लंगोटी बचायी थी।
अब लंगोटी तो बचानी ही पड़ेगी। मगर लंगोटी में ही सारा संसार भी बच सकता है। क्योंकि संसार तुम्हारे भीतर है। इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता कि लंगोटी है तुम्हारे पास या राजमहल है। लंगोटी में ही सारा संसार हो सकता है।
अब वे लंगोटी लटका देते थे रात में; एक थी, पहन लेते; एक धोकर डाल देते। चूहे उसको काट जाते।
तो किन्हीं समझदारों ने--समझदारों से जरा सावधान रहना--किन्हीं समझदारों ने कहा कि गुरुदेव, आप ऐसा करिए कि एक बिल्ली पाल लीजिए; तो ये चूहों को खा जाएगी। आपकी झंझट मिट जाएगी। नहीं तो लंगोटी बार-बार... । अच्छा भी नहीं मालूम पड़ता। फिर-फिर आपको गांव जाना पड़ता है कि भई लंगोटी चूहों ने काट दी, अब फिर लंगोटी चाहिए!
यह बात जंची। यह बिल्कुल तर्कयुक्त थी। यही तो मजा है मन का कि मन को तर्कयुक्त बातें जंचती हैं। बस जंच गयी बात। वे एक बिल्ली पाल लिए। चूहे तो बिल्ली खाने लगी। लेकिन चूहे जल्दी ही खतम हो गए। अब वह बिल्ली भूखी मरती बैठी वहां! अब इसके लिए क्या करना?
फिर समझदारों से सलाह ली। और जाओ भी कहां? समझदार ही हैं चारों तरफ! सलाह देने वाले हर जगह मौजूद हैं! उन्होंने कहाः आप ऐसा करो कि बिल्ली ने सेवा तो आपकी काफी की; आपको इसको भोजन तो देना ही चाहिए। एक गाय रख लो।
सो उन्होंने एक गाय रख ली। बिल्ली को भी दूध पिला देते; खुद भी पी लेते। अब गाय का सवाल उठा कि इसके लिए घास-पात लाओ! गांव वालों ने कहा कि महाराज! घास-पात अब आप कहां रोज-रोज गांव जाओगे लेने। यह तो बड़ी झंझट होगी। इतनी तो जमीन पड़ी है यहां, इसी में घास-पात उगा लो।
खेती-बाड़ी करने लगे! अब कभी बीमार हो जाते और पानी डालने नहीं जा पाते;
और कभी ज्यादा जरूरत पड़ती काम की; काम पूरा न होता। फिर धीरे-धीरे खेती- बाड़ी बढ़ी। घास-पात पैदा करते-करते गेहूं भी पैदा किया; चावल भी पैदा किए। फिर काम बढ़ने लगा। गांव वालों ने कहा कि महाराज! ऐसा है कि आप एकाध सहयोगी रख लो। ऐसे तो नहीं चलेगा। अब यह काम काफी फैल गया। कोई... । आप भी बूढ़े हुए जाते हैं; आपकी भी सेवा कर दे।
तो गांव में एक विधवा स्त्री थी, उसको लोग ले आए कि यह खाली है; किसी काम की भी नहीं है। आपकी भी सेवा कर देगी; भोजन भी बना देगी; देखभाल भी कर लेगी।
तो जो होना था हुआ। कुछ दिन बाद वह विवाह हो गया उनका! बच्चे हो गए! सो गुरुदेव बेचारे ठीक ही कहकर मरे थे कि तू एक ख्याल रखनाः बिल्ली भर मत पालना।
तुम अगर भाग भी जाओगे संसार से, कुछ होगा नहीं। मन को कहां छोड़ोगे? मन
तो तुम्हारे साथ चला जाएगा। जहां जाओगे, वहीं चला जाएगा। अगर मन बेईमान है, तो तुम जहां रहोगे, वहीं बेईमानी करोगे।

मैंने सुना हैः एक आदमी स्वर्ग के द्वार पर दस्तक दिया। देवदूत ने द्वार खोला। पूछाः आप यहां कैसे! तीन बजे रात! यह कोई वक्त है आने का? उसने कहाः मैं क्या करूं; डाक्टर की कृपा! तीन बजे मार डाला!
देवदूत ने कहा कि देखना पड़ेगा खाते-बही में, क्योंकि किसी की यहां खबर नहीं कि इतने वक्त आना चाहिए। कोई बड़ा डाक्टर मिल गया! मैं जरा भीतर जाकर देखूं। तुम काम क्या करते थे? उस आदमी ने कहाः काम कुछ खास नहीं था। यही लोहा-लंगड़ खरीदना; कबाड़ी की दुकान थी।
देवदूत अंदर गए। जब लौटकर आए, तो वह आदमी भी नदारद था और लोहे का फाटक
भी नदारद था। अब लोहा-लंगड़ बेचने वाला आदमी; उतनी देर मौका मिल गया, तो स्वर्ग से भी ले भागा वह। जिंदगीभर कबाड़ी का काम किया; देखा होगा, अच्छा फाटक है; और यहां क्या जरूरत है! वह ले भागा।
तुम्हारा मन तो तुम्हारे साथ जाएगा, जहां तुम जाओगे। तुम्हारा मन अगर कबाड़ी है, तो तुम स्वर्ग के द्वार पर भी वही करोगे।
तुम काम-धंधे के दुश्मन न बनो। यह अकड़ न लाओ। मेरे साथ होने का अर्थ ही यही है कि तुम इस जगत को स्वीकार करो। तुम्हारी स्थिति जैसी है, उसे स्वीकार करो। तुम्हारी स्थिति जैसी है, उसको ही तुम प्रभु का भजन बनाओ; उसको ही कीर्तन बनाओ; वही तुम्हारा ध्यान बने।
जरा करके देखो। तुम चकित होओगे। वही आदमी जो कल ग्राहक की तरह आया था,
और तुम सिर्फ उसकी जेब में उत्सुक थे, और तुमने उसके साथ ऐसा भी व्यवहार नहीं किया, जैसा आदमी के साथ करना चाहिए; वही आदमी, कल तुम उसे परमात्मा की तरह देखो--है तो उसमें भी छिपा हुआ; जो तुम में छिपा है, वह उस में भी छिपा है--तुम जरा उसकी परमात्मा की तरह सेवा करो; और तुम फर्क देखना। काम-धंधा काम-धंधा नहीं रहा। काम-धंधे में ध्यान की गंध उतरने लगेगी। और यह हो तो ही कला है।
भगोड़ेपन से क्या होता है! भागकर जाओगे, कुछ फर्क नहीं पड़ता। तुम वही रहोगे; और तुम्हारा व्यवहार वही रहेगा। और तुम वहां भी किसी न किसी तरह का काम-धंधा खोज लोगे।
मैंने देखा, मैं छोटा था, एक बड़े प्रसिद्ध संन्यासी का प्रवचन सुनने गया। वे ब्रह्मचर्चा कर रहे हैं और बीच-बीच में कोई आ जाते... । सेठ कालूराम आ गए। तो वे कहतेः आइए, सेठजी! ब्रह्मचर्चा छूट जाती। सेठजी आ गए। कौन फिकर करता ब्रह्म की। भाड़ में जाओ। पहले कालूराम सेठजी को बिठालते वे--कि आइए, बैठिए। आगे कर लेते। सेठजी पीछे बैठ रहे थे, वे उनको आगे बुला लेते। तब तक विघ्न-बाधा पड़ती। ब्रह्मचर्चा रुक जाती। सेठजी बैठ जाते, तब फिर ब्रह्मचर्चा शुरू होती।
जब मैंने दो-तीन बार यह देखा, तो मैंने उनसे पूछा कि ब्रह्मचर्चा काहे
के लिए चला रहे हैं! आप इसमें क्षणभर भी डूबते नहीं! फिर कोई सेठजी आ गए; फिर कोई फलानेजी आ गए! इंचार्ज साहब आ गए! कलेक्टर साहब आ गए! यह चर्चा है? यह कोई धर्म-प्रवचन हो रहा है?
यह आदमी दुकानदार है। यह काम-धंधे वाला आदमी है। यह दुकान पर जैसे सेठजी को बुलाकर बिठालता रहा होगा, और कलेक्टर साहब आ गए तो उनको बिठालता रहा होगा; और उनके लिए पान लाओ, और सिगरेट लाओ, और चाय बुलवाओ... । हालांकि पान, सिगरेट, चाय, अब नहीं बुलवा सकता। मगर भीतर इसके वे भी इरादे उठ रहे होंगे; जब कहता हैः बैठो कालूरामजी! बिराजिए। ठीक तो हैं! ब्रह्मचर्चा रुक जाती है।
कालूरामजी में ब्रह्म बिल्कुल मालूम नहीं होते। सबसे कम ब्रह्म जिनमें दिखते हों वह कालूरामजी! मगर और किसी के लिए नहीं रुकती। कालूरामजी की जेब भरी है, तो ब्रह्मचर्चा रुकती है!
तुम जाकर क्या करोगे; भागकर क्या करोगे? कहां जाओगे? तुम जहां जाओगे काम-धंधा किसी न किसी तरह पैदा होगा। हो ही जाएगा।
इसलिए कहीं भागने की कोई जरूरत नहीं है। संसार एक अवसर है जागने का।
भागो मत--जागो। जहां हो, उसी परिस्थिति में परम संतुष्ट हो जाओ। और उसी परिस्थिति में परमात्मा को तलाशने लगो।

सब परिस्थितियां समान हैं खोजी के लिए। सब परिस्थितियां समान हैं, मैं तुमसे कहता हूं। एक बहुत प्रसिद्ध वचन है इजिप्त की एक पुरानी किताब में कि अगर तुम नर्क में हो, तो उसे स्वीकार कर लो; तुम्हारी स्वीकृति के साथ ही नर्क स्वर्ग हो जाएगा। यह बात मुझे समझ में आती है। यह बात गहरी है। नर्क को जिसने स्वीकार कर लिया, फिर नर्क कैसे रहेगा? अहोभाव से स्वीकार कर लिया; नर्क उसी क्षण स्वर्ग होने लगा। और तुम स्वर्ग में भी रहो; और शिकायत रहे, तो नर्क ही रहेगा।
तुम कहां हो, इससे फर्क नहीं पड़ता। तुम भीतर से कैसे हो, इससे फर्क पड़ता है। और कम से कम मेरे पास तो ऐसे प्रश्न मत लाओ; क्योंकि मैं संसार-विरोधी नहीं हूं। मैं तुम्हें विमलकीर्ति बनाना चाहता हूं। मैं तुम्हें ऐसे गृहस्थ बनाना चाहता हूं, जो संन्यस्त हैं। मैं संसार और संन्यास की दूरी कम करना चाहता हूं। संन्यास आत्मा बन जाए संसार की, संसार देह रहे; तभी तालमेल बैठता है; तब महासंगीत पैदा होता है।

चौथा प्रश्नः मैं सदा नए की खोज में लगा रहता हूं। कुछ भी नया हो, तो मुझे भाता है। इसमें कुछ भूल तो नहीं है?

भूल तो निश्चित है। कुछ नहीं; बड़ी भूल है। क्योंकि यही तो मन के जीने
का ढंग है।
मन सदा नए की तलाश करता है। मन नए के लिए खुजलाहट है। पुरानी पत्नी नहीं भाती; नयी पत्नी चाहिए। पुराना मकान नहीं भाता; नया मकान चाहिए। पुराने कपड़े नहीं भाते; नए कपड़े चाहिए। हमेशा नया चाहिए। यही तो मन है, जो दौड़ाता है। नए की इस आकांक्षा से महत्वाकांक्षा पैदा होती है। और तुम सदा बेचैन रहते हो। आखिर हर नयी चीज पुरानी पड़ जाएगी, और बेचैनी ब.ढ़ती ही चली जाएगी।
पश्चिम में इतनी बेचैनी है, क्योंकि नए की बहुत पागल दौड़ है। हर चीज नयी होनी चाहिए। उपयोगिता का भी सवाल नहीं है; नए का सवाल है। हो सकता है, पुरानी चीज ज्यादा बेहतर हो; ज्यादा मजबूत हो; ज्यादा काम की हो। लेकिन इससे कोई संबंध नहीं है। नयी चीज चाहिए। नयी बदतर हो, तो भी चलेगा। टीम-टाम हो, तो भी चलेगा। मगर नयी चाहिए।
फिर नए की दौड़ पूरी करने में तुम्हारा जीवन लग जाता है। और नया कभी कुछ भी नहीं हो पाता। चीजें कहीं नयी हो सकती हैं? चीजों की दौड़ का कोई अंत नहीं है। इसी में समाप्त हो जाओगे।
हां; एक और ढंग है जीने का। जो है बाहर, ठीक है। अगर नए को ही खोजना है,
तो भीतर खोजो। भीतर पुराने को काटो।
दुनिया में दो तरह के लोग हैंः बाहर पुराने को नए में बदलते रहते हैं-- इनका नाम संसारी। और जो भीतर पुराने को काटते और प्रतिपल नयी चेतना को मुक्त करते रहते हैं अतीत से--इनका नाम संन्यासी।
स्मृति को जाने दो; भीतर अतीत का बोझ मत ढोओ; भीतर जो अतीत का कूड़ा- कचरा इकट्ठा हो गया है, उसे हमेशा आग लगाते रहो, जलाते रहो। भीतर नए रहो। और तुम परम आनंद पाओगे। भीतर का नयापन दिव्य में प्रवेश बन जाएगा।
बाहर के नएपन से क्या होगा? और शायद हम बाहर नयापन इसलिए खोजते हैं कि हमारे भीतर नए की तलाश है--भीतर--और हम भूल से बाहर खोजते हैं। भीतर चाहिए युवापन, नयापन, ताजगी, सुबह की ताजगी; सुबह की ओस की बूंदों की ताजगी; सुबह के सूरज की ताजगी; सुबह के फूल की ताजगी। ऐसी भीतर चाहिए दशा। भीतर तो नहीं खोजते। सोचते हैंः नयी कार ले आएं; नया मकान बना लें; नयी स्त्री मिल जाए; नयी दुकान खोल लें; नया धंधा कर लें; तो शायद हल हो जाएगा। नहीं हल होगा। सिकंदरों का हल नहीं होता; तुम्हारा कैसे हल होगा! जिनके पास बहुत है, उनका हल नहीं होता; तुम्हारा कैसे हल होगा?
इस गलत दिशा से अपने चित्त को मुक्त करो। भीतर नए होने की कला सीखो।
यह नयापन सिर्फ तुम्हें उलझाए रखता है, व्यस्त रखता है।
किनारे पर बैठकर
कंकड़ें फेंकते

गुजर गए हैं बहुत दिन
पर, फिर भी तो
इस मौन के समुंदर में
कोई
हलचल नहीं है
वैसे ही जड़ है यह
यातनाओं का रेगिस्तान
चलो,
शब्दों की किश्तियां
तैराएं
ख्वाबों के नखलिस्तान
उगाएं
संकरी हो आयी
चेतना की पगडंडियों पर
अब नहीं चला जाता
आओ,
कुछ नया ढूंढ लाएं
गुलाबी हथेलियों पर
सरसों उगाएं
जिससे
पहाड़-से ये लंबे-लंबे दिन
बीत जाएं
कुछ न कुछ करते रहो। चलो, हाथ पर सरसों उगाएं! कुछ न कुछ करते रहो!
देखा तुमनेः नदी के किनारे बैठ जाते हो, तो उठा-उठाकर पत्थर ही फेंकने लगते हो नदी में! कुछ न कुछ करते रहो! घर में आते हो, तो खटर-पटर करते हो। यह चीज यहां रख दो, यह चीज वहां रख दो; खिड़की खोलो, बंद करो। कुछ न कुछ करते रहो! क्यों? क्योंकि जब खाली हो जाते हो, तब घबड़ाहट लगती है।
खाली होने का रस तुम्हें नहीं है। खाली होने का मजा तुम्हें नहीं है। खाली होने का उत्सव तुमने नहीं जाना है। जब खाली हो जाते हो, तो भय लगता है। कंपने लगते। उलझाए रहो। भूले रहो। तो अपने को विस्मृत किए रहते। यह उलझाव एक तरह की शराब है।
शराबी क्या करता है? यही करता है, जो तुम कर रहे हो। शराबी यही करता है
कि शराब पीकर अपने को भुला लेता है। तुम और ढंग से भुलाते हो।
अंग्रेजी में अल्कोहलिक के मुकाबले एक शब्द और अभी-अभी निर्मित हो गया है--वर्कोहलिक। एक तो वह है, जो शराब पीकर अपने को भुलाता है। और एक वह है, जो काम में अपने को भुलाए रखता है--वर्कोहलिक!
मोरारजी देसाई--वर्कोहलिक! शराब के विरोधी; शराब के दुश्मन; शराब जानी चाहिए। मगर उनको ख्याल नहीं है कि शराबी भी वही कर रहा है। तुम राजनीति में उलझकर वही कर लेते हो। अपने को उलझाए हो; लगाए हो।
भागे जा रहे हैं। दौड़े जा रहे हैं! कोल्हू के बैल की तरह जुते हैं। ऐसे जुते-जुते एक दिन मर जाते हो। यह भी तुम्हारा बेहोश होने का ढंग है। अपनी याद न आए। अपने से बचने का उपाय है यह सब।
यह नए की खोज अपने से बचने का उपाय है। और अपना साक्षात्कार करना है, अपने से बचना नहीं है। अपने आमने-सामने आना है। अपने को पहचानना है। अपनी पहचान के बिना तुम्हारे जीवन का रहस्य खुलेगा ही नहीं। इस आत्मा से, जिससे तुम बचते फिर रहे हो, इसी के साथ सगाई करनी है; इसी के साथ गठबंधन करना है। खाली बैठे हैं; रेडियो खोल लेते; अखबार पढ़ने लगते। चले, उठे, क्लब चले।
कि चलो, होटल हो आएं। कि चलो, सिनेमा देख आएं। किसी तरह दिन गुजार दें। फिर पड़ जाएं बिस्तर पर, और सो जाएं। सुबह फिर दौड़-धूप शुरू हो जाएगी। ऐसे ही जिंदगी बीत जाएगी। दिन आएंगे और चले जाएंगे। कब जन्म मृत्यु बन जाएगी, तुम्हें पता भी न चलेगा। तुम बेहोशी बेहोशी में ही गुजार दोगे।
नहीं; यह नए की तलाश खतरनाक है--बाहर। बड़ी खतरनाक है। अगर भीतर इसकी दिशा मोड़ दो, तो यही साधना बन जाती है। फिर तुम नया काम नहीं खोजते; नया

धंधा नहीं खोजते; नया सामान नहीं खोजते। फिर तुम नयी चेतना खोजते हो; फिर तुम नयी बोध की दशाएं खोजते हो। फिर तुम कहते होः और ध्यान की गहराइयों में जाऊं, ताकि और नए-नए स्रोत मिलते जाएं। जितना तुम भीतर खुदाई करोगे, उतने ही ज्यादा स्वच्छ जल के स्रोत मिलने लगेंगे।
जैसे कोई कुएं को खोदता है, तो पहले तो कूड़ा-कर्कट हाथ लगता है। फिर रूखे मिट्टी-पत्थर हाथ लगते हैं। फिर धीरे-धीरे गीली भूमि हाथ आती है। फिर जल के स्रोत मिलने शुरू होते हैं। फिर और गहरे जाकर स्वच्छ जल मिलना शुरू होता है।
अपने भीतर खुदाई करो। अपने को कुआं बनाओ। और तुम्हारे भीतर परमात्मा
का जल है। तुम्हारे भीतर समाधि की संभावना है।

पांचवां प्रश्नः ओशो, प्रातः प्रवचन-स्थल पर आप पधारते हैं, तो बड़ी देर तक हाथ जोड़े प्रणाम की मुद्रा में आपको देखकर मुझे बड़ी पीड़ा होती है।
लगता है कि आप बाहर आकर सीधे बैठ जाया करें। हम अंधों के लिए आपके जुड़े हाथ देखकर मुझे कष्ट होता है।

संबोधि ने पूछा है यह प्रश्न।
यह कष्ट शुभ है। यह आंख के खुलने की शुरुआत है। इतना भी तुम्हें दिखायी पड़ने लगा कि तुम अंधे हो, तो काफी दिखायी पड़ने लगा! जिसको यह दिखायी पड़ने लगा कि मैं अंधा हूं, उसकी आंख खुलने लगी।
कहते हैंः जब पागल को यह समझ में आना शुरू हो जाए कि मैं पागल हूं, तो
वह ठीक होने लगा। पागल को समझ में आता ही नहीं कि मैं पागल हूं। तुम किसी पागल को पागल कहो, वह तुम्हें पागल सिद्ध करेगा। वह कहेगाः मैं और पागल? तुम पागल हो। मुझे जो पागल कहता है, वह पागल है।
पागल अपने को पागल नहीं मानता। पागलपन में इतनी बुद्धिमत्ता हो भी कैसे सकती है कि अपने को पागल मान ले! जिस दिन पागल मानने लगता है कि मैं पागल हूं; बुद्धिमत्ता की पहली किरण उतरी।
जिस दिन तुम जानते हो कि मैं अज्ञानी हूं, ज्ञान का पहला प्रकाश उतरा।
शुभ है संबोधि कि इससे पीड़ा होती है। यह पीड़ा अच्छी है। यह पीड़ा हितकर है; कल्याणदायी है।
और तुम पूछती हो कि हम अंधों के लिए आपके हाथ जुड़ें--यह ठीक नहीं।
तुम अंधे हो नहीं, सिर्फ आंख बंद किए बैठे हो। तुम में और बुद्धों में
जो अंतर है, वह ऐसा नहीं है कि बुद्ध के पास आंख है और तुम्हारे पास आंख नहीं है। आंख तुम्हारे पास उतनी ही है, जितनी बुद्ध के पास है। लेकिन बुद्ध खोले हैं अपनी आंख; तुम बंद किए हो।
हालांकि मूर्ति में उलटा दिखायी प.ड़ता हैः बुद्ध की आंख बंद है और तुम्हारी खुली है। बुद्ध की आंख बाहर से बंद है, इसलिए भीतर खुली है। तुम्हारी आंख बाहर खुली है, इसलिए भीतर से बंद है। और भीतर खुले, तो ही खुले। भीतर खुलना ही असली खुलना है।
तुम अपने को देखने लगो, तो आंख वाले हुए। तुम देख तो रहे हो, औरों को देख रहे हो। अपने को नहीं देख रहे। जिस दिन अपने को देखने लगोगे, उसी दिन आंख खुल गयी।
तुम अंधे नहीं हो। अंधे का तो मतलब यह होता हैः आंख खुल ही नहीं सकती। अंधे का तो मतलब होता हैः आंख है ही नहीं; तो खुलेगी कैसे! अंधा मत मान लेना अपने को। कहीं यह मन की तरकीब न बन जाए। मन यह कहने लगे कि तुम तो अंधे हो; यह हो ही नहीं सकता। बात खतम हो गयी। तो जैसे जी रहे हो, जीए जाओ।
नहीं; तुम अंधे नहीं हो। सिर्फ तुम्हारी आंख गलत तरफ खुली है, इसलिए ठीक तरफ बंद है। तुम्हारी दिशा भ्रांत है। ठीक दिशा में चैतन्य बहने लगे; तुम भी आंख वाले हो जाओगे--उतने ही जितने बुद्ध हैं।
एक दिन बुद्ध भी ऐसे ही अंधे थे, जैसे तुम हो। फिर एक दिन आंख वाले बने। तुम भी एक दिन आंख वाले बन सकते हो। तुम जैसे हो, ऐसा ही मैं था। तो मैं जैसा हूं, ऐसे ही तुम भी हो सकते हो। जरा भी भेद नहीं है।

मैं जब तुम्हें हाथ जोड़ रहा हूं, तो तुम्हारी इसी संभावना को हाथ जोड़ रहा हूं। हाथ जोड़कर तुम्हें कह रहा हूंः बुद्ध तुम्हारे भीतर विराजमान हैं। तुम जरा उनकी सुध लो। हाथ जोड़कर तुम्हें इशारा कर रहा हूं कि तुम अपने को उतना ही मत मान लो, जितना तुमने अपने को जाना है। तुम बहुत बड़े हो; तुम विराट हो; तुम्हारे भीतर अनंत छिपा है--तत्वमसि। वह, जिसकी तुम खोज कर रहे हो, तुम्हारे भीतर बैठा है। तुम मंदिर हो, प्रभु के मंदिर। तुम्हें पता नहीं है, यह और बात। लेकिन तुम जिस जमीन पर बैठे हो, वहां खजाना गड़ा है। एक गांव में ऐसा हुआ; एक भिखारी मरा। तीस साल एक ही जगह बैठकर भीख मांगता रहा था। जब मर गया, तो पड़ोस के लोगों ने सोचा कि इसके सब चीथड़े जला दो; इसके सब बर्तन फोड़कर फेंक दो। कुछ खास थे भी नहीं। और फिर किसी को ख्याल आया कि तीस साल से यह भिखारी इस जमीन को गंदी करता रहा; थोड़ी सी जमीन भी यहां की उखाड़कर नयी जमीन डाल दो। यह अशुद्ध कर गया। बुरी तरह अशुद्ध कर गया! गंदा था।
उन्होंने जमीन थोड़ी सी खोदी। चकित हो गए। उस जमीन में तो हंडे गड़े थे। वहां तो बड़ा खजाना था। और सारा गांव सोच-सोचकर हंसने लगा कि हद्द हो गयी! यह भिखारी भीख मांगता रहा जिंदगीभर और जिस जमीन पर बैठा था, वहां इतना खजाना था कि यह सम्राट हो जाता!
गांवभर हंसा भिखारी पर। लेकिन एक फकीर उस गांव में था, वह पूरे गांव वालों पर हंसा। उसने कहा कि पागलो! तुम उस भिखारी की बात कर रहे हो! यही हालत तुम्हारी है। तुम भी जहां बैठे हो, वहां खजाना गड़ा है। तुम सम्राट हो सकते हो।
लेकिन कोई उसकी बात समझा हो, ऐसा दिखायी नहीं पड़ता। लोग हंसे होंगे कि
यह एक और पागल देखो! या हो सकता है कुछ लोग उसकी बात समझे भी होंगे, तो घर जाकर उन्होंने थोड़ी जमीन खोदकर देखी होगी। फिर खजाना नहीं मिला होगा। उन्होंने कहा होगा कि कहां पागल की बातों में पड़े हो! कहीं ऐसा सभी जगह थोड़े ही खजाना गड़ा है। वह तो संयोग की बात थी।
मगर फकीर तुम्हारे भीतर की तरफ इशारा कर रहा था। सब फकीरों के इशारे तुम्हारे भीतर की तरफ हैं। उनके सबके तीर तुम्हारे भीतर की तरफ हैं। किसी से पूछो; एक ही रास्ता बताते हैंः भीतर जाओ। अपने में आओ।
बाहर भटकती आंख को जरा भीतर मोड़ो। यही आंख जो अभी संसार देख रही है; यही आंख जो अभी पदार्थ को देखती है; यही आंख परमात्मा को देख लेगी। आंख तो यही है, सिर्फ इस आंख को परमात्मा की तरफ लगाना है। उस लगाने का नाम ध्यान है।
तुम्हारे हाथ जोड़ता हूं, ताकि तुम्हें याद आ जाए, ताकि तुम्हें भूल-भूल न जाए, तुम्हें याद बनी ही रहे; रोज-रोज याद आ जाए--कि तुम्हारे भीतर कोई परम आराध्य बैठा है। यही याद सघन होगी, तो तुम बदलोगे, रूपांतरित होओगे। तुम्हारे भीतर क्रांति इसी याद की सघनता से हो सकती है।

अंतिम प्रश्नः मैं आपका संदेश लोगों तक पहुंचाना चाहता हूं, लेकिन मेरी सामर्थ्य अति अल्प है। फिर लोगों के विरोध से भी डरता हूं। मेरे लिए कोई आदेश?

आदेश तो मैं कोई भी नहीं देता। क्योंकि आदेश का मतलब तो होता हैः मैं तुम्हारे जीवन का नियंता हो गया। आदेश का तो अर्थ होता हैः मैं तुम्हारा मालिक हो गया। आदेश का तो अर्थ होता हैः तुम मेरे गुलाम हो गए। आदेश का तो अर्थ होता हैः मैंने तुम्हारी स्वतंत्रता छीन ली।
मैं तुम्हें स्वतंत्रता देता हूं, आदेश नहीं। मैं तुम्हें समझ देता हूं जरूर। मैं तुम्हें अपनी आंखें भी देने को तैयार हूं, ताकि तुम उनसे थोड़ी देर देख सको। और उस देखने से तुम अपनी आंखों की याद से भर जाओ। इसलिए तुम से बोलता हूं।
यह बोलने में आदेश नहीं है। यही उपदेश और आदेश का फर्क है।
जैन परंपरा में यह वचन है कि तीर्थंकर आदेश नहीं देते, सिर्फ उपदेश देते हैं। क्या फर्क है दोनों में?

आदेश का मतलब होता हैः ऐसा करना ही पड़ेगा; ऐसा करो। नहीं करोगे तो दंड
के भागी हो जाओगे। उपदेश का अर्थ होता हैः ऐसा करना शुभ है। करो तो शुभ होगा। नहीं करोगे, तो शुभ से चूकोगे। लेकिन कोई जोर-जबरदस्ती नहीं है। उपदेश का अर्थ हैः ऐसा है। देखो। आदेश का अर्थ हैः देखने-वेखने की जरूरत नहीं। ऐसा करो। आदेश में करने पर जोर होता है; उपदेश में देखने पर जोर होता है। उपदेश सिर्फ दर्शन की प्रक्रिया है। और आदेश? आदेश में तुम्हारी चिंता नहीं है कि तुम्हें दिखायी पड़ता है कि नहीं दिखायी पड़ता। नीति आदेश देती है; धर्म उपदेश है। नीति कहती हैः चोरी मत करो, दान करो। धर्म यह नहीं कहता कि चोरी मत करो, दान करो। धर्म कहता हैः देखो, समझो; उसी समझ में चोरी चली जाएगी और दान फलित होगा। और दान का अहंकार भी नहीं आएगा। और मैं चोरी नहीं करता, इसलिए कुछ विशिष्ट हूं--ऐसी अकड़ भी नहीं आएगी। धर्म आंखें खोलने की कला है।
तो पहली तो बात, मैं कोई आदेश नहीं देता।
दूसरी बातः तुम पूछते हो, "आपका संदेश लोगों तक पहुंचाना चाहता हूं।"
यह संदेश खतरनाक है। इसे पहुंचाने में झंझट तो आएगी, अड़चन तो आएगी। विरोध तो होगा। इसलिए अगर तुम विरोध से डरते हो, तो भूल जाओ यह बात।
लेकिन विरोध से डरना क्या? विरोध चुनौती है। और चुनौती में आदमी के प्राण उज्ज्वल होते हैं, निखार आता है। अगर तुम्हारे जीवन में कोई चुनौती नहीं है, तुम मुर्दा और नपुंसक रह जाओगे। चुनौती को चूको ही मत। जहां चुनौती आती हो, उसको झेलो। हर चुनौती तुम्हारी तलवार पर धार रखेगी। हर चुनौती तुम्हें बलशाली बनाएगी।
ऐसा हुआ। एक बार एक किसान भगवान की प्रार्थना-प्रार्थना करते-करते इतना कुशल हो गया प्रार्थना में कि भगवान को अवतरित होना पड़ा। उन्होंने कहा कि तुझे मांगना क्या है! तू मांगता तो कभी कुछ नहीं। किए जाता है प्रार्थना!
उसने कहाः अब आप आ गए; अब मांगे लेता हूं। बात यह है कि मुझे ऐसा शक है
कि आपको खेती-बाड़ी नहीं आती! दुनिया बनायी होगी आपने भला, मगर खेती-बाड़ी का आपको कोई अनुभव नहीं है। जब जरूरत होती है पानी की, तब धूप! जब धूप की जरूरत होती है, तब पानी! जब किसी तरह फसल खड़े होने को हो जाती है, तो अंधड़, ओले, तुषार। आपको बिल्कुल अकल नहीं है। यही कहने के लिए इतने दिन से प्रार्थना करता था। एक बार मुझे मौका दो, तो मैं आपको दिखलाऊं कि खेती-बाड़ी कैसे की जाती है!
पुरानी कहानी है; तब तक परमात्मा इतना समझदार नहीं हुआ था। वह राजी हो गया। उसने कहाः चलो, ठीक है। इस वर्ष तू जो चाहेगा, वही होगा।
किसान ने जो चाहा, वही हुआ। जब उसने धूप मांगी, धूप आयी। जब उसने पानी मांगा, पानी आया। और स्वभावतः, किसान तो भूलकर भी क्यों मांगता अंधड़, ओले, तुषार। वे तो कुछ आए नहीं।
खेत बड़े होने लगे। ऊंचे उठने लगे पौधे। ऐसे जैसे कभी नहीं उठे थे। सिर
के पार होने लगे! किसान ने कहाः अब! अब दिखलाऊंगा कि देखो, क्या गजब की फसल हो रही है!
पौधे तो बड़े-बड़े हो गए। फसल पकने का मौका भी आ गया। लेकिन उनमें गेहूं नहीं पके। पोचे! सिर्फ खोल! भीतर गेहूं नहीं। वह बड़ा हैरान हुआ। वह बड़ी तकलीफ में पड़ा कि अब क्या होगा!
तो फिर परमात्मा की प्रार्थना की और कहा कि मुझ से भूल कहां हो गयी? परमात्मा ने कहाः बिना ओलों के सत्व पैदा होता ही नहीं। चुनौती चाहिए। तूने अच्छा-अच्छा मांग लिया; मीठा-मीठा मांग लिया। खारे की भी जरूरत है। तूने सुख ही सुख मांग लिया; दुख की भी जरूरत है। दर्द निखारता है। तूने अच्छा-अच्छा मांग लिया। खूब पानी मांगा। धूप मांगी। यह सब किया। लेकिन तूने संघर्ष का मौका ही नहीं दिया पौधों को। इसलिए संघर्ष नहीं था, तो पौधों की जड़ें मजबूत नहीं हुईं। पौधे ऊपर तो उठ गए, लेकिन नीचे कमजोर हैं। जरा जड़ें तो उखाड़कर देख!
देखा, तो जड़ें बड़ी छोटी-छोटी। तो भूमि से सत्व नहीं मिला। जब पौधों को अंधड़ झेलना पड़ता है, खतरा लेना पड़ता है, तो जड़ें गहरी जाती हैं।

तुमने देखा, तुम चकित होओगे जानकर। अगर हवा का रुख हमेशा एक तरफ से हो, समझो कि बायीं तरफ से आती हो और वृक्ष को दायीं तरफ झुकाती हो, तो बाएं तरफ वृक्ष की जड़ें ज्यादा मजबूत हो जाती हैं। क्योंकि उस तरफ उसको जमीन को जोर से पकड़ना होता है। नहीं तो गिर जाएगा। उतनी ही गहरी जड़ें चली जाती हैं। तुमने देखाः अफ्रीका में वृक्ष बड़े ऊंचे जाते हैं। जाना पड़ता है। क्योंकि चारों तरफ घना जंगल है। अगर ऊंचे न जाएं, तो सूरज की रोशनी न मिलेगी। इसलिए अफ्रीकन वृक्ष ऊंचा होता है। उसी को यहां ले आओ, वह यहां नीचा हो जाता है। यहां उतने ऊंचे जाने की कोई जरूरत नहीं है।
संघर्ष, परमात्मा ने कहा उस किसान को, अत्यंत जरूरी है। नहीं तो संकल्प पैदा नहीं होता। और संकल्प पैदा न हो, तो समर्पण तो कभी पैदा होगा ही नहीं। चुनौती चाहिए।
तुम कहते होः "डरता हूं विरोध से।"
डर भी स्वाभाविक है। लेकिन डर को एक किनारे रखो। होने दो विरोध।
क्या कोई छीन लेगा? है क्या हमारे पास, जो कोई छीन लेगा? ज्यादा से ज्यादा जिंदगी कोई ले सकता है। लेकिन जिंदगी तो ऐसे ही चली जाएगी। कोई मार ही डालेगा न--वह भी ज्यादा से ज्यादा। कोई मारता करता नहीं। कितने लोग मारे जाते हैं! बहुत थोड़े लोग मारे जाते हैं। लेकिन ज्यादा से ज्यादा समझ लो, कोई मार डालेगा, तो भी क्या बिगड़ा! क्या खो गया? यह जिंदगी तो जाने ही वाली थी; ढंग से गयी।
और हो सकता है, अगर मरते क्षण में भी तुम्हारा हृदय अनुकंपा से भरा हो,
तो तुम मुक्त हो जाओगे। यह मृत्यु मोक्ष बन सकती है।
लोग पत्थर मारेंगे न। लोग अपमान करेंगे। लोग प्रतिष्ठा खराब कर देंगे। तो ठीक है। इससे अहंकार को गिरने में सहायता मिलेगी। हर्जा क्या है!
मंजुश्री को देखा! चला गया! और डरे। उन्होंने कहाः वह विमलकीर्ति कष्ट में डालेगा! मंजुश्री चला गया और लोग डरे। मंजुश्री को कुछ डर नहीं था, क्योंकि अहंकार नहीं था।
यह विरोध का भय भी अहंकार का ही भय है।
और तुम कहते हो कि "मेरी सामर्थ्य अति अल्प है।"
सभी की है। जितनी है, उसका उपयोग करो, तो बढ़ेगी। इस गीत पर ध्यान करना। दीपक गानः
अगर आंधियां चल रहीं तो चलें
किसी ने संजोया मुझे प्यार से
मदिर प्यार से, आज मनुहार से
संवारा मुझे जीत और हार से
किसी की अलस-आस का दीप मैं
रहा जल तिमिर में नवल चांद-सा अगर बिजलियां गिर रहीं तो गिरें मचलकर सभी दीप पथ के बुझे
चरण राहियों के डगर पर रुके थके दृग सभी के मुझी पर झुके किसी की सरस छांह में मैं पला रहा जल विगत की मधुर याद-सा अगर बदलियां घिर रहीं तो घिरें नहीं डर मुझे आज तूफान से
न तूफान से और न निर्वाण से
न निर्वाण से और न अवसान से
किसी का शुचिर साधना-दीप मैं अकंपित अचंचल जला हास-सा
अगर छल रही चिर प्रलय, तो छले जला मैं, जली प्राण की वर्तिका चले जल शलभ, जल रही उर शिखा
मुझे छू हंसी, स्वर्ण-सी मृत्तिका

किसी की करुण आह का दीप मैं
रहा जल चिरंतन रुचिर फूल-सा
अगर आंधियां चल रहीं तो चलें
चलने दो आंधियों को; आने दो तूफानों को। तुम छोटे दीप ही सही; मिट्टी
के दीए ही सही। लेकिन तुम में भी सूरज का प्रकाश है। तुम छोटे से आंगन ही सही, मगर तुम में भी विराट आकाश है। जितनी चुनौतियां होंगी, उतने ही तुम बड़े हो जाओगे।
आदेश नहीं देता हूं। यह सिर्फ समझ दे रहा हूं। तुम ऐसा करो ही, ऐसा नहीं कह रहा हूं।
और ऐसा भूलकर भी मत सोचना कि मैंने कहा, इसलिए तुम करोगे। वह तो बात बेकार हो गयी। मेरे कहे किया, तो किसी काम का न रहा। तुम्हारे आनंद से हो; तुम्हारे आनंद से निकले। सहज-स्फूर्त हो। सहज-स्फूर्त ही सुंदर है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ सात प्रवचन

बोध से मार पर विजय

वितक्कपमथितस्स जंतुनो तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पबड्ढति एसो खो दल्हं करोति बंधनं।। 287।।

वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो।
एस खो व्यन्तिकाहिनी एसच्छेच्छति मारबंधनं।। 288।।

निट्ठंगतो असंतासी वीततण्हो अनंगणो।
उच्छिज्ज भवसल्लानि अंतिमो"यं समुस्सयो।। 289।।

वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जांं पुब्बापरानि च।
स वे अंतिमसारीरो महापांं"ति वुच्चति।। 290।।

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि
सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बंजहो तण्हक्खये विमुत्तो
सयं अभिंंय कमुद्दिसेय्यं।। 291।।

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति
सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रति धम्मरती जिनाति
तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।। 292।।

प्रथम दृश्यः

भगवान जेतवन में विहरते थे। एक तरुण भिक्षु पर एक स्त्री मोहित होकर उसे गृहस्थ बनाने के लिए नाना प्रकार के प्रलोभन दिए। वह भिक्षु अंततः उसकी बातों में आकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो जाने के लिए तैयार हो गया। भगवान यह सब चुपचाप देखते रहे थे। जब युवक गिरने को ही हो गया, तब उन्होंने उसे पास बुलाया और कहाः स्मृति को सम्हाल! होश को जगा! पागल, ऐसे ही तो पूर्व में भी तू गिरा है और बार-बार पछताया है। अब फिर वही! भूलों से कुछ सीख! स्मृति को सम्हाल! और तब उन्होंने ये दो गाथाएं कहींः

वितक्कपमथितस्स जंतुनो तिब्बरागस्स सुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पबड्ढति एसो खो दल्हं करोति बंधनं।।
वितक्कूपसमे च यो रतो असुभं भावयति सदा सतो।
एस खो व्यन्तिकाहिनी एसच्छेच्छति मारबंधनं।।

"जो मनुष्य संदेह से मथित है, और तीव्र राग से युक्त है, शुभ ही शुभ देखने वाला है, उसकी तृष्णा और भी बढ़ती है। और वह अपने लिए और भी दृढ़ बंधन बनाता है।"
"जो मनुष्य संदेह के शांत हो जाने में रत है, सदा सचेत रहकर जो अशुभ की भावना करता है, वह मार के बंधन को छिन्न करेगा और तृष्णा का विनाश करेगा।" इसके पहले कि हम गाथाओं में उतरें, इस परिस्थिति को ठीक से समझ लें।
ये परिस्थितियां मनुष्य के मन की ही परिस्थितियां हैं। इन परिस्थितियों में मनुष्य के मन में उठने वाले संदेहों का ही विश्लेषण है।
एक तरुण भिक्षु पर एक स्त्री मोहित हो गयी।
ऐसा अक्सर हो जाता है। जितना दुर्लभ हो व्यक्ति, उतना ही आकर्षक हो जाता है। संन्यस्त व्यक्ति अक्सर आकर्षण का कारण बन जाता है। स्त्रियों

88

के पीछे तुम भागो, तो वे तुमसे बचती हैं। तुम स्त्रियों से भागो, तो वे तुम्हारा पीछा करती हैं! यही बात पुरुष के संबंध में भी सच है। स्त्री अगर पुरुष से भागने लगे, तो पुरुष उसका पीछा करता है। स्त्री अगर पुरुष के पीछे चलने लगे, तो पुरुष उससे भागने लगता है।
मनुष्य का मन बड़े द्वंद्व से भरा है! एक हमेशा पीछा करेगा, और एक हमेशा भागता हुआ रहेगा। ऐसे आकर्षण कायम रहता है। प्रकृति की बड़ी गहन रचना है। जो मिल जाए, उसमें आकर्षण समाप्त हो जाता है। जो न मिले, तो आकर्षण बना रहता है।
स्त्रियों का आकर्षण उसी मात्रा में ज्यादा होगा, जिस मात्रा में उनका पाना कठिन हो। पुरुषों का आकर्षण भी उसी मात्रा में ज्यादा होगा, जिस मात्रा में उन तक पहुंचना करीब-करीब असंभव हो। असंभव से प्रेम कभी मरता नहीं। संभव से प्रेम मर जाता है। क्योंकि जो मिला, उसमें आकर्षण समाप्त हुआ। जो न मिले--न मिले--उसमें ही आकर्षण होता है।
संन्यस्त व्यक्ति अक्सर--सदियों से--स्त्रियों का आकर्षण हो गए हैं।
इस भिक्षु पर--युवा भिक्षु पर--एक स्त्री मोहित हो गयी।
और संन्यासी पर मोहित हो जाने का एक कारण अन्य भी है। संन्यास में एक तरह का सौंदर्य है, जो संसारी में नहीं हो सकता।
संसार को छोड़कर जो हटता है, उसके संसार को छोड़कर हटने में ही वह विशिष्ट हो गया, असाधारण हो गया। जो ध्यान में लगता है, उसके भीतर एक प्रसाद का जन्म होता है।
एक तो सौंदर्य देह का है। एक देह से पार सौंदर्य और भी है--आत्मा का सौंदर्य है। और जिसकी आत्मा का सौंदर्य थोड़ा सा भी खिलने लगे, उसकी देह कुरूप भी हो, तो भी कुरूप मालूम नहीं होगी। जैसे बुझा दीया हो, तो तुम्हें दीया दिखायी पड़ता है। फिर जल गया दीया, ज्योतिर्मय हो गया, तो ज्योति दिखायी पड़ने लगती है। फिर दीए को कौन देखता है! फिर दीया सुंदर है या नहीं, यह बात गौण हो जाती है। दीया सुंदर है या नहीं--तब तक बात बड़ी महत्वपूर्ण रहती है, जब तक दीया बुझा हो। क्योंकि दीया ही है, और तो कुछ है ही नहीं। जैसे ही दीया जला, ज्योति का अवतरण हुआ, अब कौन दीए की चिंता करता है?
ऐसी ही घटना संन्यासी को भी घटती है। संसारी के पास तो देह मात्र है; मिट्टी का दीया है; ज्योति अभी जगी नहीं। संन्यासी की ज्योति जगनी शुरू होती है। उस ज्योति के अवतरण पर दीया गौण हो जाता है। महत्वपूर्ण आ गया, तो स्वभावतः जो गैर-महत्वपूर्ण है, वह गौण हो गया। मालिक आ जाए, तो नौकर गौण हो जाता है। मालिक न हो, तो नौकर ही मालिक जैसा मालूम पड़ता है।
संन्यास में एक आकर्षण और भी है इसीलिए। भीतर का आकर्षण है। संन्यासी
एक आंतरिक सौंदर्य से दीप्त हो जाता है, एक आभामंडल उसे घेर लेता है।
और ध्यान रहे, जैसा मैं निरंतर तुमसे कहा हूंः मनुष्य वस्तुतः शाश्वत
की खोज में ही प्रेम में पड़ता है। तुम जब किसी स्त्री के प्रेम में पड़ते या किसी पुरुष के प्रेम में पड़ते, तो ऊपर से तो ऐसा ही दिखता है कि इस स्त्री के प्रेम में पड़ रहे, इस पुरुष के प्रेम में पड़ रहे; लेकिन अगर ठीक विश्लेषण करो अपनी मनोदशा का, तो तुम्हें इस स्त्री में कुछ शाश्वत की झलक मिली--इसलिए। इस पुरुष में तुम्हें सनातन का कोई स्वर सुनायी पड़ा--इसलिए। इस स्त्री की आंखों में तुम्हें कुछ बात दिखायी पड़ी, जो आंखों के पार की है। इसके सौंदर्य में भनक मिली तुम्हें परमात्मा की।
तो संसारी में तो बहुत धीमी ध्वनि होती है परमात्मा की; हजार पर्तों में दबी होती है। संन्यासी का अर्थ ही यही है कि जिसने पर्तें उघाड़नी शुरू कर दीं और जिसका संगीत धीरे-धीरे प्रगाढ़ होने लगा। उसके पास जाओगे, तो उसके अंतरतम के संगीत में मोहित हो ही जाओगे।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। क्योंकि मनुष्य का प्रेम वस्तुतः परमात्मा
के लिए है। जब तुम किसी के देह में भी उलझ जाते हो, तब भी तुम परमात्मा की ही खोज में उलझते हो। इसलिए हर बार देह में उलझकर पछताते हो। क्योंकि जो सोचा था, वह तो मिलता नहीं। और जो मिलता है, वह सोचा नहीं था। सोचा तो था कि विराट मिलेगा; कम से कम विराट का द्वार मिलेगा। लेकिन जो मिलता है, वह दीवार है। जो मिलता है, वह क्षणभंगुर है।

जब तुम फूल के सौंदर्य में अवाक खड़े रह जाते हो, तब यह क्षणभंगुर फूल
के सौंदर्य में तुम अवाक नहीं हुए हो। इस क्षणभंगुर में कोई किरण दिखायी पड़ी है, जो क्षणभंगुर नहीं है। इस क्षणभंगुर पर कोई आभा उतरी है, जो अनंत है, शाश्वत है। यह क्षणभंगुर उस शाश्वत आभा से दीप्त हो उठा है, इसलिए क्षणभंगुर में भी आकर्षण है। आभा उड़ जाएगी। सांझ फूल गिर जाएगा झरकर धूल में। फिर तुम इसे प्रेम न करोगे।
जब युवा होते हैं लोग, तब परमात्मा की झलक बड़ी साफ होती है। फिर जैसे- जैसे वृद्ध होने लगते हैं, देह जड़ होने लगती है, देह मरने के करीब आने लगती है, वैसे-वैसे परमात्मा की झलक कम होने लगती है। इसलिए यौवन का आकर्षण है। संन्यासी का आकर्षण और भी ज्यादा है। क्योंकि संन्यासी सदा युवा है। इसलिए तुमने देखाः हमने बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम की कोई वार्धक्य, वृद्धावस्था की मूर्तियां नहीं बनायीं। उनका कोई चित्र नहीं है हमारे पास।
बूढ़े तो वे जरूर हुए थे। नियम किसी की चिंता नहीं करता। राम भी बूढ़े हुए; कृष्ण भी बूढ़े हुए; बुद्ध और महावीर भी बूढ़े हुए; लेकिन हमने उनके ब.ुढापे के चित्र नहीं बनाए। क्योंकि हमने उनमें पाया कि क्षणभंगुर गौण था; शाश्वत प्रधान था। हमने उनमें एक ऐसा यौवन देखा, जो कभी कुम्हलाता नहीं। हमने उनकी देह की चिंता नहीं की, क्योंकि दीए की कौन फिक्र करता है जब रोशनी उतर आए! हमने उनकी भीतर की रोशनी की फिकर की।
साधारणजन के पास तो रोशनी नहीं है, दीया ही सब कुछ है। इसे तुम ख्याल करना। इस तथ्य के तुम करीब कई बार आओगे।
संन्यासी में जो तुम्हें आकर्षण मालूम होता है, उसके प्रति झुक जाने
का जो भाव होता है, उसके प्रेम में पग जाने की जो आकांक्षा होती है, वह इसीलिए है।
क्षुद्र कारण चाहे दिखायी पड़ते हों, लेकिन हर क्षुद्रता के भीतर विराट छिपा है। अगर कण-कण में परमात्मा है, तो क्षुद्रता में भी विराट है। एक तरुण भिक्षु पर बुद्ध के, एक स्त्री मोहित होकर उसे गृहस्थ बनाने
के नाना प्रकार के प्रलोभन दिए।
दूसरी मन की बात समझोः अब यह स्त्री प्रभावित हुई है वस्तुतः इसके संन्यास के सौंदर्य से। और बनाना चाहती है इसे गृहस्थ। जैसे ही यह गृहस्थ हो जाएगा, यह सौंदर्य खतम हो जाएगा।
इसलिए अक्सर हम अपने पैरों पर खुद ही कुल्हाड़ी मारते हैं। वह हमें दिखायी नहीं पड़ता। हम वही कर लेते हैं, जिससे हमारा बनाया हुआ मंदिर गिर जाएगा।
तुम्हें एक स्त्री में सौंदर्य दिखायी पड़ता है, क्योंकि वह अभी स्वतंत्र है। हवा की तरंग की तरह है, तुम्हारे बंधन में नहीं है। उसकी स्वतंत्रता में ही उसका अल्हड़पन है। फिर तुमने उसको बांधा विवाह में, कानून में; घर में लाकर बंद कर दिया। अब तुम्हारा उसमें रस कम होने लगे, तो आश्चर्य नहीं है। क्योंकि तुम्हारे रस का एक बुनियादी कारण था--उसका अल्हड़पन, उसकी मुक्ति, उसका सौंदर्य, उसकी स्वतंत्रता में था।
जैसे तुमने आकाश में उड़ते एक पक्षी को देखा और तुम आकर्षित हो गए। फिर तुम उस पक्षी को बांधे, पकड़े; चाहे सोने के पिंजड़े में लाकर रखो, लेकिन आकाश में उड़ता हुआ पक्षी बात ही और। सोने के पिंजड़े में बैठा पक्षी बात ही और। ये दो अलग पक्षी हो गए। ये एक ही पक्षी नहीं हैं। अब तुम्हें पिंजड़े में बंद इस पक्षी में वह रस नहीं मालूम होता, जो जब उसने पंख फैलाए थे सूरज की तरफ, तब मालूम हुआ था। तुमने अपने हाथ से हत्या कर दी।
एक गुलाब का फूल खिला। खूब सुंदर था। तुम जल्दी से तोड़ लिए। थोड़ी ही देर में तुम्हारे हाथ में कुम्हला जाएगा। थोड़ी ही देर में तुम रास्ते के किनारे फेंककर अपने मार्ग पर चले जाओगे। क्या हुआ! सुंदर था फूल, अपूर्व सुंदर था। लेकिन उसके सौंदर्य में जो जीवंतता थी, वह तुम्हारे तोड़ने में ही नष्ट हो गयी।
जो व्यक्ति फूलों को प्रेम करता है, तोड़ेगा नहीं। जो व्यक्ति किसी को प्रेम करता है--स्त्री हो या पुरुष--उस पर बंधन न डालेगा। जो किसी पक्षी को

प्रेम करता है, वह पिंजड़ों में उसे बंद नहीं करेगा। लेकिन अक्सर हम यही करते हैं। आदमी ऐसा मूढ़ है, अपने आनंद को अपने ही हाथों नष्ट कर लेता है! तुम देखना अपने जीवन में। तुम रोज-रोज इसके प्रमाण पाओगे। इसलिए मैं कहता हूंः ये छोटी-छोटी कहानियां बड़ी अर्थपूर्ण हैं। इनके भीतर मनुष्य का पूरा का पूरा मनोविज्ञान छिपा है।
यह स्त्री आकर्षित हो गयी है। दुनिया में इतने लोग हैं, एक संन्यासी
पर आकर्षित होने की जरूरत क्या! कोई लोगों की कमी है? जो संसार छोड़कर चला गया है, उसे क्षमा करो; उसे जाने दो! जो अपने भीतर डूब रहा है, उसे मत खींचो बाहर।
लेकिन नहीं; जो अपने भीतर डूब रहा है, उसमें अपूर्व आकर्षण मालूम होता है। उसकी गहराई बढ़ जाती है। उसके व्यक्तित्व में एक गरिमा आ जाती है। उसमें कुछ जुड़ जाता है जो संसार से बाहर का है। उसमें पारलौकिक की थोड़ी सी छबि उतर आती है।
मगर तब यह स्त्री उसे प्रलोभन देने लगी--कि क्यों भटकते हो? क्यों भीख मांगते हो? मैं तो हूं! सब सुविधा है; सब संपन्नता है। महल है, धन है--सब तुम्हारा है। तुम द्वार-द्वार भीख मांगो, मुझे बड़ा कष्ट होता है। तुम आ जाओ मेरे पास। हम विवाहित होंगे। और जैसा कहानियों में होता है--विवाह हो गया, फिर सदा सुखी रहेंगे!
कहानियों में ही होता है ऐसा। या फिल्मों में होता है। फिल्म खतम हो जाती है अक्सर। शहनाई बज रही, बाजे बज रहे, विवाह हो रहा है, फिल्म खतम! क्योंकि उसके बाद फिर दोनों सुख से रहने लगे!
जिंदगी में हालत उलटी है। उसके बाद ही दुख शुरू होता है--शहनाई के बाद! पहले शहनाई बजती है, फिर दुख बजता है। विवाह के बाद जीवन में दुख की शुरुआत है। जब एक व्यक्ति सुखी नहीं हो सका अकेले में, तो दो दुखी मिलकर दुख को दुगुना करेंगे, बहुगुना करेंगे; कम नहीं कर सकते। दो बीमारियां जुड़ गयीं, दुगुनी हो गयीं--या अनंतगुनी हो जाएंगी। गुणनफल हो जाएगा। मगर कम नहीं हो सकतीं।
अकेला आदमी जरूर थोड़ा दुखी होता है, क्योंकि अकेला होता है। मगर विवाहित आदमी के दुख का उसको कुछ भी पता नहीं है। सभी विवाहित लोग पछताते हैं कि अकेले ही क्यों न रह गए! मगर अब बड़ी देर हो चुकी। अब अकेले होने का उपाय नहीं है।
सब अविवाहित चिंता करते हैं कि कब तक अविवाहित रहना है! कब तक अकेले रहना है?
यह दुनिया बड़ी अजीब है! यहां अविवाहित विवाह की सोचता है। यहां विवाहित अविवाह की सोचता है। यहां जो जहां है, वहीं नहीं रहना चाहता; कहीं और होना चाहता है। कोई कहीं सुखी नहीं है। कहीं और सुख होगा; कहीं और ही हो सकता है। यहां तो निश्चित ही नहीं है।
तुम जहां हो, वहां सुख नहीं है। और जो व्यक्ति सुख चाहता है, उसे वहीं सुखी होना पड़ता है जहां है। संन्यास की यही अर्थवत्ता है। संन्यास का अर्थ हैः इस क्षण सुखी; जैसे हैं, उसमें सुखी। जहां हैं, वहां सुखी। अन्यथा की मांग का न होना ही तृष्णा का विसर्जन है।
इसलिए संन्यासी में एक अपूर्व शुद्धता झलकने लगती है। उसकी आंखों में
एक शांति झलकने लगती है। उसके पास भी बैठोगे, तो उसकी शांति तुम्हें छुएगी। उसकी शांति तुम से दुलार करेगी। उसकी शांति तुम्हारे आसपास बहेगी।
यह स्त्री इस संन्यासी के मोह में पड़ गयी। उसे सब तरह के प्रलोभन देने लगी। धन था उसके पास; पद था उसके पास; महल था उसके पास। वह कहती होगी कि तुम्हें मैं इतना प्रेम करती; तुम्हारे पैर दबाऊंगी। तुम मेरे मालिक, तुम मेरे स्वामी। तुम क्यों भीख मांगो! क्यों नंगे पैर रास्तों पर भटको! यह महल तुम्हारा; यह सब तुम्हारा। तुम यहां आ जाओ।
जैसे कोई पक्षी को--खुले आकाश के पक्षी को--कहे कि इस पिंजड़े में सब सुविधा है। यहां कभी भूखे न मरोगे। रोज-रोज खोजने भोजन को जाना न पड़ेगा। और फिर देखते हो, सोने का पिंजड़ा है! फिर देखते हो, इस पर हीरे-जवाहरात जड़े

हैं! ऐसा पिंजड़ा दुनिया में दूसरा नहीं। तुम आ जाओ भीतर। मुझे द्वार बंद कर देने दो। एक बार तुम इसमें आ गए, तुम सदा निश्चिंत रहोगे। सुरक्षित रहोगे। इस पिंजड़े का बीमा कराया हुआ है!
और शायद पक्षियों में भी आदमी जैसी बुद्धि होती, तो वे भी स्वीकार कर लेते। वे अपने से स्वीकार नहीं करते। जबर्दस्ती उन्हें पिंजड़े में बंद कर दो, एक बात।
लेकिन आदमी बुद्धिमान है! आदमी सोचता हजार बातें। इस युवक ने सोचा होगाः आज तो जवान हूं, तो भीख मांग लेता हूं। कल बूढ़ा हो जाऊंगा, फिर? खैर, बुद्ध बूढ़े हो गए हैं, इनको अभी भी भीख मिल जाती है। ये राजपुत्र हैं। मैं कोई राजपुत्र तो हूं नहीं। फिर बुद्ध महिमाशाली हैं; इनके वचनों में अमृत है। मैं तो साधारणजन हूं। फिर आज तो बुद्ध हैं, तो इनके पीछे छाया की तरह चलता हूं। सुख है, सुविधा है। सब ठीक हो जाता है। कल बुद्ध मर जाएंगे, फिर? ऐसी हजार चिंताएं--जैसे तुम्हें पकड़ती हैं--उसे पकड़ी होंगी। हजार विचार उसे आए होंगेः कभी बीमार होऊंगा, कभी बूढ़ा होऊंगा, फिर कौन मेरी चिंता करेगा? फिर कौन मुझे भोजन देगा? कौन मेरे पैर दबाएगा? यह सुंदर प्यारी स्त्री सब समर्पित करने को राजी है। इसका समर्पण तो देखो! इसका त्याग तो देखो! इसका प्रेम तो देखो! ऐसे बहुत-बहुत प्रलोभन उसके मन में पड़े होंगे। और बहुत तरंगें उसके मन में उठी होंगी।
बुद्ध चुपचाप देखते रहे थे। सदगुरु तभी रोकता है, जब तुम अपने से न रुक पाओ। जब तक तुम अपने से रुक सकते हो, सदगुरु न रोकेगा। क्योंकि सदगुरु का आत्यंतिक अर्थ यही है कि तुम्हें जितनी स्वतंत्रता दी जा सके, दी जाए। स्वतंत्रता में निश्चित ही गिरने की स्वतंत्रता भी सम्मिलित है। ऐसी
तो कोई स्वतंत्रता हो ही नहीं सकती, जिसमें हम कहें कि ऊपर चढ़ो तो स्वतंत्र, गिरो तो स्वतंत्र नहीं! स्वतंत्रता तो दोनों की होती है--शुभ की, अशुभ की।
और बुद्ध ने परिपूर्ण स्वतंत्रता दी थी अपने भिक्षुओं को। वे अपूर्व सदगुरु थे।
वे देखते रहे। देखते रहे, कई कारणों से। एक तो हर छोटी-छोटी बात में बाधा देनी उचित नहीं है। और हर छोटी-छोटी बात में बाधा दी जाए, तो व्यक्ति का विकास रुकता है। उसे सोचने दो। उसे चिंतन करने दो। उसे गुजरने दो परेशानियों से; उसे चुनौतियों का सामना करने दो।
जैसे मां देखती रहती है अपने बच्चे को--कि वह चल रहा है; खड़ा हो रहा है।
एक नजर से ध्यान रखती है। अपने काम में भी लगी रहती है। ऐसा भी ज्यादा ध्यान नहीं देती कि बच्चे को ऐसा लगे कि मां चौबीस घंटे उसके पीछे पड़ी है। पर देखती रहती है चुपचापः कहीं गिर न जाए; कहीं आंगन से नीचे न उतर जाए; कहीं सड़क पर न चला जाए; कहीं आग के पास न पहुंच जाए; कुछ खतरा न हो जाए। और तब तक देखती रहती है, जब तक कि खतरा हो ही न जाए, होने के ही करीब न पहुंच जाए। अन्यथा चुपचाप रहती है, चलने-फिरने देती है। नहीं तो बच्चा चलेगा कैसे? खड़ा कैसे होगा? जीवन के योग्य कैसे बनेगा?
ऐसा ही सदगुरु है।
बुद्ध देखते रहे। सब पता है, क्या हो रहा है। इस युवक के मन में कैसी चिंताएं चल रही हैं; कैसे-कैसे प्रलोभन इसे पकड़ रहे हैं। यह पिंजड़े में जाने को किस तरह आतुर हुआ जा रहा है। लेकिन बुद्ध इस आशा में रुके हैं कि यह अपने से रुक जाए, तो महाशुभ है। क्योंकि जब तुम अपने से रुकते हो, तब तुम्हारे जीवन में क्रांति घटित होती है। जब कोई तुम्हें रोक लेता है, तो क्रांति नहीं घटित होती।
जब तुम अपने से रुकते हो, तो तुम्हारा बोध बढ़ता है। जब तुम अपने से एक भूल से बचते हो, तो तुम्हारे जीवन में ऊंचाई आती है; तुम पहाड़ थोड़ा और ऊपर चढ़ गए। जब कोई दूसरा तुम्हारे हाथ को पकड़कर, सहारा देकर, ऊंचा चढ़ा देता है-- ऊंचाई पर तो पहुंच जाते हो, लेकिन यह ऊंचाई उधार होती है। और सदगुरु नहीं चाहता कि शिष्यों की ऊंचाई उधार हो।

बुद्ध ने कहा हैः बुद्धपुरुष तो केवल इशारा करते हैं, चलना तो तुम्हीं को पड़ता है। इसलिए जब मजबूरी हो जाती है, तभी, अत्यंत विवश अवस्था में सदगुरु टोकता है। फिर भी टोकना टोकने जैसा नहीं होता।
बुद्ध ने उससे यह नहीं कहा कि तू ऐसा मत कर। कोई आदेश नहीं दिया। आज्ञा नहीं दी कि पाप में पड़ेगा; नर्क जाएगा। ऐसा मत कर। उसे भयभीत भी नहीं किया। सिर्फ होश सम्हालने के लिए थोड़ी सी चेतावनी दी--कि थोड़ा जाग। फिर जागकर भी तुझे ऐसा ही लगे करना, तो जरूर कर। क्योंकि मैं कौन हूं तुझे रोकने वाला। तेरी जिंदगी तेरी है। तेरा भविष्य तेरा है। तेरी नियति तेरी है। लेकिन तुझे प्रेम करता हूं--इतनी चेतावनी मेरी तरफ से; इतनी सलाह मेरी तरफ से। ले तो ठीक, न ले तो मेरी मर्जी।
वह भिक्षु धीरे-धीरे अंततः उसकी बातों में आकर चीवर छोड़कर गृहस्थ हो जाने के लिए तैयार हो गया।
अंततः शब्द पर ध्यान देना। उसने बहुत देर तक लड़ाई की। बहुत अपने को रोकना चाहा। ऐसे जल्दी राजी नहीं हो गया। एकदम से राजी नहीं हो गया। स्त्री ने पुकारा, और चल नहीं पड़ा उसके पीछे। जद्दो-जहद की; सब तरह से अपने को सम्हालने की कोशिश की।
इसलिए बुद्ध और भी चुप रहे। देखते थे कि वह कोशिश में लगा है। अपने से सम्हालने की कोशिश में लगा है। बचने की चेष्टा जारी है। काश! अपने से बच जाए, तो वे कभी न बोले होते। अपने से रुक गया होता, तो बुद्ध ने ये वचन न कहे होते। ये गाथाएं पैदा न हुई होतीं।
अंततः नहीं रोक पाया। प्रलोभन और वासना प्रगाढ़ हो गयी। सुरक्षा, सुविधा ज्यादा बहुमूल्य मालूम होने लगे स्वतंत्रता की बजाय। स्वयं के भीतर जाने की बजाय बाहर की थोड़ी सी सुविधाएं ज्यादा मूल्यवान मालूम होने लगीं। जब बुद्ध ने देखा होगा कि अब तराजू का ढंग बदल रहा है; जो पलड़ा अब तक भारी था, कम भारी हुआ जाता है; जो अब तक कम भारी था, भारी हुआ जाता है; इसका चित्त डोल रहा है; इसका चित्त संसार की तरफ बहा जा रहा है... ।
जब यह बात बिल्कुल पक्की हो गयी होगी बुद्ध को कि अब अगर एक क्षण और देर की गयी, तो शायद फिर बहुत देर हो जाएगी। तब उन्होंने उस युवक को अपने पास बुलाया। उससे कहाः स्मृति को सम्हाल।
इन वचनों को ख्याल में रखना। निंदा नहीं की। डांटा-डपटा नहीं। अपराधी नहीं ठहराया। तू पाप करने जा रहा है; महापाप करने जा रहा है; तुझे नर्क की अग्नि में जलाया जाएगा--इस तरह के भय नहीं दिए। दंड की घबड़ाहट पैदा नहीं की। कहा क्या? बड़े मीठे शब्द कहेः स्मृति को सम्हाल।
स्मृति बुद्ध का अपना विशिष्ट शब्द है। स्मृति का ठीक वही अर्थ होता है, जो मध्ययुग में संतों ने सुरति का किया। सुरति स्मृति का ही बिगड़ा हुआ रूप है। कबीर कहते हैंः सुरति। नानक कहते हैंः सुरति। सुरति को सम्हालो। क्या है सुरति? क्या है स्मृति?
तुम जो स्मृति का अर्थ समझते हो, वैसा मत समझ लेना। वह बुद्ध का अर्थ नहीं है। तुम्हारा तो अर्थ होता है स्मृति से--मेमोरी, याददाश्त, अतीत की याददाश्त। हम कहते हैंः फलां आदमी की स्मृति बड़ी अच्छी है, क्योंकि वह सैकड़ों लोगों के नाम याद रख लेता है। जो किताब एक दफा पढ़ता है, भूलता ही नहीं। जो फोन नंबर एक दफे याद कर लिया वह याद सदा के लिए हो गया। तीस-चालीस साल के बाद भी पूछोगे, तो वह फोन नंबर बता देगा। जिसकी याददाश्त अच्छी होती है, उसको हम कहते हैं--स्मृतिवान।
बुद्ध का वैसा अर्थ नहीं है। बुद्ध के स्मृति का अर्थ मेमोरी नहीं है, माइंडफुलनेस है। स्मृति का अर्थ हैः जागा हुआ, स्मरण को उपलब्ध। अतीत की स्मृति नहीं, वर्तमान की स्मृति। अभी मैं क्या कर रहा हूं, अभी मुझ से क्या हो रहा है--यह होशपूर्वक करने का नाम स्मृति है बुद्ध के वचनों में।
जो मैं करने जा रहा हूं, वह करने योग्य है? करने योग्य नहीं है? पहले
भी मैंने इस तरह के कृत्य किए हैं, उनका क्या परिणाम हुआ है? उनसे मैं कहां पहुंचा? क्या मैंने पाया? पहले भी मैंने ऐसे कृत्य किए और पछताया हूं। अब फिर वही कृत्य कर रहा हूं। फिर पछताऊंगा। पहले मैंने ऐसे कृत्य किए हैं और कसमें खायी हैं कि अब कभी न करूंगा, और फिर करने चला--इस सारी बोध-दशा का

नाम स्मृति है। अपने को झंझोड़कर, जगाकर, तंद्रा से चौंकाकर स्थिति को पूरा का पूरा अवलोकन करना और फिर उस अवलोकन के ही आधार पर कृत्य में उतरना। साधारणतः हम अवलोकन नहीं करते। हम तो उतर जाते हैं अंधे की तरह! हमें कोई भी फुसला लेता है! हमें कोई भी आकर्षित कर लेता है। हमारे भीतर कोई केंद्र ही नहीं है। हम बिल्कुल ऐसे सूखे पत्ते हैं कि हवा जहां ले जाए, चले जाते हैं। या लकड़ी का एक टुकड़ा है, जो सागर में तैर रहा हैः न कोई दिशा, न कोई गंतव्य! तरंगें जहां ले जाएं।
एक स्त्री मिल गयी रास्ते पर और उसने कहाः मैं तुम्हें प्रेम करती हूं। और तुम मंदिर जा रहे थे। और तुम भूल गए मंदिर! और यह अजनबी स्त्री, कभी पहले मिले भी न थे! न इसे जानते हो। और एक क्षण में लोभ पकड़ा, वासना पकड़ी। तुम एक अंधेरे में खो गए। तुम्हारी स्मृति धुंधली हो गयी।
बुद्ध ने कहाः स्मृति को सम्हाल! होश को जगा। पागल... ।
पापी नहीं कहा बुद्ध ने, कहाः पागल। फर्क समझना। साधारणतः तुम्हारे धर्मगुरु कहेंगेः पापी। पापी में निंदा हो गयी, अपमान हो गया। निंदा और अपमान से कहीं कोई रूपांतरित होता है?
बुद्ध ने कहाः पागल। पागल सार्थक शब्द है। पागल का अर्थ हैः यही तो तू पहले भी किया, बहुत बार किया। फिर करने लगा!
पापी का क्या अर्थ है? मूर्च्छित आदमी को क्या पापी कहना! बुद्ध गाली नहीं देते। बुद्ध चिकित्सक हैं। उपचार करते हैं। उपाय करते हैं।
अब बीमार आदमी को पापी कहने से क्या फायदा? बीमार आदमी को उसकी बीमारी
के बाहर लाना है। उसको हाथ का सहारा चाहिए। शायद पापी कहने से तो तुम्हारे और उसके बीच दूरी बढ़ जाएगी। फिर तुम्हारा हाथ भी दूर हो जाएगा। और शायद पापी कहने से उसके अहंकार को तुम ऐसी चोट पहुंचा दोगे, कि वह उसका प्रतिकार लेने के लिए वही कर लेगा, जिसको तुम चाहते थे कि न करे। सोच-समझकर एक-एक शब्द का उपयोग करना चाहिए।
बुद्ध तो एक-एक शब्द होशपूर्वक बोलते हैं। कहाः पागल! ऐसे ही तू पूर्व में भी गिरा है। यह कोई नयी तो बात नहीं। नयी होती, तो क्षम्य भी थी। तू पहले भी तो ऐसे गिरा है। और बार-बार पछताया है। अब फिर वही करेगा?
भूल भी करनी हो, तो कुछ नयी करनी चाहिए। तो कुछ लाभ होता है। उसी-उसी भूल को दोहराना, तो जड़ता है।
ख्याल रखनाः बुद्ध कभी नहीं कहते कि भूल मत करो। बुद्ध सदा कहते हैं
कि भूल के बिना कोई सीखेगा कैसे! भूल तो होगी। लेकिन एक ही भूल को दुबारा मत करो। दुबारा की, तो फिर सीखने का उपाय न रहा। एक बार करो और सीख लो उससे, जो सीखना हो। निचोड़ ले लो। और उस निचोड़ के आधार पर जीवन को निर्मित करो। फिर दुबारा करने का तो मतलब है कि सिखावन नहीं ली।
और हम तो एक-एक भूल हजारों बार करते हैं! तुमने क्रोध कल भी किया था, परसों भी किया था, उसके पहले भी किया था। जीवनभर से क्रोध कर रहे हो और हर बार क्रोध करके सोचाः अब नहीं करेंगे। बहुत हो गया। आखिर बहुत... । एक सीमा होती है हर बात की। अब पक्का निर्णय है, अब क्रोध नहीं करेंगे।
और फिर किसी ने धक्का दे दिया। फिर किसी ने घाव छू दिया। और फिर एक क्षण में तुम आग-बबूला हो गए। भूल गए सब पछतावे; भूल गए सब वचन जो तुमने अपने को दिए। भूल गए कसमें, जो तुमने ली थीं। एक क्षण में फिर आग भभकी। फिर वही हो गया।
ऐसे अगर तुम बार-बार वही-वही करते रहे, तो एक वर्तुल में घूमते रहोगे। तुम्हारा जीवन रूपांतरित कैसे होगा! क्रांति कैसे घटेगी?
तो बुद्ध ने कहाः पागल! ऐसे तो तू पूर्व में भी गिरा और बार-बार पछताया। फिर वही? अब फिर वही? भूलों से सीख। स्मृति को सम्हाल।
सुनते हो इन प्यारे वचनों को! इनमें कहीं निंदा नहीं है। इनमें सहारे
के लिए बढ़ाया गया हाथ है। इसमें जागरण के लिए पुकार है। कहीं कोई अपमान नहीं है। कहीं कोई नर्क का भय नहीं है। और कहीं कोई स्वर्ग का प्रलोभन नहीं है।

मुसलमान फकीर स्त्री हुई राबिया। एक बार लोगों ने देखा कि वह रास्ते
पर भागी जा रही है। एक हाथ में उसने मशाल ले रखी है जलती हुई, और दूसरे हाथ में एक पानी से भरा हुआ घड़ा ले रखा है।
लोग पूछने लगेः राबिया! क्या पागल हो गयी हो? बाजार में यह मशाल और पानी का भरा घड़ा लेकर कहां जा रही हो?
उसने कहाः मैं उस धर्म को आग लगाने जा रही हूं, जो स्वर्ग का आश्वासन देता है। मैं स्वर्ग को आग लगा देना चाहती हूं। और नर्क को पानी में डुबा देना चाहती हूं। क्योंकि धर्म लोभ दे स्वर्ग का और भय दे नर्क का, तो धर्म ही न रहा।
यह तो राजनीति हो गयी। यह तो बड़ी क्षुद्र राजनीति हो गयी। लेकिन यही तुम्हारे तथाकथित धर्म कर रहे हैं।
बुद्ध ने यह नहीं किया। बुद्ध ने सिर्फ इतना ही कहाः सम्हल जाओ। सम्हलने में सुख है--निश्चित। गिरने में दुख है--निश्चित। लेकिन परिणाम की तरह नहीं। सम्हलने में सुख है। सम्हलने का स्वभाव सुख है। और गिरने में दुख है। गिरने में चोट लगती है। गिरने का स्वभाव दुख है।
ऐसा नहीं कि गिरोगे, तो फिर कभी तुम्हें दुख मिलेगा भविष्य में, किसी जन्म में। और अभी होश सम्हालोगे, तो किसी भविष्य में स्वर्ग जाओगे। यह तो हद्द हो गयी पागलपन की। लेकिन इसी तरह की बातें कही गयी हैं।
अभी आग में हाथ डालोगे, अगले जन्म में जलोगे। यह क्या बात हुई? अभी हाथ डालोगे, इसी हाथ के डालने में जलना हो जाएगा। अभी फूल छुओगे, अभी हाथ में सुगंध आ जाएगी। ऐसा ही है जीवन।
जीवन नगद है, उधार नहीं। और सब तुम्हारे नर्क और स्वर्ग उधार हैं।
कल्पित मालूम होते हैं। वास्तविक नहीं मालूम होते। वस्तुतः तो यही सत्य है। तुम जैसा करते हो अभी, तत्क्षण, उस करने में ही उसका फल छिपा है।
तुमने किसी की तरफ करुणा से देखा और सुख बरसा। और तुमने किसी की तरफ क्रोध से देखा और दुख बरसा। परिणाम की तरह नहीं; क्रोध में ही दुख छिपा है।
और प्रेम में ही सुख छिपा है।
प्रेम और स्वर्ग एक ही बात के दो नाम हैं। क्रोध और नर्क एक ही बात के
दो नाम हैं।
बुद्ध ने कहाः तू सम्हल। और ये गाथाएं कहीं--
"जो मनुष्य संदेह से मथित है... ।"
अब यह युवक बड़े संदेह में पड़ा थाः ऐसा करूं, वैसा करूं? संन्यासी बना रहूं कि गृहस्थ हो जाऊं? क्या करूं? क्या न करूं? ऐसा डोल रहा था घड़ी के पेंडुलम की तरह! जो घड़ी के पेंडुलम की तरह डोलता रहेगा--यह करूं, वह करूं-- जो ऐसा अनिश्चित-मना रहेगा, उसका जीवन कभी भी थिर न हो पाएगा। और थिरता में असली राज है।
कृष्ण ने कहाः स्थितप्रज्ञ--जिसकी भीतर की प्रज्ञा स्थिर हो गयी, वही महासुख को उपलब्ध होता है।
बुद्ध ने कहाः "जो मनुष्य संदेह से मथित है, तीव्र राग से युक्त है...
।"
राग शब्द बड़ा प्यारा है। इसका अर्थ होता है, रंग। कहते हैं न, राग-रंग। राग का अर्थ होता हैः रंग! जिसकी आंखों पर रंग चढ़ा है, वह जिंदगी को वैसा नहीं देख पाता, जैसी जिंदगी है।
जब तुम किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाते हो, या किसी पुरुष के प्रेम में पड़ जाते हो, तो तुम वही नहीं देख पाते, जो असलियत है। तुम वह देखने लगते हो, जो तुम कल्पना करते हो कि होना चाहिए। रंग पड़ गया आंख पर। और जब रंग पड़ जाता है, तो कुछ का कुछ दिखायी पड़ता है। जहां सूखे वृक्ष हैं, वहां हरियाली दिखायी पड़ने लगती है। जहां हड्डी-मांस-मज्जा के सिवाय कुछ भी नहीं, वहां बड़े सौंदर्य के दर्शन होने लगते हैं! जहां सब तरह की गंदगी भरी है, वहां तुम कल्पित करने लगते होः सुगंध। तथ्य दिखायी नहीं पड़ते फिर। फिर तुम्हारे सपने तथ्यों पर हावी हो जाते हैं।
तो बुद्ध ने कहाः "जो तीव्र राग से युक्त है, शुभ ही शुभ देखने वाला है... ।"

और जब राग से भरे होते हो, तो सब ठीक ही ठीक दिखायी पड़ता है। गलत तो दिखायी ही नहीं पड़ता है। और इस संसार में गलत बहुत है। ठीक तो न के बराबर है, शायद है ही नहीं। गलत ही गलत है। लेकिन जब तुम राग से भरे होते हो, तो सब ठीक दिखायी पड़ता है। जिस चीज के राग से भर जाते हो, उसमें ही ठीक दिखायी पड़ने लगता है।
और ठीक यहां कुछ भी नहीं है। यहां ठीक हो कैसे सकता है? यहां मृत्यु प्रतिपल खड़ी है तुम्हें घेरे हुए, यहां ठीक कुछ हो कैसे सकता है? यहां सब क्षणभंगुर है। पानी के बबूले जैसा है। ठीक कुछ हो कैसे सकता है? यहां सब आया और गया; रुकता कुछ भी नहीं। यहां सुख संभव नहीं है; यहां दुख ही संभव है। ठीक यहां कुछ भी नहीं है।
यह वचन तुम्हें हैरानी से भरेगा। बुद्ध कहते हैंः "जो शुभ ही शुभ देखने वाला है, उसकी तृष्णा और बढ़ती है।"
इसलिए बुद्ध की परंपरा में संन्यासी के लिए अशुभ-भावना का निर्देश है। बुद्ध कहते हैंः पहले तो यह देखना कि अशुभ क्या है। क्या-क्या अशुभ है, इसको ठीक से देख लेना। बुद्ध अपने भिक्षुओं को भेजते थे मरघट--कि जाकर बैठ जाओ मरघट पर; जलती हुई लाशों को देखो; यही तुम हो।
बुद्ध को स्वयं भी जो संन्यास का भाव उठा था, वह अशुभ को देखकर उठा था। देखा था, रथ पर बैठे हुए--एक बीमार आदमी को खांसते-खखारते। रुग्ण देह। विचार उठा थाः क्या यही दशा मेरी हो जाएगी? पूछा था अपने सारथी सेः इस आदमी को क्या हो गया?
सारथी ने कहाः यह बीमार है। क्षय रोग से बीमार है। बुद्ध ने पूछाः क्या कभी मैं भी ऐसी दशा को पहुंच सकता हूं? सारथी ने कहाः सभी के लिए संभव है। क्योंकि शरीर रोगों का घर है।
फिर बुद्ध ने देखा एक बूढ़े को लकड़ी टेककर चलते हुए; कमर झुकी हुई। बुद्ध ने पूछाः और इसे क्या हो गया? और सारथी ने कहाः यह आदमी बूढ़ा हो गया। यह जवानी के बाद की दशा और मौत के पहले की दशा है। बुद्ध ने कहाः क्या मैं भी एक दिन ऐसा ही हो जाऊंगा? सारथी ने कहाः मैं कैसे कहूं! कहना नहीं चाहिए। लेकिन झूठ भी नहीं बोल सकता हूं। यह सभी का अंतिम जीवन का फल है। यह सभी को होता है। सभी बूढ़े होंगे।
और तब बुद्ध ने एक लाश देखी; एक आदमी की लाश देखी। लोग उसे मरघट ले जा रहे थे। कहते होंगेः राम-नाम सत्य है! और बुद्ध ने कहाः क्या कभी यह भी मेरे साथ होगा?
और तब बुद्ध ने एक संन्यासी को देखा और पूछा सारथी सेः इस आदमी ने गैरिक वस्त्र क्यों पहन रखे हैं? इसे क्या हुआ है? तो सारथी ने कहाः जैसा आपने देखा बीमार को, बूढ़े को, मृत्यु को, ऐसे ही इसने भी देखा है, और यह जीवन की व्यर्थता से जाग गया। अब यह उसकी खोज कर रहा है, जो शाश्वत है।
उसी रात बुद्ध घर छोड़कर भाग गए थे!
तो अशुभ-भावना पर उनका बड़ा जोर है। वे कहते हैंः जहां-जहां अशुभ है, उसे गौर से देखना; भर-आंख देखना; खूब निरीक्षण करना। जीवन में इतना अशुभ है, इतने कांटे हैं, इतनी पीड़ाएं हैं, इतना दुख है--इस सब को जो ठीक से देख लेता है, उस देखने में ही मुक्ति है। फिर देखने के बाद लोगों को नहीं कहना पड़ताः राम-नाम सत्य है। फिर ऐसा व्यक्ति स्वयं ही जान लेता है कि राम सत्य है और यहां शेष सब माया है।
"जो व्यक्ति शुभ ही शुभ देखता, तीव्र राग से भरा है, संदेह से मथित है, उसकी तृष्णा बढ़ती है और वह अपने लिए और भी दृढ़ बंधन बनाता है।"
"जो मनुष्य संदेह के शांत हो जाने में रत है... ।"
जो अपने भीतर यह पेंडुलम की तरह घूमते हुए मन को थिर करने में लगा है। संन्यास थिरता का नाम है। संन्यास का अर्थ हैः शांत होना, बहुत तरह के द्वंद्वों में न होना। क्या करूं, क्या न करूं--इसकी बहुत चिंता में न होना। जो हूं, ठीक हूं। जैसा हूं, ठीक हूं। इसी क्षण सब तरह से संतुष्ट होना। फिर संदेह नहीं उठते। फिर आकांक्षाएं-वासनाएं नहीं डोलातीं, फिर अंधड़ नहीं उठते वासना के, और तुम्हारे भीतर कंपन नहीं होते। धीरे-धीरे तुम्हारी ज्योति थिर होकर जलने लगती है।

"जो सदा सचेत रहकर अशुभ की भावना करता है, वह मार के बंधन को छिन्न करेगा और तृष्णा का विनाश करेगा।"
बुद्ध ने शैतान के लिए मार शब्द का उपयोग किया है। यह मार शब्द बड़ा प्यारा है। अगर इसको ठीक उलटा करो, तो राम बन जाता है।
राम को पाना है, सत्य को पाना है, और यह संसार मार है। यह राम से बिल्कुल उलटा है। यह सत्य से बिल्कुल उलटा है। इसमें जागना है।
इस संसार में जो जागता है, वह राम की तरफ सरकने लगता है। इस संसार में
जो सोया-सोया चलता है, वह मार के पंजे में पड़ता जाता है; वह शैतान के हाथों में पड़ता जाता है।
दूसरा दृश्यः

भगवान जेतवन में विहरते थे। एक दिन बहुत से आगंतुक भिक्षु आए। इन अतिथियों को भगवान ने राहुल के निवास स्थान पर ठहराया।
रात्रि में राहुल सोने के लिए अन्य स्थान नहीं देखते हुए, भगवान के निवास स्थान--गंधकुटी--के बरामदे में जाकर सो रहा। उस समय राहुल यद्यपि श्रामणेर था, फिर भी अर्हतत्व के बहुत करीब पहुंच रहा था। मार ने उसे बरामदे में सोया हुआ देखकर हाथी का वेश धारण कर उसके पास आकर सूंड़ से उसके सिर को घेरकर क्रोंच शब्द किया।
शास्ता ने गंधकुटी के भीतर से ही मार को जान कहाः मार! तेरे जैसे लाखों भी मेरे पुत्र को भय नहीं उत्पन्न कर सकते हैं। मेरा पुत्र निर्भीक, तृष्णारहित, महाबलवान और महाबुद्धिमान है। यह कहकर इन गाथाओं को कहा; ये दो गाथाएंः

निट्ठंगतो असंतासी वीततण्हो अनंगणो।
उच्छिज्ज भवसल्लानि अंतिमो"यं समुस्सयो।।
वीततण्हो अनादानो निरुत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं जांं पुब्बापरानि च।
स वे अंतिमसारीरो महापांं"ति वुच्चति।।

"जिस मनुष्य ने अर्हतत्व पा लिया, जो भयरहित है, जो वीततृष्णा और निष्कलुष है, जिसने संसार के शल्यों को काट दिया है, यह उसकी अंतिम देह है।"
"जो मनुष्य वीततृष्णा, परिग्रहरहित है, निरुक्त और पद का जानकार है,
जो अक्षरों को पहले-पीछे रखना जानता है, वही अंतिम शरीर वाला और महाप्राज्ञ कहा जाता है।"
राहुल गौतम बुद्ध का बेटा था। राहुल के संबंध में थोड़ी बात समझ लें। फिर इस दृश्य को समझना आसान हो जाएगा।
जिस रात बुद्ध ने घर छोड़ा, महा अभिनिष्क्रमण किया, राहुल बहुत छोटा था। एक ही दिन का था। अभी-अभी पैदा हुआ था। बुद्ध घर छोड़ने के पहले गए थे यशोधरा के कमरे में इस नवजात बेटे को देखने। यशोधरा अपनी छाती से लगाए राहुल को, सो रही थी। चाहते थे, देख लें राहुल का मुंह, क्योंकि फिर मिले देखने, न मिले। लेकिन इस डर से कि अगर राहुल के और पास गए, उसका मुंह देखने की कोशिश की, कहीं यशोधरा जग न जाए! जग जाए, तो रोएगी, चीखेगी, चिल्लाएगी! जाने न देगी। इसलिए चुपचाप द्वार से ही लौट गए थे।
उस बेटे को राहुल का नाम भी बुद्ध ने इसीलिए दिया था--राहु-केतु के अर्थों में। इसलिए दिया था कि बुद्ध घर छोड़ने जा रहे थे, तब यह बेटा पैदा हुआ। सोचते थे कि कब छोड़ दूं, कब छोड़ दूं, तब यह बेटा पैदा हुआ। इस बेटे का प्रबल आकर्षण, और मन में हजार शंकाओं-कुशंकाओं का जमघट लग गया।
मेरे घर बेटा आया है और मैं छोड़कर भाग रहा हूं--यह उचित है छोड़कर भागना? जिम्मेदारी, उत्तरदायित्व... । इस बेटे के जन्म में मेरा उतना ही हाथ है, जितना यशोधरा का, और मैं छोड़कर भाग जा रहा हूं। इस असहाय स्त्री पर अकेला बोझ छोड़कर भागा जा रहा हूं! यह उचित है या नहीं?

ये सारी शंकाएं उठने लगी थीं, इसलिए उसको नाम राहुल दिया था कि मैं किसी तरह मुक्त होने के करीब था कि तू राहु की तरह मेरे गले को फांसने आ गया!
फिर बारह वर्षों बाद बुद्ध घर लौटे थे--बुद्धत्व को पाकर--तब राहुल बारह वर्ष का था। यशोधरा बहुत नाराज थी। स्वाभाविक। मानिनी स्त्री थी, इसलिए सीधे तो उसने कुछ भी न कहा। लेकिन तीखा व्यंग्य किया। परोक्ष व्यंग्य किया।
जब बुद्ध घर पहुंचे, तो उसने अपने बेटे राहुल को कहा कि बेटा, ये तुम्हारे पिता हैं! तू जब एक दिन का था, तब तुझे छोड़कर भाग गए थे। ये भगोड़े हैं। यही तेरे पिता हैं! तू बार-बार मुझसे पूछता था कि मेरे पिता कौन हैं? ये सज्जन, जो आकर खड़े हो गए हैं, यही तेरे पिता हैं। इनसे तू मांग ले अपनी वसीयत। ये तेरे पिता हैं। फिर पता नहीं मिलना हो, न मिलना हो। इनसे मांग ले हाथ फैलाकर--कि इस संसार में जीने के लिए मेरी कुछ वसीयत?
उसने तो व्यंग्य किया था। व्यंग्य महंगा पड़ गया।
बुद्ध ने आनंद से कहाः आनंद! मेरा भिक्षापात्र कहां है? क्योंकि मेरे पास और तो देने को कुछ भी नहीं है। एक भिक्षापात्र है, वह मैं अपने बेटे को दे देता हूं। लेकिन भिक्षापात्र तो भिक्षु को दिया जा सकता है! भिक्षापात्र देकर बुद्ध ने कहाः बेटा, तू भिक्षु हो गया। तू संन्यस्त
हो गया। मेरे पास संसार की कोई संपदा नहीं है, संन्यास की संपदा है, तू उसका मालिक हो गया।
महंगा पड़ गया व्यंग्य। राहुल भी बेटा तो बुद्ध का था; उसने ना-नुच भी न की। उसने चरण छुए और बुद्ध के पीछे हो लिया। यशोधरा तो बहुत घबड़ायी। पति तो गया ही गया, अब बेटा भी गया। तब कोई और उपाय न देख उसने बुद्ध से कहाः फिर मुझे भी भिक्षुणी बना लें। अब मैं किसके लिए रहूंगी? ऐसे राहुल के कारण यशोधरा भी भिक्षुणी बनी।
राहुल अदभुत बेटा था। बारह साल के बच्चे से यह आशा करनी! पर बुद्ध का बेटा था, तो अदभुत होना चाहिए। बारह साल के बेटे से यह अपेक्षा करनी! लेकिन वह भिक्षु की तरह रहा। चूंकि छोटा था, इसलिए भिक्षुओं का जो प्रथम द्वार है--श्रामणेर, उसकी ही दीक्षा उसे बुद्ध ने दी थी। लेकिन श्रामणेर रहते हुए भी वह छोटा सा बच्चा अर्हत की अवस्था के करीब आ गया था, बुद्ध होने के करीब आने लगा था।
मार का हमला तभी होता है, जब कोई बुद्ध होने के करीब आने लगता है। उसके पहले हमला नहीं होता। तुम्हारा अगर शैतान से मिलना नहीं हुआ है, तो उसका कारण यह नहीं है कि शैतान नहीं है। उसका केवल इतना ही कारण है कि तुम अभी इस योग्य नहीं कि शैतान तुम पर ध्यान दे। उसके लिए पात्रता चाहिए, योग्यता चाहिए।
तुम में शैतान को कुछ रस नहीं है। तुम गड्ढे में वैसे ही पड़े हो। शैतान तुम से जो करवाए, वह तुम अपने आप ही कर रहे हो। शैतान तुम्हें जहां ले जाए, तुम अपनी मर्जी से ही जा रहे हो। अब शैतान और क्या करे! तुम्हारे साथ कोई उपाय नहीं है।
शैतान तो तुम्हारे जीवन में तभी प्रगट होता है, जब तुम्हारे जीवन से बुराई गिरने के आखिरी स्थल पर आ जाती है।
शैतान कोई बाहर नहीं है; शैतान तुम्हारे मन की आखिरी चेष्टा है तुम्हें बंधन में रखने के लिए। शैतान का इतना ही अर्थ है कि तुम्हारा मन अपनी मालकियत तुम पर आसानी से नहीं छोड़ देगा।
लेकिन जब तक तुम खुद ही उसके गुलाम हो, तब तक मालकियत कायम करने की कोई जरूरत भी नहीं है। तुम गुलाम हो ही। जब तुम मालिक होने लगते हो, और मन को यह लगता है कि अब मैं गया; अब मेरी मालकियत गयी; अब यह आदमी होश सम्हालता जा रहा है; जल्दी ही मेरी हुकूमत समाप्त हो जाएगी; इसकी हुकूमत आने के करीब है; तब मन अपनी सारी ताकत को इकट्ठी करके... ।
और बड़ी ताकत है मन की, क्योंकि जन्मों-जन्मों से मन मालिक रहा है। उसे तुम्हारी सारी कमजोरियां पता हैं। उसे तुम्हारे सारे भय पता हैं। उसे तुम्हारी सारी वासनाएं पता हैं। वह तुमसे भलीभांति परिचित है। वह जानता

है, तुम कहां-कहां कमजोर हो। वह कमजोर स्थल पर उंगली रखकर दबाना जानता है। तुमसे उससे ज्यादा परिचित और कौन है! जन्मों-जन्मों में उसने तुम्हें जाना है।
शायद मार ने इसीलिए हमला किया। इस घटना में कुछ अतिथि आ गए हैं, उनको ठहराने की जगह चाहिए, तो राहुल का कमरा उनको दे दिया गया है। रात राहुल सोने के लिए जगह नहीं पाया। कोई और उपाय न देखकर, जहां बुद्ध ठहरे थे, उस गंधकुटी में... ।
बुद्ध जहां ठहरते थे, उस कुटी का नाम गंधकुटी होता था। क्योंकि बुद्ध में एक गंध है परलोक की। जहां ठहरते थे, उसका नाम गंधकुटी रखा जाता था। वहां परमात्मा की सुगंध होती। वहां बिना किसी सुगंध के सुगंध होती। वहां बिना किसी वाद्य के संगीत बजता। वहां एक रोशनी होती अंधेरे में भी। वहां बुद्धत्व का वास था। वह जगह मंदिर थी।
कोई जगह न देखकर राहुल फिर बुद्ध की गंधकुटी के बाहर बरामदे में जाकर
सो रहा।
एक तो राहुल धीरे-धीरे, यद्यपि ऊपर से श्रामणेर था, बच्चा था, लेकिन भीतर थिर होता जा रहा था। अंतिम घड़ी करीब आ रही थी। और शायद उस दिन अंतिम घड़ी बहुत करीब आ गयी, बुद्ध के सान्निध्य के कारण। पहली बार बुद्ध के बरामदे में सोया था राहुल। बुद्धत्व की मौजूदगी, उसके भीतर जो जागता हुआ बुद्धत्व है उसको बड़ा सहारा बन गयी होगी।
यही तो साधु-संग का रहस्य और राज है। अगर तुम किसी साधु के पास हो, तो तुम्हारे भीतर साधुता को छलांग लेने की सुविधा ज्यादा होगी। तुम अगर असाधु के पास हो, तो तुम्हारे भीतर जो शैतान है, उसका बस तुम पर ज्यादा होगा। क्योंकि आदमी अनुकरण से जीता है।
तुमने कभी ख्याल किया, चार आदमी उदास बैठे हों और तुम भी उनके पास जाकर बैठ जाओ, तो तुम उदास हो जाते हो। चार आदमी हंसते हों; तुम उदास आए थे, चार आदमियों को हंसते देखकर तुम भी मुस्कुराने लगते हो, हंसने लगते हो। भूल ही जाते हो।
बुद्धत्व की सन्निधि उस रात; बुद्ध अपनी गंधकुटी में भीतर सोए हैं, और राहुल बाहर बरामदे में लेट रहा है। शैतान ने हमला किया; मार ने हमला किया। मार जानता हैः छोटा बच्चा है। अभी बारह-तेरह साल का है। कामवासना के द्वारा इस पर हमला नहीं किया जा सकता। कामवासना का हमला तो चौदह साल के बाद हो सकता है।
दो ही हमले संभव हैं। या तो काम या भय। छोटा बच्चा भय के द्वारा ही डांवाडोल किया जा सकता है। जवान आदमी शायद भय से डांवाडोल न हो, लेकिन कामवासना से डांवाडोल होता है।
यह छोटा बच्चा है। इसके पास नंगी अप्सराएं नचाने से कुछ भी न होगा। वह ऋषि-मुनियों के पास नचाना ठीक है। यह छोटा ही बच्चा है। यह इसको समझेगा ही नहीं। यह शायद बैठकर मजा लेने लगे। सोचे कि क्या हो रहा है! तमाशा हो रहा है! इस पर कुछ परिणाम न होगा नंगी अप्सराएं नचाने से। यह शायद मस्त होकर सो जाए कि ठीक है। नाचो, खूब नाचो, जितना नाचना हो। इसमें कोई परिणाम न हो! क्योंकि परिणाम तभी हो सकता है, जब वासना सजग हो गयी हो।
बूढ़े में हो सकता है। कभी-कभी तो जवान से भी ज्यादा होता है बूढ़े में। क्योंकि जवान में शक्ति भी होती है, वासना भी होती है। बूढ़े में वासना तो उतनी की उतनी होती है, शक्ति खो गयी होती है। तो जवान में शक्ति भी होती है, वासना भी होती है। चाहे तो अपनी शक्ति से वासना को दबाए रख सकता है। लेकिन बूढ़े के पास शक्ति भी नहीं बचती। वह अपनी वासना को दबा भी नहीं सकता। बूढ़ा बड़ा अवश हो जाता है। वासना उतनी की उतनी होती है। उतनी ही जवान, जितनी पहले थी। और जो ताकत थी जवानी की, वह खो जाती है।
एक दफा एक संन्यासी मुझे काशी में मिलने आए। उनकी कोई चालीस- बयालीस साल की उम्र थी। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आपसे एक ही बात पूछने आया हूं, वासना का बड़ा मुझ पर हमला होता है! मैंने कहा, तुम घबड़ाओ मत। वासना और संन्यासियों का पुराना नाता-रिश्ता है! यह सदा से ही होता रहा है। तुमने ऋषि-मुनियों की कहानियां पढ़ीं? उन्होंने कहा, पढ़ता हूं। पढ़ता क्या हूं--अब

देख ही रहा हूं अपने आप। ऐसा ही हो रहा है। मगर मैं अपने काबू से हटता नहीं। अपने नियंत्रण से हटता नहीं, चाहे कुछ भी हो जाए। मैं आपसे यही पूछने आया हूं कि यह कब तक होता रहेगा?
मैंने कहा, यह तो सदा होगा। पैंतालीस साल के बाद मुश्किल में पड़ोगे। क्योंकि फिर इतनी ताकत न होगी दबाने की। इसलिए दबाने पर अगर भरोसा किया, तो बुढ़ापे में मुश्किल में पड़ जाओगे। दबाने पर भरोसा मत करो। ताकत के दो उपयोग हो सकते हैंः या तो दबाओ, या ताकत को होश बनाओ, स्मृति बनाओ। या तो ताकत दमन बन जाए, या जागरण बन जाए। जागरण बने, तो ही ठीक है। दमन से कुछ भी न होगा।
उन्होंने कहा, आप भी क्या बात कर रहे हैं! मैं तो सदा यही सोचता रहा कि जवानी है और कितने दिन? और दो-चार-दस साल की बात है। पचास साल के बाद फिर क्या होना है? फिर तो बुढ़ापा आ जाएगा। आप क्या बात कर रहे हैं! मैं तो इसी आशा में जीता रहा हूं कि अभी जवानी है, इसलिए वासना जोर मारती है। एक दफा जवानी गयी, वासना का जोर चला जाएगा!
मैंने कहा कि पैंतालीस साल बाद मुझे मिलना।
वे ईमानदार आदमी हैं। वे पैंतालीस साल के बाद मुझे मिलने आए। कोई सैंतालीस साल की उनकी उम्र रही होगी। उन्होंने कहा, आप ठीक कहते थे। मैं मारा गया। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। अब मुझे पता चल रहा हैः मेरी लड़ने की ताकत कम होने लगी और वासना उतनी ही प्रबल है। दुश्मन उतना ही मजबूत है; मैं कमजोर होने लगा। आप ठीक कहते थे। मैं चूक गया। मैंने जितना संघर्ष किया वासना से, अगर उतनी शक्ति जागरण में लगायी होती, तो शायद पहुंचने की कोई संभावना थी। यह जीवन तो गया।
मैंने उनसे कहा, जीवन कभी भी गया नहीं है। सांझ को भी कोई लौटकर आ जाए घर, तो भूला हुआ नहीं है। अभी भी चेष्टा करो। अभी भी जो थोड़ी शक्ति बची है, उसे मत लड़ाओ वासना से। उसे ध्यान बनाओ।
लेकिन राहुल को वासना से नहीं डिगाया जा सकता। इसलिए यह कहानी अनूठी है। चूंकि बारह-तेरह साल के ऋषि-मुनि होते ही नहीं, इसलिए कहानी अनूठी है। तुमने जो कहानियां पढ़ी हैं ऋषि-मुनियों की, वे सब वृद्ध ऋषि-मुनियों की हैं। वहां उर्वशी आती और नाचती; औरशृंगार करके आती। और सब उस तरह का काम होता है। यह राहुल छोटा सा बच्चा है।
मार ने क्या किया? यह अर्हत हुआ जा रहा है! वह एक बड़ा हाथी बनकर आया है। छोटा बच्चा है, उसके लिए बड़ा हाथी! इतना ही नहीं, सूंड़ में राहुल की गरदन फंसा ली, और भयंकर चीत्कार की।
कहानी को तथ्य मत समझ लेना। ऐसा भीतर हुआ होगा। हो सकता है, सपने में हुआ हो। एक दुखस्वप्न हुआ हो। यह मन ही है, जो यह रूप रखता है। लेकिन यह चीत्कार की आवाज, हो सकता है राहुल के मुंह से निकल गयी हो।
तुम्हारे कभी-कभी मुंह से निकल जाती है--दुखस्वप्न में। छाती पर कोई आकर राक्षस बैठ गया और चीत्कार निकल जाती है। या पहाड़ से गिरा दिए गए और चीत्कार निकल जाती है। या कोई तुम्हारी छाती में छुरा भोंक रहा है और चीत्कार निकल जाती है।
ऐसी चीत्कार छोटे से राहुल से निकल गयी होगी। बुद्ध ने गंधकुटी के भीतर से ही मार को जानकर ऐसे शब्द कहे--मार! तेरे जैसे लाखों भी मेरे पुत्र को भय नहीं उत्पन्न कर सकते।
यहां एक बात और ख्याल रख लेना। बुद्ध राहुल को ही मेरा पुत्र कहते हैं, ऐसा नहीं। जितने भिक्षु हैं, सभी को मेरा पुत्र कहते हैं। राहुल तो पुत्र भी है। लेकिन भिक्षु सभी, बुद्ध के पुत्र हैं--बुद्ध संतति।
गुरु पिता है। एक बहुत नए अर्थों में पिता है। पिता से तो शरीर को जन्म मिलता है, गुरु से आत्मा को। पिता से तो जो शरीर मिला है, वह आज नहीं कल मौत ले जाएगी। गुरु से जो आत्मा मिलती है, उसे फिर कोई नहीं ले जा सकता। पिता से तो संसार मिलता है; गुरु से संन्यास। संसार क्षणभंगुर है, संन्यास शाश्वत है।

बुद्ध ने कहाः मार! मेरे बेटे को तेरे जैसे लाखों भी भय उत्पन्न नहीं
कर सकते हैं। मेरा पुत्र निर्भीक, तृष्णारहित, महाबलवान और महाबुद्धिमान है। यह कहकर इन गाथाओं को कहाः
"जिस मनुष्य ने अर्हत का पद पा लिया... ।"
अर्हत का अर्थ होता हैः जिसके शत्रु समाप्त हो गए--अरि-हत। अरि यानी शत्रु, हत यानी नष्ट हो गए।
जैनों में यही शब्द दूसरे रूप में है--अरिहंत--जिसने अपने शत्रुओं को मार डाला। दोनों में लेकिन थोड़ा सा फर्क है। अर्हत का अर्थ होता है, जिसके शत्रु मर गए। और अरिहंत का अर्थ होता है, जिसने अपने शत्रुओं को मार डाला। जैन परंपरा संकल्प की परंपरा है, संघर्ष की परंपरा है। इसलिए महावीर को महावीर कहा है। नाम उनका वर्धमान था। जैन परंपरा संघर्ष की परंपरा है, इसलिए उसका नाम जैन है। जैन का अर्थ होता है--जिन, जीता हुआ। जीत के लिए संघर्ष है।
बुद्ध की परंपरा में संघर्ष पर जोर नहीं है; तप पर जोर नहीं है; संकल्प
पर जोर नहीं है। बुद्ध की साधना में बोध पर जोर है। और बोध जब जगता है, तो शत्रु अपने से हार जाते हैं, तुम्हें हराने नहीं पड़ते।
जैन परंपरा तपश्चर्या पर जोर रखती है, बुद्ध परंपरा स्मृति पर।
इसलिए एक अपूर्व बात घटी है। बौद्धों ने जितना ध्यान को विकसित किया दुनिया में, किसी ने भी नहीं किया। ध्यान बुद्ध का सार है।
अर्हत का अर्थ होता हैः जिसके शत्रु गिर गए। बोध जगा और शत्रु गिर गए।
जैसे दीया जला और अंधेरा चला गया। ऐसे अर्हत। अरिहंत का अर्थ होता हैः शत्रुओं से लड़े; मारा; गिराया; जीता। महावीर का मार्ग संकल्प का; बुद्ध का मार्ग समर्पण का।
लेकिन समर्पण में भी भेद हैं। बुद्ध का मार्ग ऐसे समर्पण का नहीं, जैसे नारद का या मीरा का। उनके समर्पण का अर्थ हैः ईश्वर के प्रति समर्पण। बुद्ध के समर्पण का अर्थ हैः संघर्ष नहीं, शांत भाव। अपने भीतर ही विश्राम को उपलब्ध हो जाना। किसी के चरण नहीं गहने हैं। कोई परमात्मा नहीं है, जिसके चरणों में चले जाना है। अपने में ही डूब जाना है। लड़ना नहीं है, अपने बोध में समाहित हो जाना है।
"जिसने अर्हत के पद को पा लिया, वह सदा भयरहित है," बुद्ध ने कहा, "जो वीततृष्णा और निष्कलुष है, जिसने संसार के शल्यों को काट दिया, यह उसकी अंतिम देह है।"
मार को उन्होंने कहाः सुन पागल! यह राहुल की अंतिम देह है। अब तू इसे डरा न सकेगा। यह तो आखिरी घड़ी आ गयी इसकी। इसके बाद इसकी दुबारा देह होने वाली नहीं है। यह फिर नहीं जन्मेगा। अब तू इसे मौत से न डरा सकेगा।
मौत कब तक डरा सकती है? मौत तभी तक डरा सकती है, जब तक जीवन का आकर्षण है। ख्याल कर लेना। जब तक तुम चाहते होः जीवन बना रहे, बना रहे, सदा बना रहे; जीवेषणा जब तक है, तब तक मौत डरा सकती है।
बुद्ध कहते हैंः इसकी तो जीवेषणा ही चली गयी; यह तो अब दुबारा पैदा होना ही नहीं चाहता; इसके भीतर चाह ही न बची अब बचने की; इसकी भवतृष्णा समाप्त हो गयी है। यह इसकी अंतिम देह है। इस बार इसकी देह गिरेगी, तो दुबारा यह किसी गर्भ में नहीं उतरेगा। यह महाशून्य में प्रवेश करने के लिए तैयार खड़ा है। इसको अब तू डरा न सकेगा। काम से तू डरा नहीं सकता; भय से भी तू डरा नहीं सकता। तेरी चेष्टा व्यर्थ है मार!
तृतीय दृश्यः

भगवान सर्वप्रथम ऋषिपत्तन मृगदाय में--जिसे अब सारनाथ कहते हैं-- पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देने के लिए उरुवेला से काशी की ओर आ रहे थे। मार्ग में उन्हें एक आजीवक मिला। वह तथागत को देखकर बोलाः आवुस! तेरी इंद्रियां परिशुद्ध और विमल हैं; तुम किसे उद्देश्य कर प्रव्रजित हुए हो? कौन तुम्हारे शास्ता, कौन तुम्हारे गुरु? या तुम किसके धर्म को मानते हो? ऐसा पूछा। तब शास्ता ने कहाः मेरे आचार्य या उपाध्याय नहीं हैं। मेरा कोई

धर्म नहीं है। मेरे जीवन में कोई उद्देश्य नहीं है। तब उन्होंने यह गाथा कहीः

सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बंजहो तण्हक्खये विमुत्तो सयं अभिंंय कमुद्दिसेय्यं।।

"मैं सभी को परास्त करने वाला हूं। मैं सब जानता हूं। मैं सभी धर्मों-- तृष्णा इत्यादि--से अलिप्त हूं। सर्वत्यागी हूं। तृष्णा के नाश से मुक्त हूं। स्वयं ही विमल ज्ञान को जानकर किसको गुरु कहूं, किसको शिष्य सिखाऊं!" यह बड़ा अपूर्व वचन है। पहले तो दृश्य को ठीक से समझ लें।
बुद्ध ने परम ज्ञान के पहले छह वर्ष तक महा तपश्चर्या की। बहुत गुरुओं के पास गए। बहुत गुरुओं की सेवा में रहे। जो-जो कहा गया, वही किया। जिसने जो साधना बतायी, वही साधी। और हर साधना के बाद पायाः संसार समाप्त नहीं हुआ। हर साधना के बाद पाया कि मूल रोग मिटा नहीं; अहंकार शेष है।
हर गुरु से उन्होंने कहाः अहंकार मिटा नहीं। आपने जो कहा, सब मैंने किया! और उन्होंने किया इतनी निष्ठा से था कि कोई गुरु यह नहीं कह सका कि तुमने ठीक से नहीं किया, इसलिए अहंकार नहीं मिटा। उनकी निष्ठा अपूर्व थी। उन्होंने जो किया, समग्र भाव से किया। इसलिए कोई गुरु यह न कह सका।
नहीं तो गुरु को एक सुविधा रहती हैः कि हम क्या करें! जो कहा, वह तुमने किया नहीं, इसलिए हुआ नहीं। बुद्ध से यह बात कही नहीं जा सकती थी। इसी बात के कारण दुनिया में झूठे गुरु भी चल जाते हैं। यह बात बड़ी तरकीब की है। किसी ने तुमसे कहा कि देखो, ध्यान करो। लेकिन मंत्र पढ़ते वक्त बंदर का स्मरण मत करना। अब तुम बैठे ध्यान करने। बंदर का स्मरण आने वाला है। अब तुम लाख उपाय करो, जितने तुम उपाय करोगे, उतना ही बंदर का स्मरण आएगा। और तुम गुरु से जाकर कहोगेः क्या करूं, कुछ हो नहीं रहा है! वह कहेगाः मैं भी क्या करूं। शर्त पूरी नहीं कर रहे हो। वह बंदर का स्मरण नहीं आना चाहिए। ऐसी अस्वाभाविक शर्तें बांध रखी हैं, जिनके कारण तुम कभी इस स्थिति में नहीं पहुंच सकते कि समझ लो कि जो मार्ग तुमने पकड़ा, वह ठीक है या गलत है! क्योंकि कभी तुम मार्ग को पूरा ही नहीं कर पाते, तो ठीक-गलत का निर्णय कैसे हो? इसलिए झूठे गुरु भी चल जाते हैं। मिथ्या गुरु भी चल जाते हैं। सदा उनके लिए एक सुविधा है, सुरक्षा है--कि मैंने जो कहा, वह तुमने किया नहीं। करने को वे इस तरह की बातें कहते हैं, जो कि अमानवीय हैं। जो कि शायद की नहीं जा सकतीं। या जिन्हें करने के लिए कोई महा संकल्पवान व्यक्ति चाहिए।
बुद्ध वैसे ही व्यक्ति थे। सब दांव पर लगाया था। ऐसे कुनकुने आदमी नहीं थे कि चलो, मिल जाए ईश्वर तो ठीक है! जीवन जाए, तो ठीक, मगर ईश्वर को मिलना! सत्य को मिलना! सब खो जाए, उसके लिए राजी थे। जुआरी थे। क्षत्रिय थे। दांव पर लगाना जानते थे। कोई दुकानदार नहीं थे। कुछ ऐसा थोड़ा-बहुत करने से, घंटी बजाने से, राम-राम जपने से मिल जाएगा--ऐसी उनको आस्था भी नहीं थी।
तो जिस गुरु ने जो कहा, बिल्कुल मूढ़तापूर्ण बातें कहीं, वे भी उन्होंने कीं। किसी ने कहा कि रोज-रोज भोजन कम करते जाओ, रोज भोजन कम करते जाओ, जब एक चावल का दाना ही भोजन बचे, तब ज्ञान होगा। ऐसे वे कम करते गए। छह महीने में एक चावल का दाना ही भोजन बचा। ज्ञान तो नहीं हुआ, शरीर नष्ट हो गया!
निरंजना नदी को पार करते थे, पार न कर सके। छोटी सी नदी। कोई बड़ी नदी नहीं। थककर गिर गए। एक जड़ को पकड़कर रुके रहे। जड़ को भी पकड़ने की ताकत न थी! तब स्मरण आया कि यह मैं क्या कर रहा हूं! इस तरह शरीर को नष्ट करके, सिर्फ शक्ति खो गयी। नदी पार कर नहीं सकता, भवसागर पार करने का इरादा रख रहा हूं! बुद्ध बहुत गुरुओं के पास गए, लेकिन जहां गए, जो कहा, वही किया। फिर भी कुछ सफल न हुआ। गुरुओं ने उनसे क्षमा मांग ली। उनकी इस घटना को पढ़कर मुझे हमेशा खलिल जिब्रान की एक कहानी याद आती है।

एक आदमी गांव-गांव घूमता था। वह कहता थाः जिसको ईश्वर से मिलना हो, मेरे साथ आओ। मुझे पता है। मैं ईश्वर तक पहुंचा दूंगा। कहां पहाड़ों में रहता है, मुझे मालूम है।
मगर किसी को पहली तो बात ईश्वर से मिलना ही नहीं। लोग कहते कि जब मिलना होगा, जरूर आपके पास आएंगे। लोग उनको दान भी देते, उनकी पूजा भी करते, उनको भोजन भी करवाते। और कहतेः महाराज! अब आप जाओ।
ईश्वर से किसको मिलना है? लोग कहतेः अभी जिंदगी में और हजार काम हैं।
आखिर में जब मिलने की इच्छा आएगी, जरूर आपके पास आएंगे।
ऐसे धंधा चलता था। न कोई मिलना चाहता था, न कोई मिलने की झंझट आती थी। मगर एक गांव में एक आदमी झंझटी मिल गया। उसने कहाः अच्छा गुरुदेव! हम चलते हैं; चलो!
गुरु ने सोचा कि कुछ भटकाएंगे जंगलों में। कुछ दिन में अपने आप थक जाएगा। मगर वह भी एक था। वह महागुरु था। वह थके ही नहीं! वह तो रोज सुबह उठकर कहे कि गुरुदेव! कितनी देर और लगेगी? अब कहां तक और चलना है? उसने गुरु को थका मारा।
छह साल पहाड़ों में घूमते रहे। गुरु को मार ही डाला उसने। गुरु को भी पता हो तो कहीं पहुंचा दे। पहुंचाए कहां? चक्कर काटते रहे पहाड़ों में कि भई, अब आता, अब आता!
एक दिन गुरु ने कहा, यह तो हद्द हो गयी! मेरी जिंदगी खराब कर देगा। अपनी तो कर ही रहा है, यह मेरी भी जिंदगी खराब कर देगा! उसने उसके हाथ जोड़े और कहाः महाराज! मुझे रास्ता पता था; मगर जब से तुम्हारा सत्संग हुआ, सब भूल गया। अब यह परमात्मा का मुझे भी मिलना नहीं हो रहा है। अब तुम मुझे बख्शो। मेरे सत्संग में तुम तो नहीं पहुंच सकते, तुम्हारे सत्संग में मैं भटक गया! अब आप क्षमा करो। अब आप किसी और गुरु का पीछा पकड़ो।
ऐसे ही बुद्ध थे। जिसने जो कहा, पूरा किया। हर गुरु ने कहा कि अब आप और कहीं जाएं किसी और को... । क्योंकि इनको देखकर दूसरे शिष्य भागने लगें न! कि भई, इतनी मेहनत करके जब इस आदमी को नहीं मिला, तो हम तो इतनी मेहनत कर भी नहीं सकते। हमको तो कैसे मिलने वाला है?
अंततः बुद्ध ने सारे गुरु छोड़ दिए। अंततः बुद्ध ने सारे पथ और सारे मार्ग छोड़ दिए। सारी विधियां छोड़ दीं। जब उन्होंने सब छोड़ दिया--तब मिला। अपूर्व घटना घटी।
एक रात उन्होंने निर्णय ही कर लिया कि अब मुझे खोजना ही नहीं है। खोज
की वासना भी छोड़ दी। सत्य को पाने की वासना भी तो वासना ही है, वह भी छूट गयी। उस रात सो गए वृक्ष के तले। कोई चिंता नहीं। कहीं जाना नहीं। कुछ पाना नहीं--न धन, न ध्यान; न पद, न परमात्मा--कुछ पाना ही नहीं।
चित्त एकदम विलुप्त हो गया। क्योंकि चित्त जीता है पाने की आकांक्षा से। चित्त का प्राण ही पाने में है। कुछ पा लूं, कुछ मिल जाए। महत्वाकांक्षा चित्त की आत्मा है।
उस क्षण कोई महत्वाकांक्षा न थी। उस सुबह जब बुद्ध की आंखें खुलीं, आखिरी तारा डूबता था रात का, और उसके डूबते-डूबते ही उनका भीतर का तारा ऊग आया। हो गया। मगर यह स्वयं से हुआ।
ये जो पंचवर्गीय भिक्षु हैं, ये पांच भिक्षु बुद्ध के शिष्य थे। जब बुद्ध एक-एक चावल भोजन करते थे, तब ये पांच भिक्षु उनके शिष्य थे। वे बुद्ध को बड़ा गुरु मानते थे। क्योंकि इतना महातपस्वी! हड्डियां मात्र रह गयी थीं शरीर में। चमड़ी सूख गयी थी। सुंदर देह एकदम काली पड़ गयी थी। अस्थि- पंजर रह गए थे। तब वे पांच भिक्षु उनको गुरु मानते थे। हालांकि उनको कुछ मिला नहीं था, मगर उनका त्याग उनको प्रभावित करता था।
दुनिया में बड़े अजीब लोग हैं! उनको कौन सी चीज प्रभावित करती है, यह भी बड़ी सोचने जैसी बात है! यह आदमी मरा जा रहा है। यह आत्महत्या में संलग्न है। और वे प्रभावित हो रहे हैं! दुनिया में बड़े दुष्ट लोग हैं।
तुम ख्याल रखनाः जब तुम उपवास करो और कोई तुम्हारी आकर प्रशंसा करे, समझ लेना कि यह आदमी क्या चाहता है! यह तुम्हें भूखा मरवाना चाहता है। तुम सिर के बल खड़े हो जाओ, और यह आदमी कहेः वाह! आप बड़े महातपस्वी हैं। इससे

सावधान रहना। यह तुम्हारी जिंदगी खराब कर देगा। यह चाहता हैः तुम सिर के बल खड़े रहो!
दुनिया में लोग दूसरों को दुखी देख-देखकर मजा लेते हैं। इसलिए मुनियों, साधुओं और तपस्वियों के पास दुष्ट प्रकृति के लोग इकट्ठे हो जाते हैं। वे कहते हैंः महाराज! गजब कर रहे हैं! कांटों पर लेटे हैं! भीड़ लगा लेते हैं। धूप में खड़े हैं! भयंकर गर्मी पड़ रही है, और गुरुदेव! आप धूनी रमाए बैठे हैं! आग जलाकर ताप रहे हैं! गजब!
ये जो लोग हैं, इनके लिए मनोविज्ञान में एक खास शब्द हैः मेसोचिस्ट।
ये परदुखवादी हैं। यह दूसरा सता रहा है अपने को, इसमें इनको मजा आता है! ये वैसे ही लोग हैं, जैसे कोई आदमी अपने शरीर में घाव कर ले और छुरी से घाव को कुरेदता रहे, और ये कहेंः वाह! आप बड़ी महासाधना कर रहे हैं! आपका जुलूस निकालेंगे, शोभा-यात्रा निकालेंगे।
पर्युषण में आपने दस दिन व्रत किए, उपवास किए, शोभा-यात्रा निकालेंगे। भूखे रहे आप महीने भर, बड़ा उपवास किया--आप महातपस्वी हैं!
तुम दुख दो अपने को, और दूसरे लोग तुम्हें आदर देते हैं। जरूर इसमें कुछ राज है। जब वे तुम्हें आदर देते हैं, तो तुम अपने को और दुख देने को राजी हो जाते हो, क्योंकि अहंकार की तृप्ति होती है। और उनकी भी जरूर कोई तृप्ति हो रही है।
लोग जासूसी किताबें पढ़ते हैं। क्यों? लोग जाकर हत्याओं की फिल्म देखते हैं; डकैतियों की फिल्म देखते हैं; क्यों? तुमने कभी पूछा?
रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों, तत्काल भीड़ खड़ी हो जाती है। तुम, तुम्हारी मां बीमार है, दवा लेने जा रहे थे। साइकिल टिकाकर किनारे, तुम भी खड़े हो गए--कि अब मां समझे... । मां की दवा में क्या है! घंटे दो घंटे की देर भी हो गयी--चलेगा। मगर यह तमाशा छोड़ा नहीं जा सकता।
और दो आदमी बिल्कुल लड़ने-मारने को तैयार हैं। तुम्हारी भी उत्सुकता बढ़ती जाती है कि अब कुछ होता ही है! अब कुछ होने ही वाला है! और अगर संयोग से कुछ न हो, तो तुम बड़े उदास लौटते हो।
तुमने ख्याल किया? कुछ न हो। वे दोनों आदमी कहेंः अच्छा भाई, क्या फायदा लड़ने-झगड़ने से! एकदम गांधीवादी हो जाएं। कहें कि चलो, महात्मा गांधी की जय! क्या फायदा! हम तुमको मारें, तुम हमको मारो! कोई सार नहीं। तो जितनी भीड़ खड़ी है, वह उदास लौटेगी--कि कुछ भी नहीं हुआ! घंटाभर खराब हुआ। गाली- गलौज काफी बकी गयी!
लोग दूसरे के दुख में एक तरह का रस लेते हैं। और दूसरे के सुख से पीड़ित होते हैं।
तुमने देखाः तुम बड़ा मकान बनाओ; पूरा गांव तुम्हारे खिलाफ हो जाता है। तुम सुखी दिखायी पड़ो; किसी को सुख नहीं होता। तुम स्वस्थ हो, किसी को अच्छा नहीं लगता। तुम खाते-पीते, मजे से जी रहे हो; तुम्हारे घर संगीत होता है, नाच होता है; सारा गांव तुम्हारा दुश्मन हो जाता है--कि अरे! भोगी है, भ्रष्ट है। नर्क जाएगा।
और तुम भूखे मरो, धूप में बैठ जाओ, घाव बना लो--सारे गांव की दया और सहानुभूति तुम्हारे लिए है! तुम्हारे घर में आग लग जाए, तो लोग सहानुभूति प्रगट करने आते हैं। वे कहते हैंः बड़ा बुरा हो गया! और तुम्हारा घर बड़ा हो जाए, और एक नयी मंजिल बन जाए; कोई नहीं आता कहने कि बड़ा अच्छा हो गया।
जरा सोचना। जब अच्छा होता है, तब कोई कहने नहीं आता कि अच्छा हो गया।
और जब बुरा होता है, तब लोग कहने आते हैं कि भई बहुत बुरा हो गया। मगर जब वे कहते हैं कि बहुत बुरा हो गया, तब उनकी आंखों में झांकना। तुम पाओगेः वे रस ले रहे हैं। सहानुभूति में मजा आ रहा है। तुम आज नीची हालत में हो। आज तुम पर दया करने का मौका मिला। यह मौका कभी मिला नहीं था। तुम कभी बुरी हालत में थे ही नहीं। आज तुम चारों खाने चित्त पड़े हो! आज कोई भी दया कर सकता है। राह चलता राहगीर कह सकता हैः भाई, बहुत बुरा हुआ! लेकिन उसके भीतर देखोः कुछ मजा ले रहा है।
मनुष्य का मन बड़ा जटिल है।

ये पांच भिक्षु बुद्ध की सेवा में रत रहे। लेकिन जब बुद्ध ने सब उपवास छोड़ दिया, तप छोड़ दिया, इन्होंने बुद्ध को छोड़ दिया। इन्होंने कहाः यह भ्रष्ट हो गया। गौतम भ्रष्ट हो गया! अब यह काम का नहीं रहा। यह पतित हो गया।
जब तक यह गौतम अपने को सता रहा था, महातपस्वी था। जिस दिन बुद्ध ने यह
सब व्यर्थ मूढ़ता छोड़ दी, यह आत्महिंसा छोड़ दी, यह आत्मघात छोड़ दिया, उसी दिन पांचों भिक्षुओं ने उनको छोड़ दिया! उन्होंने कहाः अब हमारे काम के न रहे। अब हम कोई दूसरा गुरु खोजेंगे। वे उन्हें छोड़कर चले गए। उसी रात बुद्ध को ज्ञान हुआ। जिस सांझ को पांच भिक्षु छोड़कर चले गए, उस रात बुद्ध को ज्ञान हुआ।
दूसरे दिन सुबह बुद्ध को पहली याद यही आयी कि वे बेचारे पांच! इतने दिन मेरे साथ रहे, और आखिरी घड़ी छोड़कर चले गए। अब, जब कि मेरे पास देने को कुछ था, लेने वाले नहीं हैं। और जब मेरे पास देने को कुछ भी नहीं था, मैं खुद ही मूढ़ता और अंधकार से भरा था, तब वे मेरे पीछे लगे रहे! ऐसी उलटी दुनिया है।
इसलिए बुद्ध उनकी खोज करते हुए निकले कि वे जहां भी गए हों, जाकर पहला संदेश उनको दिया जाए। यद्यपि वे मुझे त्याग गए हैं। यद्यपि उन्होंने मान लिया कि मैं भ्रष्ट हो गया। लेकिन मेरे साथ बहुत दिन रहे। इतना कर्तव्य मेरा है कि पहला संदेश उन्हीं को दूं। इसलिए बुद्ध ने पहला प्रवचन उन्हीं पांच भिक्षुओं को दिया।
उनका पीछा करते बुद्ध सारनाथ तक आए। जहां-जहां पता चला कि वे दूसरे गांव चले गए, बुद्ध वहां गए। सारनाथ जाकर उन्होंने देखा एक वृक्ष के नीचे पांचों भिक्षुओं को बैठे हुए।
उन पांचों भिक्षुओं ने देखा बुद्ध को आते हुए। वे बोले कि यह भ्रष्ट गौतम आ रहा है! हम इसको नमस्कार न करें। यह नमस्कार के योग्य भी नहीं है। यह बिल्कुल पतित हो गया है। तो वे पीठ करके बैठ गए।
बुद्ध जब उनके पास गए, जब पास जाकर खड़े हो गए, और बुद्ध ने कहाः एक बार मेरी तरफ तो देखो। जिसे तुम छोड़ आए थे, मैं वही नहीं हूं। आज जो आया है, कोई और है। एक बार मेरी तरफ देखो।
और उन्होंने पांचों ने आंख उठाकर बुद्ध की तरफ देखा। पहले एक उनके चरणों में गिरा; फिर दूसरा; फिर पांचों उनके चरणों में गिरे। क्षमा मांगने लगे कि हमें क्षमा कर दें। हमने तो सोचा कि भ्रष्ट गौतम आ रहा है। लेकिन हम देख सकते हैं कि सब रूपांतरित हो गया है। ज्योति का उदय हुआ है। तुम प्रकाशित हो गए। कैसे प्रकाशित हो गए? हमें राह बताओ।
बुद्ध ने कहाः इसीलिए आया हूं।
यह घटना सारनाथ जाते हुए रास्ते पर घटी।
भगवान सर्वप्रथम ऋषिपत्तन मृगदाय में पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देने के लिए उरुवेला से काशी की ओर आ रहे थे। मार्ग में उन्हें एक उपक आजीवक मिला।
आजीवक एक संप्रदाय था उस समय का, जो अब विनष्ट हो गया है। बुद्ध और जैन दोनों संप्रदाय आजीवक संप्रदाय से बहुत मिलते-जुलते हैं। उसी की छायाएं हैं इन पर। उसी के प्रतिबिंब हैं। उसी की ध्वनियां हैं।
आजीवक संप्रदाय का एक भिक्षु मिला। उसने बुद्ध को देखा; वह चकित हो गया। ऐसा आदमी कभी नहीं देखा था। ऐसा ज्योतिर्मय, ऐसी शुद्ध इंद्रियां, ऐसी निर्मल आंखें, ऐसी निर्मल छाया, ऐसा चारों तरफ शांति का वातावरण! उसने कहाः आवुस! तेरी इंद्रियां परिशुद्ध और बड़ी विमल हैं। तुम किस उद्देश्य से संन्यस्त हुए थे? अपना उद्देश्य मुझे भी बताओ। मैं भी खोज रहा हूं। कौन तुम्हारे गुरु? कौन तुम्हारे शास्ता? मैं भी खोज रहा हूं। मुझे अब तक ठीक गुरु नहीं मिला। ठीक मार्ग नहीं मिला। और तुम किसके धर्म को मानते हो? कौन से धर्म में तुम्हारी श्रद्धा है? किस शास्त्र पर तुम्हारा भरोसा है? तुम किन विधियों के अनुयायी हो?

तब शास्ता ने उससे कहाः मेरे आचार्य या उपाध्याय नहीं हैं। मैं किसी धर्म को नहीं मानता। मेरी किसी शास्त्र में श्रद्धा नहीं है। मैंने जो पाया है, अपने से पाया है।
यह बुद्ध का परम संदेश है। क्योंकि जो मिलना है, वह तुम्हारे भीतर पड़ा है। कोई दूसरा थो.ेडे ही देने वाला है। हस्तांतरण नहीं होता सत्य का। तुम्हारे भीतर पड़ा है। गुरु अगर कुछ करता है, तो इतना ही कि तुम्हारे भीतर जो पड़ा है, उसको ही पुकारता है। उसे तुम स्वयं भी पुकार सकते हो।
गुरु अनिवार्य नहीं है बुद्ध के मार्ग पर। तुम स्वयं न पुकार सको, तो उसकी जरूरत है। तुम स्वयं अपने को असमर्थ पाओ, तो उसकी जरूरत है। अन्यथा तुम स्वयं भी पुकार सकते हो। क्योंकि खदान तुम्हारे भीतर है। तुम स्वयं भी खोज सकते हो। गुरु तुम्हें धन देगा नहीं, सिर्फ इतना ही कह देगा कि इस तरह मैंने अपने भीतर खोदा, इसी तरह तुम भी अपने भीतर खोद लो।
मगर जो है, तुम्हारे भीतर है। जो है, तुम्हारे स्वभाव में छिपा है। जो है, उसे तुम लेकर ही आए हो, वह तुम्हारा जन्मसिद्ध, स्वभावसिद्ध अधिकार है।
इसलिए बुद्ध ने कहा कि मेरा कोई गुरु नहीं है। मैंने गुरुओं के द्वारा नहीं पाया। मेरा कोई आचार्य नहीं, मेरा कोई उपाध्याय नहीं। ऐसा नहीं कि मैं गुरुओं के पास नहीं रहा। रहा, लेकिन वहां मुझे कुछ मिला नहीं। और जब मिला, तब मैं किसी गुरु के पास नहीं था।
और जो मैंने पाया है, वह कुछ ऐसा है कि अब मैं तुमसे कह सकता हूं कि उसे किसी और के पास लेने जाने की जरूरत नहीं है। अपने भीतर ही चले जाओ, तो मिल जाए। शास्त्रों में नहीं है, स्वयं में है। शब्दों और सिद्धांतों में नहीं है, तुम्हारी चेतना में बसा है। तुम मंदिर हो, परमात्मा तुम्हारे भीतर बैठा है।
"मैं सभी को परास्त करने वाला हूं।"
बुद्ध ने कहा, मेरे जितने शत्रु थे, वे सब गए।
"मैं सब जानता हूं।"
जो जानने योग्य है, वह मुझे दिखायी पड़ गया है।
"मैं सभी धर्मों--तृष्णा इत्यादि--से मुक्त हो गया हूं। अलिप्त हो गया हूं। सर्व त्यागी हूं।"
सर्वत्यागी का अर्थ होता है, मैंने त्याग को भी त्याग दिया है। मैं सब धर्मों से मुक्त हो गया हूं। मैंने जगत की तृष्णा तो छोड़ ही दी है; मोक्ष की तृष्णा भी छोड़ दी है। मेरा कोई उद्देश्य ही नहीं है। मैं अब बिल्कुल निरुद्देश्य हूं, जैसे फूल खिलता है निरुद्देश्य। जैसे सुबह सूरज निकलता है निरुद्देश्य, ऐसा मैं निरुद्देश्य हूं। मेरा कोई लक्ष्य नहीं है। सब लक्ष्य गए। सब उद्देश्य गए। सब भविष्य गया। मेरी कोई वासना नहीं है--मोक्ष की भी नहीं है।
"मैं तृष्णा के नाश से मुक्त हूं।"
यह बड़ा अजीब वचन है। बुद्ध यह नहीं कहते कि मैं तृष्णा से मुक्त हूं। बुद्ध कहते हैं, मैं तृष्णा से तो मुक्त हूं ही; मैं तृष्णा के नाश से भी मुक्त हूं। तृष्णा तो गयी ही, अतृष्णा भी गयी।
नहीं तो उलटा हो जाता है। संसार पकड़े थे पहले; फिर संसार तो छोड़ दिया, फिर संन्यास पकड़ लिया। मगर पकड़ कायम रही! धन पकड़े थे पहले। धन तो छोड़ दिया, अब निर्धनता पकड़ ली! मगर पकड़ जारी रही।
बुद्ध कहते हैंः परम त्याग तो तब है, जब त्याग भी छूट जाए। परम संन्यास तो तब है, जब संसार तो छूटे ही छूटे, संन्यास से भी मुक्ति हो जाए। नहीं तो वह भी पकड़ बन जाएगा। तो कुछ फायदा न हुआ। मुट्ठी पूरी खुल जानी चाहिए।
"मैं तृष्णा से मुक्त, तृष्णा के नाश से मुक्त हूं। मैं स्वयं ही विमल ज्ञान को जानकर जागा। मैं किसको गुरु कहूं?"
और इतना ही नहीं वे कहते कि मैं किसको गुरु कहूं। वे कहते हैं, "मैं किसको शिष्य सिखाऊं?"

न मैंने किसी से पाया! मैंने अपने भीतर पाया। तो जो मेरे पास आएंगे, वे
भी अपने भीतर ही पाएंगे। शिष्य कहने से क्या सार है!
इसलिए बुद्ध ने कहाः मैं मित्र हूं। न तो गुरु तुम्हारा; न तुम मेरे शिष्य। मैं मित्र हूं। और बुद्ध ने कहा कि मेरा जो भविष्य में पुनः आगमन होगा, मेरा नाम होगा--मैत्रेय। तब मैं परिपूर्ण मित्र रूप में प्रगट होऊंगा।
अंतिम दृश्यः

एक बार देवताओं में यह प्रश्न उठा कि दानों में कौन दान श्रेष्ठ है? रसों में कौन रस श्रेष्ठ है? रतियों में कौन रति श्रेष्ठ है? और तृष्णा- क्षय को क्यों सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है?
कोई भी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सका। देवताओं ने सबसे पूछने के बाद इंद्र से पूछा। वह भी इसका उत्तर न दे सका। तब इंद्र सहित सभी देवताओं ने जेतवन में जाकर भगवान के पास आ इन प्रश्नों को पूछा।
भगवान ने कहाः धर्म के अनुभव में सब प्रश्नों के उत्तर हैं। फिर प्रश्न बहुत नहीं हैं, एक ही है। सोचने मात्र से समाधान नहीं होगा। जागो।
जागने में समाधान है। धर्म के अनुभव में समाधान है। सब व्याधियों के लिए एक ही औषधि है--धर्म। तब उन्होंने यह सूत्र कहा।

सब्बदानं धम्मदानं जिनाति सब्बं रसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बं रति धम्मरती जिनाति तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।।
"धर्म का दान सब दानों में बढ़कर है। धर्म-रस सब रसों में प्रबल है।
धर्म में रति सब रतियों में बढ़कर है। और तृष्णा का विनाश सारे दुखों को जीत लेता है और धर्म की उपलब्धि उससे होती है, इसलिए वह सर्वश्रेष्ठ है।" पहले इस दृश्य को हृदयंगम कर लें।
एक बार देवताओं में प्रश्न उठा... । देवताओं के पास कुछ और काम है भी नहीं। व्यर्थ की बकवास! देवता करेंगे भी क्या? काम तो वहां कुछ बचता नहीं! काम तो समाप्त हो गया। कल्पवृक्षों के नीचे बैठकर सभी इच्छाएं पूरी हो जाती हैं!
देवता सुख ही सुख में जीते हैं। जीवन का बाहर का व्यवसाय तो बंद हो जाता है। जब बाहर का व्यवसाय बंद हो जाता है, तो चित्त के सब व्यवसाय शुरू हो जाते हैं। तब बड़ा सोच-विचार उठता है। बड़े विवाद उठते हैं।
ख्याल करना, दर्शनशास्त्र तभी पैदा होता है, जब पेट ठीक से भरा हो। भूखे भजन न होईं गोपाला। भूखे भजन हो भी नहीं सकता।
जीवन की सीढ़ियां हैं। शरीर की जरूरतें पूरी हो जाएं, तो मन की जरूरतें पैदा होती हैं। शरीर की जरूरतें अधूरी रहें, तो मन की जरूरतें कभी पैदा नहीं होतीं।
अब कोई भूखा मर रहा है, उसको तुम कहो कि यह बीथोवन का संगीत सुनो। वह तुम्हारा सिर फोड़ देगा। वह कहेगाः मैं भूखा मर रहा हूं। बीथोवन का संगीत! आप कह क्या रहे हैं? आप मेरा अपमान कर रहे हैं!
और भूखे पेट में बीथोवन का संगीत जाएगा कैसे! भूखा संगीत सुन कैसे सकता है?
कोई भूखा मर रहा है, और तुम कहते हो, पढ़ो कालिदास की कविताएं! इनसे बड़ा आनंद आएगा! वह कहता हैः कुछ रोटी मिल जाए! कालिदास आप पढ़ो; रोटी मुझे दे दो! एक सीढ़ी है। शरीर की जरूरत पूरी हो, तो मन की जरूरत। मन की जरूरत में काव्य है, संगीत है, कला है। फिर मन की जरूरतें पूरी हो जाएं, तो आत्मा की जरूरतें पैदा होती हैं।
जिसने अभी संगीत नहीं सुना, और जिसने काव्य का रसास्वादन नहीं किया,
वह धर्म के जगत में प्रवेश न कर सकेगा। और जिसने अभी दर्शन-शास्त्र के ऊहापोह में उलझन नहीं ली, नहीं डोला, वह भी धर्म में प्रवेश नहीं कर सकेगा। धर्म आखिरी जरूरत है। धर्म अंतिम है। वह आत्मा की जरूरत है। इसलिए जब कोई देश समृद्ध होता है, तो वह धार्मिक होता है। जब कोई देश गरीब हो जाता है, अधार्मिक हो जाता है।

इसलिए भारत जैसे देश की अभी धार्मिक होने की संभावना नहीं है। अभी भारत के कम्युनिस्ट होने की संभावना है, धार्मिक होने की संभावना नहीं है।
इसलिए लोग हैरान भी होते हैं। पश्चिम से लोग आ रहे हैं पूरब में, तलाश करते धर्म की। और पूरब के लोग हैरान होते हैं कि यह मामला क्या है! पूरब के लोग पश्चिम जा रहे हैं! कैसे अच्छी इंजीनियरिंग आ जाए; कैसे अच्छे डाक्टर हो जाएं। कैसे टेक्नोलाजी, कैसे विज्ञान, इसके लिए पश्चिम जा रहे हैं। पूरब के सोच-विचारशील लोग पश्चिम की तरफ भाग रहे हैं कि एक डिग्री पश्चिम से और ले आएं। और पश्चिम से लोग डिग्रियां इत्यादि फेंककर, कूड़े- कर्कट में डालकर... ।
यहां मेरे संन्यासियों में कम से कम बीस पीएचड़ी. हैं! तुम एक को भी न पहचान पाओगे कि यह आदमी पीएचड़ी. है। यहां कम से कम पचास एम.ए. हैं। तुम एक को भी न पहचान पाओगे। और ऐसा तो बहुत कम है कि ग्रेज्युएट कोई न हो। मगर तुम एक को न पहचान पाओगे। सब कचरे में डालकर चले आए हैं। दो कौड़ी की हो गयीं बातें।
यहां कोई पीएचड़ी. हो जाता है, तो अखबारों में खबर छपती है। जुलूस निकाला जाता है! मैंने सुना है, इलाहाबाद में जब पहला आदमी मेट्रिक हुआ था, तो हाथी पर बैठकर जुलूस निकाला था!
यहां कोई आदमी पश्चिम पढ़ने जाता है, तो अखबारों में खबर निकलती है। जैसे कोई भारी घटना घट रही है कि वे पश्चिम पढ़ने जा रहे हैं! पश्चिम पूरब की तरफ आ रहा है, क्योंकि पश्चिम अब संपन्न है; उसने शरीर का सुख जाना। मन के सुख जाने। अब आत्मा की पीड़ा उठनी शुरू हुई है।
इस बात की बहुत संभावना है कि भविष्य में पश्चिम पूरब हो जाए और पूरब पश्चिम हो जाए। इस बात की बहुत संभावना है कि सूरज पश्चिम से उगे और पूरब में डूबे।
देवताओं के पास कुछ और तो काम नहीं, इसलिए अक्सर ऐसी बहुत कहानियां आती हैं बौद्ध शास्त्रों में, जैन शास्त्रों में, हिंदू शास्त्रों में, देवताओं में बड़ा विवाद उठता है छोटी-छोटी बात पर। हालांकि देवता उत्तर किसी बात का भी नहीं पा सकते। क्योंकि सब बुद्धि का खिलवाड़ है। आत्मिक अनुभव नहीं है। स्वर्ग में आत्मिक अनुभव नहीं घटता, नहीं घट सकता।
सुखी आदमी आत्मा का चिंतन शुरू करता है। मगर चिंतन में ही अटका रहता है। सुखी आदमी को चिंतन से आगे जाना पड़े--अनुभव में; साधना में।
एक बार देवताओं में प्रश्न उठाः दानों में कौन दान श्रेष्ठ? रसों में कौन रस श्रेष्ठ? रतियों में कौन रति श्रेष्ठ? और तृष्णाक्षय को क्यों सर्वश्रेष्ठ कहा जाता है? कोई भी इन प्रश्नों का उत्तर न दे सका।
यह मत समझना कि उत्तर लोगों ने नहीं दिए। उत्तर तो दिए होंगे। हजार उत्तर दिए होंगे। लेकिन कोई भी उत्तर उत्तर नहीं था। तुम यह मत सोचना कि देवता बिल्कुल बुद्धू हैं। क्योंकि तुम यह कहानी पढ़ोगे, तुमको लगेगाः अरे! हम ही उत्तर दे सकते हैं! इसमें देवता उत्तर नहीं दे सके! यह तो बात कुछ जंचती नहीं।
तुमसे कोई पूछेः दानों में कौन दान श्रेष्ठ? तुम भी कुछ उत्तर दोगे, सही-गलत की बात और।
उत्तर तो दिए गए होंगे। लेकिन कोई उत्तर समाधानकारक नहीं था। कोई उत्तर ऐसा नहीं था कि उसको सुनते ही चित्त शांत हो जाए; उसको सुनते ही सत्य का अनुभव हो जाए; उसको सुनते ही, श्रवण करते ही चित्त का विकल्प-जाल टूट जाए--और लगे कि हां, यही ठीक है।
कोई ऐसा सत्य नहीं खोजा जा सका, जो स्वयं-सिद्ध मालूम पड़ा हो। तब देवताओं ने इंद्र से पूछा। इंद्र है देवताओं का राजा। सोचा, शायद इंद्र को पता हो। वह भी इसका उत्तर न दे सका।
नहीं कि उसने उत्तर न दिए होंगे। जरूर उत्तर दिए होंगे। उत्तर तो कोई
भी देता है। तुम गधे से गधे को पूछो; वह भी उत्तर देगा। तुम जरा किसी से भी पूछो, कोई भी बात पूछो। उसे पता हो कि न हो, मगर वह उत्तर देगा। उत्तर देने

का मौका कोई नहीं चूकता। क्योंकि ज्ञानी बनने का मौका मुफ्त में कौन चूके! किसी से भी पूछो, जिन बातों का उन्हें कोई अनुभव नहीं है... ।
ऐसा आदमी तुम्हें मुश्किल से मिलेगा, जो कहेगाः मुझे पता नहीं है। ऐसा आदमी मिले, उसके चरण पकड़ लेना। क्योंकि उस आदमी में कुछ सचाई है। नहीं तो हरेक उत्तर दे रहा है। कुछ भी पूछे जाओ, उत्तर दे रहा है। कुछ पता नहीं, और उत्तर दे रहा है। जिन्होंने खुद कभी जिंदगी में कुछ नहीं किया, वे हरेक को सलाह दे रहे हैं! जो अपनी सलाहों पर कभी नहीं चले--मौका आ जाए, फिर भी नहीं चलेंगे--वे दूसरों को सलाह दे रहे हैं! दूसरों को मार्ग दिखा रहे हैं! यहां अंधे अंधों को मार्ग दिखा रहे हैं! और इसलिए सारे लोग गड्ढों में पड़े हैं--नेता भी और अनुयायी भी।
इंद्र ने भी उत्तर दिया होगा। राजा है देवताओं का। ऐसे स्वीकार तो नहीं कर लिया होगा--कि मुझे पता नहीं। पहले तो अकड़कर बैठा होगा सिंहासन पर। कहा होगाः अच्छा सुनो। सब समझाया होगा। मगर कोई तृप्त नहीं हुआ। मजबूरी में बुद्ध के पास आना पड़ा।
उत्तर तो बुद्धों के पास ही हैं। बुद्धत्व में ही उत्तर है। जागे हुए में ही उत्तर है। जो भीतर ज्योतिर्मय हुआ है, उसी के पास उत्तर है। भगवान ने क्या कहा?
भगवान ने कहाः धर्म के अनुभव में सब प्रश्नों के उत्तर हैं। तुम्हारे प्रश्न अलग-अलग नहीं हैं। तुम पूछते हो, दानों में कौन दान श्रेष्ठ? रसों में कौन रस श्रेष्ठ? रतियों में कौन रति श्रेष्ठ? और तृष्णा-क्षय को सर्वश्रेष्ठ क्यों कहा है? ये कोई अलग-अलग प्रश्न नहीं हैं। एक ही प्रश्न है। और एक ही इनका उत्तर है।
मगर सोचने मात्र से समाधान न कभी हुआ है, न होगा। जानने से समाधान होता है। दर्शन से समाधान होता है। अनुभव से समाधान होता है।
सब व्याधियों की एक ही औषधि है--बुद्ध ने कहा--जागो; मेरे जैसे हो जाओ। जैसे मैं जागा, ऐसे तुम जागो। जागते ही सारे प्रश्नों का उत्तर मिल जाएगा। और क्या उत्तर हैं इन प्रश्नों के?
तो बुद्ध ने कहाः "धर्म का दान सब दानों से बढ़कर है।"
धन देने से क्या होगा? धन से तुम्हें ही कुछ नहीं मिला, तो दूसरे को देने से क्या होगा? धन देने का मतलब ही यह है कि तुमने तो पाया कि कचरा है; अब तुम दूसरे पर टाल रहे हो!
धर्म के दान से। धर्म-दान क्या? पहले तो धर्म को पाओगे, तभी तो दान कर सकोगे न! जो तुम्हारे पास नहीं, उसका दान कैसे करोगे? धन हो, तो धन का दान कर सकते हो। धर्म हो, तो धर्म का दान कर सकते हो। धर्म भीतर का धन है। धर्म आत्म-धन है।
पहले धर्म को पा लो, फिर उसे बांटो। फिर जो भी धर्म के लिए प्यासा दिखे, उसमें उंडेल दो। तुम जागो और दूसरों को जगाओ।
"धर्म का दान सब दानों में श्रेष्ठ। और धर्म-रस सब रसों में प्रबल है।"
संगीत में थोड़ा सा रस है। क्यों? क्योंकि संगीत में भी थोड़ी सी तन्मयता हो जाती है। संभोग में भी थोड़ा रस है, क्योंकि संभोग में भी क्षणभर को तन्मयता हो जाती है। मगर धर्म-रस में सदा को तन्मयता हो जाती है। गए सो गए, फिर कोई लौटता नहीं। डूबे सो डूबे। एकरस हो जाते हो परमात्मा में।
संभोग में, जिससे तुम्हारा प्रेम है, क्षणभर को एकरस होते हो। फिर अलग
हो गए। और फिर अलग होने की पीड़ा और भयंकर हो जाती है। संगीत थोड़ी देर को कानों को मीठा लगता है। फिर संगीत चला गया। फिर शोरगुल है जगत का। शराब पी ली; थोड़ी देर को तन्मय हो गए। फिर नशा उखड़ेगा।

धर्म ऐसा नशा है, जो एक दफे हुआ, तो फिर उखड़ता नहीं। पीया सो पीया। और धर्म ऐसा नशा है कि बेहोशी भी लाता है और होश को नष्ट नहीं करता; होश को बढ़ाता है। धर्म अदभुत नशा है; होश और बेहोशी साथ-साथ पैदा होते हैं। एक तरफ मस्ती छा जाती है और एक तरफ परम होश भी होता है।

"तो धर्म-रस सब रसों में बढ़कर, और धर्म में रति सब रतियों से बढ़कर है।" प्रेमों में सबसे बड़ा प्रेम है, धर्म से प्रेम। रतियों में सबसे बड़ी रति है, धर्म-रति।
स्त्री के साथ थोड़ी देर खेलो, थोड़ा सुख है। पुरुष के साथ थोड़ी देर खेलो, थोड़ा सुख है--रति-क्रीड़ा। लेकिन परमात्मा के साथ खेल लो--सदा के लिए। धर्म-रति बुद्ध कह रहे हैं उसको। अस्तित्व के साथ संभोगरत हो जाओ; अस्तित्व के साथ एक हो जाओ। फिर कोई अलग न कर सकेगा। क्यों? क्योंकि अस्तित्व के साथ वस्तुतः हम एक ही हैं। हमने अलग मान लिया, वह हमारी भ्रांति है। उसी भ्रांति के कारण दुख है। भ्रांति गिर जाए, फिर सुख ही सुख है।
"और तृष्णा का विनाश सर्वश्रेष्ठ कहा है, क्योंकि तृष्णा के विनाश से
ही धर्म उपलब्ध होता है।"
इसलिए बुद्ध ने कहाः तुम्हारे प्रश्न अलग-अलग नहीं, एक ही प्रश्न है।
और मेरा उत्तर भी एक है, एक शब्द में है--धर्म। एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ आठ प्रवचन

दर्पण बनो

पहला प्रश्नः भगवान बुद्ध ने ज्ञानोपलब्धि के तुरंत बाद कहाः स्वयं
ही जानकर किसको गुरु कहूं और किसको सिखाऊं, किसको शिष्य बनाऊं? और फिर उन्होंने चालीस वर्षों तक लाखों लोगों को दीक्षित भी किया और सिखाया भी। लेकिन महापरिनिर्वाण के पहले उनका अंतिम उपदेश थाः आत्म दीपो भव! भगवान इस पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

जिसने भी जाना, सदा स्वयं से जाना। गुरु हो, तो भी निमित्तमात्र है। गुरु न हो, तो भी चल जाएगा।
असली सवाल--ध्यान रखना--गुरु के होने, न होने का नहीं है। असली सवाल स्वयं में प्रवेश का है। कुछ साहसी लोग अकेले भी स्वयं में प्रविष्ट हो जाते हैं। कुछ को सहारे की जरूरत पड़ती है। जिनको सहारे की जरूरत पड़ती है, वे भी प्रविष्ट तो अकेले ही होते हैं। सहारा निमित्तमात्र है।
सहारा वस्तुतः सत्य के मिलने में सहयोगी नहीं है, सिर्फ तुम्हारी हिम्मत बढ़ाने में सहयोगी है।
जैसे तुम डरते हो गहरे पानी में जाने में। और कोई कहता हैः घबड़ाओ मत, मैं किनारे पर खड़ा हूं। तुम जाओ। जरूरत होगी, तो मैं हूं। मैं कूद पडूंगा। बचा लूंगा। तुम जाते हो।
जरूरत कभी पड़ती नहीं। क्योंकि वह गहराई तुम्हारी ही गहराई है। उसमें डूबकर आदमी मिटता नहीं, पहली दफा होता है। इसलिए डूबने में कोई खतरा ही नहीं है। न डूबो, तो ही झंझट है। डूब गए, तब तो कोई खतरा नहीं है। डूब गए, तो पहुंच गए। लेकिन जिसने गहराई नहीं जानी, वह डरता है।
गुरु इतना ही करता है कि तुम्हारे झूठे डर को... । तुमसे अगर वह कहे कि
यह डर झूठा है; घबड़ाओ मत; कोई कभी डूबा नहीं है। या डूब भी गए जो, वे पहुंच गए डूबकर; तो शायद तुम भाग खड़े होओगे। तुम कहोगे, क्या पक्का भरोसा कि कोई कभी डूबा नहीं! और न डूबा हो कोई, मुझे तो लगता है कि मैं डूब जाऊंगा। मैं असहाय; मैं अल्प शक्तिवान; इस विराट सागर में अकेला जाऊं--नहीं होगा।
या अगर गुरु कहे तुमसे सच्ची बात--कि डूब गए, तो पहुंच गए। डूबना सौभाग्य है। मृत्यु महाजीवन का द्वार है। तब तो तुम इस आदमी को बिल्कुल ही छोड़कर भाग जाओगे। यहां रुकना भी खतरनाक है! मिटने कोई नहीं आता गुरु के पास; होने आता है। लेकिन होने की प्रक्रिया मिटना है।
तो गुरु ये बातें नहीं कहता। इन बातों को छिपाकर रखता है। यह तो तुम जानोगे, तब जानोगे। तुम्हें आश्वासन देता हैः घबड़ाओ मत, मैं तो खड़ा हूं। देखते नहीं मुझे कि इतनी गहराइयों में तैरता हूं। तुम डूबोगे, तो मैं बचा लूंगा।
यह एक झूठ को दूसरे झूठ से सहारा देकर तुम्हें हिम्मत, तुम्हें साहस देने की चेष्टा है। यह उपाय है। इस भांति तुम उतर जाते हो। उतर गए, तो तुम स्वयं जानोगे कि बचाने की कोई जरूरत न थी। बचाना तो महंगा पड़ जाता। उतरकर तो डूबना ही है। डूबकर गहराई हो जाना है। उसी गहराई में समाधि है, निर्वाण है।
तो गुरु को तुम्हें बचाने कभी जाना नहीं पड़ता। गुरु तो तुम्हें इस बहाने भेज रहा है--कि बचा लूंगा, घबड़ाओ मत; जाओ तो।
एक दफा गए, तो खुद ही स्वाद लग जाएगा। और डूबने का स्वाद लग गया, तो राज समझ में आ गया। जब तुम पा लोगे, तब तुम कहोगेः अरे! यह तो अपने से हो गया! तब तुम जानोगे भलीभांति कि गुरु को कुछ भी न करना पड़ा।
फिर भी तुम अनुग्रह मानोगे, यद्यपि गुरु ने कुछ भी नहीं किया। इतना तो किया कि तुम एक व्यर्थ की बात से डरे थे, तुम्हें सहारा दिया। उस समय सहारा बड़ा जरूरी था।
अब यह जरा जटिल मामला है। सहारा गुरु देता भी नहीं, क्योंकि सहारे की कोई जरूरत नहीं है। और देता भी है। क्योंकि तुम झूठ हो। तुम अंधेरे में

खड़े हो। तुम्हें कुछ दिखायी नहीं पड़ता। तुम्हें सहारे की जरूरत है; तो तुम्हें सहारा देता है। यद्यपि सहारे की जरूरत कभी नहीं पड़ती।
तुम्हें बेसहारा छोड़ने में ही गुरु की कला है। अगर कोई गुरु तुम्हें सहारा सच में दे दे, तो तुम वंचित रह जाओगे। वही सहारा अटकाव हो जाएगा।
तो बुद्ध ठीक कहते हैंः स्वयं ही जानकर अब किसको गुरु कहूं? किसी ने जनाया नहीं। किसी ने सत्य दिया नहीं। सत्य भीतर आविष्कृत हुआ है; भीतर उमगा है। किसको गुरु कहूं?
और जब किसी को गुरु नहीं कह सकता, तो किसको शिष्य बनाऊं? वह उसका अनुसंग है। जब मैं किसी को गुरु नहीं कह सकता, तो अब किसको शिष्य बनाऊं? किसको सिखाऊं?
जानता हूं कि सिखाने की जरूरत ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति सत्य को लेकर ही जन्मा है। सत्य तुम्हारा स्वभाव है। कुछ करना नहीं है; सिर्फ अपने स्वभाव को पहचानना है। और यह पहचान की क्षमता भी तुममें है। सारा आयोजन है।
तुम वीणा बजाना जानते हो। तुम्हारी अंगुलियां कुशल हैं। वीणा भी रखी है। यद्यपि संगीत पैदा नहीं हो रहा है। तुम अंगुलियां वीणा पर रख नहीं रहे। तुम अपनी कुशलता वीणा पर बरसा नहीं रहे। तुम अपनी कुशलता वीणा पर बरसाओ; वीणा तुम पर संगीत बरसा दे। सब मौजूद है।
तुम्हें भोजन बनाना आता है। आटा भी है, नमक भी है, घी भी है, दाल भी है, पानी भी है, आग भी जली रखी है, और तुम भूखे बैठे हो! और तुम्हें भोजन बनाना भी आता है! कुछ कमी नहीं है। सब है। जरा तालमेल बिठाना है। जरा संयोजन जमाना है। भूखे रहने की कोई जरूरत न रह जाएगी।
इसलिए बुद्ध कहते हैंः किसको सिखाऊं? क्या सिखाऊं? सत्य सिखाया ही नहीं जा सकता। जो सिखाया जाएगा, वह सत्य नहीं होगा। सिखाने की तो बात दूर, सत्य कहा भी नहीं जा सकता।
जो भी चीज सिखायी जाएगी, वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। सब सिखावन परभाव है। तुम जो भी सीखते हो, वह बाहर का है। अनसीखा भीतर पड़ा है, उसको सीखना नहीं है। उसके लिए तो सब सिखावन भूलनी है। जो-जो सीख लिया, उसे विस्मृत करना है।
असली गुरु वही, जो तुम्हें सिखाता नहीं, बल्कि तुम्हें भुलाता है। जो कहता हैः भूलो। यह भी भूलो; यह भी भूलो; यह भी भूलो। यह सब कचरा है। कचरे को भूलते जाओ। यह बाहर से आया है; इसे छोड़ते जाओ; त्यागते जाओ। जब तुम्हारे पास त्यागने को कुछ भी न बचे; जब बाहर से आया हुआ सब तुमने वापस बाहर फेंक दिया; तब जो शेष रह जाएगा--धड़कता हुआ, ज्योतिर्मय--वही तुम हो; वही सत्य है। बाहर से जो आया है, उसने तुम पर पर्तें जमा दी हैं। जैसे दर्पण पर धूल
की पर्तें जम गयी हैं। गुरु कहता हैः धूल को पोंछ दो। दर्पण भीतर मौजूद है। दर्पण कहीं से लाना नहीं है।
तो इसलिए बुद्ध कहते हैंः किसको सिखाऊं? किसको गुरु बनाऊं?
और तुम्हारा प्रश्न भी संगत है। तुम पूछते होः "फिर भी उन्होंने चालीस वर्षों तक लाखों लोगों को दीक्षित किया और सिखाया भी!"
यह भी सच है। तुम्हारा प्रश्न संगत है। और तुम्हें बड़ी उलझन में डालेगा। एक तरफ कहा कि न मेरा कोई गुरु, और न मैं सिखाऊंगा किसी को। फिर चालीस वर्षों तक लाखों लोगों को सिखाया! जितने लोगों को बुद्ध ने सिखाया, किसी दूसरे व्यक्ति ने नहीं सिखाया। सिखाया क्या? यही सिखाया कि सिखाने को कुछ भी नहीं है। दीक्षित किस बात में किया? इसी बात में दीक्षित किया कि कोई गुरु नहीं है। अप्प दीपो भव--अपने दीए खुद बनो।
यह भी सिखाना पड़ेगा, क्योंकि गलत सीख भीतर बैठ गयी है। तुमने पत्थर को हीरा मान रखा है। बुद्ध ने इतना ही सिखाया कि यह पत्थर हीरा नहीं है। हीरे को सिखाने की जरूरत नहीं है। हीरा तुम्हारे भीतर पड़ा है। पत्थर
से तुम्हारा छुटकारा हो जाए, तो तुम्हारी नजर हीरे पर अपने से पड़ जाए। लेकिन तुमने पत्थर को हीरा मान लिया। तो तुम मुट्ठी पत्थर पर बांधे हो! हीरा भीतर पड़ा है। वहां नजर जाती नहीं। क्योंकि नजर तो वहां जाती है, जहां तुमने हीरा समझा है। हीरे को तुमने छोड़ रखा है; पत्थर पर नजर टिका रखी है!

तो बुद्ध ने क्या सिखाया लोगों को चालीस वर्ष तक? यही सिखाया कि सिखाने को कुछ भी नहीं है। थोड़ा अन-सीखना जरूर करना है। यह पत्थर हीरा नहीं है--बस, इतना जानो। जैसे ही यह दिखायी पड़ जाएगा कि पत्थर हीरा नहीं है, तुम्हारी नजर मुक्त हो जाएगी पत्थर से। मुक्त नजर हीरे को फिर खोजने लगेगी।
और अगर तुम्हें यह समझ में आ जाए कि कहां-कहां हीरा नहीं है; बस, पर्याप्त हो गया। फिर वहां-वहां से तुम मुक्त होने लगोगे। मुक्त होते- होते एक दिन नजर उस जगह टिक जाएगी, जहां हीरा है।
असार को असार की भांति जान लेना, सार को जानने का सूत्र है। असत्य को असत्य की भांति पहचान लेना, सत्य की तरफ यात्रा है।
तो बुद्ध ने सिखाया कुछ भी नहीं, फिर भी सिखाया। तुम्हारी अड़चन भी मैं समझता हूं। बुद्ध की अड़चन भी समझो। मगर बुद्ध ठीक ही कहते हैं।
सत्य सिखाया नहीं जा सकता। लेकिन झूठ झूठ है, यह समझाया जा सकता है।
और यही समझाया चालीस वर्षों तक सतत। और इसी भाव में दीक्षा दी। बुद्ध अदभुत गुरु हैं।
दुनिया में तीन तरह के गुरु संभव हैं। एक तो गुरु, जो कहता हैः गुरु के बिना नहीं होगा। गुरु बनाना पड़ेगा। गुरु चुनना पड़ेगा। गुरु बिन नाहीं ज्ञान।
यह सामान्य गुरु है। इसकी बड़ी भीड़ है। और यह जमता भी है। साधारण बुद्धि के आदमी को यह बात जमती है। क्योंकि बिना सिखाए कैसे सीखेंगे? भाषा भी सीखते, तो स्कूल जाते। गणित सीखते, तो किसी गुरु के पास सीखते। भूगोल, इतिहास, कुछ भी सीखते हैं, तो किसी से सीखते हैं। तो परमात्मा भी किसी से सीखना होगा। यह बड़ा सामान्य तर्क है--थोथा, ओछा, छिछला--मगर समझ में आता है आम आदमी के कि बिना सीखे कैसे सीखोगे। सीखना तो पड़ेगा ही। कोई न कोई सिखाएगा, तभी सीखोगे।
इसलिए निन्यानबे प्रतिशत लोग ऐसे गुरु के पास जाते हैं, जो कहता है, गुरु के बिना नहीं होगा। और स्वभावतः जो कहता है गुरु के बिना नहीं होगा, वह परोक्षरूप से यह कहता हैः मुझे गुरु बनाओ। गुरु के बिना होगा नहीं। और कोई गुरु ठीक है नहीं। तो मैं ही बचा। अब तुम मुझे गुरु बनाओ!
दूसरे तरह का गुरु भी होता है। जैसे कृष्णमूर्ति हैं। वे कहते हैंः गुरु हो ही नहीं सकता। गुरु करने में ही भूल है। जैसे एक कहता हैः गुरु बिन नाहीं ज्ञान। वैसे कृष्णमूर्ति कहते हैंः गुरु संग नाहीं ज्ञान! गुरु से बचना। गुरु से बच गए, तो ज्ञान हो जाएगा। गुरु में उलझ गए, तो ज्ञान कभी नहीं होगा।
सौ में बहुमत, निन्यानबे प्रतिशत लोगों को पहली बात जमती है। क्योंकि सीधी-साफ है। थोड़े से अल्पमत को दूसरी बात जमती है। क्योंकि अहंकार के बड़े पक्ष में है।
तो जिनको हम कहते हैं बौद्धिक लोग, इंटेलिजेन्सिया, उनको दूसरी बात जमती है। पहले सीधे-सादे लोग, सामान्यजन, उनको पहली बात जमती है। जो अत्यंत बुद्धिमान हैं, जिन्होंने खूब पढ़ा-लिखा है, सोचा है, चिंतन को निखारा-मांजा है, उन्हें दूसरी बात जमती है। क्योंकि उनको अड़चन होती है किसी को गुरु बनाने में। कोई उनसे ऊपर रहे, यह बात उन्हें कष्ट देती है। कृष्णमूर्ति जैसे व्यक्ति को सुनकर वे कहते हैंः अहा! यही बात सच है।
तो किसी को गुरु बनाने की कोई जरूरत नहीं है! किसी के सामने झुकने की कोई जरूरत नहीं है! उनके अहंकार को इससे पोषण मिलता है।
अब तुम फर्क समझना।
पहला जिस आदमी ने कहा कि गुरु बिन ज्ञान नाहीं; और उसने यह भी समझाया
कि और सब गुरु तो मिथ्या; सदगुरु मैं। और इसी तरह, मिथ्यागुरु जिनको वह कह रहा है, वे भी कह रहे हैं कि और सब मिथ्या; ठीक मैं।
तो गुरु के बिना ज्ञान नहीं हो सकता है--इस बात का शोषण गुरुओं ने किया गुलामी पैदा करने के लिए; लोगों को गुलाम बना लेने के लिए। सारी दुनिया इस तरह गुलाम हो गयी। कोई हिंदू है; कोई मुसलमान है; कोई ईसाई है; कोई जैन है।

ये सब गुलामी के नाम हैं। अलग-अलग नाम! अलग-अलग रंग-ढंग! अलग-अलग कारागृह! मगर सब गुलामी के नाम हैं।
तो पहली बात का शोषण गुरुओं ने कर लिया। उसमें भी आधा सच था। और दूसरी बात का शोषण शिष्य कर रहे हैं, उसमें भी आधा सच है। कृष्णमूर्ति की बात में भी आधा सच है।
पहली बात में आधा सच है कि गुरु बिन नाहीं ज्ञान। क्योंकि गुरु के बिना तुम साहस न जुटा पाओगे। जाना अकेले है। पाना अकेले है। जिसे पाना है, वह मिला ही हुआ है। कोई और उसे देने वाला नहीं है। फिर भी डर बहुत है, भय बहुत है, भय के कारण कदम नहीं बढ़ता अज्ञात में।
पहली बात सच है--आधी सच है--कि गुरु के साथ सहारा चाहिए। उसका शोषण गुरुओं ने कर लिया। वह गुरुओं के हित में पड़ी बात।
दूसरी बात भी आधी सच है--कृष्णमूर्ति की। गुरु बिन नाहीं ज्ञान की बात
ही मत करो, गुरु संग नाहीं ज्ञान। क्यों? क्योंकि सत्य तो मिला ही हुआ है, किसी के देने की जरूरत नहीं है। और जो देने का दावा करे, वह धोखेबाज है। सत्य तुम्हारा है; निज का है; निजात्मा में है; इसलिए उसे बाहर खोजने की बात ही गलत है। किसी के शरण जाने की कोई जरूरत नहीं है। अशरण हो रहो।
बात बिल्कुल सच है; पर आधी। इसका उपयोग अहंकारी लोगों ने कर लिया, अहंकारी शिष्यों ने।
पहले का उपयोग कर लिया अहंकारी गुरुओं ने--कि गुरु के बिना ज्ञान नहीं होगा, इसलिए मुझे गुरु बनाओ। दूसरे का उपयोग कर लिया अहंकारी शिष्यों ने, उन्होंने कहाः किसी को गुरु बनाने की जरूरत नहीं है। हम खुद ही गुरु हैं। हम स्वयं ही गुरु हैं। कहीं झुकने की कोई जरूरत नहीं है।
बुद्ध अदभुत गुरु हैं। बुद्ध दोनों बातें कहते हैं। कहते हैंः गुरु
के संग ज्ञान नहीं होगा। और दीक्षा देते हैं! और शिष्य बनाते हैं! और कहते हैंः किसको शिष्य बनाऊं? कैसे शिष्य बनाऊं? मैंने खुद भी बिना शिष्य बने पाया! तुम भी बिना शिष्य बने पाओगे। फिर भी शिष्य बनाते हैं।
बुद्ध बड़े विरोधाभासी हैं। यही उनकी महिमा है। उनके पास पूरा सत्य है। और जब भी पूरा सत्य होगा, तो पैराडाक्सिकल होगा; विरोधाभासी होगा। जब पूरा सत्य होगा, तो संगत नहीं होगा। उसमें असंगति होगी। क्योंकि पूरे सत्य में दोनों बाजुएं एक साथ होंगी।
पूरा आदमी होगा, तो उसका बायां हाथ भी होगा, और दायां हाथ भी होगा। जिसके पास सिर्फ बायां हाथ है, वह पूरा आदमी नहीं है। उसका दायां हाथ नहीं है। हालांकि एक अर्थ में वह संगत मालूम पड़ेगा, उसकी बात में तर्क होगा। बुद्ध की बात अतर्क्य होगी, तर्कातीत होगी, क्योंकि दो विपरीत छोरों
को इकट्ठा मिला लिया है। बुद्ध ने सत्य को पूरा-पूरा देखा है। तो उनके सत्य में रात भी है, और दिन भी है। और उनके सत्य में स्त्री भी है, और पुरुष भी है। और उनके सत्य में जीवन भी है, और मृत्यु भी है। उन्होंने सत्य को इतनी समग्रता में देखा, उतनी ही समग्रता में कहा भी।
तो वे दोनों बात कहते हैं। वे कहते हैंः किसको शिष्य बनाऊं? और रोज शिष्य बनाते हैं!
बुद्ध को समझने के लिए तुम्हें दोनों तरह के गुरुओं से ऊपर उठना होगा। वे, जो कहते हैं गुरु के बिना ज्ञान हो ही नहीं सकता, उनसे ऊपर उठना होगा। और जो कहते हैं गुरु के संग ज्ञान हो ही नहीं सकता, उनसे भी ऊपर उठना होगा, तो तुम बुद्ध को समझ पाओगे। बुद्ध की बात इतनी पूरी है, इसीलिए इतनी विपरीत, असंगत मालूम होती है।
तुम सोचते हो कि पहले तो उन्होंने कहा कि स्वयं जानकर गुरु किसको कहूं? किसको सिखाऊं? और फिर अंत में यह भी कहा मरते वक्तः आत्म दीपो भव, अपने दीपक स्वयं बनो!
इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। शिष्य बनाए। लेकिन शिष्य बनाकर यही कहाः आत्म दीपो भव। यही उनका शिष्यत्व है। जो बुद्ध को स्वीकार करता है, वह यही स्वीकार कर रहा है कि कोई गुरु नहीं है, किसी की शरण नहीं जाना। सत्य बाहर से नहीं मिलने वाला। बुद्ध से भी नहीं मिलने वाला।

बुद्ध का बड़ा प्रसिद्ध वचन है कि अगर कहीं रास्ते पर मैं मिल जाऊं, तो मुझे तत्क्षण मार डालना। ऐसी अदभुत बात किसी ने नहीं कही है। अगर मैं रास्ते पर कहीं मिल जाऊं, अगर तुम्हारी समाधि के मार्ग पर कहीं बीच में खड़ा हो जाऊं, तो मुझे हटा डालना; मार डालना। मेरे कारण रुकना मत। मेरा मोह तुममें पैदा न हो। तुम मुझे मत पकड़ लेना। तुम मुझसे भी मुक्त हो जाना। अगर बीच में कभी मैं आड़े आने लगूं; तुम्हारी समाधि में अगर मैं बाधा डालने लगूं; अगर तुम्हारे मन में मेरे प्रति राग पैदा होने लगे, मोह पैदा होने लगे, तो तुम मुझे भी छोड़ देना। क्योंकि राग और मोह सब छोड़ने हैं। तुम मुझे भी क्षमा मत करना; तुम मुझे भी दो टुकड़े कर देना।
ऐसी हिम्मत की बात, जिसे परिपूर्ण सत्य दिखा हो, और जिसने परिपूर्ण सत्य जैसा है, वैसा ही कहा हो--उससे ही संभव हो सकती है।
तो मैं तुम्हें बुद्ध की बात संक्षिप्त में कह दूं। बुद्ध कहते हैंः
न कोई गुरु है, न कोई शिष्य है। और मैं तुम्हारा गुरु और तुम मेरे शिष्य! मेरे पास सिखाने को कुछ भी नहीं है; और आओ, मैं तुम्हें सिखाऊं। गुरु की कोई जरूरत नहीं है; और आओ, मेरा सहारा ले लो।
तुम अड़चन में पड़ जाओगे। तुम्हारी बुद्धि एकदम अस्तव्यस्त हो जाएगी कि
अब क्या करें! इस आदमी के साथ क्या करें?
लेकिन यही पूर्ण सत्य है। यह सर्वांगीण सत्य है। क्योंकि दोनों बातें इसमें आ गयीं। इसमें गुरु-शिष्य भी आ गए; और गुरुता भी नहीं आयी; और शिष्य की जड़ता भी नहीं आयी। गुरु-शिष्य का अपूर्व नाता भी आ गया; और नाता मोह भी नहीं बना। वह अंतरंग संबंध भी निर्मित हो गया, लेकिन उस अंतरंग संबंध में कोई गांठ नहीं पड़ी; कारागृह नहीं बना।
बुद्ध को स्वीकार करते समय तुम्हें मुक्ति मिल रही है। बुद्ध को गुरु
की तरह स्वीकार करते समय तुम गुरु के जाल में नहीं पड़ रहे हो। तुम सब जालों के पार जा रहे हो।
ऐसे गुरु को ही पुराने शास्त्रों ने सदगुरु कहा है। गुरु तो बहुत हैं; सदगुरु कभी-कभी कोई होता है। ध्यान रखना; सदगुरु का अर्थ यही है कि पहले तुम्हें संसार से मुक्त करवा दे और फिर अपने से भी मुक्त करवा दे। क्योंकि मुक्ति में फिर अंत में बाधा नहीं आनी चाहिए।
ऐसा ही समझो कि एक मां अपने बच्चे को चलना सिखाती है हाथ पकड़कर। चलना क्या सिखाओगे बच्चे को? चलने की क्षमता उस में पड़ी है। तुम्हारे सिखाने से क्या होगा? तुम्हारे सिखाने से होता, तो किसी लंगड़े को चलाओ! किसी के पैर टूटे हों, उसको चलाओ! तब पता चल जाएगा कि नहीं, अपने वश के बाहर की बात है। तुम्हारे सिखाने से चलता हो, तो पत्थरों को चलाओ सिखाकर। और तुम पा जाओगे कि यह नहीं होने वाला है।
बच्चा चलता है, क्योंकि चल सकता है; बच्चे में चलने की क्षमता पड़ी है। लेकिन शायद हिम्मत नहीं जुटा पाता खड़े होने की। डरता है। स्वाभाविक। गिर जाऊं। कभी चला नहीं पहले, भय होगा ही। मां हाथ पकड़ लेती है। साथ-साथ चलने लगती है--कि देखो, मैं चल रही हूं। तुम भी मेरे जैसे हो। तुम्हारे भी दो पैर, मेरे भी दो पैर। आओ, मेरा हाथ पकड़ो और चलो। हाथ के सहारे बच्चा दो-चार कदम चल लेता है। और उसे भरोसा आता है।
तुमने देखा, जैसे ही बच्चा थोड़ा चलने लगता है, वह हाथ छुड़ाता है मां से। वह कहता हैः मेरा हाथ छोड़ो। अब मां थोड़ी डरती भी है कभी कि अभी गिर न जाए; अभी छोटा है। मगर वह कहता हैः मेरा हाथ छोड़ो। अब वह चलने का मजा खुद लेना चाहता है। और समझदार मां धीरे-धीरे हाथ छोड़ती है। नासमझ मां जबर्दस्ती हाथ को पकड़े रहती है।
तो मां की कला क्या हुई? पहले हाथ पकड़े और फिर छोड़े। पहले बच्चे को अपने पैरों पर खड़ा कर दे, फिर दूर हट जाए; छाया भी न पड़ने दे उस पर। कहीं ऐसा न हो कि बच्चा उसके आंचल को ही पकड़े जिंदगीभर कमजोर रह जाए!
कई दफे ऐसा हो जाता है। माताएं जरूरत से ज्यादा बच्चे को सहारा दे देती हैं। फिर वह अपने पैरों चल ही नहीं सकता।
अभी एक युवक ने मुझे आकर कहा कि वह अकेला कमरे में नहीं सो सकता। मैंने कहाः मामला क्या है! उसने कहा कि सदा मां ने अपने ही कमरे में

सुलाया। अब तो उम्र उसकी कोई सत्ताईस साल है। अकेला नहीं सो सकता कमरे में! कोई न कोई चाहिए। मां का परिपूरक कोई चाहिए। कोई कमरे में न हो, तो वह अकेला नहीं सोता। वह कहता हैः मुझे नींद ही नहीं आती।
अब यह जरा जरूरत से ज्यादा बात हो गयी। हां, छोटा बच्चा है, अकेला नहीं
सो सकता, यह समझ में आता है। मां सो जाए। लेकिन जैसे ही बच्चे की क्षमता जगने लगे, वैसे ही उसे हट जाना चाहिए। अब यह बच्चा तो रुग्ण हो गया। इसको सहारा नहीं मिला, जहर हो गयी बात।
और ऐसा ही इस सूक्ष्म जगत में भी घटता है--गुरु और शिष्य के बीच। गुरु अगर कसकर हाथ पकड़ ले, जैसा गुरु पकड़ लेते हैं।... जो कसकर हाथ पकड़ ले, समझ लेना कि वह मिथ्या-गुरु है। जो तुम्हारा कसकर हाथ पकड़ रहा है, वह तुम्हें सहारा कम दे रहा है; खुद सहारा ज्यादा ले रहा है। इस बात को ख्याल में रख लेना।
जो कसकर हाथ पकड़ रहा है, वह भला तुमसे कह रहा हो कि मैं तुम्हें सहारा
दे रहा हूं, लेकिन वह खुद अकेला होने में डरता है। और तुम अगर उसे छोड़ोगे, तो वह बहुत नाराज होगा। वह बहुत क्रोध से भर जाएगा। वह तुम्हें अभिशाप देगा। वह कहेगा कि यह तो बगावत हो गयी; दगा हो गया; धोखा हो गया!
यह गुरु खुद ही कमजोर है। यह तुम्हारा हाथ पकड़कर खुद भी हिम्मत जुटा रहा था। यह किसी काम का नहीं है। यह तुम्हें क्या हिम्मत देगा? इसमें खुद भी हिम्मत नहीं है।
सदगुरु की परिभाषा हैः जो तुम्हारा हाथ पकड़े, बहुत पोले-पोले पकड़े। इतना पोला पकड़े कि कभी हाथ खिसकाना पड़े, तो तुम्हें पता भी न चले। तुम्हारे हाथ पर दबाव भी न पड़े। तुम्हारे हाथ को पकड़े जाने की आदत भी न पड़े। आदत के पहले हाथ सरक जाए।
सदगुरु वही है, जो अंततः तुम्हें तुम्हीं पर फेंक दे, ताकि तुम अपने पैरों पर खड़े हो जाओ--अपनी स्वतंत्रता में, अपनी महिमा में; ताकि तुम अपने भीतर के सत्य को जान लो।
मुक्तानंद जैसे गुरु एक काम करते हैंः जोर से पकड़ लेते हैं। कृष्णमूर्ति जैसे गुरु दूसरा काम करते हैंः वे पकड़ते ही नहीं। वे छिटककर दूर खड़े रहते हैं। अभी चाहे बच्चा छोटा हो; चाहे अभी घुटने सरकता हो; वे कहते हैं कि नहीं, हाथ पकड़ने में खतरा है। हाथ मैं नहीं पकडूंगा। तुम खुद ही खड़े हो जाओ। तुम खुद ही चलो। वे दूर खड़े रहते हैं। वे दूर से ही कहते हैं कि चलो, खुद ही खड़े हो जाओ। अपने पैर पर खड़े हो जाओ!
यह बात भी जंचती नहीं, क्योंकि छोटा बच्चा अभी अपने पैर पर खड़ा नहीं
हो सकता है। बहुत संभावना है कि यह जिंदगीभर घिसटता रहे; घुटने के बल ही चलता रहे। तो कृष्णमूर्ति के शिष्यों में एक भी उपलब्ध हुआ हो, ऐसा मालूम नहीं पड़ता। वे सब घुटने के बल ही सरक रहे हैं। यह एक भ्रांति।
दूसरी भ्रांति हैंः मुक्तानंद जैसे लोग, जोर से पकड़ लेते हैं। फिर छोड़ते ही नहीं। वे कहते हैंः कहां जा रहे हो? अब न छोडूंगा। अब एक दफे पकड़ लिया तो पकड़ लिया! तो तुम जवान भी हो जाते और उनका हाथ तुम्हारे ऊपर जंजीर बन जाता है। और वे तुम्हारे भीतर एक अपराध-भाव पैदा करते हैं कि अगर तुमने मुझे छोड़ा, तो यह महापाप होगा; यह धोखा होगा; यह दगा होगा।
एक सिंधी महिला ने मुझे आकर कहा--किसी सिंधी गुरु के पास जाती होगी--कि
जब से आपके पास आने लगी हूं, गुरु बहुत नाराज हैं। दादा गुरु का नाम होगा। कहने लगीः दादा कहते हैं कि तुमने वैसा ही धोखा किया है, जैसे कोई स्त्री अपने पति के साथ करे।
यह तो हद्द हो गयी! शिष्य किसी और के पास चला जाए, तो यह वैसा ही व्यभिचार हो गया, जैसे कोई पत्नी किसी और पति को खोज ले। जैसे पत्नी को पतिव्रता होना चाहिए; ऐसे शिष्य को गुरुव्रता होना चाहिए। वे नाराज हैं।
दादा बड़े नाराज हैं।
मैंने कहाः तू निकल आयी उनके चक्कर से, अच्छा हुआ। ये दादा खतरनाक हैं। ये तेरी गरदन दबा देते। ये तुझे मार ही डालते।

बुद्ध के वचन इन अर्थों में अपूर्व हैं। बुद्ध उतने दूर तक सहारा देते हैं, जितने दूर तक लगता है कि तुम बिना सहारे न चल सकोगे। जैसे ही समझ में आया कि तुम अब बिना सहारे चलने लगोगे, वे हाथ अलग कर लेते हैं।
इसलिए बुद्ध ने दीक्षा भी दी और यह भी कहते रहे कि दीक्षा की कोई जरूरत नहीं है। शिष्य भी बनाए और यह भी निरंतर कहते रहे कि किसी को शिष्य होने की कोई जरूरत नहीं है। यह बड़ी महिमापूर्ण स्थिति है। इसे समझो। इसे समझो, तो ही तुम मेरे पास होने का अर्थ भी समझ पाओगे।
यही मेरी प्रक्रिया है। मैं चाहता हूं कि मैं तुम्हारे लिए निमित्त
से ज्यादा न होऊं, इशारे से ज्यादा नहीं। इशारे से ज्यादा हुआ कि खतरा हो गया। मील का पत्थर जैसे इशारा करता है, तीर बना होता है कि आगे जाओ, दिल्ली पचास मील दूर है। मील के पत्थर को छाती से लगाकर नहीं बैठ जाना है।
मैं भी चाहता हूंः मेरा इशारा समझो और आगे बढ़ो; और पीछे लौट-लौटकर भी
मत देखना। यह मत कहना कि जिस मील के पत्थर ने आगे की तरफ इशारा किया, अब उससे हम निष्ठा कैसे अलग करें! अब तो हम इसी को छाती से लगाकर बैठेंगे। या अगर हमें जाना ही है, तो हम इस पत्थर को उखाड़कर अपने कंधे पर रखकर चलेंगे। दोनों हालत में तुम पंगु हो जाओगे। उस पत्थर को कंधे पर ढोओगे, यात्रा मुश्किल हो जाएगी। और फिर औरों की भी तो सोचो, जो रास्ते पर पीछे आते होंगे। तुम पत्थर ही उखाड़कर ले चले! और अगर तुम पत्थर के पास ही बैठ गए, तो तुम्हारी यात्रा कब पूरी होगी?
गुरु को तो ऐसा ही समझो, जैसे चांद को बतायी गयी अंगुली। चांद को देखो, अंगुली को भूल जाओ। अंगुली भूल ही जानी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि तुमने धोखा दे दिया, या दगा कर दिया। सच तो यह है कि जो अंगुली तुम्हें बिल्कुल भूल जाएगी और चांद ही दिखायी पड़ता रहेगा, उस अंगुली के प्रति तुम्हारे जीवन में सदा अनुग्रह का भाव रहेगा। क्योंकि उसी ने चांद को दिखाया। और न केवल चांद को दिखाया, अपने को हटा भी लिया--चुपचाप हटा लिया। कहीं ऐसा न हो कि अंगुली के कारण बाधा बन जाए।
आंख बड़ी छोटी है। एक अंगुली भी चांद को देखने में रुकावट बन सकती है।
अब मैं अगर अपनी अंगुली तुम्हारी आंख में ही रख दूं, तो तुम्हें क्या चांद दिखायी पड़ेगा? दिन में तारे नजर आने लगेंगे!
हिमालय जैसा बड़ा पहाड़ भी सामने खड़ा हो और अंगुली कोई आंख में रख दे, तो फिर नहीं दिखायी पड़ेगा। जरा सी कंकरी आंख में पड़ जाती है, तो हिमालय छिप जाते हैं। आंख शुद्ध होनी चाहिए। इतनी शुद्ध होनी चाहिए कि उसमें गुरु की छाया भी न पड़े।
ऐसी अदभुत प्रक्रिया बुद्ध ने दी। बुद्ध को समझते समय तुम मुझे भी समझ ले सकते हो। मैं भी कहता हूंः गुरु की कोई जरूरत नहीं है। और फिर भी कहता हूं कि गुरु की जरूरत है। मैं भी कहता हूंः शिष्य बनने का कोई कारण नहीं है। और फिर भी कहता हूंः शिष्य बने बिना नहीं होगा। और मैं भी कहता हूंः सिखाने को क्या है! भूलने को है। फिर भी तुम्हें सिखाता हूं।

दूसरा प्रश्नः पूछा है स्वामी अच्युत बोधिसत्व ने।
तेरे पास बैठकर दो घड़ी, तुझे हाले-दिल है सुना लिया
मुझे अपना मान न मान तू, तुझे मैंने अपना बना लिया
कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता
तेरे आस्तां पे जो रुक गए, उन्हें आकर मंजिल ने पा लिया
यह नजर का अपनी कसूर है, कि हिजाबे-जलवा की है खता
कोई एक किरण को तरस गया, कोई चांदनी में नहा लिया
मेरे साथ होती न बेखुदी, तो भटक गया होता मैं कहीं
मेरी लग्जिशों ने कदम-कदम, मुझे गुमरही से बचा लिया

एक बहुत प्राचीन वचन है मिश्र के शास्त्रों में, कि इसके पहले कि गुरु
को शिष्य चुने, गुरु शिष्य को चुन लेता है। मैं तुम्हें इसकी याद दिलाना चाहता हूं।
तुमने कहाः "मुझे अपना मान न मान तू, तुझे मैंने अपना बना लिया।"

इसके पहले कि तुमने मुझे अपना बनाया, मैंने तुम्हें अपना बना लिया। अन्यथा तुम मुझे अपना न बना पाते।
शिष्य तो अंधेरे में भटक रहा है। शिष्य को तो अपने आप का भी पता नहीं है, दूसरे को तो अपना कैसे बनाएगा? शिष्य को तो रोशनी का भी पता नहीं; अगर रोशनी सामने भी आ जाएगी, तो पहचान भी न पाएगा। हम पहचानते भी उसी को हैं, जिसे हमने पहले जाना हो।
रास्ते से कार गुजरी; तुमने पहचान लिया कि कार है। लेकिन एक आदिवासी
को ले आओ जंगल से, जिसने कार नहीं देखी। रास्ते से कार निकलेगी। वह भी देखेगा। आंख में उसकी दिखायी पड़ेगा। आंख तो तुमसे अच्छी उसके पास होगी। साफ-सुथरी होगी। जंगल से आया होगा। धूल-धवांस भी नहीं होगी। शहर का धुआं भी नहीं होगा। स्कूल की पढ़ायी-लिखायी में चश्मा भी नहीं चढ़ा होगा। आंख तो उसकी तुमसे बहुत बेहतर होगी; मीलों तक देखने वाली होगी। कार उसे बिल्कुल साफ दिखायी पड़ेगी। लेकिन पहचान में कुछ भी न आएगा। वह यह न कह सकेगाः यह कार है।
वह चौंककर खड़ा हो जाएगा। उसको कुछ समझ में नहीं आएगा कि यह है क्या! अगर पूछेगा भी तो कुछ अजीब सा प्रश्न पूछेगा। पूछेगा कि यह कौन जानवर! यह क्या जा रहा है! और इसका मुंह भी दिखायी नहीं पड़ता; पूंछ भी दिखायी नहीं पड़ती! सींग भी नहीं है। मामला क्या है? किस तरह का जानवर? किस तरह का पशु? चौंककर घबड़ा जाएगा।
और कार के निकल जाने के बाद, अगर तुम उससे कहो कि कार का वर्णन करके बताओ, तो न बता सकेगा। हालांकि देखा उसने, लेकिन प्रत्यभिज्ञा नहीं हो पायी। पहचान नहीं हो पायी। वर्णन कैसे होगा?
शिष्य तो अंधेरे में जीया है; रोशनी आ भी जाए सामने, तो भी पहचान न सकेगा। रोशनी आंख के सामने खड़ी हो, तो आंखें तिलमिला जाएंगी। आंखें शायद बंद हो जाएं। अंधेरे का आदी है; रोशनी को देखकर आंख बंद करके फिर अपने अंधेरे में खो जाएगा।
नहीं; तुम ने मुझे अपना माना, वह इसीलिए संभव हो पाया कि मैंने तुम्हें, तुम्हारी समझ के पहले भी, अपना मान लिया है। तुम अगर मेरे करीब आ सके, तो सिर्फ इसीलिए आ सके हो कि मैंने तुम्हें पुकारा है। अन्यथा तुम करीब न आ सकोगे।
यहां ऐसे लोग भी आ जाते हैं, जिन्हें मैंने पुकारा नहीं है। वे आते हैं और चले जाते हैं। उनके लिए यह सराय है। जिज्ञासा, कुतूहल ले आता है--कि देखें, क्या है! वे मेरी पूरी बात भी नहीं सुन पाते हैं।
रोज मैं देखता हूंः दो-चार ऐसे लोग आ जाते हैं। बीच बात से उठ जाते हैं। उनकी पकड़ में कुछ नहीं आता। उनकी समझ में कुछ नहीं आता। उन पर कितनी ही दया करो, कुछ भी परिणाम नहीं हो सकता। उनके कान बहरे हैं और आंखें बिल्कुल अंधी हैं। वे ऐसे ही आ गए हैं संयोगवशात। रास्ते से निकलते होंगे; देखा और लोग जा रहे हैं; साथ हो लिए। या कोई मित्र आता होगा; उसने कहा, कभी तुम भी चलो। उन्होंने कहाः ठीक है; आज छुट्टी भी है दफ्तर की, चलते हैं। चले चलते हैं। कहीं किताब हाथ लग गयी होगी। कुछ पढ़ा होगा। सोचा होगाः चलें, एक बार चलकर देखें कि मामला क्या है।
ऐसे लोग टिक नहीं पाते। ऐसे लोग आते हैं, चले जाते हैं। टिकते तो वही हैं, जो पुकारे गए हैं। टिकते तो वही हैं, जो चुने गए हैं। तुम्हें तो पता देर में चलता है कि तुमने मुझे चुन लिया; मुझे पता पहले चलता है कि तुम चुन लिए गए हो।
इसलिए यह तो कहो ही मत कि "मुझे अपना मान न मान तू, तुझे मैंने अपना बना लिया।"
"कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता।"
यह सच है। क्योंकि जिंदगी सिर्फ तेज चलने से ही हल नहीं हो जाती। कई बार धीमे चलने से पहुंचना होता है। तेज चलने से ही कोई पहुंच जाता है, ऐसा नहीं है।
एक बहुत पुरानी बौद्ध कथा है। दो भिक्षुओं ने नदी पार की। एक वृद्ध भिक्षु; और स्वभावतः वृद्ध है, इसलिए बड़े शास्त्रों का बोझ है। शास्त्र

लिए हुए है। और एक युवा भिक्षु। दोनों नदी के तट पर उतरे और उन्होंने, जो मल्लाह उन्हें नदी के पार ले आया था, उससे पूछाः कि सांझ होने के करीब है और सूरज ढलने को होने लगा, और हम पहुंचना चाहते हैं बस्ती रात हो जाने के पहले--पुराने दिनों की कहानी--रात होते ही, सूरज ढलते ही, द्वार-दरवाजा बंद हो जाएगा नगर का। फिर रातभर हमें जंगल में ही रहना पड़ेगा। और खतरनाक है। जंगली जानवर हैं। तो कोई सूक्ष्म रास्ता तुझे पता हो, करीब का रास्ता तुझे पता हो; और कितने जल्दी हम पहुंच जाएं, ऐसा मार्ग बता दे।
उस मांझी ने बड़ी अजीब बात कही। अदभुत आदमी रहा होगा। कथाएं कहती हैं, पहुंचा हुआ अर्हत था। उसने कहाः ऐसा है, अगर तेज गए, तो भटक जाओगे। अगर धीरे गए, तो पहुंच जाओगे।
यह बात सुनकर तो दोनों संन्यासियों ने कहा, यह कोई पागल मालूम होता है! यह तो बिल्कुल गणित के बाहर की बात हो गयी; गणित से उलटी हो गयी। तेज जाओगे, भटक जाओगे! धीमे गए, पहुंच जाओगे! ऐसे आदमी की बात कौन सुने। उन्होंने कहा, समय खराब मत करो इसके साथ। यह आदमी होश में नहीं है।
वे तो भागे। क्योंकि सूरज ढल रहा है, और गांव की दीवाल दूर दिखायी पड़ती है ढलते सूरज में। बीच में ऊंची-नीची पहाड़ियां हैं। पहुंच पाएंगे कि नहीं, घबड़ाहट है। इससे अब बात करने में समय खोना है। और इस आदमी की बात में कुछ सार होने वाला नहीं है।
दोनों भागे। जब वे भाग रहे थे, तब उस मल्लाह ने जोर से हंसकर फिर कहाः याद रखना मेरी बात। धीरे गए, तो पहुंच जाओगे। तेजी से गए, तो भटक जाओगे। तब तो वे और तेजी से भागे कि इसकी बात सुनना भी खतरे से खाली नहीं है। और वही हुआ, जो मल्लाह ने कहा था।
बूढ़ा आदमी जल्दी में भागते में--सिर पर गं्रथों का बोझ--गिर पड़ा। ऊबड़-खाबड़ रास्ता था। बूढ़ा आदमी। ठीक से दिखता भी नहीं था। गिर पड़ा। दोनों पैर लहूलुहान हो गए। और सारे शास्त्र गिर गए और उनके पन्ने हवा ने उड़ा दिए। और युवक उनके पन्ने बीन रहा है।
मांझी ने अपनी नांव बांधी। बांधकर जब वह उनके पास आया; खड़े होकर हंसने लगा। उसने कहाः तुमने मुझे समझा होगा कि पागल हूं। मैंने तुमसे कहा था कि धीरे जाओगे, पहुंच जाओगे। रास्ता ऊबड़-खाबड़ है, अनजान है। तुम इस पर कभी चले नहीं। मैं इस पर रोज आता-जाता हूं। तुम बूढ़े आदमी; शास्त्रों का इतना बोझ लिए! मैं जानता था कि गिर पड़ोगे। इसलिए कहा था, धीरे चलो। और तुम देखते नहीं कि मुझे अभी नाव बांधनी है। फिर मुझे भी तो गांव पहुंचना है। मैं तुम्हारे पीछे ही आ रहा हूं। अगर मैं पहुंच जाऊंगा, तो तुम भी पहुंच जाओगे।
इस छोटी सी कहानी में बड़ा राज है। क्षुद्र चीजों की तरफ तो शायद दौड़ो,
तो चल जाए। लेकिन विराट की तरफ दौड़ना मत। दौड़ में अधैर्य है।
धन पाना हो, तो दौड़ना ही पड़ेगा; क्योंकि धन तो एक तरह का पागलपन है। उसमें तो तुम जितने पागल हो जाओ, उतनी आसानी से मिल जाएगा। पद पाना हो, तो दौड़ना ही पड़ेगा। पद तो एक तरह का पागलपन है। उसमें समझदार तो रस ही नहीं लेता। उसमें तो नासमझ ही उत्सुक होते हैं। उसमें तो जिनकी बुद्धि मारी गयी है, वे ही रस लेते हैं।
लेकिन परमात्मा को पाना हो, तो दौड़ना मत। क्योंकि परमात्मा को पाने
के लिए तो एक शांत दशा चाहिए। दौड़ने में तो ज्वर आ जाता है; शांति खो जाती है; मन अशांत हो जाता है।
तुम देखते होः पश्चिम में कितनी अशांति है! होना नहीं चाहिए। क्योंकि उनके पास सब है। धन है, सुविधा है, यंत्र हैं, विज्ञान का बड़ा विराट जाल है। सब है। पर बड़ी अशांति है।
और बड़ी हैरानी है कि मामला क्या है? धन भी बढ़ गया। जीवन का स्तर भी बढ़ गया। लोग राजाओं की तरह रह रहे हैं। साधारण लोग राजाओं की तरह रह रहे हैं! अच्छे मकान हैं। अच्छी चिकित्सा का उपाय है। लोग लंबे जी रहे हैं। अस्सी- नब्बे-सौ साल की उम्र सामान्य होती जा रही है। सौ के ऊपर लोग हैं। रूस में कोई हजारों लोग हैं, जो सौ के ऊपर पहुंच गए हैं। सब सुविधा है। पर बड़ी

अशांति है। अशांति का कारण क्या है? मौलिक कारण हैः पश्चिम की गति में आस्था, स्पीड। हर बात में तेजी!
जब तुम बहुत तेजी में होते हो, तो तुम सदा भागे हुए होते हो। भागने में जीवन उद्विग्न हो जाता है। भागने में जीवन विक्षिप्त हो जाता है। आहिस्ता चलो। ऐसे चलो, जैसे सुबह घूमने निकले हो, बगीचा घूमने गए हो। कहीं जाना नहीं है। तो ही तुम वृक्षों को देख पाओगे; फूलों को देख पाओगे; पक्षियों की चहचहाहट सुन पाओगे। सुबह का सार-सौंदर्य तुम्हें अनुभव में आएगा।
लेकिन पश्चिम में लोग घूमने भी जाते हैं, तो भी कार में जाते हैं! और कार भी जाती है, तो तेज रफ्तार से जाती है। बगीचे तो नहीं पहुंच पाते, कहीं दुर्घटना हो जाती है।
तुम्हें पता है, छुट्टी के दिन जितने लोग दुर्घटनाओं में मरते हैं पश्चिम में, उतने और किसी दिन नहीं मरते! क्योंकि छुट्टी के दिन सभी घूमने निकल पड़ते हैं! सब भागे जा रहे हैं। कोई पूछता भी नहींः कहां? किसलिए? जब सारा गांव भाग रहा है, तो तुमने भी अपनी कार निकाली और तुम भी सम्मिलित हो गए। पीछे रह जाना ठीक नहीं है! पीछे रहने में दुख होता है। जहां और जा रहे हैं, वहां हम भी जा रहे हैं।
मैंने एक कहानी सुनी हैः एक युवक अपनी प्रेयसी को लेकर कार चला रहा है। उसने कहा कि दूसरे गांव हम जल्दी ही पहुंच जाएंगे। लेकिन वह समय तो कभी का निकल गया। और सौ मील की रफ्तार से जा रहे हैं। उस युवती ने पूछा कि वह गांव तो आता नहीं दिखता! उसने कहाः तुम फिकर क्या करती हो? चाल देखो! कितनी तेज चाल से जा रहे हैं! अरे! गांव में क्या? पहुंचे कि नहीं पहुंचे! इससे क्या फर्क पड़ता है। मगर चाल देखो!
यह हालत ऐसी हो गयी, लक्ष्य ही भूल गया, चाल में ही मजा है। तेज जा रहे हैं। कहां जा रहे हैं--यह मत पूछो। कहां पहुंचोगे--यह मत पूछो।
और पश्चिम की यह छाया पूरब पर पड़ती जाती है। पूरब में भी तेजी आती जाती है।
मैं तुम्हें कह दूंः कुछ चीजें हैं, जो धीमे-धीमे बढ़ती हैं। मौसमी फूल होते हैं, वे जल्दी बढ़ते हैं। मगर जल्दी मर भी जाते हैं। दो-चार सप्ताह में आ भी जाते हैं, दो-चार सप्ताह में गए भी! उनका निशान भी नहीं रह जाता। आकाश को छूने वाले दरख्त ऐसे दो-चार सप्ताह में नहीं बढ़ते। आकाश को छूने वाले दरख्तों को समय लगता है। सैकड़ों वर्ष लगते हैं। जो दरख्त सैकड़ों वर्षों तक आकाश से बातें करेंगे, चांद-तारों से गुफ्तगू करेंगे, वे ऐसे ही नहीं बढ़ जाते--कि तुमने सुबह लगाया और रात देखा कि आकाश में पहुंच गए। समय लगता है। और जो वृक्ष जितने धीमे बढ़ता है, उतनी ज्यादा देर टिकता है।
तो मैं तुमसे एक और बात कह दूं, शायद उस अर्हत ने जो मांझी था, यही सोचकर न कहा होगा कि ये मुझे बिल्कुल पागल समझेंगे। लेकिन तुम मुझे बिल्कुल समझो, तो भी चलेगा। मैं तुमसे यह भी कह दूंः अगर मैं उस नाव का मांझी होता, तो उनसे मैं कहता कि अगर तेज गए, तो भटक जाओगे। अगर धीमे गए, तो पहुंच जाओगे। और अगर बिल्कुल न जाओ, यहीं बैठ जाओ, तो पहुंच ही गए। अगर जाना ही छोड़ दो, तो पहुंच ही गए। मैं यह भी उससे कह देना चाहता। क्योंकि पहुंचना कहां है! जहां पहुंचना है, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। बैठ जाओ, तो पहुंच गए।
ठीक है।
"कई तेजगाम भटक गए, कई बर्करौ हुए लापता
तेरे आस्तां पे जो रुक गए, उन्हें आकर मंजिल ने पा लिया।"
यह सच है। परमात्मा तुम्हें पा लेगा आकर, अगर तुम रुक जाओ।
"उन्हें आकर मंजिल ने पा लिया।"
तुम राजी हो जाओ; शांत हो जाओ; ध्यानस्थ हो जाओ; परमात्मा तुम्हें खोजता चला आता है। उसकी बांह चली आती है खोजती तुम्हें। दूर आकाश से उसके हाथ तुम्हारे सिर पर पड़ जाते हैं।

मगर तुम बैठो तो! तुम ऐसे भागे हो, ऐसे कूद रहे हो--जैसा बुद्ध ने कहा
कि बंदर वृक्षों पर कूदते हैं। परमात्मा हाथ बढ़ाता है जब तक तुम्हारे वृक्ष पर, तुम छलांग लगा गए दूसरे पर! उसका हाथ तुम्हें खोजता ही रहता है। मिलन कभी हो नहीं पाता।
तुम कूद-फांद में लगे हो। तुम एक चीज से दूसरी चीज पर जा रहे हो। तुम किसी चीज में कभी रमते नहीं। रमते नहीं, इसलिए राम से चूक जाते हो। जहां रम जाओ, वहीं राम मिल जाएगा। रम जाओ यानी रुक जाओ, ठहर जाओ; बिल्कुल ठहर जाओ। कंपन भी न हो। सारी गति विलीन हो जाए। उस स्तब्ध स्थिति में, जिसको कृष्ण ने स्थितधी कहा--जिसकी बुद्धि, जिसका चैतन्य बिल्कुल स्थिर हो गया है-- स्थितधी। जो चलते हुए भी चलता नहीं; जो बोलते हुए भी बोलता नहीं--ऐसा जो थिर हो गया है, ऐसी थिरता में परमात्मा तुम्हें स्वयं खोज लेता है। "उन्हें आकर मंजिल ने पा लिया।
यह नजर का अपनी कसूर है, कि हिजाबे-जलवा की है खता
कोई एक किरण को तरस गया, कोई चांदनी में नहा लिया।"
बस, दृष्टि की ही भूल है। चांदनी तो पूरे वक्त बरस रही है। आंख खोलो और देखो। खुलो चांदनी के प्रति। बस, दृष्टि का कसूर है। देखने-देखने के भेद हैं। तुम कैसा देखते हो, इस पर सब निर्भर है। इस जिंदगी में परम आनंद बरस रहा है, लेकिन अगर तुम्हारे देखने का ढंग गलत हो, तो तुम दुख देखते रहोगे। स्वर्ग में भी नरक देख लें, ऐसे लोग हैं। नर्क में भी स्वर्ग देख लें, ऐसे लोग हैं। और जो नर्क में स्वर्ग देख ले, वही है जानकार, समझदार। जो नर्क में भी सुखी हो, उसे तुम नर्क कैसे भेज सकोगे?
एक पुरानी तिब्बती कहावत कहती हैः सुखी व्यक्ति को नर्क नहीं भेजा जा सकता।
तुम सोचते हो कि सुखी व्यक्ति को स्वर्ग भेजा जाता है। तुम गलती में हो। कहीं भी भेजो, सुखी व्यक्ति स्वर्ग में होता है। सुखी व्यक्ति को स्वर्ग भेजना नहीं पड़ता। सुखी व्यक्ति स्वर्ग में होता है।
तुम अगर दुख की कला में बहुत निष्णात हो गए हो--और ऐसे लोग निष्णात हो
गए हैं; उन्हें कुछ दिखायी ही नहीं पड़ता। कितने ही फूल खिलें, कितने ही तारे आकाश में हों, उन्हें कुछ दिखायी नहीं पड़ता! वे जमीन में अपनी आंखें गड़ाए चलते चले जाते हैं।
मैंने सुना हैः एक कारागृह में दो कैदी बंद थे। पूर्णिमा की रात और चांद निकला। और दोनों आकर सींकचों को पकड़कर बाहर देखने लगे। एक कैदी बोला, दुष्टों ने किस जगह कारागृह बनाया है! सताने की कितनी तरकीबें निकाली हैं! यहां सींकचों को पकड़कर भी खड़े नहीं हो सकते। देखते, सामने एक डबरा भरा है! गंदगी और मच्छड़! और वह आदमी डबरे में गौर से देखने लगा। और डबरे में क्या दिखायी पड़ाः कोई पुराना जूता पड़ा है। कोई पुराना टीन का कनस्तर पड़ा है। और वह बड़ा नाराज हो गया।
और दूसरा आदमी चांद को देख रहा है। और दूसरा आदमी बोलाः धन्यभाग! कारागृह तो मैं भूल ही गया कुछ देर के लिए! सींकचे सींकचे न रहे। मैं तो खुले आकाश में उड़ गया। मेरे तो पंख फैल गए। कैसा अपूर्व चांद निकला है!
वे दोनों एक ही कारागृह में हैं। दोनों एक ही सींकचे को पकड़कर खड़े हैं। एक ने डबरा देखा; एक ने चांद देखा। जिसने जो देखा, वह वैसा हो गया। जिसने चांद देखा, वह आकाश में पंख खोलकर उड़ गया। जिसने डबरा देखा, उसे सड़े- गले जूते, कनस्तर, इत्यादि से सत्संग हो गया। सब दृष्टि की बात है। चांदनी तो पूरे वक्त बरस रही है।
"कोई एक किरण को तरस गया, कोई चांदनी में नहा लिया।"
दृष्टि की बात है। यह मत सोचना भूलकर कि तुम पर चांदनी नहीं बरस रही है। परमात्मा सब को बराबर उपलब्ध है। मगर तुम पीठ किए खड़े हो! चांदनी बरस रही है; तुम आंख बंद किए खड़े हो! चांदनी बरस रही है; तुमने घूंघट डाल रखा है। चांदनी बरस रही है; तुम घर के भीतर बंद हो।
तुम्हें एक किरण भी मिल जाए, तो किसी भूल-चूक के कारण मिल गयी। तुमसे कुछ भूल-चूक हो गयी, इसलिए मिल गयी। तुम्हारे बावजूद मिल गयी, तुम्हें एक किरण भी मिल जाए तो!

लेकिन चांदनी खूब बरस रही है। यह सारा अस्तित्व परमात्मा की वर्षा से भरा है। यहां हर बूंद में वही है; हर श्वास में वही है। जरा अपने रुख को बदलने की बात है।

तीसरा प्रश्नः भगवान बुद्ध ने ज्ञानोपलब्धि के पहले छह वर्षों तक जो घोर तप किया था, क्या वह सब का सब व्यर्थ गया? या उसका कुछ अंश काम भी आया? समझाने की कृपा करें।

दोनों बातें हैं। सब का सब व्यर्थ भी गया और सब का सब काम भी आया। थोड़ा जागकर समझना, तो ही समझ पाओगे। थोड़ा अपने चैतन्य को झकझोरकर समझना, तो ही समझ पाओगे।
ऐसा उत्तर नहीं है--कि कुछ काम नहीं आया। ऐसा भी उत्तर नहीं है--कि सब काम आ गया। उत्तर ऐसा है--कि कुछ भी काम नहीं आया और सब काम आ गया। क्या मैं कहना चाहता हूं इस विरोधाभास से?
पहली बातः वह छह वर्ष जो उन्होंने मेहनत की, उससे कुछ भी नहीं मिला। क्योंकि मिलने का कोई संबंध मेहनत से नहीं है। बाहर है ही नहीं। तुम छह वर्ष दौड़ो, कि साठ वर्ष दौड़ो--मिलेगा तो रुककर। इसे खूब गहरे बैठ जाने दो। मिलेगा तो रुककर। दौड़ना जब जाएगा, तब मिलेगा।
तुम छह वर्ष दौड़े; कोई व्यक्ति बारह वर्ष दौड़ा; कोई साठ वर्ष दौड़ा-- इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। छह वर्ष दौड़ने वाला जब रुका, तब उसे मिला। बारह वर्ष दौड़ने वाला जब रुका, तब उसे मिला। साठ वर्ष दौड़ने वाला जब रुका, तब उसे मिला। तो दौड़ तो सब व्यर्थ गयी--इस अर्थ में। श्रम से कुछ भी नहीं हुआ। ठहरने से होता है।
मंजिल दूर नहीं है कि चलने से मिल जाए। तुम मंजिल अपने भीतर लिए हो, इसलिए चलने के कारण चूकते रहोगे। रुक जाओ, तो पा लोगे।
इसलिए कहता हूं कि सब व्यर्थ गया। और फिर यह भी तुमसे कहना चाहता हूं--
कि सब काम भी आ गया। क्योंकि बिना दौड़े कोई रुक नहीं सकता। जो खूब दौड़ लेता है, वही रुकता है। नहीं तो दौड़ने की खुजलाहट बनी रहती है! दौड़कर जो थक जाता है, दौड़-दौड़कर पाता है कि कुछ भी नहीं पाता, वही रुकता है। रुकना कुछ आसान बात नहीं है।
तुम कहोः चलो, हम रुके जाते हैं! तुम कहो कि ठीक! बुद्ध छह वर्ष के बाद रुके; हम अभी रुके जाते हैं। तुम्हें नहीं मिल जाएगा रुकने से। क्योंकि तुम्हारे रुकने में और बुद्ध के रुकने में एक बुनियादी फर्क रहेगा। बुद्ध जानकर रुके कि दौड़-दौड़कर नहीं मिलता। तुम बिना जाने, होशियारी
से रुक गए कि चलो, उनको बिना दौड़े मिला; हम भी बैठ जाएंगे बगल में ही। हम भी खोज लें एक बोधिवृक्ष। बोधिवृक्ष बहुत हैं। जहां-जहां बड़ के वृक्ष हैं-- कहीं भी बैठ जाओ। बोधिवृक्ष के नीचे हम भी बैठ जाएं! हम को भी मिल जाएगा! सुबह आंख खोलकर देखोगे कि अब आखिरी तारा डूब रहा है, अब अपना तारा भीतर कब उगे?
कुछ नहीं उगेगा। थोड़ी-बहुत देर बैठकर लगेगा कि अब नाश्ते का वक्त हुआ। अब चलें ब्लू डायमंड! अब आज तो गया दिन ऐसे ही। बुद्धत्व नहीं मिला। और भूख बहुत जोर से लगी है, और रातभर सो भी नहीं पाए। और बोधिवृक्ष... समाधि वगैरह कहां! मच्छड़ ही मच्छड़!
तुम ख्याल रखना, बोधिवृक्षों के नीचे समाधि ही नहीं है; मच्छड़ भी हैं। रातभर सो भी न पाए। कहां की झंझट में पड़ गए! कम से कम मच्छरदानी तो ले आते। अपने घर शांति से तो सोते थे। और रातभर डर भी लगेगा कि कहीं कोई जंगली जानवर इत्यादि न आ जाए। कोई चोर-लुटेरा न आ जाए! और रातभर तुम कई बार आंख खोल-खोलकर देखोगे कि अभी तक बुद्धत्व नहीं मिला। कब मिलता है देखें?
शक भी होगा कई बार कि अरे! पागल हुए हो। ऐसे कहीं मिलता है? ऐसे बैठे- ठाले मिलता होता, तो सभी को मिल गया होता। बैठे-ठाले कहीं बुद्धत्व मिलता है? अरे उठो! कुछ घर चलो। अपने काम में लगो। ऐसे समय मत गंवाओ।

मन में विचार आएंगे कि किसी फिल्म को ही देख लेते; कि किसी संगीत की मंडली में ही चले गए होते। कुछ नहीं होता तो टी.वी. ही देख लिए होते। यह रात ऐसे ही गयी! पछताओगे बहुत।
तो दूसरी बात तुमसे कह दूं कि वह छह वर्ष के दौड़ने का परिणाम आया। छह वर्ष के दौड़ने से सत्य नहीं मिला; लेकिन छह वर्ष के दौड़ने से बैठने की क्षमता मिली। इसलिए दोनों बातें मैं एक साथ कहना चाहता हूं।
छह वर्ष बुद्ध न दौड़े होते, तो रुकने की कला न आती। दौड़ने वाला ही रुकना जानता है। दौड़ने की असफलता ही रुकने की पात्रता बनती है।
और फिर छह वर्ष... । यह मत सोचना कि छह वर्ष का भी कोई संबंध है। कि चलो,
छह वर्ष हम भी दौड़ें। यह भी इस पर निर्भर करेगा कि तुम कितनी प्रगाढ़ता से दौड़े; कितनी परिपूर्णता से दौड़े। बुद्ध की त्वरा चाहिए, तो छह वर्ष में हो गया; नहीं तो साठ वर्ष में भी नहीं होगा।
धीरे-धीरे दौड़े, ऐसे लंगड़ाते-लंगड़ाते चले, घड़ी देखते रहे कि अब ये छह वर्ष कब पूरे होते हैं देखें। चलो, और थोड़ा चल लें। किसी तरह घसिटते रहे। तो इस घसिटने से छह वर्ष में काम पूरा नहीं होगा। छह जन्म भी लग जाएंगे। यह इस पर निर्भर है कि कितनी समग्रता से दौड़े।
सब दांव पर लगा दिया बुद्ध ने। वहीं उनका राज है। धन लगा दिया, पद लगा दिया, प्रतिष्ठा लगा दी। सब लगा दिया दांव पर। देह-मन, सब समर्पित कर दिया उसी खोज के लिए। कुछ बचाया नहीं। कंजूसी नहीं की। दौड़ आधी-आधी नहीं थी, कुनकुनी नहीं थी। सौ डिग्री पर उबले, तो भाप बने।
छह वर्ष पूरी तरह दौड़कर, सब तरफ से दौड़कर, सब उपाय करके, यह दिखायी पड़ा
कि मिलता तो है ही नहीं। उपाय मैंने सब कर लिए; जो-जो उपाय थे, सब कर लिए, मिलता तो है ही नहीं। इस अपूर्व निराशा में बैठ गए; हताशा में बैठ गए। अब करने को कुछ नहीं बचा।
लेकिन अगर तुमने कुनकुना-कुनकुना किया, तो करने को बहुत बचेगा। तुम सोचोगे कि ठीक है, कुछ तो किया, मगर टी.एम. नहीं कर पाए, भावातीत ध्यान नहीं कर पाए। शायद उससे मिल जाता। कि योग नहीं कर पाए, शायद उससे मिल जाता। कि उपवास नहीं कर पाए, शायद उससे मिल जाता। इतना तो किया जरूर, लेकिन कुछ तो है, जो नहीं किया। कहीं उसमें न हो राज। कहीं वहां से द्वार न खुलता हो! तो तुम्हारी हताशा पूरी नहीं होगी।
हताशा पूर्ण होनी चाहिए। उस हताशा में ही तुम बैठते नहीं, तुम गिर जाते हो।
बुद्ध उस रात गिर गए। दौड़-दौड़कर गिर गए। अपनी सामर्थ्य पूरी दौड़ लिए।
फिर कोई सामर्थ्य न बची। गिर गए। वह गिरना अहंकार का विसर्जन होना हो गया।
जब दौड़ ही न रही, तो अहंकार कहां रहे? जब करने से कुछ न हुआ, तो कर्ता
मर गया। उस अकर्ता भाव में ही क्रांति घटी, सूर्योदय हुआ।
पूछा तुमनेः "ज्ञानोपलब्धि से पहले बुद्ध ने छह वर्षों तक जो घोर तप किया था, क्या वह सब का सब व्यर्थ गया या उसका कुछ अंश भी काम में आया?" पूरा का पूरा व्यर्थ गया और पूरा का पूरा काम में आया।

चौथा प्रश्नः मैं निराशा में डूबा हुआ हूं; मुझे आशा दें; मुझे सहारा दें।

तुम गलत जगह आ गए। आशा चाहिए, तो कहीं और जाओ।
आशा यानी संसार। निराशा यानी संसार व्यर्थ हुआ। देख लिया, यहां कुछ
भी नहीं है। आशा का मतलब हैः फिर सपने। निराशा का अर्थ हैः सब सपने टूट गए, भंग हो गए। आशा का अर्थ हैः फिर वासना, फिर कामना। आशा का अर्थ हैः आज तक तो नहीं हुआ, कल हो जाए शायद; परसों होगा। आशा का अर्थ हैः भविष्य पुनरुज्जीवित हो उठा; योजनाएं बनने लगीं; सपने फिर पंख फैलाने लगे।
नहीं; तुम गलत जगह आ गए। यहां तो पंख काटे जाते हैं सपनों के। यहां तो हताशा सिखायी जाती है। यहां तो निराशा परिपूर्ण हो जाए, तो ही कुछ हो सकता है।
तुम कहते होः "मैं निराशा में डूबा जा रहा हूं।"

डूब ही जाओ। अब अपने को बचाने की कोशिश मत करो। वही कोशिश तुम्हारी दुश्मन है। अब डूब ही जाओ। बहुत दिन तो बचाया! बचाकर पाया क्या? अब डूब ही जाओ।
आशा बहुत दिन तो रखी। कितनी सम्हाली? हाथ क्या लगा? अब आशा को मरने भी दो। अब और इसको श्वास मत दिए जाओ। अब राम-राम सत्य बोल दो। अब बांधकर इसकी अर्थी और मरघट ले जाओ। कहोः आशा मर गयी। इसको अलविदा कहो। इसको जाने दो। अब निराशा में ठहर जाओ। और तुम चकित होओगे जानकर कि अगर आशा पूरी मर जाए, तो उसी के साथ निराशा भी मर जाती है। यह तुम्हें जरा कठिन होगा; क्योंकि तुम सोचते हो कि आशा मर गयी, तो निराशा ही निराशा रहेगी। तो तुम गलत सोचते हो। तो तुम्हें जीवन का गणित आता नहीं। तो तुम्हें जीवन के तर्क का कुछ पता नहीं है। तो तुम आदमी के तर्क में जी रहे हो।
आदमी के तर्क में बड़ी गहराई नहीं है; बड़ा छिछला है। आदमी का तर्क कहता हैः आशा गयी, तो निराशा। लेकिन जीवन का गणित कुछ और कहता है। जीवन का गणित कहता है कि जब तक आशा है, तब तक निराशा है।
निराशा का मतलब क्या होता है? तुमने एक आशा की, पूरी न हुई तो निराशा।
जब तुमने आशा ही छोड़ दी तो अब तुम निराश कैसे होओगे? निराश तुम्हें करेगा कौन? जब आशा ही गयी, तो उसी के साथ उसकी छाया भी गयी। छाया है निराशा आशा की।
तुम्हारे घर में कोई मेहमान आया, जब मेहमान चला गया फिर क्या तुम कहते होः उसकी छाया रह गयी! मेहमान गया, तो छाया भी गयी। छाया रह नहीं सकती।
तो तुम कहते होः "मैं निराशा में डूबा जा रहा हूं।"
लेकिन अभी भी तुम आशा को पकड़े हो; डूब नहीं रहे हो। कहते हैं न, डूबते
को तिनके का सहारा। तुमने कुछ तिनके बना रखे होंगे। तुम सोचते होओगेः चलो, संसार में कुछ नहीं हुआ; धर्म के जगत में कुछ हो जाएगा। चलो, धन नहीं मिला; ध्यान मिलेगा। चलो, यह लोक नहीं, तो परलोक सम्हाल लें। अब यह तो गया। अब वहां सम्हाल लें। पुण्य कमा लें। पद तो नहीं मिला, पुण्य तो मिल जाए।
तो तुमने आशा के लिए नए क्षेत्र खोज लिए, बस। फिर तुमने तिनके बना लिए। फिर तुम इन तिनकों से उलझ गए। फिर तुमने कागज की नावें चला दीं। अब फिर तुम सोचने लगेः अब पहुंचे, तब पहुंचे। फिर कागज की नावें डूबेंगी, फिर निराशा होगी।
जिसने आशा छोड़ दी, उसकी निराशा भी गयी। इस सत्य को देखो। इस सत्य को खूब ध्यान करो। जिसकी आशा गयी, उसकी निराशा गयी। जिसने सुख छोड़ा, उसके दुख गए। जिसने सफलता छोड़ी, उसकी असफलता गयी। जिसने मान छोड़ा, उसका अपमान गया। जिसने जीवन छोड़ा, उसकी मृत्यु गयी।
जीवन को पकड़ो, तो मौत आती है। जितने जोर से पकड़ो, उतने जोर से आती है। सफलता के लिए दौड़ो, असफलता हाथ लगती है। बड़ा मजा है! और तुम इसे देखते ही नहीं, तो तुम दौड़ते ही चले जाते हो, और असफलता बढ़ती चली जाती है। और तुम सोचते होः एक न एक दिन तो सफलता मिलेगी। उसी एक न एक दिन की आशा में असफलता का अंबार लगता चला जाता है।
सफलता कभी किसी को यहां न मिली है, न मिल सकती है। असफल तो हारते ही हैं; जिनको तुम सफल कहते हो, वे और बुरी तरह हारते हैं।
तुमने देखा, जिसको धन मिल जाता है, उसकी हार देखी? जिसको धन नहीं मिलता, उसकी हार कुछ भी नहीं है--उस आदमी के मुकाबले, जिसको धन मिल जाता है। क्योंकि जिसको धन नहीं मिला, उसकी आशा अभी शेष रहती है कि कमा लूंगा। भिखमंगे से भिखमंगा भी आशा रखता है। भिखमंगे से भिखमंगा भी रोज अपने पैसे गिनता है। रोज जमीन में गड़ाता है। अब जो बहुत पढ़े-लिखे भिखमंगे हैं, वे तो बैंक में भी जमा करवाते हैं!
मैं एक भिखमंगे को जानता था, जो मरा तो सत्रह हजार रुपए बैंक में छोड़
कर मरा।
तो भिखमंगे भी आशा से भरे हैं। लेकिन जिसको सब मिल जाता है, धन पूरा मिल जाता है, जितना सोचा था, उतना मिल जाता है, उसकी तुमने असफलता देखी? उसके भीतर एकदम निर्धनता छा जाती है। वह देखता हैः धन का तो अंबार लग गया,

और मैं जैसा गरीब था, वैसा का वैसा गरीब--वस्तुतः और भी गरीब हो गया।
क्योंकि यह धन की तुलना में अब भीतर की निर्धनता और खलती है।
यह आकस्मिक नहीं है कि बुद्ध सम्राट के बेटे थे और छोड़कर चले गए। तुमने कभी भिखमंगे के बेटे को छोड़कर जाते देखा? तुमने कोई कहानी सुनी है कि भिखमंगे के बेटे ने सब भिखमंगापन छोड़ दिया और संन्यासी हो गया! तुमने ऐसी कोई कहानी सुनी है? ऐसा होता ही नहीं। क्योंकि भिखमंगे का बेटा छोड़ ही क्या सकता है! छोड़ ही कैसे सकता है? अभी तो उसे असफलता मिली ही नहीं। सफलता ही नहीं मिली, तो असफलता कैसे मिले!
बुद्ध ने छोड़ा; राजा के बेटे हैं। महावीर ने छोड़ा; राजा के बेटे हैं। जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजाओं के बेटे हैं! क्या मामला है? क्यों राजाओं के बेटों ने छोड़ा? जरूर इनको निर्धनता कुछ ऐसी दिखी, जैसी भिखमंगों को नहीं दिखती। इनको सफलता में असफलता दिखी विराजमान। इनको सुख के बीच दुख खड़ा दिखा, शिखर की तरह, पहाड़ की तरह, उत्तुंग, आकाश को छूता हुआ।
तुम कहते होः "मैं निराशा में डूबा जा रहा हूं।"
तुम डूबना नहीं चाहते। तुम चाहते हो कि मैं कुछ कागज की नावें तुम्हारे लिए तैरा दूं। ऐसा पाप मैं न करूंगा। तुम गलत जगह आ गए। तुम जाओ किन्हीं पुराने ढब के साधु-संन्यासियों के पास, जो तुम्हें आशीर्वाद दें। वे कहेंः घबड़ाओ मत। यह लो ताबीज। लाटरी पक्का है मिलना। एक दफा और दांव लगा दो।
मेरे पास तो अगर लाटरी तुम्हें मिल भी रही हो, तो ऐसा आशीर्वाद दूंगा
कि कभी न मिले। क्योंकि व्यर्थ के जाल में तुम उलझ जाओगे। तुम और कष्ट में पड़ जाओगे।
निराशा आ रही है, अंगीकार कर लो। हृदय खुला छोड़ दो। दरवाजे बंद मत करो। स्वागत करो, बंदनवार बांधो। कहो कि आओ, विराजो!
आशा के साथ बहुत दिन रह लिए, कुछ पाया नहीं। अब निराशा से भी दोस्ती करके देखो। कौन जाने, जो आशा से नहीं हुआ, वह निराशा से हो जाए! और मैं तुमसे कहता हूंः होता है। जो आशा से नहीं होता, वह निराशा से होता है। जहां आशा हार जाती है, वहां निराशा जीत जाती है।
और क्या है जीत निराशा की? अगर तुम परिपूर्ण मन से निराशा को स्वीकार
कर लो, उसका मतलब हैः अब और आशा नहीं करोगे, तो उसी क्षण निराशा मर गयी। निराशा के प्राण आशा में हैं।
तुमने कहानियां पढ़ीं न--बच्चों की कहानियां--कि राजा अपने प्राण तोते में रख देता है। फिर राजा को तुम कितना ही मारो, नहीं मरता; जब तक तोते को न मारो। अब तोते को कौन सोचे कि तोते में राजा के प्राण हैं। पता नहीं कहां रखे हैं? तोते में रखे कि मैना में रखे? किसमें रखे, कहां रखे? कुछ पता नहीं! लेकिन जब तक तुम तोते को न मारो, तब तक राजा न मरेगा।
ऐसे ही निराशा जीती है, आशा के सहारे। निराशा ने अपने प्राण आशा में रखे हैं। जब आशा की गरदन घुट जाएगी, तुम अचानक पाओगेः इधर आशा मरी, उधर निराशा की लाश पड़ी है।
तुम स्वागत करो। तुम्हारे स्वागत से आशा मर जाएगी। पूरे हृदय से स्वागत करो। निराशा आ रही है, आने दो। धन्यभागी हो तुम! पूरी तरह आ जाने दो। डूब जाओ निराशा में। उसी डूबने में तुम पाओगेः उबर गए। अचानक तुम बाहर आओगे और तुम पाओगेः आशा भी गयी, निराशा भी गयी। तुम मुक्त हुए।
तुम पूछते होः "मुझे आशा दें, मुझे सहारा दें।"
सहारों ने ही तो तुम्हें मारा है। सहारों की वजह से ही तो तुम लंगड़े
हो गए। बैसाखियां लेकर चल रहे हो!
यहां तो काम है यही कि तुम्हारी बैसाखियां छीन ली जाएं। बैसाखियां जब पहली दफे छीनी जाती हैं, तो आदमी गिर ही पड़ेगा। वह भी मुझे पता है। क्योंकि जिंदगी हो गयी बैसाखियों पर चलते। कोई ने गीता की बैसाखी ली है। किसी ने कुरान की, किसी ने बाइबिल की, किसी ने कोई और बैसाखी ले रखी है। सब ने अपनी- अपनी बैसाखियां ले रखी हैं। सब अपनी-अपनी बैसाखियों पर लटके हैं! भूल ही गए कि अपने पास पैर भी हैं!

जैसे बच्चे पैदा हों, तभी से बैसाखियां पकड़ा दो, ऐसा हुआ है। सभी को बैसाखियां पकड़ा दी गयीं। बच्चा पैदा हुआ, हिंदू बना दिया गया; मुसलमान बना दिया गया; ईसाई बना दिया गया। बच्चा इधर पैदा हुआ कि जल्दी से बैसाखी पकड़ाते हैं हम। हम उसको चलने नहीं देते अपने पैर पर। हम उसे धर्म को स्वयं नहीं खोजने देते। हम उधार, झूठा धर्म दे देते हैं।
सब धर्म, जो दूसरा देता है, झूठा होता है। अपने से खोजा गया सच होता है। निजता से उभरा हुआ सच होता है। स्वयं के भीतर जो पकता है, वही सच होता है।
इसलिए तो तुम झूठे हिंदू, झूठे मुसलमान, झूठे सिक्ख, झूठे ईसाई, झूठे जैन देखोगे। ये सब झूठे हैं। इनका कोई कसूर नहीं है। इनका कसूर यही है कि इन्होंने बैसाखियों को स्वीकार कर लिया। इनको बैसाखियां पकड़ा दी गयीं। तुम जरा किसी बच्चे के साथ यह प्रयोग करके देखो। जैसे ही बच्चा पैदा हो, जल्दी से छोटी सी बैसाखियां उसे पकड़ा दो। पहले बैसाखियों से खेलने दो, ताकि उनसे परिचित हो जाए। फिर जब थोड़ा घसिटने लगे, तब बैसाखियों पर सम्हाल दो। फिर धीरे-धीरे उसको बताओ कि इन्हीं पर चलना चाहिए। यही हमारा कुलधर्म है! हम सदा बैसाखियों पर चले हैं। रघुकुल रीति सदा चली आयी! यह हमारे बाप-दादे भी ऐसे चले; उनके बाप-दादे भी ऐसे चले; तुम भी ऐसे ही चलना। इससे कभी इधर-उधर मत जाना। ये बैसाखियां हमारी प्रतिष्ठा हैं। और बैसाखियों पर ढंग से चलने का नाम ही चलना है। और बैसाखियों पर जो अपने को प्रसादपूर्वक सम्हाल लेता है, वही कुशल है, वही निपुण है। ऐसी बातें सिखाओ।
तो बच्चा बेचारा तुम्हें देखता ही है बैसाखियों पर चलते। उसे ख्याल
भी नहीं आएगा कि बिना बैसाखियों के कोई चल सकता है। मां भी चलती है; पिता भी चलते हैं; बैसाखियों पर भाई भी चलते हैं। वह भी चलेगा। उसके पैर पंगु हो जाएंगे। उसे याद ही न आएगी कभी कि मैं पैर लेकर पैदा हुआ था।
और फिर अगर एक दिन अचानक कोई बैसाखी छीन ले, तो क्या तुम सोचते हो, एकदम चल पाएगा? नहीं; गिर जाएगा। मगर उसी गिरने से उठना है। बैसाखियां अगर छीन ही ली जाएं, तो आज नहीं कल घिसटेगा; जैसा घिसटा होता बचपन में, वह चालीस साल, पचास साल बाद घिसटेगा। मगर वह शुभ है घिसटना।
बैसाखी पर चलने की बजाय, घिसटना शुभ है। क्योंकि घसिटने में कम से कम स्वयं की निजता तो है। घुटने छिलेंगे। तुम पर नाराज भी होगा कि तुमने बैसाखियां क्यों छीन लीं! सब मजे से चल रहा था। फिर उठेगा। कई बार गिरेगा, घुटने टूटेंगे। लेकिन एक दिन पैर पुनरुज्जीवित हो उठेंगे। फिर उनमें ऊर्जा बहेगी। जैसे कि बहनी चाहिए थी पहले ही। नहीं बह पायी। क्योंकि मां- बाप, समाज, संस्कार--इन सब ने मार डाला।
यहां मेरा काम यही है कि तुम्हारी बैसाखियां छीन लूं। इसलिए जिनको बैसाखियों से बहुत मोह है, वे यहां नहीं आते। जिनको बैसाखियों से बहुत मोह है, वे तो मुझे शत्रु मानते हैं। जो बैसाखियों को ही अपने पैर समझ बैठे हैं, वे तो कहते हैंः मैं बहुत खतरनाक आदमी हूं। मैं लोगों को लंगड़ा बना रहा हूं। क्योंकि बैसाखियां पैर हैं। मैं बैसाखियां छीन लेता हूं, लोग लंगड़े हो जाते हैं।
जिन्होंने चश्मों को आंख समझ रखा है, वे कहते हैं, मैं लोगों को अंधा बना रहा हूं, क्योंकि मैं उनके चश्मे छीन रहा हूं। जिन्होंने शास्त्रों को सत्य समझ रखा है, वे सोचते हैं कि मैं लोगों को भटका रहा हूं, क्योंकि उनके शास्त्र छीन रहा हूं। जिनमें हिम्मत है, वही मुझे समझ पाएंगे।
आशा मत मांगो। सहारा मत मांगो। मैं तुम्हें तुम्हारे सहारे पर खड़ा करना चाहता हूं। और इसके लिए जरूरी है कि तुम सब तरह से बेसहारा हो जाओ, तभी तुम खड़े हो पाओगे। नहीं तो तुम खड़े नहीं हो पाओगे।
और एक न एक दिन निराशा आएगी ही, क्योंकि वह आशा का परिणाम है। आ गयी-- अच्छा।
गगन से उतर आयी शाम
अंधेरा वन हुआ
अनचीन्ही पीड़ा से
भर गया

कोना-कोना
अंजुरी से झर गया
खिला-खिला
रूप सलोना
सुधियों ने भेजे पैगाम
सबेरा तन हुआ
कमरे में घुस आयी शाम
खड़े-खड़े गुमसुम से
सोचते से
गलियारे
गंधायित दर्पण के
धूप-रंग
धुले सारे
होने लगे स्वयं नीलाभ
अंधेरा मन हुआ
कमरे में घुस आयी शाम
एक न एक दिन शाम आएगी। जितने जल्दी आ जाए, उतना अच्छा। क्योंकि ये सबेरे जो तुम्हें दिखायी पड़ रहे हैं आशाओं के, सब झूठे सबेरे हैं। ये सबेरे, जिनमें तुम भरमे हो, भटके हो, सब मृग-मरीचिकाएं हैं।
तुम्हारे जीवन की संध्या आ गयी; निराशा आ गयी। तुम्हारे अंतस कक्ष में शाम घुस आयी। डरो मत। वे झूठे सबेरे बुझ जाएं, यही शुभ है। उनके बुझने के बाद तुम अचानक पाओगे, शाम भी बुझ गयी।
तुम्हें अड़चन होगी, क्योंकि अब तक तुम आशाओं के सहारे चले। आशाओं ने उत्साह दिया, उमंग दी। आशाओं ने सपने दिए, गीत दिए। आशाओं के कारण तुम्हारे जीवन में अर्थ रहा। अब तुम अचानक पाओगेः व्यर्थ हो गए। अब तुम अचानक पाओगेः सब अर्थ खो गया, रिक्त-रिक्त, खाली-खाली।
ऐसे ही जैसे कोई पत्थर को हीरा समझता था; मुट्ठी भरी थी। अब आज अचानक दिखा कि पत्थर है; मुट्ठी खाली हो गयी। और जिंदगीभर मुट्ठी भरी रही और आज खाली हो गयी! बहुत खालीपन लगेगा। बहुत रिक्तता लगेगी।
मैं न पाती आज कुछ गा।
गान मेरे
जो कभी तट
आस्मां का चूमते थे
मौन का
कण-कण मुखर करते
हवा में
झूमते थे
जो कभी थे जागरण
जग में जगाते थे सबेरा
बन गए हैं आज वे ही
विगत सपनों का बसेरा
हो सका साकार कब संसार
सपनों का किसी का?
आज सपनों के सहारे,
मैं न पाती विश्व में छा। मैं न पाती आज कुछ गा।
सांद्र तम है
दूर तक
फैला हुआ है
पथ विराना
आंधियों के बीच जलते
दीप का कब क्या
ठिकाना!

सजल सांसों की डगर पर
चल रही है जिंदगानी
और तारों में न जाने
बोलती किसकी कहानी?
आज तूफानी अमा में
जब न कोई साथ मेरे
खोजते फिरते न जाने,
अब सहारा प्राण किसका?
मैं न पाती आज कुछ गा।
गान मेरे
जो कभी तट
आस्मां का चूमते थे
मौन का
कण-कण मुखर करते
हवा में
झूमते थे
जो कभी थे जागरण
जग में जगाते थे सबेरा
बन गए हैं आज वे ही
विगत सपनों का बसेरा
हो सका साकार कब संसार
सपनों का किसी का?
आज सपनों के सहारे,
मैं न पाती विश्व में छा।
मैं न पाती आज कुछ गा।
ऐसी चित्त की दशा कष्टकर लगती हैः जब तुम्हारे सब गान सूख जाते हैं;
जब तुममें नयी पत्तियां नहीं उमगतीं, नए फूल नहीं खिलते। सूखे ठूंठ जैसे तुम लगोगे। तुम सहारा खोजोगे। तुम तलाश करोगेः कहीं कोई आशा मिल जाए; कहीं कोई सांत्वना मिल जाए। कहीं कोई फिर से जगा दे टूट गयी आशाओं को। फिर से संवार दे बिसर गए सपनों को। फिर से गति दे दे गीतों को। फिर से कंठ में बोल आ जाएं। फिर तुम झूमने लगो।
नहीं; यह मैं न करूंगा। तुम ऐसे ही काफी इस भ्रांति में भटक लिए। कितने-कितने तो जन्मों से तुम आशाओं के सहारे चल रहे हो, अब निराशा का सहारा लो। कितने दिन तक तो तुमने सांत्वनाएं खोजीं, अब सांत्वना मत खोजो।
यदि अर्थहीनता है, तो अर्थहीनता सही। अगर सूखा-रूखापन है, तो सूखा-रूखापन सही। अब तुम स्वीकार करो, जीवन जैसा है। अब और अस्वीकार मत करो।
अस्वीकार कर-करके ही तुमने जीवन को झूठ किया है। अब जीवन की सचाई जैसी है, वैसी ही अंगीकार हो। उसी अंगीकार में से नए का जन्म होगा।
और यह नयी आशा नहीं होगी; यह सत्य होगा। यह तुम्हारा सपना नहीं होगा।
यह सत्य होगा। आशा-निराशा दोनों चली जाएंगी और तुम्हारे भीतर वही शेष रह जाएगा, जो वस्तुतः है।
और उसी में आनंद है, उसी में मुक्ति है।

पांचवां प्रश्नः भगवान बुद्ध ने महाप्राज्ञ को तृष्णारहित, भयरहित
और परिग्रहरहित कहकर यह भी कहा है कि वह निरुक्त और पद का जानकार है, तथा अक्षरों को पहले-पीछे रखना जानता है। निरुक्त पद और अक्षर-विन्यास से प्राज्ञ का क्या संबंध है? यह समझाने की अनुकंपा करें।

बुद्ध का वचन तुम्हें हैरानी में डालेगा, क्योंकि वस्तुतः कोई भी संबंध नहीं है।
शब्द के जानकार का, शब्द-विन्यास की कला को जानने वाले का सत्य से क्या संबंध है? और जो निरुक्त और पद का जानकार है, जो शास्त्रों का जानकार

है, जो शब्द की अंतरतम व्यवस्था को समझता है, जो व्याकरण और भाषा का राज समझता है, उसका अंतः-प्रज्ञा से क्या संबंध है?
बुद्ध बड़ी अजीब सी बात कहते हैं! यह तो ठीक है कि प्रज्ञावान तृष्णारहित होगा, प्रज्ञावान भयरहित होगा, प्रज्ञावान परिग्रहरहित होगा। यह बात बिल्कुल ठीक है। ये गुणवत्ताएं समझ में आती हैं। लेकिन निरुक्त और पद का जानकार है--इसका क्या अर्थ?
अगर तुम बौद्ध पंडितों से पूछो, तो वे गलत अर्थ सदियों से करते रहे हैं, वही तुम्हें बताएंगे। वे यही अर्थ करते रहे हैंः शास्त्र की जानकारी, व्याकरण की जानकारी, भाषा की जानकारी।
ऐसा हुआ, स्वामी राम अमरीका से लौटे। अमरीका में उन्हें बड़ा सम्मान मिला। सम्मान-योग्य व्यक्ति थे। बड़े प्यारे व्यक्ति थे। बड़ी आभा थी। जब अमरीका से लौटे, तो स्वभावतः उन्होंने सोचाः जब पराए इतना समझे, तो अपने तो कितना न समझेंगे!
मगर वहीं उनसे भूल हो गयी। वहीं उनसे चूक हो गयी। उन्हें याद न रहा कि जीसस ने कहा है कि पैगंबर की अपने गांव में पूजा नहीं होती।
वे काशी में आकर ठहरे। स्वभावतः सोचा, इतने लोगों को जगाकर लौटा हूं,
तो सबसे पहले काशी ही जाना चाहिए। काशी पंडितों की नगरी! उनका पहला प्रवचन काशी में हुआ।
वे संस्कृत के ज्ञाता नहीं थे। अरबी और फारसी के ज्ञाता थे, मगर संस्कृत के ज्ञाता नहीं थे। और उनकी जो जीवन-प्रेरणा थी, वह सूफी मत से आयी थी। वस्तुतः उपनिषद से नहीं आयी थी। हालांकि बात तो एक ही है। कहां से आती है, इससे क्या फर्क पड़ता है! सूफियों ने उनके हृदय का गान छेड़ा था। उसी गान को समझकर उपनिषद भी समझ में आ गए, वेद भी समझ में आ गए। मगर जो पहली तरंग उठी थी, वह सूफियाना थी।
काशी में जो होना था, वह हुआ। बोले। बीच ही में थे कि एक पंडित, काशी के बड़े पंडित, खड़े हो गए। उन्होंने पूछा कि एक सवाल पूछना है।
स्वामी राम थोड़े चौंके। वे बीच में ही हैं अभी। यह कोई सवाल पूछने की बात नहीं। पूरा हो जाने देते! लेकिन बड़े सरल और सज्जन व्यक्ति थे। उन्होंने कहाः ठीक है। आपका सवाल? पंडित ने जो सवाल पूछा, वह यह थाः आप संस्कृत जानते हैं? व्याकरण जानते हैं? निरुक्त और पद का ज्ञान है? स्वामी राम ने कहाः संस्कृत का मैं ज्ञाता नहीं हूं। तो हंसा पंडित
और पंडित के साथ सारे और पंडित हंसे।
वह काशी की विद्वत-मंडली थी, जो सुनने आयी थी। सुनने शायद कम आयी थी, परीक्षा करने आयी थी। अमरीका में जो प्रतिष्ठा मिली थी, उससे उनको ईर्ष्या पकड़ी होगी, कष्ट हुआ होगा--कि यह कौन महाज्ञानी, जिसको हम जानते भी नहीं! जो काशी में पढ़ा भी नहीं। यह महाज्ञानी हो कैसे गया?
तो सारी भीड़ जो इकट्ठी थी पंडितों की, ब्राह्मणों की, वह भी हंसी। और उन्होंने कहा, उस पंडित ने कहा कि जब आपको संस्कृत का ज्ञान ही नहीं, तो ब्रह्मज्ञान कैसे होगा? पहले संस्कृत सीखो महाराज! फिर ब्रह्मज्ञान की चर्चा करना!
यही पंडितों की सदा से धारणा रही है। जैसे ब्रह्मज्ञान के लिए संस्कृत कोई जरूरी है! जैसे जो संस्कृत नहीं जानते, वे ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकते।
तो फिर जीसस ब्रह्मज्ञानी नहीं थे? और बुद्ध भी नहीं थे? और महावीर भी नहीं थे! नानक भी नहीं थे! कबीर भी नहीं थे! लाओत्सू भी नहीं थे! क्योंकि कोई भी संस्कृत के ज्ञाता नहीं हैं।
यह तो मूढ़तापूर्ण बात है। यह वैसे ही मूढ़तापूर्ण है, जैसे कोई कहेः अरबी को जाने बिना कोई परमात्मा को कैसे जानेगा? तो फिर मोहम्मद ही जान सकते हैं। फिर कृष्ण चूक गए। फिर राम चूक गए।
जैसे कोई कहे कि बिना हिब्रू को जाने कोई कैसे परमात्मा को जान सकता है? तो फिर जीसस के अलावा सब चूक गए।
यह बात मूढ़तापूर्ण है। लेकिन सभी को यह अहंकार पकड़ता है।

संस्कृत को मानने वाले कहते हैंः संस्कृत देववाणी है। बाकी सब भाषाएं आदमियों की। परमात्मा की भाषा--संस्कृत!
परमात्मा की भाषा मौन है। और कोई भाषा परमात्मा की नहीं है। सब भाषाएं आदमियों की हैं--संस्कृत हो, कि अरबी हो, कि पाली हो, कि प्राकृत हो--सब भाषाएं आदमियों की हैं। भाषा की जरूरत आदमी को है, परमात्मा को भाषा की जरूरत नहीं है। परमात्मा मौन है।
जो मौन को उपलब्ध होता है, वही उसको उपलब्ध हो जाता है। फिर तुम फारसी जानकर मौन को उपलब्ध हुए, कि संस्कृत जानकर मौन को उपलब्ध हुए--इससे क्या फर्क पड़ता है!
असली सवाल यह है कि मौन को उपलब्ध हुए। संस्कृत बाहर फेंकी, कि प्राकृत बाहर फेंकी, कि अंग्रेजी बाहर फेंकी, कि जर्मन बाहर फेंकी--इससे क्या फर्क पड़ता है? तुम शून्य हो गए, शांत हो गए--यही बात असली है। रामतीर्थ की आंखों में तो आंसू आ गए यह बात सुनकर कि संस्कृत को जाने बिना कोई ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकता है। यह तो हद्द मूढ़ता की बात हो गयी। लेकिन इस बुद्ध वचन का यही अर्थ बौद्ध पंडित करते रहे हैं। क्योंकि
इस वचन में बौद्ध पंडितों के अहंकार को बड़ा सहारा मिल गया। वे निरुक्त के जानकार, पद के जानकार, और अक्षरों को पहले-पीछे रखना जानते हैं। कौन सा अक्षर कहां रखा जाना चाहिए, उसकी ठीक-ठीक जगह जानते हैं। तो इससे तो उनको एक बात पक्की हो गयी कि पांडित्य के बिना कोई प्रज्ञा को उपलब्ध नहीं होता।
हालांकि पंडित शब्द भी प्रज्ञा शब्द से ही बनता है। लेकिन फिर उसके अर्थ विकृत हो गए हैं। पंडित वह, जो शास्त्र का जानकार है। प्रज्ञावान वह, जो सत्य का जानकार है।
फिर बुद्ध ने यह वचन क्यों कहा? मैं इसका दूसरा ही अर्थ करता हूं। मेरा अर्थ ऐसा है कि भाषा को जो ठीक से जान लेगा, वही भाषा से मुक्त होता है। जो ठीक से शब्दों के जाल को पहचान लेगा, वही निःशब्द में जा सकता है। क्योंकि शब्दों के पार जाना है, शब्दों को बिना जाने शब्दों के पार जाने में अड़चन होगी। जो व्यक्ति शास्त्रों को ठीक से जान लेता है, उसके लिए शास्त्र व्यर्थ हो जाते हैं। यही शास्त्र को जानने का लाभ है।
इसलिए शास्त्रों पर मैं तुम्हारे सामने बोलता हूं, ताकि तुम ठीक से इन्हें जान लो; उसी जानने में तुम मुक्त हो जाओगे।
इसलिए बुद्ध ने कहा कि मेरा बेटा राहुल शास्त्र का जानकार है। और शास्त्र का जानकार वही है, जो शास्त्र के पार हो जाए। जो अभी शास्त्र में ही उलझा रहे, उसने अभी ठीक से जाना नहीं। क्योंकि सभी शास्त्र यही कहते हैं कि शास्त्र से नहीं मिल सकता।
अगोचर, अदृश्य, शब्दातीत है सत्य--सभी शास्त्र यही कहते हैं। उपनिषद यही कहते हैं; वेद यही कहते हैं; कुरान यही कहती है; बाइबिल यही कहती है। सभी शास्त्र यही कहते हैं कि तुम्हें शब्द से मुक्त होना पड़ेगा। क्योंकि वह अनिर्वचनीय है, अव्याख्य है। न उसकी कोई परिभाषा है, न कोई व्याख्या है।
तुम्हें सारे सिद्धांत छोड़ देने होंगे। तुम्हें बिल्कुल ही शांत हो जाना पड़ेगा। सिद्धांत की सब धूल झाड़ देनी होगी। जब न तुम हिंदू होओगे, न मुसलमान, न ईसाई, न तुम्हारे भीतर कुरान, न वेद, न बाइबिल--तब तुम्हारे भीतर असली वेद, असली कुरान, असली बाइबिल जगेगी। तुम्हारा वेद जगेगा; तुम्हारी बाइबिल जगेगी; तुम्हारी कुरान जगेगी।
इसलिए बुद्ध ने कहा कि मेरा बेटा निरुक्त और पद का जानकार है, तुम उसे धोखा न दे सकोगे।
कहते हैंः शैतान भी शास्त्र के उल्लेख कर सकता है।
बुद्ध यही कह रहे हैं कि मेरे बेटे को मार! तू उलझा न सकेगा। मेरा बेटा शास्त्र का जानकार है। तू शास्त्र के भी उल्लेख कर, तो भी तू उसे उलझा न सकेगा। मेरा बेटा अज्ञान के तो पार गया है, पांडित्य के भी पार गया है।
अज्ञान के पार होना--पहला चरण; फिर ज्ञान के पार होना--दूसरा चरण। और
दो ही कदम में परमात्मा की यात्रा पूरी हो जाती है।

और फिर बुद्ध ने यह भी कहा कि वह अक्षरों को आगे-पीछे रखना जानता है।
यह और अजीब बात! अक्षरों को आगे-पीछे रखने से क्या होता है? यह बुद्ध ने क्यों कहा!
यह सिर्फ एक मुहावरा है। इस मुहावरे का अर्थ होता हैः मेरा बेटा कवि है। अक्षरों को आगे-पीछे रखना कवि की कुशलता है। कवि ही जानता है, अक्षरों को कहां रखना है। कवि ही उनको आगे-पीछे रखकर उनमें स्वर और छंद पैदा कर देता है। कवि ही शब्दों का कलाकार है।
जैसे चित्रकार रंगों को जानता है, और मूर्तिकार छैनी और रूप को जानता है, वैसे कवि शब्दों की भाव-भंगिमा जानता है, और उन्हें आगे-पीछे रखना जानता है। उनके विन्यास से काव्य का जन्म होता है।
बुद्ध ने इतना ही कहा कि मेरा बेटा कवि है। अब तुम समझो कि कवि का क्या अर्थ होता है।
पुरानी भाषा में, पुराने शास्त्रों में कवि और ऋषि में कोई भेद नहीं किया गया है। कवि और ऋषि एक ही अवस्था के नाम हैं। थोड़ा सा फर्क है, इसलिए दो शब्द उपयोग किए हैं।
ऋषि उसको कहते हैंः जिसने पूरा-पूरा जान लिया। कवि उसको कहते हैंः जिसे झलकें मिलीं। कवि भी किन्हीं-किन्हीं अवस्थाओं में ऋषि हो जाता है। जैसे रवींद्रनाथ गीतांजलि को लिखते समय ऋषि हो गए हैं; कवि नहीं हैं। गीतांजलि ऐसे ही पवित्र है, जैसे उपनिषद। मगर रवींद्रनाथ की सभी कविताएं ऐसी नहीं हैं। कुछ कविताओं में वे कवि हैं; भूमि पर हैं। कुछ कविताओं में आकाश में उड़ लेते हैं।
इसलिए तुम कभी ख्याल रखना, कभी-कभी ऐसा होता हैः तुम किसी की कविता पढ़कर एकदम आंदोलित हो उठते हो। मगर कवि को खोजने मत निकल जाना! नहीं तो कहीं बैठे होंगे होटल में, बीड़ी पी रहे होंगे। और तब तुम एकदम चौंकोगे कि यह क्या हुआ! कविता तो ऐसी ऊंची थी कि एक क्षण को ऐसा लगा कि परमात्मा के पास उड़ान भरी है। एक क्षण तो ऐसा लगा कि प्रेम का द्वार खुला। और ये महाराज! आम आदमी से भी गए-बीते मालूम पड़ते हैं! हो सकता है ये गाली बक रहे हों, झगड़ा-फसाद कर रहे हों। या शराब पीकर किसी नाली में पड़े हों।
कविता का सौंदर्य देखकर कवि की तलाश में मत निकल जाना। नहीं तो अक्सर बड़ा विषाद होगा। ये सज्जन जो नाली में पड़े हैं शराब पीकर, गाली-गलौज बक रहे हैं, इनकी क्षमता इतनी ही है कि कभी-कभी ये छलांग लगा लेते हैं; कभी किसी क्षण में ये उठ जाते हैं। मगर वह उठना सदा नहीं टिकता। वह इनकी अंतर्दशा नहीं है। बस, क्षणभर को, जैसे बिजली कौंधती है।
कवि ऐसे, जैसे बिजली कौंधती है। ऋषि ऐसे, जैसे सूरज निकला।
तो बुद्ध कहते हैंः मेरा बेटा यद्यपि अभी ऋषि नहीं हुआ है, लेकिन कवि है। उसको झलकें मिलने लगी हैं। यह अर्हत दशा के करीब पहुंच रहा है। इसको धीरे-धीरे बिजलियां कौंधने लगी हैं। सूरज भी निकलने के करीब है, जल्दी ही निकलेगा। लेकिन एकदम अंधेरे में नहीं है।
तो हे मार! हे शैतान! तू यह मत समझना कि इसे धोखा दे लेगा। मेरे बेटे ने छलांगें लगानी शुरू कर दी हैं। यह कभी-कभी आकाश में उड़ने लगा है। इसने आकाश देख लिया है। अब तू इसे लुभा न सकेगा। और इसने अपने भीतर के अमृत के भी कुछ स्वाद ले लिए हैं। इसलिए तू मृत्यु से इसे डरा भी न सकेगा। इसकी समाधि यद्यपि अभी पूरी नहीं हुई, यह ऋषि नहीं हुआ अभी, लेकिन कवि तो निश्चित हो गया है।
यह सिर्फ मुहावरा है। यह कहना कि जो शब्दों को आगे-पीछे रखना जानता है, यह सिर्फ मुहावरा है, कवि को प्रगट करने का एक ढंग है।
तो दो बातें उन्होंने कहींः पहली बात यह कही कि यह शास्त्रों का जानकार है, और जानकारी के कारण शास्त्रों से मुक्त हो गया है। और दूसरी बात कही कि यह कवि है, इसे उस परम की झलकें आने लगीं। बूंदा-बांदी होने लगी है। अभी बाढ़ नहीं आ गयी, मगर शुरुआत हो गयी है। जल्दी ही बाढ़ भी आएगी।
अब तू इसे डिगा न सकेगा। न तो काम में तू इसे उत्तेजित कर सकता है, और न
भय से। न जीवन में इसका आकर्षण रह गया है और न मृत्यु में इसे कोई भय है।

मेरा बेटा अमृत के द्वार पर खड़ा है, देहली पर खड़ा है। मंदिर में प्रवेश के बिल्कुल करीब है।

आखिरी प्रश्नः मैं या तो अतीत की स्मृतियों में डूबा रहता हूं या भविष्य की कल्पनाओं में। वर्तमान तो बस, मेरे लिए एक कोरा शब्द है। मैं क्या करूं?

ऐसी दशा तुम्हारी ही नहीं, सभी की है। यही तो मन का स्वरूप है।
मन या तो अतीत में होता है या भविष्य में। मन वर्तमान में हो ही नहीं सकता। इसलिए मन के लिए वर्तमान शब्द कोरा शब्द है।
तुम जरा जांचना, जब भी तुम सोच रहे हो, तो या तो अतीत की सोचोगे--जो हो चुका, बीत चुका। या उसका सोचोगे, जो होने वाला है। लेकिन जो है, उसको सोचने का उपाय कहां! वह तो है ही। सोचने की गुंजाइश कहां? जो है, है। तुम्हारे सोचने से क्या फर्क पड़ता है? और तुमने सोचा कि तुम चूक जाओगे। क्योंकि सोचने से व्यवधान पड़ेगा।
तुम पूछते होः "मैं क्या करूं?"
दर्पण बनो।
मन रहे, तो अतीत और भविष्य में डोलते रहोगे। मन ऐसे है, जैसे घड़ी का पेंडुलम। इस कोने से उस कोने डोलता रहता है। बीच में नहीं ठहरता।
दर्पण बनो। दर्पण ऐसे है, जैसे पेंडुलम बीच में ठहर गया। दर्पण में वह दिखायी पड़ता है, जो है। और मन में वह दिखायी पड़ता है--जो था, या जो होगा। दोनों नहीं हैं। जो था, वह गया। जो होगा, अभी हुआ नहीं। इसलिए मन तुम्हें भरमाता है। मन माया है।
दर्पण बनो। और दर्पण बनने की कला ही ध्यान है या साक्षी। देखो। जब मन में अतीत के विचार चलते हों, तब शांत खड़े होकर देखते रहो--कि यह अतीत जा रहा है। तुम उसके साथ जुड़ो मत। तुम धारा में कूदो मत। तुम तादात्म्य मत करो। तुम पार किनारे पर खड़े रहो।
नदी बह रही है, तुम किनारे पर बैठ जाओ पालथी मारकर, आसन लगाकर। देखते रहोः यह मन में अतीत बह रहा है। फिर ढंग बदलता है। नदी मोड़ लेती है। यह मन में भविष्य बह रहा है। तुम देखते रहो। तुम सिर्फ द्रष्टा रहो। उसी द्रष्टा में तुम दर्पण हो जाओगे।
और तुम चकित होओगेः जैसे-जैसे तुम दर्पण बनने लगे, वैसे-वैसे धारा धीमी होने लगी। जैसे-जैसे तुम्हारा साक्षी जगेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि नदी की धारा, जो पहले ऐसी थी कि जैसे बरसात की नदी हो, वह ग्रीष्म की नदी हो गयी। सूखने लगी। जलधार क्षीण होने लगी। जो पहले तुम्हें डुबा देती, अब घुटने-घुटने है। तुम मजे से पार हो सकते हो।
और तुम जागते रहो, और तुम जागते रहो, और तुम देखते रहो, और एक दिन तुम पाओगेः धारा नहीं है। और जिस दिन धारा नहीं है, उसी दिन परमात्मा है।
ओरे ओ महत्वाकांक्षी मन!
आकाश से उतर
धरती पर आ
माटी की गंधभरी आत्मा को
दुलरा
बिका नहीं करते हैं सपने बाजार में
ओढ़ा हुआ सूनापन
उतारकर टांग दे
खूंटी पर
चिंतन की कैंची से
बखिया न काट तू
दिनों, महीनों, वर्षों की केवल यह वर्तमान
जिसमें तू जीता है

अपना है
इधर-उधर न झांक
कुंठाओं की संकरी गलियों से निकल
राजमार्ग पर आ
ओरे मन!
दर्पण बन!
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ नौ प्रवचन

धर्म का सार--बांटना

हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अोंं"व अत्तनं।। 293।।

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं।। 294।।

तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं।। 295।।

तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं।। 296।।

तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं।। 297।।

धर्म का सार है--दान। दान से अर्थः धन का ही दान नहीं है; दान से अर्थ हैः जो है जिसके पास--दे, बांटे; रोके नहीं। ज्ञान है--तो ज्ञान दे। शक्ति है--तो शक्ति दे। गीत है--तो गीत बांटे। क्योंकि बांटने से ही आत्मा उपलब्ध होती है।
जो जितना रोकता है, उतना ही रुक जाता है। रोकने में रुक जाना है; देने में फैलाव है। जो जितना बांटता है, उतना फैलता चला जाता है। जो जितना बांटता है, उतना बड़ा हो जाता है। जो सब बांट देता है, जो भीतर शून्य हो जाता है, वही परमात्मा के निवास के योग्य हो जाता है।
तो दान की परिसीमा है--शून्यता; मेरा कुछ भी न बचे; मैं भी न बचूं मेरा। जिससे पाया है, सब उसी स्रोत को वापस लौट जाए। जैसे गंगा अपने को पूरा सागर में उंडेल देती है; उसी से पाया, उसी को लौटा दिया। त्वदीयं वस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये।
जो मिला है, वह तुम्हारा नहीं है। वह किसी का भी नहीं है। है तो परमात्मा का है। इस परमात्मा की वस्तु पर मेरे का आरोपण लोभ है। लोभ पाप है। इस परमात्मा की वस्तु पर मेरे का आरोपण नहीं--दान है। दान पुण्य है।
जो हो जिसके पास--बांटता चले, लुटाता चले।
जीसस का प्रसिद्ध वचन हैः जो देगा, उसे और मिलेगा। जो बांटेगा, वह और पाने का हकदार हो जाता है। जो रोक लेता है, सड़ जाता है।
जैसे कोई कुएं से पानी न भरे इस डर से कि कहीं पानी खर्च न हो जाए। कुएं को बंद करके ताला लगाकर रख दे कि कहीं पानी मेरा चुक न जाए। कभी ग्रीष्म आए, अड़चन हो, अकाल पड़े तो मेरा पानी चुक न जाए। रोककर रखूं, सम्हालकर रखूं; तिजोड़ी में रख ले कुएं को। उसका कुआं सड़ जाएगा। उसमें जीवन की धार नहीं बहेगी। उसका पानी गंदा होता रहेगा। धीरे-धीरे उसका पानी विषाक्त हो जाएगा, पीने योग्य नहीं रह जाएगा।
कुएं का जल निर्मल होता, ताजा होता, क्योंकि रोज-रोज पानी भरा जाता। कुआं रोज-रोज लुटाता है। और जब कुआं लुटाता है, तो नए झरने उसे भरते चले जाते हैं। तो कुआं जवान रहता है; बूढ़ा नहीं होता। सड़ता नहीं; गलता नहीं।
गंदा नहीं होता।
नदी बहती रहती है, तो स्वच्छ, उज्ज्वल रहती है। जहां नदी अटकी, वहीं सड़ांध है। जीवन की नदी के संबंध में भी यही सत्य है।
दान धर्म का मूल है। और ख्याल रखना, फिर दोहरा दूं। अक्सर तुमने सोच लिया है कि दान यानी धन का दान। क्योंकि हम धन के ऐसे दीवाने हैं कि हम संसार के संबंध में सोचते, तो धन के संबंध में सोचते। और धर्म के संबंध में सोचते हैं, तो भी धन के संबंध में सोचते हैं! हमारा धन पर ऐसा रुग्ण मोह है!

तो जब कोई कहता है--दान, तो तत्क्षण तुम्हें ख्याल आता हैः मेरे पास क्या है? शायद यह भी ख्याल आता हो कि ठीक है, दान होना चाहिए; कोई मुझे दे! मैंने सुना हैः एक धनपति गांव में था; कभी किसी को कुछ न दिया था। फिर
भी लोग जाते थे, क्योंकि वह सब से बड़ा धनपति था। शायद आज नहीं दिया, कल दे, परसों दे।
गांव में कोई गरीबों के लिए भोज का आयोजन हो रहा था। लोगों ने सोचाः इसमें तो दे देगा। अकाल पड़ा था। तो लोग गए। उस धनपति ने उनकी बातें सुनीं। उन्होंने कहा कि दान की बड़ी महिमा है। दान से ही व्यक्ति स्वर्ग जाते हैं; दान सीढ़ी है। उसे उन्होंने प्रसन्न देखा, खुला देखा, तो और दान की प्रशंसा की। आशा बंधी कि शायद आज कुछ देगा!
लेकिन आशा जल्दी ही निराशा में परिणत हो गयी। उस आदमी ने कहाः बिल्कुल ठीक! उस धनपति ने कहाः आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। कहाः चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूं। उन्होंने कहाः कहां साथ चलते हैं! कुछ दान दें। उसने कहाः नहीं, मैं भी साथ चलता हूं, ताकि लोगों को दान देने के लिए समझाएंगे। जब दान की इतनी महिमा है, तो मैं यहां बैठा नहीं रहूंगा, मैं भी चलूंगा तुम्हारे साथ। और लोगों को समझाऊंगा कि दान दो।
दान देने की बात जो करते हैं, हो सकता है, वे भी सिर्फ दान से बचने के लिए दान देने की बात कर रहे हों। यह धनपति जाने को राजी है! दान के प्रचार के लिए राजी है। यह कहता हैः जब ऐसी महत्वपूर्ण बात है, तो मैं भी प्रचार करूंगा। लेकिन देने का भाव नहीं उठता।
देने की हमारे भीतर भावना ही पैदा नहीं होती। हमने जन्मों-जन्मों से नहीं दिया है। हमने कुछ भी नहीं दिया है। हम सदा भिखमंगे हैं। हम सदा मांग रहे हैं। जब लोग कहते हैंः प्रेम, तब भी वे प्रेम मांगते हैं, देते नहीं। जो देता है, उसे तो बहुत मिलता है। उसे मांगना नहीं पड़ता। उसे हजार गुना मिलता है। लाख गुना मिलता है। करोड़ गुना मिलता है। लेकिन लोग कहते हैं कि कोई हमें प्रेम नहीं करता!
मेरे पास लोग रोज आते हैं, वे कहते हैंः क्या करें? जीवन में प्रेम नहीं मिलता! कैसे प्रेम मिले? शायद ही कोई आकर पूछता हो कि मैं प्रेम देना चाहता हूं, कोई लेने वाला नहीं मिलता।
अगर तुम प्रेम देना चाहो, तो लेने वाले तो बहुत मिलेंगे, क्योंकि सारे लोग प्रेम के भूखे हैं। और तुम दोगे, तो तुम्हें मिलेगा। दिए बिना किसी को नहीं मिलता।
लेकिन लोग मतलब भी अपने निकाल लेते हैं! अब दान की इतनी महिमा शास्त्रों ने कही है, इसका परिणाम यह हुआ कि पंडित-पुरोहितों ने दान का धंधा बना लिया। वे समझाने लगे लोगों को कि दान दो। शास्त्र का उन्होंने शोषण कर लिया। शास्त्र से भी मतलब की बात निकाल ली।
भिखमंगा भी रास्ते पर खड़ा होकर कहता है कि दान से बड़ा धर्म नहीं है।
दान दो। और अगर न दो, तो उसकी आंखों में तुम्हारे प्रति घृणा है।
भिखमंगा दान से जी रहा है। तुम्हारे साधु-संत भी दान से जी रहे हैं।
तुम्हारे पंडित-पुरोहित भी दान से जी रहे हैं। लेकिन सब चूक गए हैं बात।
दान का मतलब मांगना नहीं है। दान का मतलब देना है। तुम्हारे पास जो हो। धन न हो, तो फिकर छोड़ो। धन ही तो धन नहीं है; और भी तो धन हैं। प्रेम तो है। इतना निर्धन आदमी तो कोई भी नहीं है कि जिसके हृदय में प्रेम न हो। और प्रेम से बड़ा धन और क्या!
तुम एक गीत गा सकते हो, तो गीत ही गुनगुना दो। तुम बांसुरी बजा सकते हो, तो बांसुरी ही बजा दो। तुम नाच सकते हो, तो पैर में घूंघर बांध लो, नाचो। किसी के कान में तुम्हारे घूंघर की आवाज पड़ेगी--दान हुआ। तुम्हें कुछ बोध हुआ है; अपना बोध बांटो। तुम्हें कुछ समझ मिली है; अपनी समझ बांटो। तुम्हारे पास जो है... । और ऐसा कोई भी व्यक्ति जगत में नहीं है, जिसके पास कुछ भी न हो।
तुम राह पर पड़े कांटे तो बीन सकते हो! किसी के राह में पड़े कंकड़ तो हटा सकते हो! किसी के पास बैठकर हंस तो सकते हो। किसी रोते के आंसू तो पोंछ सकते हो।

एक आदमी रास्ते से गुजर रहा है, और एक भिखमंगे ने हाथ फैलाया। उस आदमी
ने अपनी जेबें तलाशीं। लेकिन कुछ था नहीं उसके पास। उसने भिखमंगे के हाथ में अपना हाथ रख दिया और कहाः भाई! मुझे क्षमा कर। मेरे पास अभी कुछ भी नहीं। कल जब आऊंगा तो जरूर कुछ लेकर आऊंगा।
उस भिखमंगे की आंखें गीली हो गयीं। उसने कहाः अब लाने की कोई जरूरत नहीं; जो देना था, तुमने दे दिया। तुमने मेरे हाथ में हाथ रखा, तुम पहले आदमी हो। तुमने मुझे भाई कहा; तुम मेरे पहले दाता हो। अब और कुछ की जरूरत नहीं। बस, मेरे पास दो घड़ी बैठ जाओ। यह हाथ मेरे हाथ में रहने दो। यह पहला हाथ है, जो मेरे हाथ में आया। धन देने वाले तो बहुत मिले हैं, प्रेम देने वाला कोई भी नहीं मिला। और भाई तो मुझे किसी ने कहा ही नहीं। यह शब्द कितना प्यारा है--वह भिखमंगा कहने लगा--इसमें कितना मधुरस है! तुमने मुझे सब दे दिया। कभी यहां से गुजरो, तो मेरे हाथ में हाथ देकर क्षणभर बैठ जाया करें। फिर कभी मुझे भाई कहकर पुकारना।
तुम्हारे पास जो हो। किसी को भाई कहकर तो पुकार सकते हो। इतने कृपण तो
मत हो जाओ कि किसी को भाई कहना मुश्किल हो जाए।
ईसाई फकीर हुआ--संत फ्रांसिस। वह वृक्षों को भी कहता था भाई। मछलियों
को कहता था बहन। चांद-तारों से दोस्ती करता था। पहाड़ों-नदियों से बात करता था। और तो उसके पास कुछ भी नहीं था; फकीर था। लेकिन इतना तो कर सकता था। जितना फ्रांसिस ने दिया, उतना दुनिया के करोड़ों का दान देने वालों ने भी नहीं दिया। यह सारी प्रकृति उसके दान से आह्लादित हो उठी थी। जिस वृक्ष पर फ्रांसिस ने हाथ रखकर कहा होगाः भाई! ...
ऐसे ही औपचारिक नहीं। क्योंकि वृक्षों से उपचार कौन निभाता है! आदमियों में शायद तुम उपचार भी निभाते हो; किसी से मतलब हो, काम हो, तो कहते होः भाई! कहते हैं न, कि जरूरत पड़े, तो आदमी गधे को भी बाप कह देता है! मगर भीतर तो जानता ही रहता है कि है तो गधा ही; यह काम पर पिताजी कहना पड़ रहा है! जरूरत पड़ती है, तो राजनेता के भी पैर तुम छू लेते हो, उसको भी महात्मा कह देते हो। हालांकि तुम जानते होः गधा तो गधा है! जरूरत पड़ी, तो बाप कहना पड़ रहा है। उपचार!
लेकिन वृक्ष से तो कोई उपचार निभाना नहीं है। चांद-तारे तो कोई शिकायत करेंगे नहीं। जब फ्रांसिस ने पक्षियों को, जानवरों को, वृक्षों को भाई कहकर पुकारा, यह अंतर्तम से उठी आवाज, यह प्रार्थना बन गयी, यह दान हो गया।
तो ख्याल रहेः धर्म का सार है दान। दान अर्थात देने की क्षमता। क्या दिया--इस पर जोर नहीं है। दिया--इस पर जोर है। और जिसने दिया, उसे बहुत मिला। और जिसे बहुत मिला, उसने फिर बहुत दिया। और ऐसे यहशृंखला बढ़ती ही चली जाती है। इसका फिर कोई अंत नहीं है। और जिसने सब दिया, उसने समग्र पा लिया। जो देकर शून्य हो गया, उस पर सारा अस्तित्व बरस उठता है; परमात्मा उसे अपना घर बना लेता है।
दान का अर्थ हैः देने की क्षमता, बांटने की कला। ख्याल रखनाः दान भी बेहूदा हो सकता है, अगर कला न हो। तुम इस ढंग से दे सकते हो कि जिसको तुम दो, उसको पीड़ा दे जाओ। तुमने अगर दो पैसे भिखमंगे की तरफ फेंक दिए हैं, तो तुमने दिया कम, चोट ज्यादा पहुंचायी। तुम दो पैसे देकर अपनी अमीरी दिखाए। तुमने दो पैसे क्या दिए, तुमने उस गरीब की छाती में छुरा भोंक दिया! तुमने इतनी अकड़ से दिए कि तुम्हारा दान जहर हो गया। अच्छा होता, तुमने न दिया होता। अच्छा होता, तुम मुंह फेरकर चले गए होते। अच्छा होता कि तुमने सुनी ही न होती भिखमंगे की आवाज। लेकिन यह देना, देना न हुआ।
अक्सर तुमने दिया है क्रोध में। अक्सर तुमने दिया है सिर्फ बचाव के लिए। भीड़-भाड़ है, बाजार है; चार लोग क्या कहेंगे कि भिखमंगा हाथ जोड़े खड़ा है, और तुम दो पैसे नहीं दे पाते! अक्सर तुमने भिखमंगे को दिया है, लेकिन दिया लोगों के कारण है, जो देख रहे हैं बाजार में। तुम्हारी प्रतिष्ठा दांव पर लगी है। तुमने अपने अहंकार को ही दिया, भिखमंगे को नहीं दिया। और देकर तुमने चाहा है कि वह धन्यवाद करे। देकर तुमने चाहा है कि तुम्हारी स्तुति करे

अगर तुम्हारे देने में कोई भी चाह है--धन्यवाद की भी चाह है--तो देना गलत हो गया। अच्छा होता, तुम न देते। अच्छा होता, तुम मुंह फेरकर चले जाते। अच्छा होता, तुम थोड़े कठोर होते। लेकिन अगर तुमने यह चाहा कि भिखमंगा तुम्हारा अनुग्रह माने, तो चूक हो गयी; तो दान का धोखा हुआ, दान नहीं हुआ। दान--देने की क्षमता और बांटने की कला है। जब कोई किसी को देता है, तो बहुत ही प्रसादपूर्ण होना चाहिए देना। इतना प्रसादपूर्ण होना चाहिए कि जिसे तुमने दिया है, वह आह्लादित हो; जिसे तुमने दिया है, वह प्रफुल्लित हो--दीन न हो जाए।
तुम देकर किसी को दीन कर दो, तो भूल हो गयी। तुम्हारे देने से कोई समृद्ध हो, ऊपर उठे। तुम्हारे देने के कारण तुम्हारे समतुल हो जाए। तुम जब किसी को दो, तो इस तरह देना कि जैसे उसने लेकर तुम पर अनुग्रह किया है। यह देने की कला है। तुमने अनुग्रह किया, ऐसा नहीं।
इसलिए इस देश में हम दान भी देते हैं और दक्षिणा भी। दक्षिणा का मतलब वही होता है। दुनिया के किसी कोने में दक्षिणा का रिवाज नहीं है। दान तो सारी दुनिया में है, लेकिन दक्षिणा बिल्कुल भारतीय बात है।
यह दक्षिणा क्या है? तुमने किसी को कुछ दिया--यह दान हुआ। फिर इस दान
को उसने स्वीकार कर लिया--इसका धन्यवाद भी दोगे या नहीं! वह दक्षिणा है। वह तुम्हारा अनुग्रह का भाव है कि मैं धन्यभागी हुआ कि आपने, मैंने जो कुछ छोटा-मोटा दिया, फूल तो नहीं था, फूल की पाखुड़ी थी, फिर भी आपने स्वीकार कर लिया--मैं धन्यभागी हूं। आप इनकार भी कर सकते थे। आप कह देतेः रखो अपनी फूल की पाखुड़ी। मुझे फूल चाहिए। तुम्हारा इनकार मुझे तोड़ जाता। तुमने मुझे तोड़ा नहीं। तुम्हारी बड़ी कृपा है, अनुकंपा है। तुम्हारी करुणा है।
यह बड़ी अपूर्व बात है दक्षिणा। यह भारत की अपनी अनूठी खोज है। और इसमें सारी कला छिपी है दान की। इसका मतलब यह हुआ कि देने वाला अनुगृहीत है लेने वाले का। क्यों? ऐसा क्यों होना चाहिए?
साधारण गणित तो यही कहेगा कि जिसको मिला है, वह अनुगृहीत हो। लेकिन हमने कुछ और गहरा गणित खोजा। हमने कहाः जिसने दिया है, वह अनुगृहीत हो। क्यों? क्योंकि जिसने दिया है, उसे बहुत गुना मिलेगा।
जिसने लिया है, उसका तो लेना समाप्त हो गया। जिसने दिया है, उसने बहुत पाने का उपाय कर लिया। जिसने लिया है, उसका तो कोई आगे का द्वार नहीं खुलता। जिसने दिया है, वह बहुत पाने का मालिक हो गया, हकदार हो गया। तो धन्यवाद कौन करे?
धन्यवाद वही करे, जिसने दिया है। अगर यह गरीब इनकार कर देता, तो ये द्वार स्वर्ग के बंद हो जाते। इस गरीब ने तुम्हारे स्वर्ग के द्वार खोल दिए। तुम इसे धन्यवाद दो। यह देने की कला है।
तो दान हैः देने की क्षमता, देने की कला, और देने का आनंद।
देते समय तुम आनंदित होने चाहिए। कभी क्रोध से मत देना। कभी भय से मत देना। कभी लोभ से मत देना। कभी प्रतिष्ठा के मोह में मत देना। ये सब गलत देने हैं। ये सब विषाक्त हैं। जब दो, तो आनंद भाव से देना। देना इसलिए कि मेरे पास इतना है कि मैं करूं भी क्या! मैं न दूं, तो क्या करूं! देने का सहज आनंद ही कारण हो, बस।
तुमने जीसस की कहानी सुनीः एक अमीर बागवान ने कुछ मजदूर सुबह काम पर बुलाए। अंगूर पक गए थे और तोड़ने थे। फिर कुछ मजदूर दोपहर बुलाए। क्योंकि अंगूर शाम तक टूट न पाएंगे। फिर कुछ मजदूर सांझ को भी बुलाए। जब सूरज ढल रहा था, तब भी कुछ लोग आए। फिर तो सूरज ढल गया। सब को मजदूरी बांटी। सब को बराबर मजदूरी बांट दी।
जीसस यह कहानी बहुत बार कहते थे।
स्वभावतः सुबह से जो दिनभर काम किए थे; भर दुपहरी जो जुते रहे थे धूप में; पसीना-पसीना हुए थे; सूरज ऊगते आए थे और सूरज डूबते जा रहे थे। न भोजन करने गए थे, न एक क्षण को हटे थे काम से--उनको भी उतना ही दिया! तो वे जरा नाराज हुए। उन्होंने कहाः यह अन्याय है! और जो लोग दोपहर आए, उनको भी उतना! उनको आधा मिलना चाहिए। और जो अभी-अभी आए हैं, जिन्होंने काम किया ही नहीं कुछ, उनको भी उतना! इनको तो कुछ भी नहीं मिलना चाहिए।

वह अमीर हंसने लगा, और उसने कहाः मैं तुम से यह पूछता हूं कि तुमने जितना काम किया, उतने के दाम तुम्हें मिले या नहीं? उन्होंने कहाः नहीं, हमें उतने के दाम मिले; थोड़े ज्यादा भी मिले। वह सवाल नहीं है। लेकिन जो दोपहर को आए थे इनको, और जो सांझ को आए इनको?
उस अमीर ने कहाः धन मेरा है और मेरे पास बहुत है। अगर मैं बांटना चाहूं, तो तुम्हें कुछ एतराज है? मैं अगर नदी में फेंकना चाहूं, तो तुम्हें कुछ एतराज है? यह मैं मेरे पास अधिक है, इसलिए दे रहा हूं। इन्होंने काम नहीं किया, मेरे पास भी आंख है। कोई दोपहर आया, कोई सांझ आया; काम क्या करेंगे ये सांझ को आए हुए लोग! लेकिन मेरे पास जरूरत से ज्यादा है, इसलिए दे रहा हूं।
यह आनंद के भाव से देना है।
जो तुम्हारे पास जरूरत से ज्यादा हो, उसी को देने में मजा हो सकता है। जिस संबंध में तुम अभी खुद ही कंजूस हो, खुद ही पकड़े बैठे हो, जो अभी तुम्हें लगता है कम है, वह तुम कैसे दोगे? दोगे भी तो किसी और कारण से दोगे। उसमें हेतु आ जाएगा। और जहां हेतु आया, मोटिव आया, वहां दान मर गया। दान की आत्मा है अहेतुकी-भाव--कि बिना किसी कारण के दे रहे हैं। देने
के शुद्ध आनंद से दे रहे हैं। ऐसा जो देना सीख लेता है, वह सम्राट हो जाता है।
सम्राट, कितना तुम्हारे पास है, इससे नहीं होता कोई। सम्राट, तुम देने में कितने समर्थ हो, इससे होता है कोई। मांगने वाला भिखमंगा रह जाता है। और ध्यान रखनाः धनी से धनी आदमी भी मांग रहा है। गरीब ही मांग रहा है, ऐसा नहीं; धनी भी मांग रहा है। अमीर से अमीर, अरबपति भी मांग रहा है। कहता हैः और मिल जाए, और मिल जाए।
इसलिए इस दुनिया में भिखमंगे ही भिखमंगे हैं। गरीब भिखमंगे हैं, अमीर भिखमंगे हैं! मगर सब भिखमंगे हैं। यहां कभी-कभी कोई सम्राट होता है।
सम्राट वही होता है, जो मांग नहीं रहा है; जिसने बांटना शुरू कर दिया है।
बांटने से साम्राज्य का विस्तार है।
ऐसा अहेतुक दान तभी संभव है, जब तुम्हारे जीवन में प्रेम की थोड़ी सुवास हो। इसलिए मैंने कहाः धर्म का सार है दान। और दान का मूल है प्रेम।
प्रेम का अर्थ होता हैः मैं अलग नहीं। मैं भिन्न नहीं, पृथक नहीं। मैं
सब से जुड़ा हूं। तो अगर कहीं कोई पीड़ा में है, तो मैं दौड़ता हूं, क्योंकि मैं ही पीड़ा में हूं।
अगर वृक्ष सूख रहा है जल के बिना, और मैं जल देता हूं, तो इसीलिए कि वृक्ष में मैं ही सूख रहा हूं। अगर कोई रो रहा है, और मैं आंसू पोंछता हूं, तो सिर्फ इसीलिए कि वे आंसू मेरे ही आंसू हैं; वे आंखें मेरी ही आंखें हैं। इस भाव का नाम प्रेम है।
प्रेम का अर्थ हैः मैं अस्तित्व से भिन्न नहीं हूं--अभिन्न हूं, एक हूं। प्रेम का अर्थ हैः अद्वैत की प्रतीति।
हम अलग हो भी कहां सकते हैं! प्रतिपल श्वास चाहिए, भोजन चाहिए, जल चाहिए, तो ही जी सकते हैं। और यह सब मिलता है हमें बाहर से, अस्तित्व से। वृक्षों में फल लग रहे हैं, वे तुम्हारे लिए तैयार हो रहे हैं कि तुम उन्हें पचाओगे। वे तुम्हारा रक्त-मांस-मज्जा बनेंगे। नदियों में जलधार बह रही है कि तुम्हारे वृक्षों में पानी जाएगा, फल पकेंगे। और नदियों में जलधार तुम्हारे घर तक आ रही है कि तुम्हारी प्यास होगी, और प्यास के लिए पानी की जरूरत होगी। और आकाश में बादल मंडरा रहे हैं, और वर्षा हो रही है-- तुम्हारे लिए। और सुबह सूरज निकला है--तुम्हारे लिए। और रात चांद-तारों से भर जाता है आकाश--तुम्हारे लिए--कि तुम अब विश्राम में चले जाओ।
जरा गौर से देखो, यह सब तुम्हारे लिए है। यह सब तुम्हारे लिए है और तुम इसके लिए नहीं हो--यह अप्रेम है। यह धोखा हुआ। यह बेईमानी है। यह सब तुम्हारे लिए हो रहा है और तुम इसके लिए बिल्कुल नहीं!
जिस दिन तुम्हें यह दिखायी पड़ता हैः यह सारा अस्तित्व मेरे लिए; उस दिन तुम पूरे भाव से कहते होः मैं भी इस सारे के लिए। तब प्रेम। और प्रेम मूल है दान का।

धर्म का सार है दान। दान का मूल है प्रेम। और प्रेम का अर्थ है, निरअहंकारिता। यह धर्म का, दान का, शास्त्र हुआ। निरअहंकारिता पर ही दान खड़ा होगा। अगर देने में जरा भी अहंकार है, तो चूक गए; फिर प्रेम नहीं है। आज के सूत्र दान पर हैं, इन्हें ठीक से समझना। इसके पहले कि हम सूत्रों में चलें, उन परिस्थितियों को समझ लें, जिनमें ये सूत्र बुद्ध ने कहे थे।
पहला दृश्यः

श्रावस्ती के एक अपुत्रक श्रेष्ठी के मर जाने के बाद कौशल नरेश ने सात दिन तक उसके धन को गाड़ियों में ढुलवाकर राजमहल में मंगवाया। इन सात दिनों तक धन ढुलवाने में वह इस तरह उलझा कि भगवान के पास एक दिन भी न जा सका। वैसे साधारणतः वह नियम से प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान के दर्शन और सत्संग के लिए आता था।
जिस दिन धन ढुलवाने का कार्य पूरा हुआ, उस दिन उसे भगवान की याद आयी,
सो वह भरी दुपहरी में ही भगवान के पास जा पहुंचा।
भगवान ने उससे दोपहर में आने का कारण पूछा। राजा ने सब समाचार बताए और फिर पूछाः भंते! एक बात मेरे मन को मथे डालती है। उस अपुत्रक श्रेष्ठी के पास इतना धन था कि मुझे सात दिन लग गए गाड़ियों में ढुलवाते-ढुलवाते, तब बामुश्किल उसके धन को राजमहल ला पाया हूं। फिर भी वह रूखा-सूखा खाता था! फटा-पुराना पहनता था! और टूटे हुए जराजीर्ण रथों पर चलता था!
इसे सुनकर भगवान ने कहाः महाराज! वह पूर्वकाल में तगरशिखी बुद्ध को दान दिया था। दान तो कुछ बड़ा नहीं दिया था। बड़े दान देने की उसकी क्षमता नहीं थी। दान तो बड़ा क्षुद्र दिया था। लेकिन क्षुद्र दान का विराट परिणाम हुआ। उस दान के फलस्वरूप उसे इतनी धन-संपत्ति इस जीवन में मिली।
दान तो उसने थोड़ा ही दिया था, पर दान देकर पीछे पछताया बहुत था--कि यह
भी क्या भूल कर ली! यह भी किन बातों में आ गया!
उस पछतावे के कारण उसका मन अच्छा खाने-पहनने में नहीं लगता था। वह पछतावा पीछा कर रहा था। उस पछतावे के कारण रुपया हाथ से छोड़ने की उसकी क्षमता ही विलीन हो गयी थी। दान देना तो दूर, अपने उपयोग के लिए भी धन को व्यय करने की उसकी क्षमता खो गयी थी।
उस दान को देने से दो परिणाम हुए थेः एक परिणाम हुआ था कि दिया, तो बहुत उसके उत्तर में मिला। और देकर पछताया बहुत, तो उसका जीवन अत्यंत कृपणता से भर गया। इतना कि खुद भी खा नहीं सकता था, कपड़े नहीं पहन सकता था। महाकंजूस हो गया--पछतावे के कारण!
इसने संपत्ति के लिए ही अपने भाई के मरने पर उसके इकलौते बेटे को भी जंगल में ले जाकर मार डाला था। जिसके फलस्वरूप उसे स्वयं संतान पैदा नहीं हुई। उसके बांझ रह जाने का यही मूल कारण था।
इस समय मरकर वह महा रौरव नरक में उत्पन्न हुआ है। क्योंकि पुराना किया हुआ पुण्य समाप्त हो गया है, और उसने कोई नया पुण्य किया नहीं।
राजा ने भगवान की बात सुन कहाः भंते! उसने बड़ा बुरा कर्म किया, जो आप जैसे बुद्ध के पास ही विहार में रहते हुए भी न दान दिया, न धर्म-श्रवण किया, न अपनी संपत्ति का कोई सदुपयोग किया। कोई पुण्य न कमाया और सब छोड़कर अंततः मर ही गया!
शास्ता हंसे और बोलेः ऐसे ही महाराज! बुद्धिहीन पुरुष धन-संपत्ति पाकर भी निर्वाण की तलाश नहीं करते हैं। और धन-संपत्ति के कारण उत्पन्न तृष्णा उनका दीर्घकाल तक हनन करती है। तब उन्होंने यह गाथा कहीः

हनन्ति भोगा दुम्मेधं नो चे पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो हन्ति अोंं"व अत्तनं।।

"संसार को पार होने की कोशिश नहीं करने वाले दुर्बुद्धि मनुष्य को भोग नष्ट कर डालते हैं। भोग की तृष्णा में पड़कर वह दुर्बुद्धि पराए की तरह अपना ही घात करता है।"

सूत्र के पहले इस घटना को ठीक-ठीक विश्लिष्ट करके समझ लें।
पहली तो बातः श्रावस्ती के एक अपुत्रक श्रेष्ठी के मर जाने के बाद... । अक्सर ऐसा होता है। जिनके पास धन है, उनको पुत्र नहीं होते। जिनके पास
धन है, उनको संतान नहीं होती। अक्सर ऐसा होता है कि धनी आदमियों को गोद लेने पड़ते हैं बेटे। यह सारी दुनिया में ऐसा है! गरीबों के घर खूब बेटे- बेटियां पैदा हो जाते हैं; अमीरों के घर कुछ चूक हो जाती है। इस चूक के पीछे जरूर कुछ मनोविज्ञान होगा।
मेरे देखे मनोविज्ञान यही है कि धनी आदमी में प्रेम नहीं होता। असल में धन को कमाने में उसको अपने प्रेम को बिल्कुल नष्ट कर देना होता है। प्रेमी धन कमा नहीं सकता। कमा भी ले, तो बचा नहीं सकता। एक तो कमाना मुश्किल होगा प्रेमी को, क्योंकि उसे हजार करुणाएं आएंगी। वह किसी की छाती में छुरा नहीं भोंक सकेगा। और किसी की जेब भी नहीं काट सकेगा। किसी से ज्यादा भी नहीं ले सकेगा। डांडी भी नहीं मार सकेगा। धोखा भी नहीं कर सकेगा। जालसाजी भी नहीं कर सकेगा। जिसके हृदय में प्रेम है, वह ज्यादा से ज्यादा अपनी रोटी-रोजी कमा ले, बस, बहुत। उतना भी हो जाए तो बहुत!
धन इकट्ठा करने के लिए तो हिंसा होनी चाहिए। धन इकट्ठा करने के लिए तो कठोरता होनी चाहिए। धन इकट्ठा करने के लिए तो छाती में हृदय नहीं, पत्थर होना चाहिए, तभी धन इकट्ठा होता है।
तो धन प्रेम की हत्या पर इकट्ठा होता है। और जिसके प्रेम की हत्या हो जाती है, वह बांझ हो जाता है। वह सब अर्थों में बांझ हो जाता है। उसके जीवन में फूल लगते ही नहीं। संतति तो फूल है। जैसे वृक्ष में फूल लगते, फल लगते। लेकिन अगर वृक्ष में रसधार बहनी बंद हो जाए, तो फिर फूल भी नहीं लगेंगे, फल भी नहीं लगेंगे। संतति तो फल और फूल हैं तुम्हारे जीवन में। तुम्हारे प्रेम की धारा बहती रहे, तो ही लग सकते हैं।
इसके पीछे बड़ा मनोवैज्ञानिक कारण है। जितना ज्यादा धनी, उतना ही प्रेम में दीन हो जाता है। अक्सर तुम गरीबों को प्रेम से भर हुआ पाओगे; अमीरों को प्रेम से रिक्त पाओगे। यह आकस्मिक नहीं है। बात उलटी है।
तुम सोचते होः गरीब आदमी प्रेमी है। असल बात यह है कि प्रेमी आदमी गरीब रह जाता है। बात उलटी है। तुम सोचते होः अमीरों में प्रेम क्यों नहीं? तुम समझे ही नहीं। प्रेम ही होता, तो वे अमीर कैसे होते! अमीर होना कठिन हो जाता। प्रेम को तो मारकर चलना पड़ा। प्रेम को तो काट देना पड़ा। प्रेम को तो गड़ा देना पड़ा जमीन में। जिस दिन उन्होंने अमीर होना चाहा, जिस दिन अमीर होने की आकांक्षा जगी, उसी दिन प्रेम की हत्या हो गयी। प्रेम की लाश पर ही अमीरी के महल खड़े हो सकते हैं, नहीं तो नहीं खड़े हो सकते। प्रेम से कीमत चुकानी पड़ती है।
और प्रेम तुम्हारी आत्मा की सुगंध है। आत्मा की सुगंध खो जाती है और तुम्हारी देह धन से घिर जाती है। तुम्हारे पास जड़ वस्तुएं इकट्ठी हो जाती हैं, और तुम्हारा जीवन-स्रोत सूखता चला जाता है।
इसलिए अमीर से ज्यादा गरीब आदमी तुम न पाओगे। उसकी गरीबी भीतरी है।
उसके भीतर सब सूख गया। उसके भीतर कोई रस नहीं बहता अब। उसका जीवन बिल्कुल मरुस्थल जैसा है। वहां कोई हरियाली नहीं है। कोई पक्षी गीत नहीं गाते।
कोई मोर नहीं नाचते। कोई बांसुरी नहीं बजती। कोई रास नहीं होता। सूख गयी इस जीवन चेतना में ही संतति के फल लगने कठिन हो जाते हैं।
श्रावस्ती के एक अपुत्रक श्रेष्ठी के मर जाने के बाद... । और स्वभावतः, कोई बेटा नहीं था उसका। और मर गया, तो सारा धन राजा के घर चला जाएगा।
कौशल नरेश ने सात दिन तक उसके धन को गाड़ियों में ढुलवाकर राजमहल में मंगवाया। इन सात दिनों तक धन ढुलवाने में वह इस तरह उलझा कि भगवान के पास एक दिन भी न जा सका।
अब यह जरा मजा देखना! यही कौशल नरेश जिज्ञासा से भरता है कि यह धनी आदमी है! इतना धन था! फिर भी न कभी ठीक से पहना, न कभी ठीक से खाया, न कभी ठीक रथों में चला! यह धनी आदमी, बुद्ध इसके पास ही विहार करते, कभी सत्संग को नहीं गया! इस धन में से कुछ बुद्ध के विराट काम में लगा देता, यह भी नहीं किया। और अब मर गया; और अब सब यहीं पड़ा रह गया!

यह दूसरे के संबंध में तो सोच रहा है, अपने संबंध में नहीं सोच रहा है!
यह दूसरे का धन अपने घर बुलवा रहा है सात दिन तक; यह बुद्ध को भूल गया। ये सात दिन इसे बुद्ध की याद ही न आयी! साफ है बात कि बुद्ध की याद भी तभी आती है, जब फुरसत हो, जब और कोई काम न हो। बुद्ध इसकी जीवन-सूची में प्रथम नहीं हैं। प्रथम धन ही है।
जब सब तरह राहत होती है, और कोई काम नहीं होता, तब सोचता हैः बैठे-ठाले क्या करना है! चलो, सत्संग कर आएं। सत्संग पर इसका जीवन दांव पर नहीं लगा है। यह सात दिन दूसरे का धन अपने घर लाने में व्यस्त है।
खड़ा रहा होगा वहां कि कहीं कोई और न ले जाए! कहीं धन यहां-वहां न बिखर जाए। कहीं लाने वाले नौकर-चाकर कुछ न लूट लें। कहीं कोई बैलगाड़ी महल की तरफ न आकर किसी और तरफ न मुड़ जाए। यह खड़ा रहा होगा। संभावना यही है कि बैलगाड़ियों के साथ-साथ धनी के घर से राजमहल आया होगा। भूल ही गया बुद्ध को! और ध्यान रखनाः अगर बुद्ध प्रथम नहीं हैं तुम्हारी जीवन-सूची में, तो हैं ही नहीं। अगर धर्म प्रथम नहीं है तुम्हारी जीवन-सूची में, तो है ही नहीं।
परमात्मा को तो सभी ने जीवन-सूची के अंत में रख दिया है! लोग कहते हैंः
धन कमा लें पहले, पद कमा लें पहले, बेटे की शादी कर लें, बच्चे बड़े हो जाएं, घर सब सम्हल जाए, फिर--फिर प्रभु-भजन में लगेंगे। अंतिम!
और न कभी घर सम्हलता पूरा, क्योंकि एक समस्या से दूसरी उठती चली जाती है। बच्चों का विवाह हो जाता है, तो उनके बच्चे खड़े हो जाते हैं। अब इन बच्चों का विवाह करना है। अब इनकी चिंता पकड़ने लगती है।
यहां उलझनें कभी समाप्त थोड़े ही होती हैं। जिंदगी में कभी ऐसा थोड़े
ही होता है, जैसा फिल्मों में होता है--दि एंड। यहां कभी ऐसा होता ही नहीं कि खतम हो गयी कहानी--इतिश्री!
नहीं; यहां तो जिंदगी चलती चली जाती है। तुम खतम हो जाओगे, जिंदगी चलती चली जाती है। तुम कई बार खतम हो गए और जिंदगी चलती रही। जिंदगी कभी खतम नहीं होती। व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं, और जिंदगी बहती रहती है। इसलिए तुम यह मत सोचना कि जिंदगी की धारा जब रुक जाएगी, सब चिंताओं से मुक्त हुए, सब समस्याएं हल हो गयीं, सब हिसाब-किताब पूरा हो गया, फिर बैठकर हरि-भजन करेंगे।
फिर तुम न करोगे। तुम्हारी लाश चलेगी; दूसरे लोग हरि-भजन करेंगेः राम-नाम सत्य है। वह दूसरे लोग हरि-भजन करेंगे, वह भी तुम्हारे लिए--कि बेचारा खुद तो नहीं कर पाया; अब इसको मरघट पहुंचाते तक तो कर दो! हालांकि अब लाश ही पड़ी है, वहां कोई सुनने वाला भी नहीं है!
तुम तो गंगा नहीं जा पाते; जब मर रहे होओगे, तो दूसरे बोतलों में बंद गंगाजल तुम्हारे मुंह में डाल देंगे! तुम गटक भी न पाओगे; आधा तो बाहर ही बह जाएगा! अब तो गटकने की भी क्षमता नहीं रह गयी।
तुम मर रहे हो, तुम्हारा होश खो रहा है, और लोग तुम्हारे कान में भगवान
का नाम लेंगे या नमोकार मंत्र पढ़ेंगे, या भक्तांबर स्त्रोत या गीता-पाठ या वेद की ऋचाएं!
वह मर रहा है आदमी! उसे अब कुछ सुनायी नहीं पड़ता! जिंदगीभर यह सोचता था
कि कभी पूरा निश्चिंत हो जाऊंगा, तो बैठकर प्रभु का स्मरण कर लूंगा। मगर यह हो नहीं पाता।
प्रभु-स्मरण करना हो, तो अभी, या कभी नहीं। यही क्षण! एक क्षण के लिए भी टालना मत, क्योंकि एक क्षण का भी भरोसा नहीं। कौन जाने, दूसरे क्षण मौत आती हो; राम-नाम सत्य हो जाए! तो इसके पहले तुम राम-नाम को सत्य कर लो--अपने जीवन में।
यह कौशल नरेश धन ढोने में भूल गया बुद्ध को। हालांकि यह बड़े मजे की बात है, और यह सब के जीवन में होता है। दूसरे की आंख में तो अगर जरा सा कूड़ा- कर्कट पड़ा हो, तो तुम्हें ऐसा लगता है जैसे पहाड़। और अपनी आंख में पहाड़ भी पड़ा हो, तो कूड़ा-कर्कट भी नहीं मालूम होता!
हम दूसरे के संबंध में निर्णय लेने में बड़े कुशल हैं! हम अपने को बचाए
ही चले जाते हैं। हम कभी नहीं सोचते अपने संबंध में।

धन ढोते वक्त इसने यह न सोचा कि सात दिन हो गए! मैं रोज सुबह जाता था बुद्ध के प्रवचन सुनने, रोज सत्संग करने, दर्शन करने! सात दिन में फुरसत न मिली! धन में ऐसा उलझा! और दूसरे का धन! अपना भी नहीं। और यह भी देख रहा है कि दूसरा मर गया सब छोड़कर, ऐसे ही मैं भी मर जाऊंगा।
मगर वह सवाल नहीं है। वह सवाल उठता ही नहीं। बुद्धिमान जिंदगी के सब सवालों को अपनी तरफ मोड़ देता है और बुद्धू सदा दूसरों की तरफ मोड़े रखता है। यह आदमी अगर थोड़ा बुद्धिमान होता, तो बजाय बैलगाड़ियों को राजमहल ले जाने के, बैलगाड़ियों को वहीं छोड़ता; राजमहल छोड़ता; जाकर बुद्ध से कहता कि आ गया शरण में। बुद्धं शरणं गच्छामि! अब कहीं न जाऊंगा। देख लियाः एक आदमी इतना धन छोड़कर मर गया; किसी काम नहीं पड़ा। और जब मर गया, तो एक कौड़ी साथ न ले जा सका। अब मैं क्या ले जाऊंगा! मेरी भी मौत करीब आती है।
उस अपुत्रक श्रेष्ठी की मृत्यु में अपनी मौत दिख गयी होती। उस अपुत्रक श्रेष्ठी की व्यर्थ जीवन-धारा में, अपने जीवन की व्यर्थता दिख गयी होती। क्रांति घट जाती।
लेकिन सात दिन तो याद भी न आयी बुद्ध की। हां, कई बार यह सवाल उठा कि यह
भी कैसा आदमी था! सब पड़ा रह गया आखिर! अरे! भोग लेता। कुछ उपयोग कर लेता। अब सब दूसरे ले जा रहे हैं!
और इस कौशल नरेश को ख्याल ही नहीं कि ऐसे ही तुम मरोगे और इसी तरह दूसरे ले जाएंगे।
कोई इकट्ठा करता है, कोई ले जाता है! जो ले जाता है, वह भी इकट्ठा कर रहा है, वह भी मरेगा, फिर कोई ले जाएगा। धन यहीं का यहीं पड़ा रहता है, हम आते और चले जाते हैं। न कोई धन लेकर आता, न कोई लेकर जाता--जिसको यह दिखायी पड़ जाता है, उसके जीवन में बड़े अर्थ, बड़ी भाव-भंगिमाओं में रूपांतरण हो जाते हैं, नए अर्थ आ जाते हैं। तब दान की संभावना है।
जो है ही नहीं मेरा, उसको पकड़ना क्या! जिसको मुझे छोड़कर जाना ही पड़ेगा, उसको फिर मौज से ही क्यों न दे देना! मजे से क्यों न दे देना! जो दूसरे के हाथ लगने ही वाला है, उसे अपने ही हाथ से देने का मौका क्यों चूक जाना! और फिर पता नहीं किसके हाथ लगेगा?
अब सोचनाः यह श्रेष्ठी मरा, यह चाहता तो बुद्ध को भी दे सकता था। लेकिन अब राजा के हाथ लगा। शायद इसी राजा से चुराया होगा टैक्स इत्यादि में। इसी राजा से बचाया होगा। उसी के हाथ लग गया! यह दान भी हो सकता था। उस गांव में गरीब भी थे बहुत। उनको दे गया होता। उस गांव में बीमार भी थे बहुत, उनकी औषधि का इंतजाम कर गया होता। लेकिन कुछ भी न कर पाया। अपने लिए ही नहीं कर पाया, तो दूसरे के लिए क्या करेगा?
इसलिए तुमसे एक बात और इस संदर्भ में कह दूं। जब मैं कहता हूं, प्रेम करो, तो कभी भूलकर यह मत समझना कि मैं कहता हूंः अपने से प्रेम नहीं करो। जो अपने से करता है प्रेम, वही दूसरे से कर सकता है।
यह श्रेष्ठी खुद ही ठीक से खाया-पीया नहीं, इसको गरीब को भूखा मरते देखकर दया नहीं आ सकती। कैसे आएगी? यह खुद ही गरीब की तरह रह रहा है! यह कहेगाः इसमें क्या खास बात है! हम भी ऐसा ही रूखा-सूखा खाते हैं। तो धन का क्या करोगे? धन हमारे पास है, फिर भी हम रूखा-सूखा खाते हैं। और तुम भी रूखा-सूखा खाते हो, धन तुम्हारे पास नहीं है। धन की जरूरत क्या है? हमें भी देखो; इस तरह के फटे-पुराने कपड़े पहनते हैं। तुम पहनो, तो कोई बहुत बड़ी कुरबानी कर दी! कि तुम बड़े शहीद हो गए! हमारी बैलगाड़ी देखो! यह भी टूटी- फूटी; तुम्हारी भी टूटी-फूटी। हम तुम्हीं जैसे हैं। धन के होने, न होने से क्या जरूरत है!
जो आदमी स्वयं ठीक से नहीं खाया, वह किसी की भूख नहीं समझ सकेगा। आमतौर से तुम उलटा तर्क सोचते हो। तुम आमतौर से सोचते होः जिस आदमी ने दुख देखा, वह दूसरे के दुख समझ सकेगा। गलत बात है। क्योंकि जिसने खुद दुख देखा, वह दुख के कारण जड़ हो जाता है, वह दूसरे का दुख नहीं देख पाता। जिसने सुख देखा, वह दूसरे का दुख देख पाता है। सुख के कारण तुलना पैदा होती है। गरीब आदमी दूसरे गरीब आदमी के प्रति कोई दया नहीं कर पाता।

तुमने किसी भिखमंगे को किसी भिखमंगे के प्रति दया करते कभी देखा? भिखमंगा छीन लेगा दूसरे भिखमंगे से। भिखमंगों के भी अपने दादा होते हैं! उनके भी गुरु होते हैं। भिखमंगा छीन लेगा दूसरे भिखमंगे से। लेकिन भिखमंगों ने कभी दान नहीं दिया है।
अगर गरीबी और दुख का अनुभव दया लाता होता, तो भिखमंगे इस दुनिया में सबसे ज्यादा दयालु होते। वे सबसे ज्यादा कठोर हैं।
मेरी समझ और है। जिन्होंने जाना, उनकी भी समझ और है। उनकी समझ यह है कि तुम जितने सुख में जीओगे, उतना ही तुम अनुभव कर पाओगे कि लोग कितने दुखी हैं।
इसलिए मैं सुख का विरोधी नहीं हूं। मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि तुम सब बांटकर और दुखी हो जाओ। मैं तुमसे यह भी नहीं कह रहा हूं कि तुम जाकर फकीर हो जाओ। मैं तुमसे यह भी नहीं कह रहा हूं कि तुम दीन-हीन होकर भटकने लगो।
मैं तुमसे यही कह रहा हूं कि तुम अपने को प्रेम करो। अपने को प्रेम किया, उसी प्रेम से तुम दूसरे को प्रेम करने में धीरे-धीरे सफल हो पाओगे। जिसने अपने को प्रेम नहीं किया, उसने कभी किसी को प्रेम नहीं किया।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित महात्मा जो कहते हैं, वह मैं तुम से नहीं कह रहा हूं। तुम्हारे तथाकथित महात्मा यह कहते हैंः अपने प्रति कठोर रहो, और दूसरे के प्रति दयावान। महात्मा गांधी का एक सूत्र यह भी था--अपने प्रति कठोर और दूसरे के प्रति दयावान।
लेकिन जो अपने प्रति कठोर है, वह कभी दूसरे के प्रति दयावान नहीं हो सकता। जो अपना न हुआ, वह किसका हो सकेगा? जो अपने प्रति कठोर है, वह दूसरे के प्रति भी भयंकर रूप से कठोर होगा।
उदाहरण के लिए, गांधी ने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया। तो वह व्रत था, ब्रह्मचर्य नहीं था। जबर्दस्ती थी। थोप दिया अपने ऊपर। जिस दिन उन्होंने ब्रह्मचर्य अपने ऊपर थोपा, और कठोर हो गए। उसी दिन से वे दूसरों के प्रति दयाहीन हो गए। वे अपने बेटों को भी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि बेटे किसी के प्रेम में पड़ें। वे बिल्कुल जासूसी रखते थे अपने आश्रम में कि कोई किसी के प्रेम में न पड़ जाए। वे, जो भी प्रेम में पड़ जाए, उसको क्षमा नहीं कर पाते थे।
जिसने अपने जीवन को जबर्दस्ती ब्रह्मचर्य में बांध लिया, अब वह दूसरों के साथ भी वही जबर्दस्ती करेगा।
गांधी के सेक्रेटरी किसी के प्रेम में पड़ गए, तो सेक्रेटरी को निकालकर आश्रम से बाहर कर दिया। अगर कोई दो व्यक्ति गांधी के आश्रम में प्रेम में पड़ जाते और विवाह करना चाहते, तो गांधी सब तरह की बाधा डालते थे। पहली तो बाधा यह डालते थेः वे कहते थे कि दो साल ब्रह्मचर्य से रहो। और एक-दूसरे को देखो भी मत, चिट्ठी-पत्री भी मत लिखो। फिर उसके बाद भी अगर प्रेम बचेगा, तो सोचेंगे।
असहाय, कमजोर आदमी से किस तरह की अपेक्षाएं! और दो साल में यह आदमी सब तरह से अपने को दबाएगा, रोकेगा, कठोर हो जाएगा। शायद इसके भीतर जो प्रेम का अंकुर निकला था--ताजा, कोमल--वह मर ही जाएगा। दो साल बाद यह भी सोचेगा कि कहां झंझट में पड़ना! अब तो अंकुर भी मर चुका। अब महात्मा ही क्यों न बन जाओ!
गांधी स्वयं के भोजन के प्रति अति कठोर थे, इसलिए दूसरों के भोजन के प्रति भी अति कठोर थे। अपने प्रति कठोर थे, तो दूसरे के प्रति कठोर थे। तुम्हारे महात्मा इसीलिए तो तुम्हारे प्रति बहुत कठोर हैं, क्योंकि अपने प्रति बहुत कठोर हैं। तुम्हारे महात्मा अगर तुम्हारी तरफ इस तरह देखते हैं कि तुम पापी हो, तो कुछ आश्चर्य नहीं। क्योंकि वे देखते हैंः हम उपवास कर रहे हैं, तुम मजे से भोजन कर रहे हो! हम शरीर सुखा रहे हैं, और तुम्हारा शरीर भरा-पूरा है! और हम नंगे बैठे हैं, और तुम सुंदर कपड़े पहने बैठे हो! और हमारे पास कुछ भी नहीं; तुम्हारे पास सब है! तुम महापापी हो। इसलिए तुम्हारे महात्माओं की अंगुली तुम्हें महापापी सिद्ध करती रहती है। और तुम्हारे महात्मा बैठे-बैठे मजा किस बात का लेते हैं? एक ही

बात का कि सब सड़ेंगे नर्क में। सिवाय उनके और सब नर्क जा रहे हैं। इससे राहत मिलती है मन को बड़ी--कि ठीक है; आज भोग लो। कल तो नर्क में सड़ोगे, तब याद आएगी कि महात्मा ने कितना चेताया था, फिर भी नहीं चेते! हम ऊपर बैठेंगे स्वर्ग में, और तुम नर्क में सड़ोगे, तब तुम जानोगे असली बात; तब राज तुम्हें पता चलेगा।
लेकिन जो आदमी दूसरों को नर्क में सड़ा रहा है, यह उनके पहले नर्क पहुंच जाएगा। तुमको, महात्मा जी तुम्हारे, अगुआ की तरह मिलेंगे, मार्गदर्शन करते हुए मिलेंगे नर्क के रास्ते पर। यहां भी तुम्हारे अगुआ हैं, वहां भी तुम्हारे अगुआ होंगे! भेद नहीं पड़ने वाला है। क्योंकि जो आदमी कठोर है, वह स्वर्ग नहीं जा सकता। जो आदमी कठोर है, वह सुख की उमंग से ही नहीं भर सकता। और जो आदमी अपने प्रति कठोर है, वह सबके प्रति कठोर हो जाता है।
तुम देखते होः अडोल्फ हिटलर में और महात्मा गांधी में बहुत फर्क नहीं है। अडोल्फ हिटलर भी अपने प्रति उतना ही कठोर था, जितना महात्मा गांधी। हिंदुस्तान में होता, तो हम कहते, महात्मा हिटलर! शाकाहारी था। कभी मांसाहार नहीं किया। ब्रह्म-मुहूर्त में उठता था, याद रखना। बिल्कुल हिंदू था! सूरज उग आए--कभी नहीं सोया उसके बाद। सूरज उगने के पहले उठ आता था। न चाय पीता था, न सिगरेट पीता था, न शराब पीता था। और महात्मा में क्या गुण होने चाहिए?
मगर यह दुष्ट आदमी सारी दुनिया को भयंकर विनाश में ले गया। इसकी कठोरता! यह अपने पर कठोर था; इसने पूरी जर्मन जाति को सेना-स्थल में बदल दिया। इसने प्रत्येक जर्मन को कठोर बना दिया। ये कठोर बनने की तरकीबें हैं।
मैं कई बार सोचता हूं कि अगर यह दो-चार सिगरेट पी लेता, तो कुछ हर्जा नहीं था, लाभ ही होता दुनिया को। यह अगर किसी स्त्री के प्रेम में पड़ जाता और थोड़ी मूढ़ताएं कर लेता, तो लाभ ही होता दुनिया को। एकाध-दो बच्चे इसको पैदा हो जाते, और यह ब्रह्मचारी ही न रहता, तो शायद इसके जीवन में थोड़ी सरसता आ जाती। तो शायद दूसरों के बच्चे हैं--और उन पर बम गिराना कठिन हो जाता। कि दूसरे लोग भी प्रेम करते हैं, कि उनकी भी प्रेम की आकांक्षाएं हैं--उनको मारना कठिन हो जाता।
लेकिन यह कठोर महात्मा था। यह महात्मा दुनिया को महायुद्ध में ले गया।
दुनिया महात्माओं से बुरी तरह पीड़ित रही है। कारण? वे अपने को ही प्रेम करने में असमर्थ हैं; दूसरे को प्रेम न कर सकेंगे। वे अपने को सताने में कुशल हैं, वे दूसरों को भी सताने के मौके खोजते रहेंगे।
यह कौशल नरेश! यह तो सोच रहा है कि यह आदमी नर्क जाएगा। न कभी सुख से जीया, न खाया, न पीया। सब पड़ा रह गया! दान कर लेता। पुण्य कर लेता। कुछ कर लेता। लेकिन स्वयं बुद्ध को भूल गया। वह इस तरह उलझा रहा धन को ढुलवाने में कि एक भी दिन भगवान के पास न आ सका। वैसे साधारणतः वह नियम से प्रतिदिन प्रातःकाल भगवान के दर्शन और सत्संग के लिए आता था।
आज कसौटी थी। धन को छोड़कर आना संभव नहीं हुआ। सब सुविधा में चल रहा था,
तो आने में कोई अड़चन न थी। वहां भी बैठकर झपकी लेता होगा। वहां भी बैठकर विश्राम करता होगा। वहां भी बुद्ध जो कहते होंगे, सुनता नहीं होगा। सुना होता, तो सात दिन तक भूल कैसे जाता? वह सब सुना मिट्टी में गया। उस सब सुने में कुछ सार नहीं।
सुना होता, तो आज तो यह बड़ा प्रमाण मिल गया था, बुद्ध जो कहते थे उसी काः कि यह सब पड़ा रहा जाएगा। यह सब ठाठ पड़ा रह जाएगा, जब बांध चलेगा बनजारा! आज तो प्रमाण मिल जाता, आज तो देखकर आंखें खुल जातीं, कि बुद्ध ठीक ही कहते हैं। अब और देर करनी उचित नहीं। जैसे यह श्रेष्ठी मर गया, ऐसे कल मैं मर जाऊंगा। उसके पहले कुछ कर लूं, कुछ खोज लूं, कुछ सत्य से नाता जोड़ लूं। बुद्ध के चरण पकड़ लूं। बुद्ध जो कहते हैं, उसे गुन लूं, उसे जीवन में उतार लूं।

लेकिन जिस दिन धन ढुलवाने का काम पूरा हुआ, उसे उस दिन फिर भगवान की याद आयी!
अब फिर खाली था। फिर फुरसत थी। तो भगवान यानी एक तरह का मनोरंजन। काम-वाम अब नहीं है कुछ। अब चलो, वहां हो आएं। इस संसार को तो सम्हाल ही लें, उस संसार को भी सम्हाले रहें। और जब भी दोनों में संघर्ष हो, तो इसको पहले सम्हालना है, उसको बाद दे देनी है।
सो वह भरी दुपहरी में भगवान के पास जा पहुंचा।
शायद थोड़ा भीतर अपराध-भाव भी हुआ होगा--कि सात दिन से नहीं गया हूं; भगवान पूछेंगेः कहां रहे! शायद भीतर कुछ कलुष भी लगा होगा, कालिमा भी लगी होगी कि यह भी मैंने क्या किया! शायद उसी अपराध के कारण दोपहर में ही पहुंच गया। जाता सुबह था, वही मिलने का समय भी था। असमय पहुंच गया। भर दोपहर! भगवान ने उससे दोपहर में आने का कारण पूछा। भगवान ने यह नहीं पूछा कि सात दिन क्यों नहीं आया!
नहीं; बुद्ध जैसे व्यक्ति तुम्हें पीड़ा देना ही नहीं चाहते, किसी तरह
की पीड़ा नहीं देना चाहते। यह पूछना अशोभन होगा कि सात दिन क्यों नहीं आया! यह उसके घाव को छूना होगा। अब जो हुआ, हुआ।
बुद्ध जैसे व्यक्ति क्षमा करना जानते हैं। देख तो रहे हैं कि सात दिन
से नहीं आया। पता भी चल चुका होगा; खबर भी आ गयी होगी कि श्रेष्ठी मर गया, उसका धन ढो रहा है कौशल नरेश। लेकिन यह नहीं पूछा कि सात दिन क्यों नहीं आए। पूछा यहीः आज भर दुपहरी में कैसे चले आए!
बुद्ध जैसे व्यक्ति सदा विधायक को देखते हैं, नकारात्मक को नहीं। अंधेरे को छोड़ देते हैं, रोशनी को पकड़ते हैं। क्योंकि रोशनी में ही ले जाना है, तो रोशनी को ही पकड़ना उचित है।
राजा ने सब समाचार बताए और फिर पूछाः भंते! उस अपुत्रक श्रेष्ठी के पास इतना धन था, फिर भी वह रूखा-सूखा खाता था, फटा-पुराना पहनता था, टूटे हुए जराजीर्ण रथों पर चलता था! मामला क्या है? इसका राज क्या है?
सुनकर भगवान ने कहाः महाराज! वह पूर्व काल में तगरशिखी बुद्ध को दान दिया था, जिसके फलस्वरूप इतनी धन-संपत्ति उसे मिली थी। दान तो बहुत छोटा था... ।
बीज बड़ा छोटा होता है जैसे, और फिर विराट वृक्ष बन जाता है, ऐसा ही दान
का बीज है। और ध्यान रखनाः ऐसा ही पाप का बीज भी है। तुम जो बोओगे, वही बड़ा होता चला जाता है। तो बोते समय ख्याल रखना। कहीं जहर के बीज मत बो लेना। एक बार जो तुमने बो दिया है, उसकी फसल काटनी पड़ेगी। और जो बोया है, वही बड़ा होकर मिलेगा।
छोटा सा बीज तुम बोते हो, और बड़ा वृक्ष हो जाता है, जिसके नीचे सैकड़ों लोग बैठ सकें छाया में; कि अनेक बैलगाड़ियां विश्राम कर सकें; कि अनेक पक्षी बसेरा कर सकें। बड़ा हो जाता है वृक्ष। खूब फल लगते हैं, खूब फूल लगते हैं। एक बीज से फिर अनंत बीज लगते हैं। इसलिए सोच-समझकर बीज बोना।
दान तो उसने किसी बुद्धपुरुष को--तगरशिखी को--थोड़ा सा ही दिया था। ज्यादा देने की उसकी क्षमता भी नहीं थी। देने की क्षमता होती, तो फिर पछताता ही क्यों? दे गया होगा किसी संवेग के क्षण में।
इस बात को ख्याल में लेना। अक्सर संवेग का क्षण होता है। किसी की वाणी सुनी, तगरशिखी को सुना होगा, उनके अपूर्व वचन! भाव में आ गया होगा, संवेग में आ गया होगा। उस संवेग के क्षण में ही बोल गया होगा खड़े होकर--कि चलो, इतना दान करता हूं। वह भावाविष्ट दशा रही होगी। जब घर लौटा होगा, तब रास्ते में सोचा होगाः यह मैं क्या कर गया!
मार्क ट्वेन ने लिखा है कि मैं एक चर्च में व्याख्यान सुनने गया। दस मिनट तक सुना। ऐसा व्याख्यान मैंने कभी सुना नहीं था। बड़ा अपूर्व था। सौ डालर मेरे खीसे में थे। मैंने सोचा कि आज सौ ही डालर दान दे दूंगा।
जैसे ही यह सोचा कि सौ ही डालर दान दे दूंगा; मन में हजार शंकाएं- कुशंकाएं उठने लगीं। कि हो सकता है, यह आदमी सिर्फ बोलने में कुशल हो! हो सकता है कि यह सिर्फ बातचीत ही बातचीत हो, भाषा का ही जाल हो, शैली का ही प्रभाव हो। नहीं; सौ ज्यादा हैं; पचास से काम चल जाएगा।

जब से सौ देने का विचार किया, तब से सुनना तो बंद ही हो गया, क्योंकि वह भीतर विचार चलने लगाः पचास से ही काम चल जाएगा। अब सुनने में ठीक-ठीक रस भी नहीं आ रहा था, क्योंकि देने का भाव पैदा हो गया था। अब तो घबड़ाहट होने लगी।
और दस मिनट सुना। उसने सोचा कि नहीं, पचास के लायक यह आदमी नहीं! तुम हमेशा अपने मन का हिसाब खोज लेते हो। पच्चीस से काम चल जाएगा!
घंटे पूरे होते-होते तो वह आ गया दो डालर पर! और उसने लिखा है कि फिर मैं निकल भागा वहां से--कि कहीं ऐसा न हो कि जब दान को बटोरने वाली थाली मेरे पास आए, तो मैं उसमें से कुछ निकाल लूं। जब सौ से दो पर आ गया, तो कितनी देर लगेगी निकालने में! और डर इतना लगा कि--मार्क ट्वेन ने लिखा--कि मैं निकल भागा इसके पहले कि थाली आए; नहीं तो उलटे पाप हो जाए कुछ!
संवेग का क्षण था। दस मिनट के बाद अगर उसने दे दिया होता, तो सौ डालर
दे दिए होते। लेकिन पछताता फिर। घर पहुंचते-पहुंचते रोता--कि यह भी क्या भूल कर ली! मैं भी कैसे सम्मोहन में पड़ गया! मेरे जैसा बुद्धिमान आदमी! और धोखे में आ गया!
यह धनपति बुद्ध को दान दिया, जिसके फलस्वरूप उसे इतनी धन-संपत्ति मिली। इस धन-संपत्ति को जो तूने सात दिन तक बैलगाड़ियों में ढोया है, यह उस एक छोटे से बीज से पैदा हुई।
दो--बहुत मिलता है। जो दोगे--वही मिलता है। जितना दोगे, उससे अनंत गुना मिलता है। और जरूरी नहीं है कि तुम जाकर मंदिर में दो, कि मस्जिद में दो; जहां देना हो, वहां दो। पत्नी को दो, बच्चों को दो, पड़ोसियों को दो, मित्रों को दो। देने की भावदशा रहे।
दान तो उसने थोड़ा दिया था, बुद्ध ने कहा, पर दान देकर पछताया बहुत। जितना दिया था, उससे अनंत गुना पछताया। ऐसे एक बीज तो अमृत का बोया और हजार बीज उसी के आसपास जहर के बो दिए। अमृत का वृक्ष भी बड़ा हुआ, जहर के फूल भी लगे। तो वह जहर की बागुड़ में घिर गया अमृत का वृक्ष। जहरीले फलों ने सब तरफ से कंटीली झाड़ियों की तरह अमृत के वृक्ष को घेर लिया। वे बहुत थे।
उस पछतावे के कारण ही उसका मन फिर अच्छा खाने-पहनने में नहीं लगता था।
यह उसी जन्म से शुरू हो गया। दे आया होगा कुछ दान, अब सोचता होगाः कैसे उतना दान निकाल लूं वापस! कहां से निकालूं? तो चलो, थोड़ा कम खाओ, थोड़ा कम पहनो। इस वर्ष नहीं बनाएंगे नया कोट सर्दियों में, तो चलेगा। पुराना बिल्कुल ठीक है। और नहीं लेंगे नया रथ। अब लोग कारें लेते हैं, तब रथ लेते थे! नहीं लेंगे नया रथ, नया माडल नहीं लेंगे। पुराने ही माडल से एक साल और खींच लेंगे। थोड़ा इसी में टीम-टाम, रंग वगैरह करवा लो। यह घोड़ा यद्यपि बूढ़ा हो गया है, लेकिन अभी दो साल और चल जाएगा।
वह जो दान कर आया था, उसको बचाना जरूरी है। तो उसको रस चला गया खाने- पहनने में। और वह जो रस गया, सो गया। वह अभी तक नहीं लौटा। अनंत जन्म बीत गए होंगे इस बीच, क्योंकि तगरशिखी बुद्ध गौतम बुद्ध से कोई पांच हजार साल पहले थे। कितने जन्म इस आदमी के हो गए होंगे!
लेकिन ख्याल रखनाः गंगोत्री में गंगा बड़ी छोटी है, गो-मुख से गिरती है। फिर गंगासागर में जाकर बहुत बड़ी हो जाती है, सागर हो जाती है। ऐसे ही जीवन है तुम्हारा। जो किया है, वह रोज बड़ा होता जाता है।
एक-एक कृत्य सोचकर करना, एक-एक कृत्य ध्यानपूर्वक करना, नहीं तो बहुत पछताओगे। अशुभ से बच सको, तो अच्छा। शुभ कर सको, तो अच्छा। और एक ही बात से तौल लेनाः अहंकार और निरअहंकार। जिस बात से भी अहंकार को पुष्टि मिलती हो, समझ लेना कि कुछ गलत करने जा रहे हो। और जिस बात से भी अहंकार गलता हो, विसर्जित होता हो, समझ लेना कि पुण्य हो रहा है। क्योंकि मौलिक रूप से एक ही पाप है--अहंकार।
उस पछतावे के कारण रुपया हाथ से छोड़ने की इसकी क्षमता ही चली गयी।
दूसरों के लिए तो सवाल ही नहीं रहा, यह अपने लिए भी अब कठिन हो गया इसे।
इसने संपत्ति के लिए ही अपने भाई के मरने पर उसके इकलौते बेटे को भी जंगल में ले जाकर मार डाला--कि उसकी संपत्ति भी इसे मिल जाए।

इसका बेटा नहीं है कोई। यह निःसंतान है। इसके पास अपना बहुत है। लेकिन भाई का भी मिल जाए; तो उसके बेटे को मार डाला!
जो इतना कठोर हो गया कि अपने भाई के बेटे को मार सका... ! और कोई जरूरत नहीं थी इसको, क्योंकि इसके पास अपना खुद बहुत है, वह भी पड़ा रह जाने वाला है, उसका भी कोई मालिक नहीं है।
भाई के बेटे को मारकर इसका प्रेम बिल्कुल सूख गया। इसीलिए यह निःसंतान रह गया। इसके बांझ रह जाने का यही मूल कारण है। इस समय मरकर वह महा रौरव नरक में उत्पन्न हुआ है। क्योंकि पुराना किया हुआ पुण्य समाप्त हो गया है और नया पुण्य उसने किया नहीं।
ध्यान रखनाः पुण्य भी समाप्त हो जाते हैं! पुण्यों की भी सीमा है। कमाते ही रहोगे, तो ही साथ रहेंगे। बहती ही रहे पुण्य की धारा, तो ही ठीक है। रुकी--कि गयी। ऐसा ही समझो कि जैसे तुम आग जलाते हो। ईंधन झोंकते रहो, तो आग जलती रहेगी, जलती रहेगी। ईंधन बंद हो गया, थोड़ी-बहुत देर जलेगी पुराने ईंधन के कारण, फिर आखिर चुक जाएगी।
हर चीज चुक जाती है। पुण्य भी चुक जाते हैं। सिर्फ एक चीज है जो नहीं चुकती, वह पुण्य और पाप के भी अतीत है, उसको साक्षी भाव कहा है। वही भर नहीं चुकता। वही भर शाश्वत है, बाकी सब चीजें क्षणभंगुर हैं।
पुण्य भी दूर तक साथ जाता है। लेकिन सदा साथ नहीं जा सकता। कमायी है
एक तरह की, उसका लाभ ले लोगे, समाप्त हो जाएगी।
इसलिए जब अवसर मिले शुभ का, तो करते रहना। ऐसा मत सोचना कि बहुत कर चुके शुभ, अब क्या करना! जिस दिन तुमने ऐसा सोचा कि बहुत कर चुके शुभ, अब क्या करना है! उसी दिन से शुभ मरने लगेगा, उसी दिन से तुम्हारी पूंजी चुकने लगेगी। जैसे आदमी को कमाते रहना चाहिए, तो ही पूंजी आती है, ऐसे ही पुण्य करते रहना चाहिए, तो ही पुण्य में धारा बहती रहती है, सातत्य रहता है। राजा ने भगवान की बात सुनकर कहाः भंते! उसने बड़ा बुरा कर्म किया, जो आप जैसे बुद्ध के पास ही विहार में रहते हुए भी दान नहीं दिया, न धर्म-श्रवण किया। और अपनी इतनी संपत्ति को छोड़कर मर गया!
वह पुराने बुद्ध से जो एक दफे भूल हो गयी, उस कारण वह इन बुद्ध के पास आया भी नहीं होगा! मेरे देखने में ऐसा ही है। वह पछतावा इतना गहरा हो गया है कि एक दफा गया था--ऐसा कोई चेतन उसके मन में नहीं है, लेकिन गहरे अचेतन में संस्कार है--एक दफा गया था बुद्ध के पास, तब भूल हो गयी थी; दान कर बैठा था। अब ऐसी जगह फटकना भी नहीं। अब ऐसी जगह जाना भी नहीं। अब ऐसे लोगों से बचना।
ये खतरनाक लोग हैं। इनके पास आदमी भावाविष्ट हो जाता है और कुछ का कुछ
कर बैठता है! होश गंवा बैठता है! प्रेम में पड़ जाता है इनके। इनके साथ मदहोश हो जाता है। ऐसी जगह जाना ही नहीं। ऐसा मजबूत कर लिया होगा। ऐसी मजबूत धारा बन गयी होगी।
अब बुद्ध का पड़ाव पास में ही था, दो-चार घर के पास ही होगा। शायद वहीं
से रोज निकलता होगा। लेकिन निकलते वक्त मुंह फेर लेता होगा, या कानों में अंगुलियां डाल लेता होगा। हालांकि कानों में अंगुलियां डालने की जरूरत नहीं, क्योंकि लोग वैसे ही बहरे हैं! आंख उस तरफ कर लेता होगा। हालांकि कोई जरूरत नहीं, क्योंकि लोग आंख के रहते भी देखते कहां हैं!
जल्दी-जल्दी निकल जाता होगा कि कहीं कोई जान-पहचान का आदमी न मिल जाए
और कहे कि आओ, आज तो सत्संग कर लो। कहीं कौशल नरेश न मिल जाएं सत्संग से आते हुए--कि अरे, कभी आते नहीं! कहीं लाज-संकोच में, किसी की बात के प्रभाव में फंस न जाऊं! उस रास्ते से न निकलता होगा। दूसरे रास्तों से जाता होगा। बचता होगा।
कौशल नरेश ने कहाः भंते! उसने बड़ा बुरा कर्म किया, जो आप जैसे बुद्ध के पास ही विहार में रहते हुए न दान दिया, न धर्म-श्रवण किया और अपनी इतनी संपत्ति को छोड़कर अंततः मर ही गया न! काम क्या आया!
अब ये कौशल नरेश किससे कह रहे हैं? इनको भी यह समझ में नहीं आया कि वह संपत्ति अपनी नहीं है, जिसको घर ढो लाए। अपनी न दें; कम से कम जो अपनी नहीं है, उसको तो दान कर दें! इन्हें यह भी याद नहीं आ रहा है कि सात दिन दूसरे की

संपत्ति घर ढोने में बुद्ध को भूल गए थे। वह बेचारा तो अपनी संपत्ति को बचाने में भूला था; ये तो दूसरे की संपत्ति लूटने में भूल गए थे! यह भी दिखायी नहीं पड़ता।
कुछ बड़ा मजा है। इस सत्य को ठीक से समझना। हमें दूसरों के कृत्य दिखायी पड़ते हैं, उनके मनोभाव नहीं दिखायी पड़ते। हमें अपने मनोभाव दिखायी पड़ते हैं, अपने कृत्य नहीं दिखायी पड़ते। और यह एक बड़ी जटिल मनोवैज्ञानिक गुत्थी है।
जैसे कोई आदमी चोरी करता है। तो हमें उसका कृत्य दिखायी पड़ता है कि इसने चोरी की। हमें यह नहीं दिखायी पड़ता कि इसके भीतर मनोभाव क्या थे। उस चोर को स्वयं अपना चोरी का कृत्य नहीं दिखायी पड़ता। उसको अपने मनोभाव दिखायी पड़ते हैं। उसके मनोभाव समझो।
इसलिए चोर कहेगाः मुझे कोई समझता नहीं है। मुझे कोई समझ नहीं पाता।
तुम सभी यही कहते होः कोई मुझे समझता नहीं! पत्नी पति को नहीं समझती; पति पत्नी को नहीं समझता। बाप बेटे को नहीं समझता; बेटा बाप को नहीं समझता। भाई-भाई को नहीं समझता। कोई किसी को समझता ही नहीं! इस दुनिया में हरेक को एक ही शिकायत है, कोई मुझे समझता नहीं।
कारण क्या होगा इस शिकायत का? यह इतनी सार्वभौम है! कारण यही है। तुम्हें अपना मनोभाव दिखायी पड़ता है।
जो आदमी चोरी करने गया, उसके मन में भी ख्याल उठा कि चोरी करना ठीक नहीं है। लेकिन और हजार बातें उठीं--कि जिसकी मैं चोरी करने जा रहा हूं, इसके पास जरूरत से ज्यादा पहले ही से है। इससे लेने में हर्जा क्या? शायद मैं एक तरह का साम्यवाद फैला रहा हूं; चोरी नहीं कर रहा हूं। इसका खुद का कहां है? दूसरों से छीनकर बैठा है। यह खुद चोर है। इससे ले लेने में हर्ज नहीं है।
फिर मेरी देखोः पत्नी बीमार है, और बच्चे को दूध भी नहीं मिलता। पत्नी
की बीमारी, पत्नी को बचाना है। पत्नी को दवा नहीं है, बच्चे को दूध नहीं है। ये दो जीवन बचाने के लिए अगर थोड़ी सी चोरी की, तो इसमें पाप कैसे हो सकता है? दो जीवन बचा रहा हूं।
फिर भीतर वह सोचता है कि आज जरूरत है, तो चोरी कर लेता हूं। जब मेरे पास होगा, दान कर दूंगा। सब ठीक हो जाएगा। गंगा स्नान कर आऊंगा। मंदिर में पुण्य कर दूंगा। और अगर चोरी ठीक से हाथ लग गयी, तो इसमें से कुछ--एक नारियल--हनुमानजी को चढ़ा आऊंगा! गरीबों को बांट दूंगा कुछ इसमें से। उसके मनोभाव! वह अपने मनोभाव देखता है। उसके मनोभाव अच्छे-अच्छे बनाता है। उन अच्छे मनोभावों की बड़ी श्रेणी में वह चोरी का छोटा सा कृत्य बिल्कुल दब जाता है। उसे इसमें कुछ खास बात नहीं दिखायी पड़ती। अपने ही मनोभावों को गूंथकर वह चोरी करने चला जाता है। जैसे कि पुण्य करने जा रहा है, जैसे कि कोई बड़ा महाकृत्य करने जा रहा है, जैसे दुनिया की सेवा करने जा रहा है!
तुम्हें दिखायी पड़ता है उसका चोरी का कृत्य, तुम कहते हो, पापी है! और
तब वह कहेगाः तुम मुझे समझ नहीं पा रहे!
तुम्हें कृत्य दिखता है, उसे अपने मनोभाव दिखते हैं। और यही हालत तुम्हारी है। तुम्हें अपने कृत्य नहीं दिखते, और अपने मनोभाव दिखते हैं। इसलिए दुनिया में कोई किसी को समझता हुआ मालूम नहीं पड़ता।
हिटलर ने लाखों यहूदी मार डाले। उसको यही ख्याल था कि इनको मारने से दुनिया का हित होगा। वह दुनिया के हित के लिए कर रहा था, कल्याण के लिए कर रहा था! स्टैलिन ने लाखों लोग रूस में मार डाले--साम्यवाद आएगा! दुनिया में सुख आएगा!
न तो हिटलर के मारने से यहूदियों को दुनिया में कोई सुख आया। और न स्टैलिन के लाखों लोगों को मार डालने से दुनिया में कोई साम्यवाद आया। फिर वही माओ ने किया। फिर दुनिया में सभी यही करते हैं। मगर करने वाला यह सोचता है कि मेरे भाव! वे भाव उसको ही दिखायी पड़ते हैं, किसी और को दिखायी नहीं पड़ते; और बड़ी भूल-चूक हो जाती है।
एक झूठा लतीफा।

मेरे दो संन्यासी, विजयानंद और विनोद, एक बस में सफर कर रहे थे और बीच में एक बड़ी अपूर्व महिला--टुनटुन बैठी थी। अब टुनटुन बीच में बैठी हो, तो सीट तो उसने पूरी ले ही ली थी। वे किसी तरह अपने को सम्हाले थे दोनों कोनों पर। गिरे--अब गिरे, तब गिरे! बस जरा हिलती--कि गिरे!
फिर विनोद ने धीरे से कहा, बहनजी! टेहुनी तो न मारो। मगर उसने सुना ही नहीं। फिर विजयानंद ने भी हिम्मत बांधी और कहा, बहनजी! जरा जोर से कहा, टेहुनी तो न मारो। मगर उसने वह भी न सुना। तब जरा विनोद को क्रोध भी आ गया। उसने कहा कि सुनती हैं कि नहीं बहनजी! टेहुनी न मारो। तो टुनटुन ने कहाः अरे, हद्द हो गयी। क्या श्वास लेना भी जुर्म है!
वह तो बेचारी सिर्फ श्वास ले रही है। लेकिन अब मोटी महिला! श्वास ले,
तो दूसरे समझ रहे हैं कि टेहुनी मार रही है।
ऐसी भूल रोज होती है। आदमी अपने भीतर अपना मनोभाव देखता है। दूसरा व्यक्ति उसके बाहर क्या कृत्य घट रहा है, वह देखता है। इसलिए कोई किसी को समझ नहीं पाता।
यह कौशल नरेश उसका कृत्य तो देख रहा है, उसका मनोभाव नहीं देखा। कैसे देखे? अपना मनोभाव देख रहा है; अपना कृत्य नहीं देख रहा है। कैसे देखे? जो अपना कृत्य देखने लगे और दूसरों के मनोभाव देखने लगे, वही बुद्धत्व को उपलब्ध है। फिर उससे भूल नहीं होती। फिर किसी को समझने में उससे भूल नहीं होती।
शास्ता हंसे और बोले... । इसलिए बुद्ध हंसे, यह देखकर कौशल नरेश की बात,
कि यह दया खा रहा है उस गरीब पर, जो मर गया है। इसे दया अपने पर नहीं आ रही! यह सोच रहा है कि उसने कैसा महापाप किया। लेकिन यह अपने बाबत जरा भी विचार नहीं कर रहा है!
असल में हम दूसरों के संबंध में इसलिए विचार करते हैं, ताकि हम अपने संबंध में विचार करने से बच जाएं।
हम सोचते ही रहते हैं दूसरों के संबंध में! तुमने कभी अपने संबंध में सोचा? कभी घड़ी आधा घड़ी बैठकर तुमने कभी अपने संबंध में सोचा? जब तुम घड़ी आधा घड़ी बैठते हो शांत, तब भी तुम दूसरों के संबंध में सोचते हो! पड़ोसियों के संबंध में, अखबार में छपी खबरें, फिल्मों में देखी कहानियां, रेडियो पर सुने गीत--वही गूंजते रहते हैं। और तुम उसी विचार में तल्लीन रहते हो! दूसरा महत्वपूर्ण नहीं है। पहले अपने में तो जाग लो, अपने को तो देख लो! पहले दर्पण अपने चेहरे के सामने करो; उससे ही क्रांति की शुरुआत है, उससे ही धर्म का प्रारंभ है।
इसलिए शास्ता हंसे और बोलेः ऐसे ही महाराज! बुद्धिहीन पुरुष धन-संपत्ति पाकर भी निर्वाण की तलाश नहीं करते हैं। और धन-संपत्ति के कारण उत्पन्न तृष्णा उनका दीर्घकाल तक हनन करती है।
फिर भी बुद्ध ने सीधा नहीं कहा। फिर भी बुद्ध ने परोक्ष ही कहा। बुद्ध
ने फिर भी सत्य ही कहा, लेकिन उस सत्य को व्यक्ति-सूचक नहीं बनाया। सिर्फ इतना ही कहाः ऐसे ही महाराज! बुद्धिहीन पुरुष धन-संपत्ति पाकर भी निर्वाण की तलाश नहीं करते हैं।
जिनके पास धन-संपत्ति नहीं है, जिनके पास भोजन नहीं है, कपड़े नहीं, छप्पर नहीं, अगर वे निर्वाण की तलाश न करें, उन्हें क्षमा किया जा सकता है। क्योंकि अभी उनके जीवन की छोटी-छोटी समस्याएं ही इतनी बड़ी हैं, उनको ही नहीं सुलझा पा रहे हैं। लेकिन जिनके पास सब है, जिन्हें अब कोई उलझाव नहीं रहा है, वे भी अगर सत्य की तलाश न करते हों, तो उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता।
अगर गरीब धार्मिक न हो, क्षम्य है। अगर अमीर धार्मिक न हो, तो बुद्धू है, क्षम्य नहीं है। तो जड़ है। मंद है। अगर गरीब धार्मिक हो, तो महाबुद्धिशाली है। और अगर अमीर धार्मिक हो, तो होना ही चाहिए; इसमें कुछ महाबुद्धिशाली होने की बात नहीं है।
इन सत्यों को ख्याल में रखना। जब तुम्हारे पास सब सुविधा हो, जब तुम घड़ीभर शांत बैठ सकते हो द्वार बंद करके, संसार को भूलने की सुविधा हो

तुम्हें घड़ीभर के लिए, तो भूलना। क्योंकि उसी भूलने से तुम्हें परमात्मा की सुधि आनी शुरू होगी; सुरति जगेगी।
बुद्ध ने कहाः हां महाराज! ऐसा ही हाल है। और हंसे। शायद कौशल नरेश ने उनके हंसने का भी यही अर्थ लगाया होगा कि हंस रहे हैं उस दुर्बुद्धि निःसंतान श्रेष्ठी के लिए। फिर भी शायद न सोचा होगा कि यह हंसने का तीर कौशल नरेश की तरफ है।
आदमी अपने को बचा लेता है। बच जाता है। तीर आता है, तो इधर सरक जाता, उधर सरक जाता। तीर को निकल जाने देता है।
यह तीर सीधा था। बुद्ध ने हंसकर जो कहना था, कहा था। देखकर हंसे होंगे
कि कैसी दुर्दशा है मनुष्य की! यह दूसरे की भूलें देख रहा है और उन्हीं भूलों में खुद पड़ा है!
धन-सपंत्ति के कारण उत्पन्न तृष्णा अनंतकाल तक स्वयं का हनन करती है। "संसार को पार होने की कोशिश नहीं करने वाले दुर्बुद्धि मनुष्य को भोग नष्ट करते हैं। भोग की तृष्णा में पड़कर वह दुर्बुद्धि पराए की तरह अपना ही घात करता है।"
तुम ध्यान रखनाः जो व्यक्ति ध्यान नहीं कर रहा है, वह जाने-अनजाने आत्मघात कर रहा है। क्योंकि जो ध्यान नहीं कर रहा है, वह आत्मा को न पा सकेगा। जो ध्यान नहीं कर रहा है, वह मरणधर्मा में उलझा रहेगा। और मरणधर्मा में जीवन का सार नहीं है। वह क्षुद्र में ही लगा रहेगा। और क्षुद्र में कोई आनंद नहीं है। क्षुद्र में कोई मुक्ति नहीं है। यह आत्मघात है। जिसको तुम जीवन कहते हो, यह आत्मघात है; रोज-रोज मरते जाते हो। एक-एक दिन बीतता और जीवन कम होता जाता है। जितने दिन बीत गए, उतने अवसर बीत गए। उतने दिन बीत गए, जिनमें तुम स्वयं को उपलब्ध हो सकते थे, जिनमें परमात्मा का साक्षात हो सकता था, जिनमें शून्य घट सकता था, पूर्ण घट सकता था--उतने अवसर बीत गए।
मगर मैं यह नहीं कह रहा हूं कि जो बीत गए दिन, उनके लिए बैठकर रोओ अब।
अब जो बीत गए, सो बीत गए। अब रोने में इसको भी मत गंवा देना।
और सुबह का भूला सांझ भी घर आ जाए, तो भूला नहीं है; भूला नहीं कहाता है। और सदा समय है। अगर एक पल भी बाकी है तुम्हारे जीवन का... और निश्चित ही अभी जीवित हो, तो यह पल तो है ही। आने वाले पल की कोई बात नहीं, यह पल तो तुम्हारे हाथ में है। यह पल भी अगर तुम पूरी त्वरा से अपने को देख लो, तो रूपांतरण का पल हो जाए।
एक क्षण में संसार मिट सकता है और परमात्मा सामने हो सकता है। गहन तीव्रता चाहिए, उत्तप्तता चाहिए, सब दांव पर लगाने की क्षमता चाहिए। दूसरी परिस्थितिः

भगवान के तातविंस भवन में पांडुकमल शिलासन पर बैठे समय, देवताओं में
यह चर्चा चली--कि इंदक के अपने लिए लाए भोजन में से कलछीभर अनुरुद्ध स्थविर को दिया दान का फल, अंकुर के दस हजार वर्ष तक बारह योजन तक चूल्हों की कतार बनवाकर दिए हुए दान से भी महाफल का हुआ। यह कैसा गणित है? इसके पीछे तर्क-सरणी क्या है?
इसे सुनकर शास्ता ने अंकुर से कहाः अंकुर! दान चुनकर देना चाहिए। ऐसा करने से वह अच्छे खेत में भली प्रकार बोए हुए बीज के सदृश्य महाफल होता है। किंतु तूने वैसा नहीं किया, इसलिए तेरा दान महाफल नहीं हुआ। दान ही सब कुछ नहीं है; जिसे दिया, वह भी अति महत्वपूर्ण है। और जिस भावदशा से दिया, वह भी अति महत्वपूर्ण है। और तब उन्होंने ये गाथाएं कहींः

तिणदोसानि खेत्तानि रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं।।
तिणदोसानि खेत्तानि दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फलं।।
तिणदोसानि खेत्तानि मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु दिन्नं होति महप्फलं।।

तिणदोसानि खेत्तानि इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फलं।।

"खेतों का दोष है घास-पात, खेतों का दोष है तृण, इसी तरह प्रजा का दोष
है राग। इसलिए वीतराग लोगों को दान देने में महाफल होता है।"
"खेतों का दोष है तृण, इसी प्रकार प्रजा का दोष है द्वेष। इसलिए वीतद्वेष व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।"
"खेतों का दोष है तृण, इस प्रजा का दोष है मोह। इसलिए वीतमोह व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।"
"खेतों का दोष है तृण, इस प्रजा का दोष है इच्छा। इसलिए विगतेच्छ व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।"
पहले तो परिस्थिति को खूब हृदयंगम कर लें। यह कथा थोड़ी अनूठी है। इस कथा में दो दृश्य हैं। इस एक दृश्य में दो दृश्य समाए हैं।
पहलाः भगवान तो अपने भिक्षुओं के पास बैठे हैं। भिक्षुओं ने उन्हें घेरा हुआ है। उनके सामने ही एक महादानी अंकुर नाम का व्यक्ति बैठा हुआ है, उसने अपूर्व दान किया है। उसका दान ऐसा है कि इतिहास में खोजे से न मिले। उसने ऐसा दान किया हैः दस हजार वर्ष तक--जन्मों-जन्मों से वह दान कर रहा है--बारह योजन तक चूल्हों की कतार बनवाकर दान देता रहा है निरंतर।
जितना दिया है, उतना उसे और मिला है। लेकिन हर बार जितना मिला है, वह
भी उसने दे दिया है। ऐसे उसका धन भी बढ़ता गया, उसका दान भी बढ़ता गया। जितना दान बढ़ा है, उतना धन बढ़ा। जितना धन बढ़ा, उतना उसने दान बढ़ाया है। ऐसे दस हजार सालों में उसकी सारी जीवन-यात्रा दान की महाकथा है। बारह योजन तक चूल्हों को बनवा रखा है उसने। और उसमें जो भी तैयार होता है रोज भोजन, वह दान करता है। लाखों लोगों को भोजन देता है, कपड़े देता है।
वह अंकुर महाश्रेष्ठी सामने ही बुद्ध के बैठा है।
ऊपर आकाश में देवताओं की बैठक हो रही है। वे देवता आपस में सोचते हैं
कि एक बड़ी अजीब बात है। यह अंकुर बैठा है बुद्ध के सामने। इसने इतना दान दिया है। लेकिन हमने सुना है कि एक छोटे से दान के सामने भी इसका दान कुछ नहीं है। वह दान किया था इंदक नाम के आदमी ने।
वह इंदक भी वहां बुद्ध के पास मौजूद है। कहीं पीछे बैठा होगा। क्योंकि वह महाश्रेष्ठी नहीं है। उसको कोई जानता भी नहीं है। उसका दान भी ऐसा नहीं है कि उसकी कोई प्रशंसा करे। उसने दान दिया था अनुरुद्ध नाम के एक ब.ूढे भिक्षु को--स्थविर अनुरुद्ध को। वे बुद्ध के खास शिष्यों में एक थे, जो बुद्ध के सामने ही बुद्धत्व को उपलब्ध हुए।
इंदक ने अपने लिए लाए भोजन में से--इंदक खुद ही भिक्षु है, लेकिन अनुरुद्ध बीमार थे, और इंदक अपने लिए मांगकर भोजन लाया था--बूढ़े अनुरुद्ध को उसने कलछीभर अपने भोजन में से भोजन दिया। और देवता कह रहे हैं कि हमने सुना है कि उसका दान अंकुर के दान से ज्यादा श्रेष्ठ है और महाफल लाने वाला है।
भगवान के तातविंस भवन में पांडुकमल शिलासन पर बैठे समय देवताओं में
यह चर्चा चली--कि इंदक के अपने लिए लाए भोजन में से कलछीभर अनुरुद्ध स्थविर को दिया दान का फल, अंकुर के दस हजार वर्ष तक बारह योजन तक चूल्हों की कतार बनवाकर दिए हुए दान से भी महाफल हुआ है। यह कैसा गणित है? इसके पीछे तर्क-सरणी क्या है?
इसके पीछे बड़ी तर्क-सरणी है। अंकुर ने जो दिया है, उसके पास बहुत है, इसलिए दिया है। देकर उसे कोई अड़चन नहीं होती। देना सुविधापूर्ण है। सच तो यह है कि उसे हाथ में एक कला पकड़ गयी, एक कुंजी पकड़ गयी। दस हजार सालों में जितना दिया, उतना धन बढ़ता गया। उसने और दिया, तो और धन बढ़ता गया है। देने से उसे कोई कष्ट नहीं हुआ है। देने से उसे कोई पीड़ा नहीं हुई है। देने में कोई त्याग नहीं है, कोई बलिदान नहीं है। देना सुविधापूर्ण है।
इंदक का देना ज्यादा मूल्यवान सिद्ध हुआ है। इंदक भीख मांगकर लाया है। वह गरीब भिखारी जैसा भिक्षु है। उसकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। उसे कोई जानता नहीं है। उसे भीख मिलना भी मुश्किल होती होगी।

तुम थोड़ा सोचो! बुद्ध जब एक गांव में आते थे, तो उनके साथ दस हजार भिक्षु आते थे। छोटे-छोटे गांव बिहार के, उनमें दस हजार भिक्षुओं को भोजन मिलना! बड़ी कठिन बात थी। जो अग्रणी थे, उनको तो सरलता से मिल जाता था। लोग निमंत्रण दे देते थे--महाकाश्यप को, कि सारिपुत्त को, कि मौद्गल्यायन को, कि अनुरुद्ध को, कि मंजुश्री को--ये तो बड़े-बड़े प्रसिद्ध बोधिसत्व थे, इनको तो लोग निमंत्रण करके ले जाते थे। लेकिन फिर दस हजार भिक्षुओं की भीड़ थी। उसमें दीन-हीन भिक्षु भी थे, जिनका कोई नाम भी नहीं जानता था। इनको भिक्षा मिलनी भी कठिन हो जाती थी।
इंदक ऐसा ही गरीब भिक्षु है, अज्ञात नाम, अज्ञात कुल। मुश्किल से भिक्षा मिली होगी। हो सकता है, दो-चार दिन बाद मिली हो। दो-चार दिन भूखा रहा हो। और इधर आया और देखा कि अनुरुद्ध बीमार हैं। बूढ़े हैं। और भिक्षा मांगने नहीं जा सके हैं। शायद जो थोड़ा सा लाया था, उसमें से आधा या आधे से ज्यादा, कलछीभर, अनुरुद्ध को उसने दे दिया है।
इसके पीछे सीधा गणित है। जब तुम बिना किसी कष्ट के देते हो--देना तो अच्छा है, लेकिन इसका महाफल नहीं हो सकता। फल होगा। महाफल तो तब होगा, जब तुम जरूरत पड़े, तो अपने को त्याग कर भी देते हो, अपने को दांव पर लगाकर भी देते हो--तब महाफल होगा।
फल और महाफल में क्या फर्क है? फल बाहर का होता है; महाफल भीतर का। फल
तो हुआ अंकुर को। धन दिया था, धन मिलता रहा। जितना दिया, उतना धन मिलता रहा। यह फल है। इससे यह मत समझना कि उसको कम मिला। दस रुपए दिए थे, तो हजार मिले। हजार दिए, तो दस हजार मिले। दस हजार दिए तो लाख मिले, कि करोड़ मिले। तुम्हारे हिसाब में तो खूब महाफल हुआ। लेकिन बुद्ध की विचार सरणी में
वह महाफल नहीं है, क्योंकि धन ही मिला न। एक रुपया दिया था, करोड़ रुपए मिले, तो भी मिला तो धन ही न। बाहर का ही दिया था, बाहर का ही मिला। फिर ये करोड़ भी दे दोगे, तो और अनंत करोड़ मिलेंगे। मगर मिलेगा बाहर का ही। बाहर का दोगे, तो बाहर का ही मिलेगा। बाहर के देने से भीतर का नहीं मिलता है। और भीतर है, असली महाफल।
इस इंदक गरीब भिक्षु ने वह जो कलछीभर दिया, इसमें भीतर का भी कुछ दिया। बाहर का तो दिया ही, वह तो सब को दिखायी पड़ रहा है। भीतर का भी कुछ दिया। इसमें त्याग है, इसमें आहुति है। इसमें अपने को बाद देने की क्षमता है।
इसने अपने को हटा लिया बीच से। इसने अपने अहंकार को बीच में नहीं आने दिया, अपनी अस्मिता को बीच में नहीं आने दिया--कि मुझे भी जरूरत है, कि मैं भी भूखा हूं, कि मैं दो दिन का भूखा हूं--इसने यह कोई बात नहीं आने दी। वृद्ध, बीमार अनुरुद्ध, इसने अपना भोजन उन्हें दे दिया। यह शायद उस दिन भूखा ही रह गया होगा। अध-पेट रह गया होगा। पानी पीकर ही सो गया होगा। इसने भीतर का कुछ दिया है। इसका महाफल हुआ है।
देवताओं में चर्चा चलती है। क्योंकि देवता भीतर की बात नहीं देख सकते। देवता बाहर की ही देख सकते हैं। जो भीतर की देख लें, वे तो बुद्धपुरुष हो जाते हैं। उनको देवता नहीं कहा जाता। वे देवताओं के पार हो जाते हैं।
देवता तो सुख देख सकते हैं--धन का, पद का, प्रतिष्ठा का। देवता तो सुख में तल्लीन हैं, उनकी बाहर की पकड़ है। उनको समझ में नहीं आ रहा है--कि यह बात कुछ जंचती नहीं। यह कौन सा नियम है? हमने सुना कि इंदक का फल ज्यादा है! शायद बुद्ध ने कहा होगा कि इंदक का फल ज्यादा है।
अंकुर का फल है, लेकिन बहुत ज्यादा नहीं है। बाहर-बाहर का है। इससे इसकी आत्मा अछूती रह गयी है।
इसे सुनकर--देवताओं की इस चर्चा को सुनकर--शास्ता ने अंकुर से कहा, जो सामने ही बैठा हुआ है, कि अंकुर! दान चुनकर देना चाहिए। ऐसा करने से वह अच्छे खेत में भली प्रकार बोए हुए बीज के सदृश्य महाफल होता है। किंतु तूने वैसा नहीं किया है। इसलिए तेरा दान महाफल नहीं हुआ। दान ही सब कुछ नहीं है। जिसे दिया, वह भी अति महत्वपूर्ण है। और जिस भाव से दिया, वह तो और भी अधिक महत्वपूर्ण है।

किसको दिया!
जीसस भी बीज और खेत की बात करते हैं। वे कहते हैंः किसी ने आकर खेत में बीज फेंके। कुछ बीज रास्ते पर पड़े, रास्ता कठोर था, पथरीला था। बीज नहीं ऊगे। कुछ बीज मेड़ पर पड़े। ऊगे तो जरूर, लेकिन मेड़ पर लोग चलते थे, इसलिए ऊगे और मर गए। कुछ बीज खेत के बीच पड़े। ऊगे भी और बड़े फलवान हुए।
ऐसा ही, बुद्ध कहते हैं, बीज कहां डाला, इस पर भी बहुत कुछ निर्भर है। बीज तो है ही महत्वपूर्ण; लेकिन बीज को किस भूमि में बोया, यह भी बहुत महत्वपूर्ण है। अच्छी भूमि खोजी, कि ऐसे ही कहीं डाल दिया! रास्ते पर डाल दिया! मेड़ पर डाल दिया! जहां से लोग चलते हैं, वहां डाल दिया, कि ठीक-ठीक भूमि खोजी!
दान अगर ठीक भूमि खोजकर किया जाए, तो महाफलदायी होता है। किसको दिया? फिर किस भाव से दिया?
अंकुर को एक कुंजी हाथ लग गयी है। वह देखता हैः धन देने से धन मिलता है। यह तो बड़ा हिसाब सस्ता हो गया! यह तो दुकानदारी हो गयी। यह तो जिसको मिल जाएगी कुंजी, वही यह करने लगेगा।
तुम डरते हो कि देने से कहां मिलने वाला है; जो हाथ में है, वह चला जाएगा; इसलिए नहीं देते। लेकिन तुममें और अंकुर में बहुत फर्क नहीं है। तुम इसलिए नहीं देते कि तुम डरते हो कि देने से चला जाएगा। अंकुर देता है, क्योंकि जानता है कि देने से मिलता है।
मैंने सुना है, एक कार को एक भिखमंगे ने रोका। कार रुकी। भिखमंगे ने कहाः कुछ मिल जाए। कार के मालिक ने बाहर सिर झांककर देखा। भिखमंगा तो भिखमंगा था। लेकिन चेहरे का ढंग कुलीन था। कपड़े यद्यपि पुराने थे, फट गए थे, लेकिन कीमती थे। व्यक्ति के मांगने में, उसकी भाषा में शिष्टता थी। पढ़ा-लिखा था। विश्वविद्यालय का स्नातक होगा। उसके पास हवा सुसंस्कृत की थी, यद्यपि दीन-हीन खड़ा था।
वह धनपति चकित हुआ। उसने कहा कि मैं तुम्हें देखकर कह सकता हूं कि तुम अच्छे कुल से आते हो, सुशिक्षित हो, पढ़े-लिखे हो। यह दुर्दशा कैसे हुई? उसने कहाः आप न पूछें। दुख न पूछें। कुछ दे सकते हों, दे दें।
उस धनपति ने सौ डालर निकालकर उसको दिए। उस भिखमंगे ने हंसकर लिए और कहा कि अब आपको बता ही दूं। यही हालत मेरी थी कुछ वर्षों पहले। ऐसे सौ-सौ दे-देकर बरबाद हुआ। आप भी ज्यादा दिन इस हालत में न रहेंगे। मैं आपकी भविष्यवाणी किए देता हूं। जो मेरी हालत हो गयी, वही आपकी हो जाएगी!
आमतौर से यही हम सब सोचते हैं कि दिया, तो गया! इसलिए हम पकड़ते हैं। इस अंकुर को यह कला हाथ लग गयी कि दिया, तो बढ़ता है।
मगर तुममें और अंकुर में बुनियादी भेद नहीं है। तुम भी धन को पकड़ रहे
हो, वह भी धन को पकड़ रहा है। इसलिए भाव कोई शुभ नहीं है। अशुभ भाव से ही दिया जा रहा है। इसलिए बीज तो फेंक रहा है, लेकिन ठीक भूमि में नहीं पड़ रहे हैं।
और चूंकि देने से मिलता है, इसलिए देने में वह पात्रता की भी फिकर नहीं करता। देने से मिलता है--कोई ले जाए। चोर ले जाएं, हत्यारे ले जाएं। फिर चाहे इसके धन को पाकर हत्यारे हत्या करें, और चाहे चोर इसके धन को पाकर चोरी करें--इसकी इसे कोई चिंता नहीं है। यह फिकर ही नहीं करता कि किस खेत में बीज पड़ रहे हैं। इसको तो मिलने का राज हाथ लग गया।
इसलिए बुद्ध कहते हैंः किसको दिया, यह भी ख्याल में रहे। और किनको देने योग्य है... ।
"खेतों का दोष तृण है... ।"
जैसे खेतों में घास-पात उगी हो, वहां तुम बीजों को फेंक दो, खराब हो जाएंगे। घास-पात खा जाएगी उन बीजों को। पैदा भी होंगे, तो बढ़ न पाएंगे, घास-पात में खो जाएंगे।
"ऐसे ही प्रजा का दोष राग है।"
रागी को दोगे, तो तुम्हारा दिया हुआ खो जाएगा। उसके राग को ही बढ़ाएगा। जैसे किसी आदमी को तुमने रुपए दे दिए और वह वेश्यागामी है, तो करेगा क्या रुपयों का! वह वेश्या के यहां चला जाएगा।

मैंने सुना हैः एक चर्च में एक परिवार कभी नहीं आता था। तो चर्च की महिलाओं की समिति थी, उनको बड़ी चिंता हुई। वे सारी महिलाएं उनके पास गयीं-- कि तुम कभी चर्च नहीं आते! उन्होंने कहाः हम कैसे आएं! हमारे पास एक ही जोड़ी कपड़े हैं। इन्हीं को हम बाजार में पहनते, इन्हीं को हम काम में पहनते। ये फट भी गए, पुराने भी हो गए। चर्च में इनको पहनकर, इस गंदगी को लेकर कहां आएं! हमारे पास दूसरी जोड़ी कपड़े नहीं हैं।
उन महिलाओं को बड़ी दया आयी। उन्होंने जल्दी से पैसा इकट्ठा किया सब ने। बाजार गयीं। अच्छे वस्त्र उनके लिए खरीदकर लायीं। पूरे परिवार के लिए। पत्नी, बच्चे, पति... । और दूसरे रविवार को उन्होंने बड़ी प्रतीक्षा की चर्च में, लेकिन वे नहीं आए। बड़ी चकित हुईं। वापस उनके घर पहुंचीं। पूछा कि आए क्यों नहीं?
उन्होंने कहा कि कपड़े पहनकर हमने जब आईने में अपने चेहरे देखे, तो इतने सुंदर मालूम पड़े कि हम सिनेमा चले गए! ऐसे जंच रहे थे कि हमने सोचा कि चर्च में क्या सार! चर्च में जाने से होगा भी क्या? कुछ पैसे भी आप लोग छोड़ गयी थीं, तो सिनेमा के बाद हम होटल चले गए। उसी में सब समय समाप्त हो गया! तुम जिसको दे रहे हो, वह क्या करेगा, इसकी थोड़ी सदबुद्धि चाहिए।
"लोगों का दोष है राग, इसलिए वीतराग लोगों को दान देने में महाफल है।"
जो राग के अतीत हो गया हो, जिसकी कोई कामवासना न रही हो, जिसके मन में कोई लोभ न रहा हो, अगर उसकी भूमि में तुम अपने दान का बीज डाल दोगे, तो महाफल होगा, आंतरिक फल होगा।
"खेतों का दोष घास-पात, प्रजा का दोष द्वेष... ।"
अगर तुम किसी हत्यारे को पैसा दे दोगे, तो वह करेगा क्या? वह बंदूक खरीद लेगा। वह किसी की हत्या कर देगा।
मैंने सुना है कि एक अंधा और एक लंगड़ा साथ-साथ रहते थे। तुमने कहानी सुनी होगी। जंगल में जब आग लग गयी थी, तो उन दोनों ने एक-दूसरे को सहारा दिया और जंगल से बाहर आ गए। क्योंकि लंगड़ा चल नहीं सकता था, देख सकता था। अंधा देख नहीं सकता था, चल सकता था। दोनों जुड़ गए। अंधे ने लंगड़े को कंधे पर ले लिया। तो लंगड़ा देखता रहा, अंधा चलता रहा। दोनों आग से बाहर निकल आए। लेकिन बाहर आकर उनमें झगड़ा हो गया।
अक्सर ऐसा हो जाता है। आग से बाहर आकर झगड़ा होता है। क्योंकि वे यह कहने लगे कि मैंने बचाया तुझे। वह कहने लगाः मैंने बचाया तुझे। मैं आ गया बीच में। मार-पीट हो गयी।
पुरानी कहानी है। उन दिनों ईश्वर देखता रहता था ऊपर से कि कहां क्या
हो रहा है! अब तो थक गया, ऊब गया। और अंधे-लंगड़ों को कब तक देखता रहे!
उसे बड़ी दया आयी! उसने कहा कि इन दोनों को ठीक कर दूं जाकर। आया। दोनों नाराज होकर एक-दूसरे से अलग-अलग झाड़ों के नीचे बैठे थे। विचार कर रहे थे कि किस तरह! अंधा सोच रहा था कि इस लंगड़े की आंखें किस तरह फोड़ दूं। बड़ी अकड़ बनाए हुए है आंखों की। और लंगड़ा सोच रहा था कि इस अंधे की टांग कैसे तोड़ दूं।
तभी ईश्वर आया। उसने पूछा पहले को। उसने सोचा कि जब मैं अंधे से पूछूंगा कि तू कोई एक वरदान मांग ले, तो वह मांगेगा वरदान कि मेरी आंखें ठीक कर दो। जब उसने अंधे से कहा कि तू एक वरदान मांग ले। तो अंधे ने कहा कि हे प्रभु! जब दे ही रहे हो--इतना दिल दिखा रहे हो--तो एक काम करोः इस लंगड़े की आंखें फोड़ दो। और यही लंगड़े ने भी किया।
ईश्वर तो बहुत चौंका। तभी से तो आता नहीं कि ये अंधे-लंगड़े बड़े खतरनाक हैं।
लंगड़े से पूछा। सोचता था यही कि कम से कम यह बुद्धिमानी दिखाएगा; अपने पैर ठीक करवा लेगा। लेकिन उसने कहा कि जब आ ही गए आप, और यही तो मैं सोच रहा था; जन्मों-जन्मों की आशा मेरी पूरी कर दी। तो अब इतना कर दो कि इस अंधे की टांगें तोड़ दो!
आदमी जैसा है, ईश्वर के वरदान का भी गलत ही उपयोग होगा। तुम्हारे दान
की क्या बात है!

"खेतों का दोष घास-पात, इस प्रजा का दोष द्वेष है। इसलिए वीतद्वेष व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।"
उन्हें देना जो वीतद्वेष हैं, तो तुमने जो दिया है, उसकी शुभ ही शुभ परिणति होगी।
"खेतों का दोष घास-पात, प्रजा का दोष मोह है। इसलिए वीतमोह व्यक्तियों
को दान देने में महाफल होता है।"
"खेतों का दोष घास-पात, प्रजा का दोष इच्छा। इसलिए विगतेच्छ, जो इच्छा
के पार हो गए हैं, ऐसे व्यक्तियों को दान देने में महाफल होता है।"
इन वचनों पर विचार करना, चिंतन करना, मनन करना।
तुम्हारा जीवन दान बने, प्रेम बने, निरअहंकार भाव बने। और तुम्हारा जीवन उन दिशाओं में संलग्न हो जाए, उन खेतों में तुम्हारे बीज पड़ें--दान के और प्रेम के--जहां राग के, द्वेष के, इच्छाओं के, घृणाओं के, तृष्णाओं के जहर नहीं हैं। फिर महाफल निश्चित है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ दस प्रवचन

भीतर डूबो

पहला प्रश्नः हरमन हेस की प्रसिद्ध पुस्तक सिद्धार्थ में एक पात्र है वासुदेव। वासुदेव प्रमुख पात्र सिद्धार्थ से कहता हैः मैंने नदी से सीखा है, तुम भी नदी से सीखो। नदी सब सिखा देती है। वासुदेव का नदी से सीखने का क्या आशय है--कृपा करके हमें कहिए।

नदी प्रतीक है, और बुद्ध की परंपरा में महत्वपूर्ण प्रतीक है, क्योंकि बुद्ध ने कहाः संसार एक प्रवाह है। जैसे यूनान में हेराक्लतु ने कहा कि जीवन एक सरिता है और ऐसी सरिता कि इसमें कोई दुबारा नहीं उतर सकता। एक ही नदी में दुबारा उतरने का उपाय नहीं है। क्योंकि जब तुम दुबारा उतरोगे, तब तक बहुत पानी बह चुका होगा। ऐसा हेराक्लतु ने कहा। बुद्ध एक कदम और आगे गए।
बुद्ध ने कहाः एक ही नदी में दुबारा उतरने का उपाय नहीं है, क्योंकि नदी का बहुत पानी बह चुका होगा और तुम्हारा भी बहुत पानी बह चुका होगा। जब तुम दुबारा उतरने आओगे, तब न तो नदी वह है, जो पहले थी; न तुम वह हो, जो पहले थे। प्रतिपल सब बह रहा है।
वासुदेव इसी सत्य को कह रहा है। वासुदेव एक मांझी है। वह नदी में लोगों को इस पार से उस पार उतारने का काम करता है। वर्षों से यही काम करता है। नदी के साथ ही रहा है। जब कोई नहीं होता, तो एकांत में नदी के किनारे बैठा होता है। जब कोई आ जाता है, तो उसे नदी पार करा देता है।
उसने नदी के सब रूप-रंग देखे हैं। वर्षा में नदी का तूफानी रूप देखा है, जब भयंकर बाढ़ आती है और नदी फैलकर सागर जैसी हो जाती है। और उसने गर्मी में इसी नदी की सूखी हुई देह भी देखी है, जैसे तन्वंगी--जरा सी धार रह जाती है!
उसने इस नदी में बहुत भाव-भंगिमाएं देखी हैं--प्रवाह की, गति की, गत्यात्मकता की। शांत इस नदी के किनारे बैठकर उसने नदी की मरमर ध्वनि सुनी है। नदी के प्रवाह को देखकर उसने पाया कि जीवन बहा जा रहा है। जीवन की क्षणभंगुरता समझी है। नदी में उठते-बनते-मिटते बबूलों को देखकर उसने अपने को भी एक बबूला समझा है। यहां सभी बनता है, सभी मिट जाता है। यहां कुछ भी थिर नहीं है।
ऐसे नदी के सत्संग में धीरे-धीरे उसे बोध हुआ है। उस बात को वासुदेव कहता है सिद्धार्थ से--कि नहीं किसी गुरु के पास जाने की जरूरत है; और न कोई शास्त्र पढ़ने की। मैं तो इस नदी के पास रह-रहकर ही जान गया, सीख गया, समझ गया।
कुछ बातों का प्रतीक नदी है। पहला तो--बहाव।
जीवन के अधिकतम दुख इसीलिए हैं कि तुमने जीवन को नदी की तरह नहीं देखा है। मेरा आशय है कि तुम्हारे जीवन में जो भी है, तुम उसे पकड़ रखना चाहते हो। और यहां कोई भी चीज पकड़कर नहीं रखी जा सकती। यहां कोई चीज रुकती नहीं, ठहरती नहीं। तुम हारोगे। तुम विषाद से भरोगे। विफलता तुम्हारे जीवन का अंग हो जाएगी।
और तुमने हर चीज पकड़नी चाही है। जो भी आया, तुमने उसे पकड़ रखना चाहा है। तुम्हारे घर एक बेटा पैदा हुआ और तुमने पकड़ रखना चाहा है। लेकिन यह बेटा जाएगा। यह बड़ी दुनिया पड़ी है; इसे बहुत खोज करनी है; इसे बहुत दूर की यात्राएं करनी हैं। तुमने अगर इसे पकड़ा, तो तुम दुख पाओगे। तुम्हें छोड़ने की तैयारी होनी चाहिए। जैसे एक दिन बच्चा मां का गर्भ छोड़ देता है, ऐसे ही एक दिन बच्चा मां की छाया भी छोड़ देगा। जाएगा दूर--स्वयं की खोज में लगेगा। और स्वयं होने के लिए माता-पिता को छोड़ना ही पड़ेगा। लेकिन अगर मां-बाप पकड़ रखना चाहें, तो कष्ट खड़ा होगा; उनके लिए भी कष्ट खड़ा होगा, बेटे के लिए भी कष्ट खड़ा होगा।

तुम्हारा किसी से प्रेम हुआ, तुम जल्दी से पकड़ रखना चाहते हो। प्रेम
को हम कितनी जल्दी विवाह बनाने में लग जाते हैं! प्रेम हुआ नहीं कि हम विवाह की सोचने लगते हैं।
प्रेम तो धारा है, बहाव है। विवाह व्यवस्था है, ठहराव है। प्रेम तो प्राकृतिक है, विवाह सामाजिक है। प्रेम परमात्मा का है, विवाह आदमी की निर्मित व्यवस्था है। प्रेम अपूर्व रहस्य है, विवाह व्यवस्था है; कुछ भी अपूर्व नहीं है वहां। और जहां विवाह भारी हुआ, प्रेम मर जाएगा। क्योंकि विवाह ठहराने की कोशिश है उसको, जो कभी नहीं ठहरता।
और यही हम हर चीज में कर रहे हैं। एक सुख आया कि हमने मुट्ठी बांधी और हमने कहा, अब कभी जाना मत। सुख के पक्षी को बंद कर लिया मुट्ठी में। उसी बंद करने में सुख का पक्षी मर जाता है।
जो आया है, वह जाएगा।
तो वासुदेव कह रहा हैः इस नदी से मैंने सीखा कि कुछ भी थिर नहीं है। सब
बह रहा है। पकड़ो मत। जकड़ो मत।
यही तो संदेश है सारे बुद्धों का--परिग्रह नहीं। अपरिग्रह का अर्थ इतना ही है कि चीजें आती हैं, जाती हैं; तुम पकड़ो मत। जब हों, तब प्रफुल्लित रहो। जब चली जाएं, तब भी प्रफुल्लित रहो।
तुमने जहां पकड़ना शुरू किया, जहां तुमने नदी की धार रोकी और बांध बनाया, वहीं गंदगी, वहीं सड़ांध पैदा हो जाती है। नदी का सरोवर बन जाना नर्क है। और हम सब सरोवर बन जाते हैं। हम बड़े भयभीत हैं परिवर्तन से।
जवान बूढ़ा नहीं होना चाहता। यह उसकी आकांक्षा पूरी नहीं हो सकती, इसलिए दुखी होगा। दुख जिंदगी नहीं लाती, दुख तुम्हारी आकांक्षा लाती है। जवान बूढ़ा नहीं होना चाहता। जो जीवित है, वह मरना नहीं चाहता। यह कैसे होगा?
जो जन्मा है, मरेगा भी। जो जवान है, बूढ़ा भी होगा। इस सत्य को देखो, समझो, और इस सत्य के साथ राजी हो जाओ; पकड़ो मत। जब जवानी बुढ़ापा बनने लगे, सहज भाव से बूढ़े हो जाओ। जब जिंदगी मौत में ढलने लगे, सहज भाव से मौत में उतर जाओ। यही जीवन का प्रवाह है।
जो आए, उसे अंगीकार कर लो। जो जाए, उसे अलविदा। ऐसा आदमी दुखी नहीं होगा। कैसे दुखी होगा? उसने दुख का मूल सूत्र ही तोड़ दिया। उसने दुख के आधार जला दिए। उसने जड़ काट दी।
जब प्रेम आए, तो नाचो। और जब प्रेम चला जाए, तो रोओ मत। जो आया था, वह जाएगा ही। फूल सुबह खिला था, सांझ मुर्झाएगा ही। और अगर तुमने चाहा कि फूल कभी न मुर्झाए, तो फिर प्लास्टिक के फूल खरीदोगे; फिर असली फूल तुम्हारे जीवन में नहीं रह जाएंगे। फिर जाओ, बाजार से प्लास्टिक के फूल खरीद लो; फिर वे कभी न मरेंगे, क्योंकि वे पैदा ही नहीं हुए। वे कभी न मरेंगे, क्योंकि वे जिंदा ही नहीं हैं।
तो नदी में बहता हुआ जल और तुम्हारी बोतल में बंद जल में उतना ही फासला है, जितना असली फूल और नकली फूल में है। असली फूल की खूबी क्या है? खूबी यही है कि वह प्रतिपल बह रहा है। सुबह जो फूल खिला था, वह सांझ तक बह गया।
बुद्ध ने कहा हैः सब सतत प्रवाह है। यहां विश्राम नहीं है। यहां विराम नहीं है।
आधुनिक विज्ञान इस बात से राजी है। पश्चिम के बहुत बड़े विचारक एडिंग्टन ने लिखा है कि दुनिया की भाषाओं में एक शब्द बिल्कुल झूठा है, वह शब्द है--रेस्ट। ऐसी कोई चीज होती ही नहीं। विराम होता ही नहीं। विश्राम होता ही नहीं। सब चीजें चल रही हैं, प्रतिपल चल रही हैं।
तुम सोचते हो, जब आदमी मर गया, तो सब ठहर गया! कुछ भी नहीं ठहरा। तब भी प्रवाह हो रहा है।
तुम्हें पता है! आदमी के मर जाने के बाद भी दाढ़ी और बाल बढ़ते रहते हैं, नाखून बढ़ते रहते हैं! तुम्हें पता है! आदमी मर जाता है, तो आदमी मर गया होगा, लेकिन उसके भीतर हजारों-लाखों जंतु हैं, वे सब गतिमान हैं।

आदमी मर गया; तुमने उसकी लाश जाकर दबा दी मिट्टी में; लेकिन अभी प्रवाह चल रहा है। हड्डियां गलेंगी; वर्षों लगेंगे। मिट्टी फिर मिट्टी बनेगी। हर चीज फिर वापस अपने स्रोत में गिरेगी। प्रवाह जारी है।
और जो आज तुम्हारी हड्डी है, वह कल किसी और की हड्डी बनेगी। और आज जो तुम्हारे भीतर खून की तरह बह रहा है, कल किसी और के भीतर खून की तरह बहेगा। जो अभी वृक्षों में हरा है, कल तुम्हारा खून होगा। आज तुममें जो खून है, कल वृक्षों की जड़ों में खाद बनेगा।
सब चल रहा है, कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। एक चीज दूसरे में बदलती जाती
है; रूपांतरण होता है। न तो कोई चीज कभी पैदा होती है, न कोई चीज कभी वस्तुतः समाप्त होती है। यात्रा है। न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत है।
नदी कहां प्रारंभ होती है--बता सकते हो? कहोगे हां, बता सकते हैं। गंगोत्री में गंगा शुरू होती है।
गंगोत्री में शुरू नहीं होती। आकाश में बादल घिरते हैं, उनसे जल बरसता है, तो गंगोत्री में जल आता है। गंगोत्री से कैसे शुरू होगी?
तो शायद तुम कहो कि बादलों में शुरू होती है। बादलों में शुरू नहीं होती। क्योंकि समुद्र से जब तक बादल न उठें, जब तक समुद्र से भाप न उठे, और सूरज की किरणों पर पानी चढ़कर आकाश में न जाए, तब तक बादल रिक्त हैं। बादलों में क्या रखा है? बादल हैं ही क्या अगर समुद्र का सहारा न हो?
तो समुद्र में गंगा शुरू होती है? लेकिन समुद्र में तो गंगा आकर गिरती है। वर्तुलाकार है।
कहां शुरू होती है? समुद्र गंगा से बनता है--गंगाओं से बनता है। फिर बादल बनते हैं। फिर बादलों से गंगोत्रियां बनती हैं। गंगोत्रियों से गंगा बनती है। गंगा से सागर बनते हैं। सागर से बादल बनते हैं--ऐसा वर्तुल है।
इसलिए हमने संसार को संसार कहा। संसार शब्द का अर्थ होता हैः चाक, द ह्वील। वह जो भारत के राष्ट्रीय झंडे पर चक्र है, वह बुद्ध-प्रतीक है। वह बुद्ध ने ही सब से पहले उस प्रतीक की चर्चा शुरू की थी। वह अशोक के स्तंभ से लिया गया है।
जैसे चाक गाड़ी का घूमता रहता है, घूमता रहता है--ऐसा ही जीवन चलता जाता है, चलता जाता है; न कहीं शुरू हुआ है, न कहीं अंत होगा।
इसलिए बुद्ध कहते हैंः किसी ने जगत को बनाया नहीं; कोई स्रष्टा नहीं है। अनादि है यह। जैसे नदी की धार। सदा से है यह और सदा रहेगा। लेकिन सदा से है, और सदा रहेगा, फिर भी एक क्षण को कोई चीज थिर नहीं है, सब बदलाहट है। सिर्फ परिवर्तन को छोड़कर सब चीजें परिवर्तित हो रही हैं।
तो नदी में पहले तो बहाव, परिवर्तन, यात्रा--इसका बोध है। और अगर यह बात समझ में आ जाए कि सब चीजें बह रही हैं, तो मुट्ठी खुल गयी, तो वीतरागता फल गयी। फिर तुम पकड़ोगे नहीं।
जो धन तुम्हारे पास आया है, वह इसीलिए आया है कि किसी के पास से चला गया है। और तुम्हारे पास भी ज्यादा देर नहीं रह सकता, क्योंकि किसी और के पास उसे जाना है। अंग्रेजी में जो शब्द है धन के लिए--करेंसी, वह बिल्कुल ठीक है; वह करेंट से बना है, जैसे धार नदी की। एक हाथ से दूसरे हाथ में धन बहता रहता है--यही उसकी करेंसी है।
लेकिन तुमने धन को पकड़ लिया, गड्ढा खोदकर घर में हंडे में बंद करके दबा दिया। वह धन धन न रहा, मिट्टी हो गया। धन तो तभी तक धन है, जब एक हाथ से दूसरे हाथ में जाता रहे।
इसलिए कंजूस धन को मार डालता है। उसके हाथ में धन मिट्टी हो जाता है। उसका कोई अर्थ ही नहीं रहा। तुमने अपनी तिजोड़ी में कंकड़-पत्थर भरकर रख लिए, कि नोट भरकर रख लिए--क्या फर्क है? जब तक तिजोड़ी से नोट चले नहीं, एक हाथ से दूसरे हाथ में न जाए, तब तक वह धन है ही नहीं।
इसलिए भारत में जितना धन है, उतना धन नहीं है। और अमरीका में जितना धन है, उससे हजार गुना धन है। क्योंकि पैसा चलता है, सरकता है। सिर्फ अमरीकन जानता है धन को हजार गुना करने का उपाय, इसलिए धनी है।

मुझ से लोग आकर पूछते हैं, विशेषकर जो अमरीका से आते हैं, वे मुझसे पूछते हैं कि भारत गरीब क्यों है? क्योंकि भारत मूढ़ है। गरीबी मौलिक नहीं है; मूढ़ता मौलिक है। मूल में मूढ़ता है। यहां धन को पकड़ने की आदत है; यहां धन को जीने की आदत नहीं है। यहां हर चीज को पकड़ने की आदत है। यहां जो मिल जाए, उस पर कब्जा कर लो, मुट्ठी बंद कर लो! सम्हालकर बैठ जाओ।
अमरीका उछालता है; जो है, उसका उपयोग कर लो। असल में अमरीका, जो नहीं है, उसका भी उपयोग करता है। अभी कार खरीद लेगा और दस साल पैसे चुकाएगा। अभी हैं ही नहीं पैसे। दस साल में पैसे होंगे। कमाएगा, तब चुकाएगा। इंस्टालमेंट पर खरीद लेगा। इंस्टालमेंट पर खरीदने का मतलब हैः तुम्हारे पास जो धन अभी नहीं है, वह तुमने खर्च कर दिया।
यहां भारत में जो धन तुम्हारे पास है, उसको भी तुम खर्च नहीं करते। अभी कल तुमने पढ़ा न, बुद्ध की इस कथा में कि वह आदमी मर गया--नगर श्रेष्ठी-- अपुत्रक। और जब मर गया, तो उसके घर से सात दिन तक बैलगाड़ियों में भरकर धन ढोया गया। और वह खुद न तो कभी खाया ठीक से, न कभी पीया ठीक से। उसने कपड़े नहीं पहने ठीक से। जराजीर्ण कपड़े पहनता रहा। वह पुराने टूटे-फूटे रथों पर चलता रहा। रूखा-सूखा खाता रहा। वह शुद्ध भारतीय था!
यही भारतीय भारत की गरीबी के पीछे कारण है।
चीजों को बहने दो। चीजों को चलने दो, गतिमान होने दो। संसार को भी जीने का ढंग वही है, जो परमात्मा को जीने का ढंग है। पकड़ो मत।
लेकिन कभी-कभी तुम पकड़ना भी छोड़ देते हो, तब भी पकड़ नहीं छूटती। क्योंकि तुम्हारी जड़ता बड़ी गहरी है। एक आदमी कहता हैः ठीक है। नहीं पकड़ेंगे। तो धन छोड़कर जंगल भाग जाता है। अब वह त्याग को पकड़ लेता है! पहले धन को पकड़ा था, अब त्याग को पकड़ लिया!
तुम्हें इस तरह के साधु-संतों का पता होगा, जो धन नहीं छूते। यह मूढ़ता सिर के बल खड़ी हो गयी! पहले सिर्फ धन ही धन इनका प्राण था; अब धन छूने से घबड़ाते हैं, जैसे धन में कोई सांप-बिच्छू है। मध्य में नहीं टिकते।
मध्य में टिकने का मतलब हैः धन को आने दो, जाने दो। रोको भर मत। आए भी, जाए भी। यात्रा जारी रहे।
तो या तो प्रेम करते हैं लोग, और विवाह में रूपांतरित कर लेते हैं। या फिर इतने घबड़ा जाते हैं, कहते हैं कि हम संन्यासी हुए जाते हैं। हम इस प्रेम की झंझट में न पड़ेंगे। इसमें झंझट है। हम संन्यासी हैं। हम ब्रह्मचर्य धारण कर लेते हैं। हम किसी से कभी कोई प्रेम ही न करेंगे।
मगर हर हालत में तुम जड़ रहते हो। या तो विवाह बनकर जड़ या ब्रह्मचारी बनकर जड़। लेकिन प्रेम आए और जाए, बहे--उससे तुम घबड़ाते हो। उससे तुम्हारे प्राण संकट में पड़ जाते हैं।
वासुदेव यही कह रहा है। वह कह रहा हैः अपरिग्रह का सूत्र यही है कि चीजें आतीं, जातीं। तुम बीच में अड़ो मत। जब आएं, तो आ जाने दो। जब चली जाएं, तब चली जाने दो। न तो खींचो आने के लिए। न धकाओ जाने के लिए।
नदी अपने से ही बह रही है, इसको धकाने इत्यादि की कोई जरूरत नहीं है।
जो नदी पर मुट्ठी बांधेगा, उसकी मुट्ठी खाली रह जाएगी। जल पी लो, स्नान कर लो, मुट्ठी मत बांधो।
और दूसरी बातः नदी अनजाने सागर की खोज कर रही है--अनजाने। नदी को कुछ पता नहीं, कहां जा रही है? क्यों जा रही है? मगर टटोल रही है सागर को। विराट की खोज में निकली है। कोई नक्शा भी पास नहीं है। कोई शास्त्र भी पास नहीं है। कोई वेद, कुरान, बाइबिल भी पास नहीं है। अनंत की खोज पर चली है बिना नक्शों के। कोई गुरु नहीं। किसी की अनुगामी नहीं। टटोल रही है अपने से। और पहुंच जाती है।
सभी नदियां पहुंच जाती हैं--यह तुमने देखा! छोटी नदियां पहुंच जाती हैं। बड़ी नदियां पहुंच जाती हैं। नदी-नाले सब पहुंच जाते हैं। सब सागर पहुंच जाते हैं। अगर अपनी सामर्थ्य से नहीं पहुंच सकते, तो छोटे नाले बड़े नालों में गिर जाते हैं। बड़े नाले नदियों में गिर जाते हैं। नदियां बड़ी नदियों में गिर जाती हैं। मगर सागर तक सब पहुंच जाते हैं।

वासुदेव यह कह रहा हैः अगर तुम खोजते ही रहो, तो परमात्मा तक पहुंच जाओगे। और नक्शों की कोई जरूरत नहीं है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई--नक्शों की कोई जरूरत नहीं है। खोज की त्वरा चाहिए। खोज की तीव्रता चाहिए। खोज की सघनता चाहिए। नक्शे नहीं काम आते; खोज की सघनता काम आती है।
इस भेद को समझ लेना। नदी को नक्शा पकड़ा दो, इससे कुछ अर्थ नहीं होगा। सिर्फ नदी में जलधार होना चाहिए, ऊर्जा होनी चाहिए। बस, पर्याप्त है। उसी ऊर्जा के बल नदी खोजती है।
जिन्होंने सत्य को पाया है, उन्होंने भी नक्शों के सहारे नहीं पाया है। क्योंकि इस परिवर्तनशील जगत में नक्शे बन ही नहीं सकते। तुम जिस जगत का नक्शा बनाते हो, जब तक नक्शा बनता है, तब तक जगत बदल जाता है। यहां नक्शे हो नहीं सकते। जीवन परिवर्तन है, तो नक्शे होंगे कैसे?
मैंने सुना हैः एक गांव में एक शराबी ने एक मिठाई की दुकान से लड्डू खरीदे। रुपया दिया। आठ आने उसे वापस मिलने थे। लेकिन दुकानदार ने कहाः क्षमा करें; मेरे पास फुटकर नहीं हैं। कल सुबह आ जाना!
शराबी शराब में था, उसने सोचा कि यह तो झंझट की बात है। सुबह बदल जाए! तख्ती बदल ले। अपना नाम बदल ले। शराबी को हजार तरह की कुशंकाएं उठने लगीं-- कि आठ आने मेरे गए। उसने सोचा कि कोई ऐसा निशान मुझे बना लेना चाहिए कि यह बदल न सके। उसने चारों तरफ देखा। देखा एक सांड बैठा है। सामने ही बैठा है दुकान के। उसने कहाः ठीक है। जहां सांड बैठा है... !
सुबह जब आया वापस... सांड का कोई पक्का थोड़े ही है कि वह मिठाई की दुकान
के सामने ही बैठा रहेगा। सांड कोई आदमियों जैसे थोड़े ही हैं कि जहां बैठ गए, बैठ गए। सांड तो मुक्त हैं। इसलिए तो शिवजी ने उन्हें चुना है। वे चले गए थे। वे बैठे थे एक नाई की दुकान के सामने!
वह आदमी तो एकदम घुस गया नाई की दुकान में। और गरदन पकड़ ली नाई की। और कहाः हद्द हो गयी! आठ आने के पीछे तख्ती बदल ली? धंधा बदल लिया? जात बदल ली? आठ आने के पीछे! मगर तुम मुझे धोखा न दे सकोगे। वह सांड बैठा है! तुम्हारे जिंदगी के नक्शे बस, सब ऐसे ही हैं। जिंदगी रोज बदल जाती है, तुम्हारे नक्शे पीछे पड़ जाते हैं; उनका कोई अर्थ नहीं है। तुम्हारे शास्त्र सब ऐसे हैं, क्योंकि जब बनते हैं, तब जिंदगी एक होती है। जब तक बन पाते हैं, तब तक जिंदगी दूसरी हो जाती है।
अब आज तुम वेद को बैठे पढ़ते रहो, या आज तुम बैठकर गीता को पढ़ते रहो। जिंदगी बहुत बदल गयी; गंगा में बहुत जल बह गया है।
इसीलिए मैं जब बुद्ध की व्याख्या करता हूं, तो तुम ख्याल कर लेना। मुझे बुद्ध की उतनी चिंता नहीं है। क्योंकि ढाई हजार साल में जिंदगी बहुत बदल गयी। मुझे तुम्हारी चिंता है। मैं जब बुद्ध की व्याख्या करता हूं, तो मुझे बुद्ध की उतनी फिकर नहीं है। मेरी निष्ठा बुद्ध के प्रति उतनी नहीं है, जितनी आज के इस क्षण के प्रति है। इस क्षण के अनुकूल नक्शे को बदलता हूं।
तुम्हारे और व्याख्याकार जो हैं, नक्शे के प्रति उनकी निष्ठा भारी है। वे कहते हैंः जिंदगी जाए भाड़ में। समय की धारा का कुछ भी हो। हम तो पक्का जो किताब में लिखा है, उसी को मानते हैं। चाहे किताब अब बिल्कुल ही गलत हो गयी हो!
सभी सत्य सामयिक होते हैं। और जो शाश्वत सत्य है, उसको शब्द में कहने
का कोई उपाय नहीं है। उसे कभी किसी ने कहा नहीं। जो कहा गया है, वह सामयिक है। और सभी सत्य, जब सामयिक होते हैं, तो समय के बदलने पर बदल जाने चाहिए। सत्य तुम्हारे बदलते नहीं; पत्थरों की तरह जड़ हैं। और जिंदगी फूलों
की तरह बह रही है। उनमें कभी तालमेल नहीं रह जाता है।
तो तुम्हारे तथाकथित सत्य ही तुम्हारे सत्य तक पहुंचने में बाधा बन जाते हैं। तुम्हारे शास्त्र ही अवरोध हो जाते हैं। अतीत की अंध-भक्ति जितना मनुष्य को भटकाती है, उतना और कोई चीज नहीं भटकाती है।
नदी की तरह रहो। नक्शों को ले चलने की कोई जरूरत नहीं है। और जब नदियां तक पहुंच जाती हैं सागर तक, तो तुम क्यों न पहुंच पाओगे? तुम भी चैतन्य की धारा हो। तुम चैतन्य का सागर खोजने निकले हो। इस जगत में नदियों

तक को मिल जाता है मार्ग, तो तुम्हारी चैतन्य-धारा को न मिलेगा? कुछ तो भरोसा करो। इस भरोसे का नाम श्रद्धा है।
श्रद्धा का मतलब यह नहीं होता कि मैं छाती ठोंककर कहता हूं कि मुझे ईश्वर में भरोसा है। कि मुझे कुरान में भरोसा है। कि जो कहेगा कुरान गलत है, उसकी गरदन काट दूंगा; या अपनी जान दे दूंगा या उसकी जान ले लूंगा। श्रद्धा का यह मतलब नहीं होता। ये तो सब मूढ़ताओं के नाम हैं।
श्रद्धा का इतना ही अर्थ होता है कि जिस जीवन ने मुझे जन्म दिया है, जिस जीवन से मैं आया हूं, वह मुझे सम्हाले है। और अगर मैं ठीक-ठीक तीव्रता से खोज करता रहूं, तो मूल-स्रोत को जरूर पा लूंगा।
श्रद्धा का अर्थ विश्वास नहीं होता। श्रद्धा का अर्थ किसी सिद्धांत में भरोसा नहीं होता। श्रद्धा का अर्थ होता हैः अस्तित्व की जो विराटता तुम्हें घेरे खड़ी है बाहर और भीतर, इसमें तुम्हें भरोसा है। तुम्हें अपने पर भरोसा है और अस्तित्व पर भरोसा है। भटकाव कितना ही हो, पहुंचना हो जाएगा।
नदी कितना भटकती है! आड़ा-टेढ़ा रास्ता लेती है। कितना भटकती है! कभी- कभी सागर से दूर चली जाती है, फिर पास आ जाती है। लेकिन भटक-भटक कर भी पहुंच जाती है।
और फिर नदी की तीसरी बात है, जो वासुदेव कहना चाहता है, वह हैः नदी का सर्व स्वीकार भाव। पुण्यात्मा स्नान कर ले, तो नदी को स्वीकार है। पापी स्नान कर ले, तो नदी को स्वीकार है। गंदा नाला गिर जाए, तो नदी को स्वीकार है। शुद्ध गंगा की धारा गिर जाए, तो नदी को स्वीकार है। नदी भेद नहीं करती। जिंदा आदमी नदी में आ जाए, तो ठीक। मुर्दा लाश कोई डाल दे, तो ठीक। नदी सब स्वीकार कर लेती है। उसका परम स्वीकार है।
जब बाढ़ आती है और नदी विराट हो जाती है, तब भी नाचती-गाती चलती है। जब
सब सूख जाता है और गर्मी की आग बरसने लगती है, तब भी नदी को स्वीकार है। वह सूख गयी देह भी उतनी ही स्वीकार है। सूरज निकले तो, और बादल घिरें तो--सब नदी को स्वीकार है। नदी की स्वीकारिता परम है।
इसको बुद्ध ने तथाता कहा है। सब स्वीकार। जो हो, ठीक। जैसा हो, ठीक। जीवन जहां ले जाए, वही मंजिल। ऐसा जिसके मन में स्वीकार है, उसके जीवन में असंतोष विदा हो जाएगा। उसके जीवन में दुख के बादल फिर नहीं घिरेंगे। उसने तो दुख के बादलों को भी सुख के बादलों में बदलने की कला सीख ली।
जिसको सब स्वीकार है, उसे तुम नर्क नहीं भेज सकते। क्योंकि उसको नर्क
भी स्वीकार होगा। और जिसको नर्क स्वीकार है, उसने नर्क को स्वर्ग में बदल लिया। और जिसको स्वीकृति की कला नहीं आती, उसे तुम स्वर्ग भी भेज दो, तो शिकायत खोज लेगा। स्वर्ग में भी नर्क बना लेगा।
और अंतिम बातः नदी, तुमने देखा होगा, कभी-कभी जीते आदमी को डुबा देती
है और मार डालती है। लेकिन मुर्दे को तैरा देती है, ऊपर आ जाता है मुर्दा। बुद्ध की विचार-सरणी से इसका भी बड़ा मेल है।
तुमने देखा यह मजा कि जिंदा आदमी, जो बचना चाहता है, वह कभी-कभी डूब जाता है। और मुर्दा, जिसको बचने की कोई आकांक्षा ही नहीं है--मुर्दा ही हो गया, आकांक्षा कहां--वह तैर जाता है। जिंदा आदमी नदी की तलहटी में बैठ जाता है। मुर्दा आदमी सतह पर आ जाता है!
मुर्दे को कुछ कला आती है, जो जिंदा आदमी को नहीं आती है। मुर्दे को समर्पण है। मुर्दा बचने की आकांक्षा नहीं करता, इसलिए नदी भी उसे बचाती है।
जो बचने की आकांक्षा नहीं करता, अस्तित्व उसे बचाता है। जो संघर्ष नहीं करता, अस्तित्व उसको विजय देता है। और जो अस्तित्व से लड़ने लगता है, उसको तोड़ डालता है।
तुम प्रकृति से लड़ोगे, तो हारोगे। तुम प्रकृति के साथ हो जाओ। तुम प्रकृति को साथ ले लो। तुम्हारे और प्रकृति के बीच एक सरगम पैदा हो जाए, संगीत पैदा हो जाए, तो तुम्हारी जीत निश्चित है। तुम तभी जीतोगे, जब प्रकृति के साथ होओगे। क्योंकि प्रकृति ही जीत सकती है, तुम नहीं जीत

सकते। तुम हारोगे, अगर प्रकृति के विपरीत लड़ोगे। क्योंकि तुम कैसे जीतोगे? अंश कैसे जीत सकता है पूर्ण से? अंश कैसे जीत सकता है अंशी से?
तो नदी में बचने का उपाय यही है कि तुम छोड़ दो अपने को। तुम संघर्ष न करो। तुम नदी पर भरोसा कर लो और छोड़ दो अपने को--समर्पण!
ऐसे कुछ सूत्र वासुदेव नदी के किनारे बैठ-बैठ सीखा है। ऐसे ही कुछ सूत्र बुद्ध ने जीवन की नदी के किनारे बैठ-बैठ सीखे हैं। सीखना आना चाहिए, तो कहीं भी सीखना हो सकता है। और सीखना न आता हो, तो बुद्धों के पास बैठकर भी तुम बुद्धू ही रह जाओगे।
इसलिए वासुदेव कहता हैः क्या खोजना गुरु को। जहां हो, वहां गुरु है। वृक्षों से सीख लो। पक्षियों से सीख लो। चांद-तारों से सीख लो। नदी-पहाड़ों से सीख लो। जिसे सीखना है, उसे चारों तरफ से शिक्षा मिल रही है। और जिसे नहीं सीखना है, जो आंख बंद किए है, और कान बंद किए बैठा है, वह बुद्धों का सत्संग भी करता रहे, तो कुछ भी न होगा। वहां से भी खाली हाथ गया, खाली हाथ लौट आएगा।
असली बात हैः तुम्हारी सीखने की क्षमता, कुशलता।
क्या है सीखने की कुशलता का मूल आधार? एक ही आधार है और वह है-- विनम्रता, वह है--झुकना, वह है--खुला होना।
जहां सीखना हो, वहां अपने द्वार-दरवाजे खोल देना। वहां पक्षपात से भरे हुए मत जाना। वहां सिद्धांतों से लदे हुए मत जाना। वहां जानकार की तरह मत जाना, नहीं तो नहीं जान पाओगे। जो जानकार की तरह गया, जानने से वंचित रह जाएगा।
वहां तो जाना निर्बोध, अज्ञानी की भांति। वहां तो उस भाव दशा में जाना, जो कहती हैः मुझे क्या पता है! वहां खुले जाना, तो बहुत कुछ सीख पाओगे। और तब बुद्धों से ही नहीं, किन्हीं से भी सीख सकते हो।
साधारणजनों का जीवन भी गहन किताबों की तरह है। एक साधारण से आदमी की जिंदगी खोल लो--वेद खोल लिया। और वेद तो पुराना पड़ गया, और यह आदमी अभी ताजा है, नया है। अभी यहां जीवन की रसधार बहती है।
एक साधारण से मनुष्य के जीवन को समझ लो, तुमने सारे शास्त्र समझ लिए।
और दूसरे की क्या फिकर करनी। तुम अपने ही जीवन के निरीक्षक बन जाओ, साक्षी बन जाओ, तो तुम्हें वहीं से सारा का सारा मिल जाएगा, जो पाने योग्य है।
निश्चित मिल जाएगा। और जो पाने योग्य नहीं है, उसकी कोई जरूरत ही नहीं।

दूसरा प्रश्नः मैं न दुख सह पाता हूं, न सुख। हर बात से भयभीत हूं।
मृत्यु से तो हूं ही, जीवन से भी भयभीत हूं। मेरे लिए क्या मार्ग है?

ऐसी तुम्हारी ही दशा नहीं--सभी की ऐसी दशा है। शुभ है कि तुम्हें इसका बोध हुआ है। तो अब कुछ हो सकता है।
अधिकतर लोग यही सोचते हैं कि दुख नहीं सह पाते हैं। सुख के लिए तो वे हाथ फैलाए खड़े हैं, भिक्षापात्र लिए खड़े हैं। लेकिन सच यही है कि न लोग दुख सह पाते हैं, न लोग सुख सह पाते हैं। क्योंकि सुख भी उत्तेजना है, दुख भी उत्तेजना है। दोनों तोड़ते हैं। और अक्सर ऐसा होता है कि सुख इतना ज्यादा तोड़ता है, जितना दुख ने कभी नहीं तोड़ा।
एक कहानी हैः एक आदमी हर महीने एक रुपए की लाटरी का टिकट खरीद लेता था, आदत थी। गरीब आदमी था, दर्जी था। न तो कभी सोचा था कि मिलने वाली है, न कभी आशा बांधी थी। न कभी सपने देखे थे। वर्षों से खरीदता था। वर्षों बीत भी गए थे। न कभी मिली, न मिलने वाली थी। इतना भाग्यशाली अपने को सोचता भी नहीं था कि लाटरी मिल जाए।
लेकिन एक दिन लाटरी मिल गयी। बड़ी कार आकर सामने खड़ी हुई। नोटों के बंडल उतारे गए। दस लाख रुपए उसे मिल गए थे। वह तो भरोसा ही नहीं कर पाया। उसकी आंखें तो एकदम देखने में असमर्थ हो गयीं। सब धुंधलका छा गया। चक्कर आने लगा। दस लाख रुपए! दस रुपए इकट्ठे उस दर्जी को मुश्किल से मिले थे कभी।

दस लाख रुपए! छाती जोर से धड़कने लगी। खून तेजी से बहने लगा। सदा ठीक से
सो पाया था, उस रात नहीं सो पाया। उधेड़बुन! उधेड़बुन! क्या करूं क्या न करूं? दस लाख रुपए का करूं क्या?
दूसरे दिन उसने जाकर अपनी दुकान में ताला लगा दिया और चाबी कुएं में फेंक दी--कि अब जरूरत क्या है! बात खतम हो गयी। अब क्या दर्जी रहना है! कारें खरीद लीं। शराब खरीद ली। बड़ा मकान खरीद लिया। वेश्याओं के घर बैठकों में सम्मिलित होने लगा। अब करना क्या है और!
सदा स्वस्थ रहा था। सालभर में बिल्कुल जरा-जीर्ण हो गया। सालभर बाद
जो उसे देखते, पहचान भी न पाते। वे कहतेः यह तुम्हारी क्या हालत हो गयी! अब शराब, और वेश्याएं, और नाच, और गान, और आधी-आधी रात तक भटकना, और आधे- आधे दुपहर तक सोना। और कुछ भी खाना, कुछ भी पीना! वह तो सोच रहा था, बड़ा सुख ले रहे हैं। लेकिन सालभर में उसकी हालत बिल्कुल खस्ता हो गयी। सालभर में वे दस लाख फूंक डाले। दस लाख उसने फूंक डाले, दस लाख ने उसे फूंक डाला। गरीब था, तब कभी इस तरह के उपद्रव जिंदगी में आए भी नहीं। उपद्रव के लिए भी सुविधा चाहिए न! उपद्रव भी सभी की क्षमता तो नहीं।
गरीब एक तरह के दुख झेलता है, अमीर दूसरे तरह के दुख झेलता है। गरीब दुख झेलता हैः पैसे न होने के। अमीर दुख झेलता हैः पैसे होने के। दुख दोनों झेलते हैं! और अगर तुम गौर से देखो, और ठीक से निरीक्षण करो, निष्पक्ष भाव से, तो तुम गरीब से अमीर को ज्यादा दुखी पाओगे।
गरीब को तो आशा भी रहती है; अमीर को आशा भी नहीं है--कि इस झंझट के बाहर कभी हो पाएगा।
चिंताओं के जाल। सालभर बाद जब सब बरबाद हो गया और वह आदमी थका-मांदा खड़ा रह गया। वेश्याओं के जो द्वार-दरवाजे सदा उसके लिए खुले थे, बंद हो गए। मित्र साथ घूमते थे, भीड़ लगी रहती थी, वे सब विदा हो गए। अब तो सिर्फ वे ही लोग उसका पीछा करते, जिनका वह कर्जदार हो गया था। दस लाख तो गए थे, और दो- चार लाख का कर्ज ऊपर छोड़ गए थे।
उसने आत्महत्या करने का विचार किया। लेकिन वह भी हिम्मत नहीं जुटा पाया। डरा। कुएं में उतरा। सोचा था, मर जाऊं। लेकिन चाबी खोजकर बाहर निकल आया। फिर अपनी दुकान खोल ली। फिर अपने कपड़े सीने लगा। अब और कष्ट हो गया, भयंकर कष्ट हो गया। क्योंकि एक बार धन जान लिया, अब निर्धनता और भी भारी छाती में चुभने लगी।
मगर पुरानी आदत! वह एक रुपए की टिकट हर महीने फिर भी खरीदता रहा। और भगवान से रोज प्रार्थना भी करता थाः हे प्रभु, अब दुबारा मत दिलवाना। ऐसा आदमी है--द्वंद्वग्रस्त! टिकट भी खरीदता था और भगवान से प्रार्थना भी करता था कि प्रभु! जो हुआ, एक दफे बहुत हो गया। अब दुबारा नहीं। अब स्वास्थ्य भी थोड़ा ठीक होता जा रहा है; दुकान भी फिर चलने लगी है; काम भी सब व्यवस्थित हुआ जा रहा है। बच गया। बचा लिया तुमने। अगर एकाध साल और वे रुपए टिक जाते, तो मैं मारा गया था। एक साल में कम से कम बीस साल बूढ़ा हो गया हूं। कभी अब दुबारा मत दिलवाना।
लेकिन आदमी ऐसा ही है। एक तरफ कहता, दुबारा मत दिलवाना, और हर महीने टिकट भी खरीद लेता। और यह भी सोचता, अब कोई दुबारा थोड़े ही मिलनी है। इस तरह के संयोग, तो एक बार भी आ जाए, तो बहुत।
मगर संयोग की बातः एक साल बाद फिर लाटरी मिल गयी। जब दुख आते हैं, तो छप्पर फोड़कर आते हैं। जब भगवान देता है, तो छप्पर फाड़कर देता है न!
उसने तो छाती पीट ली। जब फिर कार आकर रुकी वही, और फिर नोटों के बंडल उतरने लगे, उसने कहाः हे प्रभु फिर! अब फिर मुझे उसी झंझट में पड़ना पड़ेगा? मगर वह पड़ा उसी झंझट में। उसने फिर चाबी फेंकी कुएं में। दुबारा चाबी निकालने का मौका नहीं आया। क्योंकि दुबारा बचा नहीं; मर ही गया। अगर निकाल लेता दुबारा चाबी, और फिर दुकान खोलता, तो भी लाटरी की टिकट खरीदता। और अब और भी जोर से प्रार्थना करता कि हे प्रभु! अब नहीं!
आदमी ऐसा द्वंद्वग्रस्त है! ऐसा अपने में खंड-खंड है।

तुम्हें शुभ हुआ, यह बात समझ में आयी कि न दुख को झेल पाते हो, न सुख को। यह महत्वपूर्ण है। अधिक लोगों की भ्रांति यही है कि दुख को नहीं झेल पाते।
सुख को नहीं झेल पाते--यह तो बात ही अजीब लगती है। सुख तो हम चाहते हैं। लेकिन सुख को भी नहीं झेला जा सकता, क्योंकि सुख और दुख ऊपर ही ऊपर अलग-अलग दिखायी पड़ते हैं, भीतर बिल्कुल एक हैं। साठ-गांठ है। शड्यंत्र है दोनों का।
सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और जो आदमी दुख से मुक्त होना चाहता है, और सुख को पकड़ना चाहता है, वह कभी दुख से मुक्त नहीं होगा। क्योंकि सिक्के का एक पहलू बचाओगे, तो दूसरा भी बचेगा। और जो आदमी चाहता है कि मैं दुख से मुक्त हो जाऊं, उसे जान लेना चाहिए, उसे सुख से भी मुक्त हो जाना पड़ेगा। वह पूरा सिक्का ही फेंकना होगा।
सुख और दुख मन की उत्तेजनाओं के नाम हैं। जिस उत्तेजना में तुम्हें प्रीतिकरता लगती है, जिसे तुम पसंद करते हो, उसको सुख कहते हो। और जिस उत्तेजना में तुम्हें अप्रीतिकरता लगती है, उसको तुम दुख कहते हो।
तुमने कभी ख्याल किया--कि जिसको तुमने आज सुख कहा है, उसको ही चार दिन बाद तुम दुख कहने लगे! जो एक दिन सुख की तरह लगा था, चार दिन के बाद दुख की तरह लग सकता है। जिस स्त्री को तुमने सोचा था कि यह मिल जाए, तो सब मिल गया, फिर कुछ और नहीं चाहिए। उसके मिलते ही तुम सोचने लगते हो कि इससे छुटकारा हो जाए, तो सब मिल गया। और कुछ नहीं चाहिए। हे प्रभु! अब इससे मुझे बचा लो। यह वही स्त्री है, जिसकी तुमने मांग की थी!
तुम जो सोचते हो आज सुखकर है, वही कभी दुखकर क्यों हो जाता है? दूसरा पहलू आज नहीं कल उभरेगा। जिसको तुमने सुंदर माना है, उसकी कुरूपता के भी अंग हैं। आज सुंदर चेहरा देखकर तुम उसके संबंध में बड़े आनंदित हो रहे हो। कल उसके कुरूप अंग भी प्रगट होंगे।
और अक्सर ऐसा होता है; जितने सुंदर व्यक्ति, उतने ही कुरूप भीतर दबी हुई वासनाएं, घृणाएं, कुंठाएं, क्रोध, ईर्ष्याएं पड़ी होती हैं। अक्सर ऐसा हो जाता है कि कुरूप व्यक्ति के भीतर एक तरह का सौंदर्य होता है और सुंदर व्यक्ति के भीतर एक तरह की कुरूपता होती है। यह होना ही चाहिए। क्योंकि दोनों एक-दूसरे के हिस्से हैं। सौंदर्य और कुरूपता भी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सफलता-असफलता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। गरीबी-अमीरी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
तुमने कभी-कभी ख्याल किया कि गरीबी में एक तरह की अमीरी होती है! और तुमने ख्याल किया कि अमीरी में एक तरह की गरीबी होती है! यह तुम्हें दिखायी पड़ जाए जीवन का उलझाव, तो बड़ा सुलझाव हो जाएगा।
तुमने देखा गरीब को मस्ती से चलते? उसकी अमीरी देखी? तुमने अमीर को देखा बोझ से दबे हुए, चिंतारत? न ठीक से सो सकता। न ठीक से खा सकता। न ठीक से जी सकता! तुमने उसकी गरीबी देखी?
मैं तुम्हें यह कहना चाहता हूं कि जहां अमीरी है, वहां गरीबी होगी। जहां गरीबी है, वहां अमीरी होगी।
यह अकारण नहीं है कि बुद्ध और महावीर ने राजमहल छोड़ दिया और फकीर हो गए। उनको एक राज समझ में आ गया होगा। उनको गरीब की अमीरी दिखायी पड़ गयी होगी। उनको यह बात दिखायी पड़ गयी होगी कि जितना कम होता है, उतनी निश्चिंतता होती है। और निश्चिंतता से बड़ी और क्या अमीरी है! उनको यह दिखायी पड़ गया होगा कि जितना ज्यादा होता है, उतना भय होता है खोने का। जितना ज्यादा होता है, उतनी सुरक्षा खतरे में होती है।
अमीर सोए तो कैसे सोए? और गरीब अनिद्रा को कैसे वरण करे? काहे के लिए वरण करे? कोई कारण नहीं है अमीर को सोने का। जागने के सब कारण हैं, तो रात जागता रहता है। हजार चिंताएं खड़ी रहती हैं उसे घेरे।
गरीब को कोई चिंता नहीं है। जो मिला था दिन में, वह खा-पीकर समाप्त हो गया। अब कल की कल देखेंगे।

जीसस ने कहा है अपने शिष्यों सेः देखते हो खेत में खिले लिली के फूलों को! सम्राट सोलोमन भी अपने परम सौंदर्य में इतना सुंदर न था। और ये लिली के फूल न तो मेहनत करते, और न कल की चिंता करते।
यह वचन ठीक वैसा ही है, जैसा मलूक का वचन हैः
अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम।
दास मलूका कह गए, सब के दाता राम।।
तुमने कभी किसी गरीब में ऐसा दास मलूका देखा? अगर नहीं देखा, तो तुमने अभी गरीब नहीं देखा। फिर तुम्हें कोई न कोई छोटा-मोटा मध्यवर्गीय अमीर ही मिला होगा।
वस्तुतः गरीब आदमी, जिसके पास कुछ भी नहीं है, स्वभावतः निश्चिंत होगा। न बीते की फिकर, न आने की फिकर। आज काफी है। उसमें तुम एक तरह के फूल को खिलता देखोगे--निश्चिंतता का फूल। उसकी अपरिग्रहता में, उसके पास कुछ न होने में, उसकी मस्ती का राज है।
जैसे-जैसे अमीर अमीर होता जाता है, वैसे-वैसे स्वभावतः जाल बढ़ते हैं, समस्याएं बढ़ती हैं। इतना सम्हालूं, इतना करूं। यह कैसा होगा? वह कैसे होगा? इतना टैक्स बढ़ा जाता है! सरकार न ले जाए! चोर न ले जाएं! कम्युनिज्म न आ जाए! न मालूम कितने-कितने चिंताओं के जाल खड़े होते हैं। और इन सब के बीच अकेला फंसा होता है। जैसे मकड़ी अपने ही बुने जाले में फंस जाए।
यही तो बुद्ध ने कहाः जैसे मकड़ी अपने ही बुने जाले में फंस जाए, ऐसा अमीर फंस जाता है।
तुम्हें एक बड़ा सत्य दिखलायी पड़ा है। तुम इसका उपयोग करो।
तुम्हें दिखलायी पड़ा है कि "न मैं दुख सह पाता हूं, न सुख।" इस बात को गहरे उतरने दो।
"हर बात से भयभीत हूं।"
यहां हर बात व्यर्थ है, भयभीत होने में कुछ आश्चर्यजनक नहीं, कुछ आश्चर्य नहीं। यहां हर चीज मृत्यु से भरी है। समझो इस भय को। यहां हर आदमी कंप रहा है। इस कंपन को देखो। लेकिन इस कंपन में अगर तुम्हें यह बात समझ में आ जाए कि कंपन स्वाभाविक है, तो भय विसर्जित हो जाएगा।
भय इसलिए हो रहा है कि तुम नहीं चाहते कि कंपन हो। भय इसलिए हो रहा है
कि मौत आ रही है पास, नहीं आनी चाहिए। पैर डगमगाने लगे, मैं बूढ़ा होने लगा, और यह नहीं होना चाहिए। नहीं होना चाहिए--इस आकांक्षा से भय हो रहा है। अगर मृत्यु को स्वीकार कर लो... । और न करोगे स्वीकार, तो भी करोगे क्या? मौत होनी ही है। जो होना है--होना ही है। तुम्हारे बचने से कुछ न होगा, भागने से कुछ न होगा।
तुमने कथा सुनी है सूफियों की!
एक सम्राट का बड़ा प्यारा नौकर बाजार गया और बाजार में उसे... । भीड़ में खड़ा था, तमाशा देख रहा था। कोई मदारी डमरू बजा रहा था कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रखा, तो उसने पीछे लौटकर देखा। लौटकर देखा तो ठगा रह गया; मौत खड़ी थी! वह तो इतना घबड़ा गया! उसने पूछा कि किसलिए आप मेरे कंधे पर हाथ रखे हैं! तो मृत्यु ने कहाः भई, इसलिए कि आज सांझ तुझे मरना है। मैं तुझे सूचना देने आयी हूं।
वह तो भागा अपने सम्राट के पास। गरीब आदमी, कंप गया! तो उसने सोचाः सम्राट के पास तो सब है, कुछ सुरक्षा हो जाएगी। सम्राट से जाकर कहा कि घबड़ा गया हूं। रास्ते पर मुझे मौत मिल गयी। उसने कंधे पर हाथ रखा और कहाः आज शाम मर जाएगा। मैं क्या करूं?
सम्राट ने कहाः मैं और क्या कर सकता हूं! इतना ही कर सकता हूं कि मेरे पास जो सबसे तेज घोड़ा है, तू ले ले। और भाग जा। जितनी दूर निकल सके, निकल जा। यह जगह ठीक नहीं। इस गांव में तेरा रुकना आज सांझ, ठीक नहीं। मौत यहां घूम रही है। तेरी मौत करीब है, तू यहां से भाग जा।
और तो क्या आदमी करे! आदमी जिंदगीभर भागता है, और क्या करता है? अनेक-अनेक ढंगों से भागता है। जहां खतरा हो, वहां से भाग जाओ! संसार में खतरा है, हिमालय चले जाओ! बाजार में खतरा है, मंदिर में चले जाओ। जहां खतरा है-- भागो। भगोड़ेपन के सिवाय और कोई रास्ता भी तो नहीं दिखता।

स्वभावतः, यह तर्क सीधा था कि मौत आसपास है, तू दूर निकल जा। उसके पास बड़ा तेज घोड़ा था सम्राट का और यह उसका प्यारा सेवक था। उसने अपना तेज घोड़ा दिया और कहाः तू फिकर मत करना। रुकना ही मत आज तो। जब सूरज ढले तब... । जितनी दूर--सैकड़ों मील दूर निकल जा।
वह भागा। उस दिन वह भोजन के लिए भी नहीं रुका। जल पीने के लिए भी नहीं रुका। मौत आती है, तो कहां जल, कहां भोजन! कहां भूख, कहां प्यास! भागता ही रहा।
घोड़ा भी बड़ा अदभुत था, सैकड़ों मील दूर ले गया। दूसरी राजधानी में पहुंच गया--दमिश्क। जब पहुंच गया दूसरी राजधानी में, दूसरे राज्य में, तब निश्चिंत हुआ। सूरज भी ढल रहा था। उसने जाकर एक बगीचे में घोड़े को बांधा वृक्ष से और घोड़े की खूब पीठ थपथपायी। उसके कंधे पर सिर रखकर खड़ा हो गया। उसे बहुत धन्यवाद दिया कि तू अदभुत घोड़ा है; सैकड़ों मील दूर ले आया दिनभर में! थका भी नहीं; रुका भी नहीं! तेरी जितनी कृपा मानूं, उतनी कम।
और तभी उसने देखा कि फिर कोई हाथ उसके कंधे पर पड़ा। वही हाथ, जो सुबह बाजार में पड़ा था। वह घबड़ा गया। उसने पीछे लौटकर देखा, मौत खड़ी थी!
और मौत ने कहाः धन्यवाद तो मुझे भी देना चाहिए तेरे घोड़े को, क्योंकि तेरी मौत होनी थी दमिश्क में और मैं डरी थी कि दमिश्क तक तू पहुंच पाएगा कि नहीं। मगर घोड़ा तेज है और ठीक समय पर ले आया; अभी सूरज ढल ही रहा है। सुबह भी इसी वजह से मैं तेरे कंधे पर हाथ रखी थी कि मैं बड़ी हैरान थी कि अब होगा कैसे यह! दमिश्क तू पहुंचेगा कैसे! और मौत वहां होनी है। मैं निश्चिंत नहीं थी; चिंता से भरी थी। मगर घोड़ा तेरा तेज है। घोड़ा तुझे समय के पहले ठीक जगह पर ले आया!
कहां जाओगे? कहीं भागो, दमिश्क पहुंच जाओगे। जहां मौत होनी है, वहां पहुंच जाओगे। गरीब भी पहुंच जाते, अमीर भी पहुंच जाते। पैदल चलते, वे भी पहुंच जाते; घोड़ों पर जाते, वे भी पहुंच जाते। हवाई जहाजों में उड़ते, वे भी पहुंच जाते।
मौत तो होनी ही है, फिर भय क्या! भय में आकांक्षा है कहीं कि न हो। सब
की हो, मेरी न हो कम से कम! मुझे अपवाद बना लिया जाए। मैं बच जाऊं--तो भय है। भय को समझो।
मौत के कारण भय नहीं है। तुम्हारा जीवन अमर हो जाए--इस भाव के कारण भय है। और यहां कोई चीज थिर नहीं। नदी की धार है। सब बह रहा है। जन्म हुआ, मृत्यु भी होगी। आज जो मिला है, कल छीन भी लिया जाएगा। यहां सब अमानत है; तुम्हारा यहां कुछ भी नहीं है। इस सत्य को देखोगे, तो भय अपने आप विसर्जित हो जाएगा।
"मृत्यु से तो भयभीत हूं ही, जीवन से भी भयभीत हूं। मेरे लिए क्या मार्ग है?"
भय जब ठीक से समझा जाएगा, तो तुम ऐसा न पाओगे कि लोग मौत से ही भयभीत हैं। जो मौत से भयभीत हैं, वे जीवन से भी भयभीत होंगे ही। क्यों? क्योंकि यह जीवन ही तो है, जो मौत लाता है।
मौत आती कहां से है? मौत जीवन के कंधे पर चढ़कर आती है। इसलिए जो आदमी मौत से भयभीत है, वह जीवन से भी भयभीत रहेगा। वह जी भी नहीं सकता ठीक से, क्योंकि वह जानता है कि जीवन से ज्यादा दोस्ती करनी ठीक नहीं, यह मौत में ले जाएगा। इस घोड़े पर सवारी ठीक नहीं, यह गड्ढे में गिराएगा। और मौत सदा जीवन के ही द्वार से आती है। इसलिए लोग जीवन से भी डरे हुए हैं।
कौन जी रहा है? घसिट रहे हैं लोग! कुनकुने-कुनकुने जी रहे हैं। जी कौन रहा है? दिल भरकर नहीं जी पाते, क्योंकि हर बार जब दिल भरकर जीने लगते हो, तभी लगता है कि मौत करीब आयी। जहां दिल भरकर जीने की चेष्टा की, वहीं खतरा है। और खतरा एक ही है--मौत का। इसलिए तो लोग दुकानदार हो गए हैं, लोग सौदागर हो गए हैं। लोग कौड़ियां इकट्ठी करते रहते हैं। दांव नहीं लगाते कभी। और तुम्हारा जीवन, बिना दांव के, जीवन ही नहीं है।
जुआरी ही जानता है कि जीवन क्या है। दांव जो लगा सकता है, वही जानता है
कि जीवन क्या है। क्योंकि जीवन के फूल खतरे में खिलते हैं। जब मौत बिल्कुल करीब होती है, तब जीवन के फूल खिलते हैं।

इसीलिए खतरे में एक तरह का आकर्षण होता है--तुमने ख्याल किया। खतरे में एक तरह का आकर्षण तुमने कभी अपने भीतर अनुभव किया? अगर तुम कार चलाते हो, तो जब तुम्हारी कार अस्सी मील प्रतिघंटे से ऊपर जाने लगती है, तब एक तरह की पुलक आती है। छाती फूलती। अच्छा लगता। खतरा भी बढ़ता जाता। अब नब्बे हो गयी, पंचानबे हो गयी, सौ मील की रफ्तार हो गयी। और हिंदुस्तान के रास्ते! और कार सौ मील की रफ्तार पर! और कार भी बिरला की एम्बेसेडर! जिसमें सब चीजें बजती हैं, सिर्फ हार्न नहीं बजता! खतरा! प्राण कंपने लगेंगे। लेकिन एक पुलक भी होगी, रोमांच भी होगा, संवेग भी होगा। तुम जीवंत मालूम पड़ोगे, जैसे धूल झड़ गयी!
लोग पहाड़ पर चढ़ने जाते हैं, खतरा मोल लेते हैं। कोई कारण नहीं था! अपने
घर मजे से रहते। लेकिन पहाड़ चढ़ने चले! पहाड़ से गिरेंगे, तो मरेंगे। जितनी ऊंचाई पर पढ़ते हैं, उतने ही रस-विभोर हो जाते हैं। क्योंकि उतनी ही मौत करीब होती है।
जब जीवन के मौत बहुत करीब होती है, तब जीवन में एक तरह की ताजगी होती है, यौवन होता है। इसलिए जो लोग ठीक-ठीक जीवंत हैं, वे खतरे की तलाश करते हैं।
फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा हैः जीना हो तो एक ही उपाय है--खतरे में जीयो, लिव डेंजरसली।
तुमने ठीक पहचाना कि मौत से डर लगता है और जीवन से भी डर लगता है। क्योंकि जब भी जलती है मशाल जीवन की, तभी मौत चारों तरफ करीब मालूम पड़ती है। इसलिए लोग जवानी में ही बूढ़े हो जाते हैं, जीते ही नहीं। हजार तरह की सुरक्षाएं, और हजार तरह के भय, और हजार तरह की व्यवस्था करके मुर्दा हो जाते हैं!
सावधान रहना। जीवन तो जाएगा, इसलिए जी लो। जीवन तो जाएगा, इसलिए जीवन
को परख लो, पहचान लो। जीवन तो जाएगा, रुकेगा नहीं। तुमने न भी जीया, तो भी जा रहा है। इसे भूलना मत।
तुमने न भी जीया जीवन, तो भी मौत आ रही है। तुम्हारी मौत, लेकिन व्यर्थ
की मौत होगी। जी लो, और मौत को आने दो। जी लो पूरा जीवन को। निचोड़ लो जीवन का पूरा रस। और तब तुम चकित हो जाओगे। तब तुम मौत का रस भी निचोड़ने में समर्थ हो जाओगे। जो ठीक से जीवन को जी लिया है परिपूर्णता में, वह मौत को भी परिपूर्णता में जीता है। कहां भय है! वह जीवन के रहस्यों को तो जान ही लेता है, वह मौत के रहस्यों को भी जान लेता है।
सुकरात को जब जहर दिया गया, तो वह बड़ा प्रफुल्लित था। उसके शिष्य बहुत दुखी और पीड़ित थे, रो रहे थे। और उसने कहाः चुप हो जाओ। मैं मर जाऊं, उसके बाद रो लेना। यह कोई घड़ी है रोने की!
एक शिष्य ने पूछा कि आपकी मौत आ रही है और आप इतने प्रफुल्लित मालूम होते हैं! ऐसा हमने प्रफुल्लित आपको कभी देखा नहीं! सुकरात ने कहाः जीवन तो मैंने जीया और जान लिया। अब एक नयी चीज जानने का मौका मिल रहा है; मौत आ रही है। जीवन के रहस्यों से तो मैं परिचित हुआ, अब मौत भी पर्दा उठाएगी, मौत का भी घूंघट उठेगा। अब मैं नए सत्य में प्रवेश कर रहा हूं। जीवन जाना- माना है; मौत को भी जानने का मौका करीब आ रहा है। क्यों न मैं प्रफुल्लित होऊं! क्यों न मैं आनंदित होऊं!
जो आदमी बाहर जहर तैयार कर रहा था, सुकरात उठ-उठकर बाहर जाता, उससे पूछताः भई, बड़ी देर लग रही है! कब तक तैयार करोगे?
अब वह जहर तैयार करने वाला जल्लाद, उसको भी दया आने लगी और उसने कहाः तुम आदमी कैसे हो? मैं देर लगा रहा हूं कि तुम थोड़ी देर और जी लो। तुम्हें जल्दी क्या पड़ी है? तुम मुझसे ज्यादा जल्दी में हो! और मैं देर लगा रहा हूं कि तुम जैसा प्यारा आदमी थोड़ी देर और जी ले। थोड़ी देर और श्वास ले ले। तुम बार-बार पूछने क्यों आ रहे हो!
सुकरात छोटे बच्चे की तरह है। जैसे छोटा बच्चा पूछता है। हर चीज को पूछता है! पूछता हैः मैं मरूंगा? और उससे कहो कि हां! तो वह कहता हैः कब मरूंगा? आज? कल? कब होगी यह बात?

यह बूढ़ा सुकरात अभी छोटे बच्चे की तरह ताजा है। इसके दर्पण पर धूल जमी
ही नहीं। यह बूढ़ा हुआ ही नहीं। शरीर बूढ़ा हो गया है, मगर इसके प्राण युवा हैं। यह मौत को भी जान ही लगा। इसने जीवन को भी जाना, यह मौत को भी जान लेगा।
और जिसने जीवन और मृत्यु दोनों को जान लिया, उसने परमात्मा को जान लिया। ये दो द्वार हैं परमात्मा के। जीवन में परमात्मा है, मृत्यु में परमात्मा है। जीवन परमात्मा का दिन है, मृत्यु परमात्मा की रात है। जिसने दिन ही दिन जाना और रात न जानी, उसका जानना अधूरा है। रात के अपने मजे हैं। अपना विश्राम है। रात की अपनी शालीनता है। रात की अपनी गहराई, गहनता है। रात का गहन अंधकार जैसी शांति लाता है, वैसा सूरज का प्रकाश नहीं ला सकता। सूरज के प्रकाश में चीजें उथली हो जाती हैं। रात के अंधकार में गहन हो जाती हैं, गहराई पा जाती हैं।
और फिर दिनभर का थका-मांदा आदमी जैसे रात सो जाना चाहता है, ताकि फिर
कल सुबह उठ सके, ताकि कल फिर सुबह सूरज का स्वागत कर सके। ऐसा ही जीवन का थका-मांदा आदमी मृत्यु में सो जाना चाहता है। जो ठीक से जीया, वह ठीक से मरेगा। सम्यक जीवन सम्यक मृत्यु को लाता है।
डरो मत। डरने से क्या सार है! डरे तो जीवन से भी चूके, मौत से भी चूकोगे। जीवन भी ऐसे ही जीए, न के बराबर। और ऐसे ही मर भी जाओगे, खाली के खाली!
लेकिन तुम्हें कुछ दिखायी पड़ना शुरू हुआ है, उसका उपयोग कर लो।
इतना दर्द न दो मुझको।
इतना प्यार न दो मुझको।
ये पुरवैया-सा जीवन
ये पूजा-सा उजला तन
ये सावन के मेघ नयन
इतनी खुशियां इतना गम
कैसे झेल सकेगा मन?
इतना प्यार न दो मुझको।
इतना दर्द न दो मुझको।
आशाएं बनजारिन हैं
पीड़ाएं मनिहारिन हैं
इच्छाएं पनिहारिन हैं
जो कुछ मिला वही क्या कम? बहुरुपिया-सा मौसम
इतना प्यार न दो मुझको।
इतना दर्द न दो मुझको।
सरसों से पियराए दिन
अमुवां से गदराए छिन
सांसें पग धरती गिन-गिन
ऊबड़-खाबड़ रस्ते हैं
केवल सपने सस्ते हैं
इतना प्यार न दो मुझको।
इतना दर्द न दो मुझको।
न तो आदमी प्यार सह पाता, न पीड़ा सह पाता। दोनों से मुक्त हो जाना जरूरी है। और दोनों से मुक्त हो जाने का उपाय क्या है?
जो आए, उसे जीयो। जो आए, उसे परिपूर्णता से जीयो। पीड़ा आए, तो पीड़ा को। प्यार आए, तो प्यार को। सुबह हो तो सुबह, और सांझ हो तो सांझ। जो आए, उसे परिपूर्णता से जीयो; अधूरे-अधूरे नहीं, बे-मन से नहीं।
तुम थोड़ा चौंकोगे। क्योंकि तुम कहते होः सुख तो हम पूरे मन से जीना चाहते हैं, मगर मिलता नहीं। और दुख कौन पूरे मन से जीना चाहेगा! क्यों जीना चाहेगा? और मिलता बहुत!
तुम जरा दुख को भी पूरे मन से जीने की कोशिश करो। क्या मतलब है मेरे कहने का?

तुम्हारे सिर में दर्द है, मान लो, उदाहरण के लिए। साधारण चिंता यही होती है कि कैसे मिटे? न मिटे, तो कम से कम भूल जाए। चलो, एस्प्रो ले लो, कि एनासिन ले लो। मिटे न, तो भूल ही जाए।
तुमने कभी एक प्रयोग कियाः शांत बैठ जाओ, स्वीकार कर लो कि सिर में दर्द है आज। अंगीकार कर लो। तनाव छोड़ दो। सिर के दर्द के प्रति दुर्भाव छोड़ दो। मिट जाए--यह धारणा छोड़ दो। है--स्वीकार कर लो। विश्राम में हो जाओ और शांति से सिरदर्द को देखोः क्या है? तुम चकित हो जाओगे। जैसे-जैसे स्वीकार बढ़ेगा, वैसे-वैसे दर्द कम हो जाएगा।
यह करके देखो। यह तो प्रयोगात्मक है। यह तो योग की सामान्य प्रक्रियाएं हैं। यह असली योग है। शरीर का व्यायाम, और उलटे-सीधे खड़े होना--नकली योग है। उसका कोई मूल्य नहीं है।
चकित होकर रह जाओगे, विस्मय से भर जाओगे। जैसे-जैसे स्वीकार बढ़ेगा, दर्द कम होता जाएगा। स्वीकृति की मात्रा बढ़ती है, दर्द की मात्रा कम होती है। और जब तुम शांत भाव से देखोगे, साक्षी बन जाओगे, तो तुम पाओगे कि दर्द की मात्रा भी कम हो रही है, दर्द का क्षेत्र भी कम हो रहा है।
पहले लगता था, पूरे सिर में है। अब लगता है कि बस, एक कोने में है। और जागो। और अंगीकार करो। और साक्षी बनो। और तुम पाओगे कि अब एक कोने में भी नहीं है। जैसे सुई चुभती हो, ऐसे एक छोटे से स्थल पर केंद्रित है।
और जागो, और स्वीकार करो। यह सुई के बराबर जो दर्द रह गया है, यह यही कह रहा है कि अभी सुई के बराबर अस्वीकार रह गया है। यह यही कह रहा है कि अभी सुई के बराबर इनकार रह गया है। यह यही कह रहा है कि अभी सुई के बराबर साक्षीभाव का अभाव रह गया है। बस, इतना ही; और कुछ नहीं।
और तब तुम अचानक पाओगेः वह घड़ी आ जाती है, जब अचानक दर्द खो जाता है। फिर लौट आता है, फिर खो जाता है। फिर लौट आता है, फिर खो जाता है। इसका मतलब?
इसका मतलब यह हुआ कि जब तुम्हारा स्वीकारभाव खो जाता है, तब दर्द लौट आता है। जब तुम्हारा स्वीकारभाव लौट आता है, दर्द खो जाता है। दोनों साथ नहीं हो सकते। जैसे दीया ले आओ कमरे में, तो फिर अंधेरा खो जाता है। और दीया बुझा दो, तो अंधेरा आ जाता है। ऐसा साक्षीभाव का दीया जलता हो, तो दर्द खो जाता है। सब पीड़ा खो जाती है। सब भय खो जाता है। सब चिंता खो जाती है।
और तब तुम्हारे हाथ में कुंजी लगी जा रही है। फिर तुम उसका उपयोग करना चाहो, तो करो; न करना चाहो, तो न करो। पर कुंजी तुम्हारे हाथ लगी जा रही है। अगर परिपूर्ण रूप से कोई साक्षी हो जाए, तो सब दर्द खो जाते हैं। और परिपूर्ण रूप से कोई असाक्षी हो जाए, तो जीवन नर्क है और जीवन में दर्द ही दर्द है।
मैं तुमसे यह नहीं कह रहा हूं कि साक्षीभाव हो जाने से सुख हो जाएगा। मैं इतना ही कह रहा हूं कि दुख भी खो जाएंगे, और सुख भी खो जाएंगे। क्योंकि सुख भी दुख के ही रूप हैं।
फिर बचती है--परिपूर्ण शांति। उस शांति का नाम ही आनंद है। भाषाकोश में तो आनंद का अर्थ लिखा हैः महासुख। वह गलत है। आनंद का भाषाकोश से क्या लेना-देना! भाषाकोश लिखने वालों को आनंद का क्या पता?
आनंद महासुख नहीं है। आनंद दुख और सुख दोनों का अभाव है। कोई उत्तेजना नहीं रह गयी--न सुखद, न दुखद; न प्रीतिकर, न अप्रीतिकर। उत्तेजना ही गयी। आनंद है अनुत्तेजित स्थिति। सब तरह का बुखार गया। सब तरफ शीतल हो गया। उस शीतल दशा को ही मोक्ष कहा है।
जब यह दशा तुम्हारी सामान्य दशा हो जाए, तो तुम यहां पृथ्वी पर रहते
ही मोक्ष में विराजमान हो गए।
यहीं है नर्क। यहीं है स्वर्ग। यहीं है मोक्ष। और जो यहां मुक्त हो जाता है, वही मृत्यु के बाद भी मुक्त रहेगा। जो यहां बंधा है, वह मृत्यु के बाद फिर वापस लौट आएगा। वह इस चाक से बंधा है। यह चाक घूमता ही जा रहा है। तुम पूछते होः "मेरे लिए क्या मार्ग है?"

साक्षी। और तुम्हारे लिए ही नहीं, सब के लिए। मार्ग एक है। चलने वाले अनेक होंगे, मगर मार्ग एक है।

तीसरा प्रश्नः मुझे आपसे बहुत प्रेम है, फिर भी मुझे परमात्मा को जानने की प्यास क्यों नहीं है? प्रभु, मुझे भी पुकार लो। मैं कब तक भटकती रहूंगी?

परमात्मा शब्द को छोड़ो। उस शब्द के कारण झंझट है।
परमात्मा को कभी देखा नहीं, प्रेम हो तो कैसे हो? परमात्मा से मुलाकात नहीं, प्रेम हो तो कैसे हो? परमात्मा है या नहीं, यह भी पक्का नहीं, तो प्रेम हो तो कैसे हो?
परमात्मा से तो प्रेम ऐसे ही है, जैसे कोई अंधा आदमी अंधेरे में तीर चला रहा है और सोच रहा है--शिकार कर लेगा!
तुम परमात्मा से प्रेम कैसे कर सको--मैं यह अपेक्षा भी नहीं करता। मेरी अपेक्षा कुछ और है।
जीसस ने कहा है, परमात्मा प्रेम है। मैं तुमसे कहता हूं, प्रेम परमात्मा है। तुम प्रेम करो; परमात्मा को छोड़ो अभी। जैसे-जैसे तुम्हारा प्रेम सघन होगा, वैसे-वैसे तुम्हें परमात्मा की प्रतीति होनी शुरू होगी। प्रेम की सघनता में तुम्हें परमात्मा के दर्शन और झलकें मिलेंगी।
अब तुम उलटी बात मांग रहे हो। तुम मांग रहे हो कि पहले मुझे परमात्मा
से प्रेम करना है। और परमात्मा का पता नहीं है। हो कैसे? इन वृक्षों से हो सकता है। फूलों से हो सकता है। चांद-तारों से हो सकता है। मनुष्यों से हो सकता है। जिनका बोध तुम्हें हो रहा है, उनसे हो सकता है। परमात्मा से कैसे हो?
और जो कहते हैं, उनको परमात्मा से प्रेम है, उनको अभी पता नहीं है कि
वे क्या कह रहे हैं। धोखा ही दे रहे हैं। सौ में निन्यानबे आदमी, जो कहते हैं, उनको परमात्मा से प्रेम है, उनको कुछ पता नहीं है।
सच तो यह है कि परमात्मा से तो दूर, परमात्मा के नाम पर उन्होंने आदमियों से भी प्रेम करना बंद कर दिया है। यह तरकीब मिल गयी उनको--कि हमको तो परमात्मा से प्रेम है। आदमियों से क्या करना! उन्होंने तो यह तरकीब बना ली--कि आदमियों से प्रेम छोड़ना पड़ेगा, तब परमात्मा से प्रेम होगा।
परम भक्त रामानुज के पास एक आदमी आया। और उसने कहा कि मुझे परमात्मा
को पाने का मार्ग बता दें। मैं परमात्मा को पाने के लिए दीवाना हूं। मुझे परमात्मा चाहिए ही चाहिए। मैं सब दांव पर लगाने को तैयार हूं।
रामानुज ने उस आदमी को देखा और कहा कि मैं तुमसे कुछ प्रश्न पूछूं? तुमने कभी किसी को प्रेम किया? उस आदमी ने कहाः आप फिजूल की बातें न पूछें। मैं इस तरह की झंझटों में पड़ा ही नहीं। मैंने कभी किसी को प्रेम नहीं किया। मुझे तो परमात्मा से प्रेम है। मुझे तो आप परमात्मा का रास्ता बता दें। मैं सब दांव पर लगाने को तैयार हूं।
रामानुज की आंखें गीली हो गयीं। उन्होंने कहाः मैं तुझसे फिर एक बार पूछता हूं। जरा खोजबीन कर अपने मन में। कभी तो किसी को किया होगा--मां को, पिता को, भाई को, बहन को, किसी स्त्री को, किसी मित्र को--किसी को भी प्रेम तूने कभी नहीं किया? उसने कहाः मैं इन झंझटों में, संसार की झंझटों में मैं पड़ता ही नहीं। यह सब असार है। कौन किसकी माता? कौन किसका पिता? कौन किसका भाई? कौन किसकी पत्नी? यह सब असार है, यह सब माया है। आप जैसे संत पुरुष और ये कहां की बातें पूछ रहे हैं! मुझे तो परमात्मा से प्रेम है। रामानुज का वचन बड़ा महत्वपूर्ण है। रामानुज ने कहाः फिर मैं तुझे साथ
न दे सकूंगा। सहारा न दे सकूंगा। मैं असहाय हूं। तूने किसी को प्रेम किया होता, तो प्रेम से ही परमात्मा का रास्ता निकल सकता था। तूने किसी से प्रेम ही नहीं किया, तो तूने रास्ता ही तोड़ दिया।
तुम परमात्मा को छोड़ ही दो। अब तुम्हारा परमात्मा से प्रेम नहीं है
और परमात्मा की प्यास नहीं, तो अब कोई प्यास तो पैदा नहीं की जा सकती। और अगर पैदा की जाए, तो झूठी होगी, कृत्रिम होगी।

अब जैसे किसी आदमी को प्यास नहीं लगी है। अब क्या करो? समझाओ उसको कि लगाओ प्यास! शास्त्रों के उल्लेख दो कि प्यास बड़ी ऊंची चीज है, लगनी चाहिए! उसका कंठ सूखा नहीं है। उसको प्यास लगी नहीं है, तो क्या करोगे! कितनी ही चीख-पुकार मचाओ... ।
अगर ज्यादा जोर-जबर्दस्ती करोगे उस पर, और नर्क का डर दिखलाओगे कि अगर प्यास नहीं लगी तो नर्क में सड़ोगे, और अगर प्यास लगी तो स्वर्ग में सुख भोगोगे, तो वह आदमी सोचेगाः चलो, लगाओ प्यास!
लगाओ प्यास का क्या मतलब होगा? वह झूठ ही कहने लगेगा कि हां, मुझे प्यास लगी है। बड़ी प्यास लगी है। मेरा कंठ जल रहा है! और वह जानता है कि न कंठ जल रहा है, न प्यास लगी है।
ऐसे ही मंदिरों में लोग खड़े हैं हाथ जोड़े--कि हे प्रभु, दर्शन दो। कंठ-मंठ में कहीं कोई आग नहीं लगी है। फिर कहते हैंः हमारी प्रार्थनाएं सुनी नहीं जातीं। प्यास ही झूठी है। और इसका जिम्मा किस पर है? ये तुम्हारे साधु-संत जो तुम्हें समझाते हैं कि परमात्मा की प्यास जगाओ, उन पर जिम्मा है।
प्यास कहीं जगायी जाती है? फिर क्या उपाय है? उपाय यही है कि जिस बात
की प्यास है, उसी से शुरू करो।
अगर तुम्हें मुझसे प्रेम है, तो चलो, यही सही। इसी प्रेम में पूरे डूबो। इस डुबकी से ही शायद और बड़े प्रेम की प्यास लगे। अनुभव चाहिए न! तुम्हें एक बूंद की प्यास है, सागर की प्यास नहीं है। मैं कहता हूंः एक बूंद ही पीयो। शायद एक बूंद से जो तृप्ति मिले... । बूंद तो है, कोई महातृप्ति नहीं मिलेगी। लेकिन कुछ तृप्ति मिलेगी। कंठ शीतल होगा। रस जगेगा। सोचोगेः दो बूंद मिल जाएं, तो अच्छा। दस बूंद मिल जाएं, तो अच्छा! प्रेम के अनुभव से ही आदमी परमात्मा के अनुभव तक जाता है। परमात्मा परम प्रेम है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा प्रेम की आत्यंतिक संभावना है, आखिरी मंजिल है। तुम प्रेम तो करो। तुम किसी को भी प्रेम करो।
इसलिए मैं तुमसे कहता हूं कि कहीं भागना मत संसार को छोड़कर। क्योंकि संसार छोड़कर भागे कि तुम दरवाजा ही छोड़कर भाग गए मंदिर का। फिर तुम लाख सिर पटको कहीं भी, और कोई दरवाजा नहीं है। यह संसार दरवाजा है। यहीं से परमात्मा के मंदिर का प्रवेश है।
तुम प्रेम करोः पत्नी को, बच्चों को, मित्रों को। और परिपूर्णता से करो, कंजूसी से नहीं।
लोग बड़े कृपण हैं। लोग ऐसे कृपण हैं कि कहना कठिन है! कल देखा न, बुद्ध
की इस कथा मेंः एक कंजूस मरा, सात दिन तक बैलगाड़ियों में धन ढोया गया। और दूसरा कंजूस उसका धन ढोता रहा! और उस दूसरे कंजूस को यह बात तो दिखायी पड़ी कि यह आदमी धन इकट्ठा कर-करके मर गया और कुछ न पाया। मगर यह ढो रहा है उसी के धन को! यह भी कल मरेगा, कोई और इसके धन को ढोएगा। और यह आदमी बुद्ध के पास आया कि यह बेचारा कंजूस! जिंदगीभर... । आपके इतने पास था भगवान, दान नहीं किया! धर्म-श्रवण नहीं किया! आपके दर्शन को नहीं आया कभी! यह कैसा कंजूस! और सात दिन यह राजा उसका धन ढोता रहा राजमहल में। सात दिन यह भी बुद्ध के पास नहीं आया। आता था पहले रोज; पर सात दिन भूल गया।
जब धन मिल रहा हो, तो धर्म को कौन याद रखता है!
मुल्ला नसरुद्दीन एक टैक्सी में अपना बटुवा भूल आया। टैक्सी ड्राइवर कोई सतयुगी होगा, सीधा-सादा आदमी, उसने अखबार में खबर निकलवा दी कि मुझे एक बटुवा मिला है, दस हजार रुपए उसमें हैं। जिसके हों, वह ठीक-ठीक ब्यौरा देकर मुझसे ले जाए।
मुल्ला नसरुद्दीन गया। उसने सब ब्यौरा दिया। जांच-पड़ताल ब्यौरे की बिल्कुल ठीक थी। तो उस आदमी ने बटुवा दे दिया। मुल्ला नसरुद्दीन ने जल्दी से बटुवा खोला, रुपए गिने। एक बार गिने, दो बार गिने, तीन बार गिने। वह आदमी थोड़ा चिंतित होने लगा। गरीब टैक्सी ड्राइवर। उसने कहा कि नसरुद्दीन, क्या रुपए कम हैं? आप तीन बार गिन चुके!

नसरुद्दीन ने कहाः नहीं, इतने दिन तुम्हारे पास रहे, इसका ब्याज कहां है?
ऐसे लोग हैं! ऐसी अकृतज्ञता है! धन्यवाद की तो बात दूर, इसका ब्याज कहां है!
ऐसी एक कहानी और मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में मैंने सुनी है। उसका छोटा बेटा नदी में नहाने गया और नदी में डुबकी खा गया। कोई आदमी दौड़ा, उसने उसके बेटे को बचाया। मुल्ला नसरुद्दीन के घर ले गया। बेटे को जाकर घर पहुंचाया और कहा कि यह डूबता था, बामुश्किल बचा पाया। सम्हालिए अपने बच्चे को।
मुल्ला ने अपने बेटे को गौर से देखा। और कहाः वह तो ठीक है। बेटा तो ठीक है, लंगोटी कहां है? वह जो लंगोटी पहने था, वह नदी में कहीं बह गयी।
अब जैसे इस आदमी का कसूर है कि लंगोटी कहां! बेटा बचा, इसकी खुशी नहीं; लंगोटी के जाने का दुख है।
आदमी कृपण है--सब आयामों में। प्रेम में भी बड़ा कृपण है। लोग प्रेम भी ऐसा करते हैं कि कहीं ज्यादा न हो जाए! कि कहीं ऐसा न हो कि मैं ज्यादा प्रेम कर दूं! कहीं खो न जाए मेरी संपदा! और प्रेम ऐसी संपदा है कि जितना बांटो, उतनी बढ़ती है। जितना करो, उतना तुम्हारा हृदय प्रेमपूर्ण हो जाता है। जितना उड़ो प्रेम के आकाश में, उतने ही तुम्हारे पंख बड़े और सशक्त हो जाते हैं। जितना बढ़ो प्रेम के आकाश में, उतनी ही तुम्हारी जड़ें जमीन में गहरी चली जाती हैं और जीवन के स्रोतों से तुम्हारा संबंध हो जाता है। लेकिन प्रेम में बड़ी कंजूसी है। और अक्सर लोग इस प्रेम की कंजूसी को परमात्मा के नाम में छिपा लेते हैं।
मेरा अपना अनुभव यही है। सैकड़ों साधु-संन्यासियों को मैं जानता हूं। मेरा अपना अनुभव यही है कि वे आदमी को प्रेम नहीं कर सके, और इसलिए परमात्मा के प्रेम की बातें कर रहे हैं। वे कंजूस हैं, कृपण हैं।
जैन मंदिरों में जो जैन मुनि बैठे हैं, उनमें से बहुतों को मैं जानता हूं। हिंदू संन्यासियों को जानता हूं। तुम्हारे बड़े प्रसिद्ध मुनि और संन्यासियों को जानता हूं। और सब के भीतर देखकर मुझे जो दिखायी पड़ा है, वह इतना है कि वे आदमी को प्रेम नहीं कर सके। आदमी को प्रेम करने की क्षमता उनमें नहीं थी। इसलिए परमात्मा का नाम आड़ बन गया। इस आड़ में वे खड़े हैं। अब प्रेम नहीं कर सकते, इसका दंश भी नहीं है! प्रेम कर ही नहीं सकते, क्योंकि संसार को कैसे प्रेम करें? लोगों को कैसे प्रेम करें? हम तो परमात्मा को प्रेम करते हैं!
और तुमने देखा, ये परमात्मा को प्रेम करने वाले लोग बड़े खतरनाक साबित हुए हैं। जरा सावधान रहना। जो आदमी कहे कि मैं मनुष्यता को प्रेम करता हूं, उससे जरा बचना; वह खतरनाक आदमी है। मनुष्य को जो प्रेम करता है, वह भला आदमी है। मनुष्यता कहां है, जिसको तुम प्रेम करोगे?
जो आदमी कहता हैः मैं मनुष्यता को प्रेम करता हूं, यह हत्यारा हो जाएगा। जोसेफ स्टैलिन ने एक करोड़ आदमी रूस में मार डाले। मनुष्यता को प्रेम! मनुष्य मार डाले एक करोड़, मनुष्यता के प्रेम में! मारना ही पड़ेगा। मनुष्यता को बचाना है, तो मनुष्यों को मारना पड़ेगा।
माओ-त्से-तुंग भी मनुष्यता को प्रेम करते हैं! लाखों लोग जेलों में डाले गए और मारे गए। और हिटलर भी मनुष्य के भविष्य को प्रेम करता था। सुंदर भविष्य चाहता था। महामानव पैदा हो, सुपरमैन पैदा हो, इसकी आकांक्षा से रत था। तो इस कूड़ा-कचरे को उसने साफ कर दिया, आदमी मार डाले!
ईसाई, मुसलमान, हिंदू, जैन--सब लड़ते रहे हैं एक-दूसरे से। और सब कहते हैं कि परमात्मा की तलाश कर रहे हैं! क्या मामला है? कहीं कुछ भूल हो गयी है। कहीं कुछ बुनियादी चूक हो गयी है।
आदमी को प्रेम करो। परमात्मा सिद्धांत है, आदमी वस्तुतः है। आदमी वास्तविकता है। मनुष्य को प्रेम करो, मनुष्यता को नहीं। मनुष्य को प्रेम करो, प्रजातंत्र को नहीं। मनुष्य को प्रेम करो, समाजवाद को नहीं।
ये खतरनाक शब्द हैंः समाजवाद, प्रजातंत्र, मनुष्यता, परमात्मा। इनकी
आड़ में कठोर हृदय छिप जाते हैं। जैसे कोई फूलों की आड़ में पत्थर को रख दे।

ये कारीगिरियां हैं, आदमी की चालाकियां हैं; ये कुशलताएं हैं, ये कूटनीतियां हैं।
तो मैं तुमसे यह नहीं कहूंगा कि तुम परमात्मा को पाने की प्यास पैदा करो। यह बात इतनी मूढ़ता की है कि मैं नहीं कह सकता। कोई प्यास कैसे पैदा कर सकता है? लगे, तो लगे। न लगे, तो प्यास कहीं पैदा होती है?
हां, प्यास लग जाए, तो पानी खोजा जा सकता है। लेकिन पानी भी सामने हो
और प्यास न लगी हो, तो प्यास नहीं लग सकती। पानी देखकर भी प्यास नहीं लग सकती। और लगेगी, तो झूठी होगी। और झूठी प्यास से परमात्मा का कभी संबंध नहीं होता।
तुम्हें झूठी प्यासें पैदा करने की आदत हो गयी है। बच्चा घर में पैदा होता है। मां कहती हैः मुझे प्रेम कर। मैं तेरी मां हूं। मां होने से बच्चे में प्रेम पैदा होना चाहिए, ऐसी कोई अनिवार्यता तो नहीं है। बच्चा क्या करे? वह मां पर निर्भर हैः दूध इससे मिलता, सेवा इससे मिलती। और मां प्रसन्न रहे, तो उसका बचाव है। मां नाराज हो जाए, तो उसका बचाव नहीं है। तो बच्चा एक झूठ पैदा कर लेता है। वह मां को देखकर मुस्कुराता है। यह राजनीति की शुरुआत है। यह बच्चा राजनीतिज्ञ हो रहा है। यह आज नहीं कल मगरूरजीभाई देसाई हो जाएगा! यह चल पड़ा दिल्ली की तरफ। इसने यात्रा शुरू कर दी। अब चाहे अस्सी साल लगें पहुंचने में, मगर यह चल पड़ा।
यह मां को देखकर हंसता है। यह झूठी हंसी इसके ओंठ पर आती है। क्योंकि
यह जानता है कि मां से दूध मिलता है। अगर हंसूं तो वह जल्दी पास आ जाती है, पुलककर पास आ जाती है। हंसूं, तो जल्दी से स्तन मुंह में दे देती है। हंसूं, तो छाती से लगा लेती है।
यह बच्चा जानता ही नहीं कि प्रेम क्या है। लेकिन मां इसको कोशिश कर रही है कि प्रेम पैदा हो जाए।
फिर पिता कहता है कि मैं तुम्हारा पिता हूं, मुझे प्रेम करो। ये तुम्हारे भाई हैं, इनको प्रेम करो। यह तुम्हारी बहन है, इसको प्रेम करो। ये तुम्हारे फलां हैं, ये तुम्हारे ढिकां है--इनको प्रेम करो। जैसे कि प्रेम कोई सीखने की बात है! और बच्चा सीखता चला जाता है कि ठीक है। जब सभी कह रहे हैं, तो करना ही पड़ेगा!
करेगा क्या वह? वह सिर्फ ऊपर से धोखा देगा। पाखंड पैदा हुआ। इस पाखंड
के कारण फिर असली प्रेम पैदा ही नहीं होगा। जो नकली में पड़ गया, उसका असली रुक जाता है।
इसलिए दुनिया में प्रेम की इतनी बकवास है और प्रेम बिल्कुल नहीं है। बातचीत खूब है। सब बात कर रहे हैं प्रेम ही प्रेम की। और सभी प्रेमी हैं। और प्रेम कहीं दिखायी नहीं पड़ता! दिखायी पड़ता हैः शुद्ध अप्रेम। कारण क्या होगा?
असली फूल खिल नहीं पाया। उसके पहले नकली फूल हमने पौधे पर लटका दिया। असली फूल की जगह ही रोक ली। असली फूल के लिए स्थान न रहा खिलने का। और एक दफा नकली फूल खिलाने की आदत आ गयी, तो फिर कौन असली की झंझट ले। असली के साथ थोड़ी झंझट भी है। नकली सुविधापूर्ण है। बाजार में बिकता है। चेष्टा करने से हो जाता है।
यह जो चेष्टित प्रेम है--झूठा है।
तो मैं तुमसे यह न कहूंगा कि परमात्मा को प्रेम करो। तुम बच्चों को भी यही झूठ सिखा रहे हो। ले गए मंदिर में उनको--कि ये परमात्मा बैठे हैं।
बच्चा देखता है कि यहां कोई परमात्मा वगैरह नहीं है। इधर-उधर भी देखता है।
एक मूर्ति रखी है पत्थर की। क्योंकि बच्चे को तुम धोखा नहीं दे सकते।
बच्चे की आंखें अभी साफ-शुद्ध हैं। अभी धोखा देर है।
बच्चा कहता भी है कि पिताजी! भगवान! ये भगवान? इनको तो अभी मैं धक्का
दे दूं तो लुढ़क जाएं! और वह देखो, वह चूहा चढ़ रहा है इनके ऊपर। वे जो लड्डू चढ़े हैं, तो चूहा भी आ गया है। ये तो चूहे से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते! और आप कहते हैं कि ये जगत के रक्षक हैं! ये कैसे रक्षक? ये कैसे भगवान?
लेकिन बाप कहता हैः चुप रह! जब तू बड़ा होगा, तब जानेगा। अभी झुक, अभी नमस्कार कर।

यह बच्चा जब इन भगवान को नमस्कार करता है, तो असल में भगवान को नमस्कार नहीं कर रहा है। यह सिर्फ बाप की जबर्दस्ती को नमस्कार कर रहा है।
यह बाप ताकतवर है। और जिसकी लाठी, उसकी भैंस! यह झुक रहा है भगवान को।
लेकिन वस्तुतः इसको भगवान से क्या लेना-देना है! यह इधर-उधर आंख उठाकर भी देख रहा है।
मेरे पास लोग ले आते हैं अपने बच्चों को। जबर्दस्ती उनको झुकाते हैं--
कि छुओ पैर--गरदन पकड़कर! कुछ ही दिन पहले एक महिला अपने बच्चे को लेकर आयी। उसकी गरदन को पकड़कर झुका रही है! वह बेचारा गर्दन उठा रहा है। उसको झुकना नहीं है।
यह तुम क्या कर रहे हो! यह खतरनाक बात सिखा रहे हो। इसके जीवन में फिर असली झुकना कभी नहीं होगा। यह तभी झुकेगा, जब कोई गरदन पकड़ लेगा। फिर इसकी पत्नी इसको झुकाएगी--गरदन पकड़कर। फिर इसके दफ्तर का मालिक इसको झुकाएगा-- गरदन पकड़कर। फिर पुलिस वाला झुकाएगा--गरदन पकड़कर। मजिस्ट्रेट झुकाएगा। जो भी इसकी गरदन पकड़ेगा, वहीं झुकेगा। और जिसकी गरदन यह पकड़ सकेगा, यह उसको झुकाएगा। बस, यह खेल चलेगा। जिससे यह कमजोर होगा, उसका चांटा खाएगा। और जो इससे कमजोर होगा, उसको चांटा मारेगा। जिंदगी इसकी खराब हो जाएगी। और जब मुझे सुनने वाले लोग ऐसा करते हैं, तो औरों का क्या कहना!
मंदिर में झुका दिया जबर्दस्ती बेटे को और कहाः जब बड़े हो जाओगे, तब समझ में आएगा। जैसे कि उनको समझ में है, पिता को समझ में है! उनको भी कुछ समझ में नहीं आया है।
लेकिन उनके पिता उनको झुका गए थे। और कह गए थेः जब बड़े हो जाओगे, तब समझ में आ जाएगा। अब किसी से कहें कि कुछ समझ में नहीं आया, तो बेइज्जती होती है। अब अपनी पोल-पट्टी खोलने से क्या फायदा! अपनी तो कट ही गयी! अपनी पूंछ तो कट ही गयी!
एक आदमी की तुमने कहानी सुनी न! उसकी नाक कट गयी थी। असल में एक औरत के प्रेम में था। और उसके पति ने पकड़ लिया और उसने उसकी नाक काट दी। अब वह आदमी बड़ी मुश्किल में पड़ा। अब यह कटी हुई नाक लेकर कहां जाए!
वह संन्यासी हो गया, उसने गैरिक वस्त्र पहन लिए। वह एक झाड़ के नीचे बैठ गया। बिल्कुल बुद्ध होकर बैठ गया। गांव के लोग बड़े हैरान हुए। वह पति भी बड़ा हैरान हुआ जिसने उसकी नाक काटी थी। वह भी जरा... ! कि मामला क्या हुआ! एकदम से क्रांति हो गयी इसके जीवन में!
लोग पूछने आने लगे--कि भई! हुआ क्या? उसने कहा कि बड़ा गजब हो गया! इस आदमी की बड़ी कृपा है, इसने मेरी नाक काट दी। लेकिन नाक काटते ही मुझे परमात्मा का दर्शन हो गया! यह नाक ही बाधा थी। नाक क्या गयी, एकदम च्रु खुल गए, तीसरा-नेत्र खुल गया! मुझे भी भरोसा नहीं आता, मगर हो गया। मेरा जीवन बदल दिया इस आदमी ने।
अब कई को इच्छा होने लगी, खुजलाहट होने लगी--कि यह तो सस्ता है मामला। अगर नाक काटने से परमात्मा मिलता हो, तो कितने लोग न कटवा लेंगे!
ऐसे ही तो नाक कटवा रहे हैं लोग! कोई उपवास करके नाक कटवा रहा है। कोई सिर के बल खड़ा है। कोई कांटों पर लेटा हुआ है। कोई पूजा कर रहा है। कोई प्रार्थना में लगा है। क्योंकि परमात्मा ऐसे मिलेगा, ऐसे मिलेगा! लोगों ने क्या नहीं कटवाया है परमात्मा को पाने के लिए!
दो-चार ने नाक कटवा ली उससे। उसका काम ही यह हो गया। वह अपने उस्तरे पर धार रखता रहता। यही उसका भजन-कीर्तन! दो-तीन--जिनकी उसने नाक काट दी--उनको ले जाता झाड़ के पीछे, नाक काट देता। और कहताः दिखा परमात्मा? वे देखते। वे कहते कि दिखा तो नहीं! वह कहताः अब तुम्हारी तो कट ही गयी। अब अगर तुम कहो कि नहीं दिखा, तो लोग तुमको बुद्धू समझेंगे। अब जो हुआ, सो हुआ। अब तो तुम यही कहो--इसी में सार है--कि यह नाक क्या कटी, एकदम तीसरा-नेत्र खुल गया! तो जिनकी कट गयी, वे भी कहते कि तीसरा-नेत्र... ! उसके शिष्य भी बढ़ने लगे। शिष्यों की भीड़ लगने लगी। और जब शिष्य बढ़ने लगे, तो और लोगों पर भी परिणाम हुआ कि जरूर कुछ मामला होना चाहिए। एक आदमी गलत हो, इतने लोग तो गलत नहीं हो सकते।

बात यहां तक पहुंची कि खुद राजा भी... ! मामला यहां तक पहुंचा। राजा के कान में भी जब खबर पहुंची, तो वह भी सोचने लगा कि अगर ईश्वर के दर्शन ऐसे हो रहे हैं, तो मुझे भी कर लेने चाहिए। नाक में क्या रखा है! गयी, तो गयी! जब इतनों की चली गयी... । और जब उसने सुना कि जिस आदमी ने इसकी नाक काटी थी, वह भी इसका शिष्य हो गया और उसने भी कटवा ली, तो फिर राजा से भी न रहा गया--कि अब मामला रुकने जैसा नहीं है। और वह भी कहने लगा कि भई! होता है दर्शन तो। राजा खुद आया। वजीर जरा होशियार था। जब राजा राजी हो गया और वह आदमी छुरे पर धार रखने लगा, तो वजीर ने कहाः आप जरा दो-चार दिन रुक जाएं। मुझे जरा ठीक से पता लगा लेने दें। राजा ने कहाः अब और क्या पता लगाना! देखते नहीं, इतने लोगों की नाक कट गयी! और सब कह रहे हैं कि दर्शन हो रहा है। सब कैसे प्रसन्न मालूम हो रहे हैं! ऐसी प्रसन्नता, ऐसा आनंद! सब डोल रहे हैं। कह रहे हैं कि बड़ा मजा आया। जब इतने रस-विभोर लोग बैठे हैं--अब सोचना क्या? वजीर ने कहाः आप दो-चार दिन रुक जाएं। दो-चार दिन में हर्जा भी क्या है! दो-चार दिन के बाद मजा ले लेना।
उसने दो-तीन नककटों को पकड़ा। उनकी अच्छी पिटाई करवायी। और उनसे कहा
कि तुम सच-सच कहो। जब उनकी ज्यादा पिटाई होने लगी, तो उन्होंने कहाः अब हम आपसे क्या छिपाएं! मगर हमारी तो कट ही गयी। और उस आदमी ने बड़ा धोखा किया। उस आदमी ने पहले तो काट दी, और फिर कहाः भई! अगर अब न दिखेगा, तो लोग तुम पर हंसेंगे। हमने भी सोचा कि अब अपनी कट गयी, अपनी बचाने का यही उपाय है। तुम्हारे पिता जब तुम छोटे हो, तुमसे कह रहे हैं कि जब तुम बड़े हो जाओगे, तुमको पता चल जाएगा। यही उनके पिता ने कहा था। न उनको पता चला है, न तुमको पता चलेगा।
पत्थरों की मूर्तियों के सामने झुकने से क्या पता चलना है! पता चलने
का उपाय ही बंद हो गया। मुर्दा शास्त्रों की पूजा करने से क्या पता चलना है? मूढ़ता है।
मैं पंजाब में एक घर में ठहरता था। सुबह उठकर मैं निकला, आंगन की तरफ
जा रहा था स्नान करने। जिस कमरे से गुजरा, वहां उन्होंने गुरु-ग्रंथ-साहब रख छोड़े हैं। मैं तो जरा चौंका। गुरु-गं्रथ-साहब के सामने ही एक भरा लोटा रखा है और दतौन रखी है। मैंने पूछाः भई, यह दतौन, यह लोटा किसलिए? तो वह गुरु-ग्रंथ-साहब के लिए सुबह दतौन करने के लिए रखा है।
गुरु-गं्रथ-साहब! न कोई साहब हैं। चलो, कोई कृष्ण की मूर्ति के सामने दतौन रख दे, तो समझ में भी आता कि चलो, कुछ तो, कम से कम मूर्ति है। अब यह तो सिर्फ किताब है! मगर मूढ़ता का कोई अंत नहीं है! गुरु-गं्रथ-साहब दतौन कर रहे हैं!
मैंने कहाः कुछ तो दया खाओ! गुरु-ग्रंथ पर कुछ तो दया खाओ। तुम्हारे साथ गुरु-ग्रंथ को तो न डुबाओ! तुम्हीं दतौन कर लो यही बहुत है।
मगर यह चल रहा है। और तुम भी जब बड़े हो जाओगे, तो तुम भी अपने बेटे को उन्हीं मूर्तियों के सामने झुका जाओगे, उन्हीं मूढ़ताओं में दबा जाओगे। और कह जाओगे कि जब बड़े हो जाओगे, तुमको भी पता चलेगा। लेकिन तब तक नाक कट जाती है। फिर कौन किससे कहे?
नाक-कटे लोग मंदिरों में पूजा कर रहे--मुनि हैं, संन्यासी हैं--और दूसरों की नाक काटने के लिए छुरों पर धार रख रहे हैं।
मैं तुमसे यह न कहूंगा कि तुम परमात्मा को प्रेम करो। कैसे करोगे? जिसे जाना नहीं, जिसे पहचाना नहीं, जिससे कभी कोई मिलन नहीं हुआ, जिसके हाथ में हाथ नहीं पड़ा, उसको तुम कैसे प्रेम करोगे? और प्रेम की प्यास तो कैसे हो पैदा?
तो मैं तो तुमसे यह कहता हूंः जहां तुम्हारा प्रेम हो जाए, जिससे तुम्हारा प्रेम हो जाए, कंजूसी मत करना। उस प्रेम में पूरे के पूरे न्योछावर हो जाना। उस न्योछावर होने से ही तुम्हें और प्यास जगेगी। मनुष्य को जिसने ठीक से प्रेम किया, वह आज नहीं कल परमात्मा के प्रेम में निकल ही पड़ेगा। कि जब मनुष्य के प्रेम में इतना रस मिला, क्षणभंगुर के प्रेम में इतना रस मिला, तो शाश्वत के प्रेम में कितना रस न मिलेगा!

और जो मनुष्य में ठीक से गहरे उतरेगा, वह पाएगा कि मनुष्य ऊपर से क्षणभंगुर है, भीतर तो शाश्वत है। हैं तो सभी परमात्मा के रूप, जरा खुदाई गहरी करनी पड़ेगी।
मनुष्य में प्रेम अगर तुम्हारा लग जाए... । मनुष्य को तो छोड़ो, वृक्ष
से भी अगर तुम ठीक से प्रेम करो, तो वृक्ष में भी तुम्हारी गहराई बढ़ेगी और तुम एक दिन पाओगेः वृक्ष में भी वैसी ही आत्मा विराजमान है, वैसा ही परमात्मा विराजमान है।
प्रेम की गहराई तुम्हें सभी जगह परमात्मा से मिला देगी।
परमात्मा शब्द को जाने दो। प्रेम शब्द पर्याप्त है। प्रेम से ही परमात्मा आता है। तो मैं कहता हूंः प्रेम प्रार्थना बनेगी। और प्रार्थना परमात्मा बन जाती है।

आखिरी प्रश्नः मैं किस बात की प्रतीक्षा कर रहा हूं, वह मुझे भी पता नहीं है। इतना ही ज्ञात है कि प्रतीक्षा है। लेकिन कभी कुछ घटता भी नहीं। और मैं बहुत अकेला हूं। मैं क्या करूं?

ऐसी ही दशा है सभी की। राह देख रहे! किसकी राह देख रहे? इसका ठीक-ठीक कुछ पता नहीं।
राह देखने का इतना ही अर्थ है कि कुछ कमी मालूम हो रही है। कुछ कम है। कुछ होना चाहिए था, जो नहीं है। कुछ जगह खाली है। राह देखने का इतना ही अर्थ है कि मुझे जहां होना चाहिए, जैसा होना चाहिए, वैसा नहीं हूं।
तुम किसी और की राह नहीं देख रहे हो, अपने ही प्रस्फुटित होने की राह देख रहे हो। तुम्हारा फूल खिल जाए, इसकी ही राह देख रहे हो। यह घटना कहीं बाहर से नहीं घटने वाली है। कोई आने वाला नहीं है। अगर किसी और की राह देखते रहे, तो राह ही देखते रहोगे। न कभी कोई आया है, न कभी कोई आएगा। तुम्हें कुछ होना है; कोई आना नहीं है। आने को कोई है ही नहीं। तुम्हें कुछ होना है। इस भेद को समझ लेना। क्योंकि इस भेद से ही सारा फर्क पड़ जाएगा।
अगर तुम राह देखते हो, तो करने की तो कोई जरूरत नहीं है। बैठे हैं अपने दरवाजे पर, राह देख रहे हैं! कुछ करोगे नहीं, तो कुछ होगा नहीं। राह देखना निष्क्रिय दशा है। राह देखने वाला आदमी धीरे-धीरे, धीरे-धीरे बिल्कुल निष्क्रिय हो जाएगा। राह देखने में आलस्य घना हो जाएगा।
राह देखने की बात नहीं है। इसलिए परम ज्ञानियों ने ऐसा नहीं कहा कि परमात्मा बाहर है। उन्होंने कहाः परमात्मा भीतर है।
राह देखने से क्या होगा? राह देखने पर तो जो बाहर है, वह आता है। खुदाई करनी है अपने भीतर। अपने भीतर की सीढ़ियां उतरनी हैं। अपने भीतर के कुएं में जाना है, जल वहां है। निष्क्रिय होने से नहीं होगा। राह पर आंखें अटकाए रखने से नहीं होगा। जितने जल्दी तुम आंख बंद कर लो... । क्योंकि आंख खोलकर बाहर अगर देखते रहे, देखते रहे, तो कुछ भी न मिलेगा। बाहर कुछ है नहीं। जो मिलना है, भीतर है। संपदा भीतर है।
आंख बंद करो, और फिर राह देखो। आंख बंद करो, और फिर देखो। आंख बंद करो
और अपने को पहचानने में लगो। आंख बंद करो, और अपने ही भीतर के अंधेरे में टटोलो।
शुरू में बहुत घबड़ाहट भी होगी, क्योंकि अंधेरा ही अंधेरा मालूम होगा।
कभी गए भी नहीं हो भीतर, इसलिए भीतर अड़चन भी लगेगी। टकराओगे भी बहुत। लेकिन धीरे-धीरे टकराहट भी कम हो जाएगी, राह भी बनेगी, अंधेरा भी... । आंखें राजी हो जाएंगी, तो अंधेरे में भी थोड़ा-थोड़ा दिखायी पड़ने लगेगा।
तुमने देखा न, चोर जो रात को चोरियां करते हैं, वे तुम्हारे घर में अंधेरे में इतनी सुविधा से चल लेते हैं, जितना तुम रोशनी में भी नहीं चलते। तुम रोशनी में भी कभी दरवाजे से टकरा जाते, कभी टेबल से टकरा जाते। कभी यह गिर जाता, कभी वह गिर जाता। और चोर रात को दूसरे के घर में आता है और रास्ता बना लेता है अंधेरे में। बिजली भी नहीं जला सकता है, टार्च भी नहीं जला सकता है। और घर भी दूसरे का है। शायद कभी आया भी न हो। यह पहली दफा आना

हुआ हो, इस घर में। फिर भी रास्ता बना लेता है! और तुम्हारी तिजोड़ी तक भी पहुंच जाता है। तिजोड़ी भी खोल लेता है। रुपए भी नदारद कर देता है। तुम भी अंधेरे में अपनी तिजोड़ी खोलना चाहो, और तुम्हें पता है कि कहां है, तो भी शायद तिजोड़ी तक न पहुंच पाओ। मामला क्या है?
चोर का अभ्यास हो गया है अंधेरे में देखने का। अंधेरे में अभ्यास करना पड़ता है देखने का।
जब तुम भरी दुपहरी में घर लौटते हो तेज रोशनी से, तो तुम्हें घर में अंधेरा मालूम पड़ता है। लेकिन थोड़ी देर बैठ गए, सुस्ता लिए, फिर आंखें सध जाती हैं; फिर रोशनी दिखायी पड़ने लगती है।
कभी रात में बैठकर देखो अंधेरे में। धीरे-धीरे आंखें सध जाएंगी। आंख
का फोकस ठीक बैठ जाएगा, तो अंधेरे में भी थोड़ी-थोड़ी दिखावन शुरू हो जाएगी। भीतर पहले अंधेरा मिलेगा, क्योंकि तुम जन्मों से भीतर नहीं गए हो। इसलिए भीतर, आंख देखने में असमर्थ हो गयी हैं। जैसे कोई बहुत वर्षों से न चला हो, और पैर लंगड़ा गए हों। फिर चले, तो ठीक से न चल पाए, लड़खड़ाए। लेकिन चलता रहे, तो पैरों में फिर गति आ जाए, फिर खून बहे, फिर मांस-पेशियां सबल हो जाएं। ऐसी ही आंखों की बात है।
प्रतीक्षा मत करो। बाहर से कोई न कभी आया, न आएगा। बाहर की प्रतीक्षा बड़े धोखे में डाल देती है।
प्रिय आएंगे।
मन रहा पुलक
दृग-युग अपलक
मृदु-स्मृतियों के
जलते दीपक
सूनी गोधूली-बेला में--
मैं बैठी पंथ निहारूं अलि प्रिय आएंगे।
तम भरा गगन
धूमिल आंगन
प्रति पल भर-भर
आते लोचन।
जीवन की सांद्र तमिस्रा में-- मैं नित नव ज्योति जलाऊं अलि प्रिय आएंगे।
झरता झर-झर
वन का निर्झर
मेरे पथ की
प्रति दिशा मुखर
अंतर की टूटी वीणा के--
मैं नीरव तार सजाऊं अलि
प्रिय आएंगे।
और जो प्रिय इस तरह आते हैं, वे बहुत प्रिय सिद्ध नहीं होते। वे प्रियतम सिद्ध नहीं होते। वासनाओं-तृष्णाओं का जाल ही सिद्ध होता है। जिसकी वस्तुतः राह है, जिस प्रियतम की राह है, वह बाहर के रास्तों से नहीं आता, वह दृश्य की तरह नहीं आता। वह तुम्हारे भीतर द्रष्टा होकर बैठा है।
वह तुम्हारे भीतर पहले दिन से ही बैठा है। वही तुम्हारे भीतर धड़कता है। वही तुम्हारी सांस, वही तुम्हारी धड़कन है। वस्तुतः तुम वही हो, जिसकी तुम राह देख रहे हो।
लेकिन तुम भीतर जाते नहीं--और मिलन होता नहीं। फिर बाहर की राह देखते- देखते एक न एक दिन अनुभव में आएगा कि न कोई आया, न कोई आता। निराशा सघन हो जाएगी।
अब न कोई साथ मेरे।
सुन रही हूं मैं तिमिर की
सिसकियों में वह कहानी

व्योम भी ढुलका दिया करता
जिसे कर याद पानी
नैश मेरे नीड़ में लेते न पंछी अब बसेरे!
अब न कोई साथ मेरे।
दूर तक जा-जा कि सहसा
लौट आता मन यहीं फिर
आ रहे सुनसान पथ पर
मेघ झंझा के सघन घिर
सो रहे हैं छांह नभ की स्वप्न तेरे ओ चितेरे! अब न कोई साथ मेरे।
है करुण इतिहास मत पूछो,
अरे बुझती शमा का
चांदनी का सुख, न अंतर
जानता काली अमा का
रात के आंसू उषा का हास चुन लेता सबेरे!
अब न कोई साथ मेरे।
आज नहीं कल, जो बाहर की तरफ आंख लगाए बैठा रहा, अनुभव करेगाः अकेला छूट गया। अकेला रहा, अकेला रह गया।
भीतर चलो। अपने में उतरो। और वहां तुम पाओगे उसे, जिसकी तलाश है।
पूछा तुमनेः "मैं किस बात की प्रतीक्षा कर रहा हूं, वह मुझे भी पता नहीं है। इतना ही ज्ञात है कि प्रतीक्षा है। लेकिन कभी कुछ घटता नहीं!" तुम बाहर देख रहे हो, वहीं तुम्हारी अड़चन है। इस दृष्टि को भीतर लौटाना जरूरी है।
आंखें बंद करके देखना शुरू करो। और तुम्हें सावधान कर दूंः पहले अंधेरा ही अंधेरा मिलेगा। और पहले धुआं ही धुआं आंखों में भरेगा। लेकिन सतत अगर तुम भीतर देखते रहे, तो धुआं भी छंट जाएगा, अंधेरा भी कट जाएगा। और एक दिन तुम पाओगेः एक अपूर्व प्रभा, एक अपूर्व आभा!
एक ऐसा दीया जलता हुआ पाओगे--बिन बाती बिन तेल। फिर जो कभी नहीं बुझता। उसे परमात्मा कहो, उसे आत्मा कहो, सत्य कहो, जो तुम नाम देना चाहो दो। लेकिन वही है--अनाम--जिसकी तलाश हो रही है।
बाहर बहुत खोज चुके, अब भीतर आओ।
राबिया--एक मुसलमान फकीर--अपने घर में बैठी है, झोपड़े में। और उसके घर
एक हसन नाम का फकीर आकर ठहरा है। वह उठा। सुबह का सूरज निकल रहा है। सुंदर है सुबह। पक्षी कलरव कर रहे हैं। वृक्षों से सूरज की किरणें उतर रही हैं। आकाश में शुभ्र बादल तैर रहे हैं। सुबह बड़ी शांत है, और ताजी है, और बड़ी प्यारी, और बड़ी सुंदर है।
और हसन ने जोर से पुकाराः राबिया! तू भीतर बैठी क्या करती है! बाहर देख, परमात्मा ने कितनी प्यारी सुबह को जन्म दिया है!
उसने तो ऐसे ही कहा था। राबिया को बाहर बुलाना चाहा था। लेकिन राबिया
ने जो उत्तर दिया, वह कुछ शाश्वत उत्तरों में से एक उत्तर बन गया। ऐसे ही उत्तरों से शास्त्र बनते हैं।
राबिया ने कहाः हसन! तुम भी पागल हुए! तुम भीतर आओ बजाय मुझे बाहर बुलाने के। मुझे पता है कि बाहर की सुबह बड़ी प्यारी है। परमात्मा की बनायी हुई हर चीज प्यारी है। लेकिन भीतर मैं बनाने वाले को देख रही हूं। भीतर आओ। सृष्टि सुंदर है, लेकिन स्रष्टा के मुकाबले क्या!
हसन ने तो ऐसे ही बात कही थी कि बाहर आ राबिया! सोचा होगाः पुकार लूं, झोपड़े के बाहर आ जाए। लेकिन राबिया ने उस अवसर पर जो वक्तव्य दिया, वह महावाक्य है।
उसने कहाः हसन, बाहर की सुबह प्यारी है--सच। मैंने भी देखी है। लेकिन मैं उस प्यारे को देख रही हूं, जिसने उस सुबह को बनाया, जिसने सब सुबह बनायी। आओ, उस चितेरे को देखो। तुम भीतर आओ।
यही मैं तुमसे कहता हूं।

बाहर की प्रतीक्षा हो चुकी बहुत। आंख बंद करो। आंख बंद करने से आंख खुलती है। आंख खुली रखने से आंख बंद रह जाती है।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ ग्यारह प्रवचन

समाधि के सूत्रः एकांत, मौन, ध्यान

भिक्खुवग्गो

चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो।। 298।।

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति।। 299।।

हत्थसांंतो पादसांंतो वाचाय सांंतो सांंतुत्तमो।
अंझत्तरतो समाहितो एको संतुसितो तमाहु भिक्खुं।। 300।।

यो मुखसांंतो भिक्खु मंतभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मंच दीपेति मधुरं तस्स भासितं।। 301।।

धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति।। 302।।

प्रथम दृश्यः

भगवान के जेतवन में विहरते समय पांच ऐसे भिक्षु थे जो पंचेंद्रिय में
से एक-एक का संवर करते थे। कोई आंख का, कोई कान का, कोई जीभ का। एक दिन उन पांचों में बड़ा विवाद हो गया कि किसका संवर कठिन है। प्रत्येक अपने संवर को कठिन और फलतः श्रेष्ठ मानता था। विवाद की निष्पत्ति न होती देख अंततः वे पांचों भगवान के चरणों में उपस्थित हुए और उन्होंने भगवान से पूछाः भंते! इन पांच इंद्रियों में से किसका संवर अति कठिन है?
भगवान हंसे और बोलेः भिक्षुओ! संवर दुष्कर है। संवर कठिन है। इसका संवर या उसका संवर नहीं--संवर ही कठिन है। भिक्षुओ। ऐसे व्यर्थ के विवादों में नहीं पड़ना चाहिए, क्योंकि विवाद मात्र के मूल में अहंकार छिपा है। इसलिए विवाद की कोई निष्पत्ति नहीं हो सकती। विवादों में शक्ति व्यय न करके समग्र शक्ति संवर में लगाओ। सभी द्वारों का संवर करो। संवर में दुखमुक्ति का उपाय है।
इस दृश्य को ठीक से समझ लें, फिर सूत्र समझ में आना आसान हो जाएंगे।
पहली बात, संवर शब्द में गहरे जाना जरूरी है। संवर, या संयम, या समता
या सम्यक्त्व, या समाधि, या संबोधि, या संबुद्ध--सब एक ही मूल धातु से निष्पन्न होते हैं--सम।
भारत ने जितनी श्रेष्ठ दशाएं चित्त की खोजी हैं, सभी को सम से निर्मित शब्दों से इंगित किया हैः समाधि, संबोधि, संबुद्ध। इस सम धातु का क्या अर्थ है?
सम का अर्थ होता हैः जहां व्यक्ति ऐसी दशा में आ जाए, जैसे तराजू तब आता है, जब कांटा बिल्कुल मध्य में होता है। दोनों पलड़े समान हो जाते हैं, समतुल हो जाते हैं।
मनुष्य के मन में दुख है, सुख है; असफलता है, सफलता है; अंधेरा है, उजाला है; जीवन का मोह है, मृत्यु का भय है। ये सारे द्वंद्व जब सम हो जाते हैं; न जीवन का मोह, न मृत्यु का भय; न सफलता की आकांक्षा, न विफलता से बचाव; न सुख की खोज, न दुख से भागना--ऐसी स्थिति सम है।
सम की अवस्था में शून्य अपने आप निष्पन्न होता है। क्योंकि धन और ऋण
जब बराबर हो जाते हैं, एक-दूसरे को काट देते हैं। सीधा गणित है। धन और ऋण जब

बराबर हो गए, तो एक-दूसरे को काट देते हैं; बचता है शून्य। वह शून्य ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उस शून्य का नाम ही सम है।
उस शून्य की दशा में ले जाने वाले सब उपाय, और उस दशा में पहुंचने के बाद की सब भंगिमाएं सम शब्द से उदघोषित की गयी हैं।
सोचो। परखो। कभी क्षणभर को तुम भी इस समता में आ सकते हो। कभी क्षणभर
को तुम्हारा तराजू भी थिर हो सकता है, जब न तुम इस तरफ झुके, न उस तरफ झुके। रस्सी पर चलते किसी नट को देखा है! वही कला समता को पाने की कला है। ठीक मध्य में है। जरा यहां-वहां हुआ कि गिरेगा। अगर जरा बाएं की तरफ झुक जाता है, तो खतरा। दाएं तरफ झुक जाता है, तो खतरा। अगर बाएं तरफ झुक जाता है नट, तो तत्क्षण अपने को दाएं तरफ झुका लेता है, ताकि संतुलन फिर कायम हो जाए। दाएं तरफ झुकने लगता है, तो बाएं तरफ झुका लेता है, ताकि फिर संतुलन कायम हो जाए। नट प्रतिपल बाएं-दाएं के बीच अपने को मध्य में सम्हालता है। बुद्ध ने कहा हैः ध्यान की प्रक्रिया रस्सी पर चलने जैसी प्रक्रिया है। ध्यान का अर्थ हैः अभी कुछ-कुछ झुकना हो रहा है, कभी बाएं, कभी दाएं; कभी दाएं, कभी बाएं। समाधि का अर्थ हैः अब कहीं भी झुकना नहीं हो रहा है। समता थिर हो गयी। ध्यान उपाय है; समाधि अंतिम फल है। ध्यान के वृक्ष पर समाधि का फूल खिलता है।
यह जो समता है, इसे कभी-कभी क्षणभर को तुम सम्हाल ले सकते हो। और उसी
से तुम्हें धर्म का द्वार खुलेगा। कभी बैठे हो शांत, उस क्षण में सम्हालो। चलो रस्सी पर। न सुख से विरोध, न दुख से विरोध। न सुख की आकांक्षा, न दुख की आकांक्षा।
ध्यान रखनाः अक्सर लोग वही कर लेते हैं, जो नट कर रहा है। जब सुख उन्हें काफी परेशान करने लगता है, चिंताओं से भरने लगता है, तो वे कहते हैंः सुख तो दुख लाता है। इसलिए सुख से उनका विरोध हो जाता है। इन्हीं को तुम त्यागी कहते हो, जिनका सुख से विरोध हो गया है। जिनके मुंह में सुख कडुवा हो गया है।
अब ये उलटी आकांक्षा करने लगते हैं, ये दुख की आकांक्षा करने लगते हैं। इस दुख की आकांक्षा से ही तुम्हारी सारी तपश्चर्या निर्मित होती है। पहले ये खोजते थे अच्छी सुख-शय्या। अब खोजते हैं कंकड़-पत्थर, कांटे भरी भूमि! पहले ये खोजते थे सुस्वादु भोजन; अब अगर सुस्वादु भोजन भी मिल जाए, तो उसे पानी में, नदी में जाकर डुबाकर खराब करके फिर स्वीकार करते हैं। पहले खोजते थे रेशमी वस्त्र; अब अगर रेशमी वस्त्र मिल जाएं, तो उनसे दूर भागते हैं। अब इन्हें खुरदरे, गड़ने वाले वस्त्र चाहिए!
तुम जानकर चकित होओगे कि त्याग के नाम पर आदमी ने क्या-क्या किया है! अपने को कोड़े मारे हैं; लहूलुहान किया है। ईसाइयों में एक संप्रदाय ही रहा है कोड़े मारने वाले साधुओं का। सुबह उनकी पहली प्रार्थना यही थी कि वे अपने को खड़ा करके नग्न, कोड़े मारें; लहूलुहान कर लें। जो जितने ज्यादा कोड़े मारे, वह उतना बड़ा साधु। और लोग देखने आते! गांवभर की भीड़ लग जाती। यह प्रार्थना का समय साधु का--जब वह कोड़े मारता है--सब देखते। लोगों के देखने के कारण कोड़े मारने में और रस आ जाता; प्रतियोगिता छिड़ जाती। एक-दूसरे को हराने का भाव पैदा हो जाता।
ये वे ही लोग हैं, जो संसार में प्रतिस्पर्धा करते थे; अब संन्यास में प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं! जरा भी कुछ बदलाहट नहीं हुई। समता आयी नहीं। शून्य निर्मित नहीं हुआ। पहले सुख मांगते थे, अब दुख मांगते हैं; मगर मांग जारी है। और जैसे एक दिन सुख मांग-मांगकर ऊब गए थे और दुख की तरफ झुक गए, ऐसे ही किसी दिन दुख मांग-मांगकर ऊब जाएंगे और फिर सुख की तरफ झुक जाएंगे। समता का अर्थ हैः इस सत्य को जानना कि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुमने एक को मांगा, तो दूसरा भी मांग लिया गया। और जब तक दोनों रहेंगे--द्वंद्व रहेगा--तब तक तुम डांवाडोल रहोगे। जब तक द्वंद्व रहेगा, तब तक तुम शांत नहीं हो सकोगे।
तुम इस कोने से उस कोने जा सकते हो, घड़ी के पेंडुलम की तरह डोलते हुए। मगर मध्य में कब ठहरोगे?

देखा, घड़ी चलती है, पेंडुलम घूमता है तो। अगर पेंडुलम मध्य में रुक जाए, तो घड़ी रुक जाती है। ऐसे ही जिस दिन तुम मध्य में रुक जाओगे, समय रुक जाएगा।
इसलिए ज्ञानियों ने कहा हैः मन समय है। महावीर ने तो आत्मा को नाम ही समय का दिया है। महावीर कहते ही आत्मा को समय हैं। इसलिए कुंदकुंद का प्रसिद्ध शास्त्र हैः समय-सार।
मैं का भाव ही समय से पैदा होता है। मैं का भाव ही समय का मूल है। जिस दिन मैं मिटा, उसी दिन समय भी मिट गया। और मैं उसी दिन मिटता है, जिस दिन तुम मध्य में आ जाते हो। जब तुम दोनों में से कहीं नहीं डोलते; जब तुम्हारा कोई चुनाव नहीं रह जाता--तब समता।
इसलिए कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं--च्वाइसलेस अवेयरनेस। जब तुम चुनाव
ही नहीं करो। जब तुम नहीं चुनोगे, तब तुम थिर हो जाओगे।
तो कभी-कभी शांत बैठकर अचुनाव की दशा में थोड़ी डुबकी लेना, तो तुम्हें
सम शब्द का अर्थ मिलेगा। ये शब्द ऐसे नहीं हैं कि भाषाकोश में इनका अर्थ तुम खोजने जाओ, तो मिल जाए। भाषाकोश में अर्थ लिखा है, मगर उससे कुछ खुलेगा नहीं; राज प्रगट नहीं होगा। ये शब्द इतने बहुमूल्य हैं, अस्तित्वगत हैं, कि इनको तुम जानोगे अनुभव से, तो ही पहचानोगे।
और सम की अनुभूति हो जाए, तो धर्म का मूल सूत्र हाथ लग गया। फिर यही सम समता बन जाएगा; यही सम सम्यक्त्व बन जाएगा; यही सम समाधि बन जाएगा; यही सम संबोधि बन जाएगा। यही सम संवर-संयम बन जाएगा।
तो अर्थ हुआ सम काः धन और ऋण, विपरीत जो एक-दूसरे के हैं, एकदम बराबर वजन के हो जाएं, ताकि एक-दूसरे को काट दें और हाथ में शून्य बच रहे। उस रिक्तता का ही नाम समता है। उस निष्पक्षता का नाम ही समता है।
तुमने अगर संसार छोड़ दिया मोक्ष को पाने के लिए, तो तुम समता को उपलब्ध न हो सकोगे। फिर झुक गए; फिर चुनाव कर लिया। बाएं झुके थे, अब दाएं झुक गए। तुम अगर स्त्री को छोड़कर जंगल भाग गए... । पहले स्त्रियों के पीछे भागते थे, अब स्त्रियों से भागने लगे--मगर समता नहीं आयी। विपरीतता आ गयी। विपरीतता में कहां समता? एक चुना था; अब उससे उलटा चुन लिया। पहले पैर के बल चलते थे; अब सिर के बल खड़े हो गए! मगर तुममें क्या फर्क आएगा इससे!
तुम पैर के बल खड़े रहो कि सिर के बल खड़े रहो, तुम तुम हो। इस तरह की क्षुद्र बातों में चुनाव कर लेने से कुछ फल होने वाला नहीं है। एक क्षुद्रता हटेगी, दूसरी क्षुद्रता पकड़ लेगी। पहले धन पकड़ते थे; अब धन को देखकर कंपते हो।
इस तरह तो तुम कभी भी द्वंद्व के बाहर न हो सकोगे। नहीं हो सके हो जन्मों-जन्मों में। और द्वंद्व के बाहर होने का सूत्र हैः चुनो मत, समझो। देखो, गहरे देखो। आंख को पैना करो। धार रखो आंख पर। दृष्टि को निखारो। और तब तुम्हें क्या दिखायी पड़ेगा?
जिसने सफलता मांगी, उसने विफलता भी मांग ली। और जिसने न सफलता मांगी,
न विफलता, वह शांत हो गया। जिसने धन मांगा, उसने गरीबी भी मांग ली। और जिसने सुख मांगा, उसने दुख भी मांग लिया। उलटा पीछे ही चला आता है छाया की तरह लगा हुआ। तुमने प्रेम मांगा, घृणा भी मांग ली।
मांगो ही मत। गैर-मांग की चित्त में दशा हो जाए; कोई आंधी-अंधड़ न चले; कोई तूफान न उठे; कोई लहर न बने। उस निष्कंप दशा का नाम है--सम। उसी सम से बनता है शब्द--संवर।
अब संवर को समझ लेना उचित होगा।
आमतौर से लोगों ने संवर को समझा नहीं, क्योंकि वे सम को ही नहीं समझ पाए। तो संवर, नासमझी के कारण, दमन हो गया। संवर का अर्थ दमन नहीं होता। संयम का अर्थ भी दमन नहीं होता।
संयम और संवर दमन से बिल्कुल भिन्न हैं। दमन का अर्थ होता है--समझे तो नहीं और दबा लिया। लोगों ने कहाः क्रोध बुरा है; सुना; शास्त्रों में पढ़ा; संतों की वाणी समझी और बार-बार सुना--क्रोध बुरा है; क्रोध जहर है; क्रोध आग है; और क्रोधी बुरा आदमी है, अपमानित होता है; अक्रोधी सम्मानित होता है। तुम्हारे मन में भी सम्मानित होने की आकांक्षा है। और तुम भी नहीं

चाहते कि तुम्हें कोई बुरा समझे। और तुम भी नहीं चाहते कि दुर्जनों में गिने जाओ। तो तुमने कहाः साधेंगे। क्रोध को संयम में ले लेंगे।
लेकिन तुम अभी समझे ही नहीं हो, तो तुम क्रोध को साध नहीं पाओगे; संयम में नहीं ले पाओगे। सिर्फ दबाने में कुशल हो जाओगे। तुम दबा लोगे अपनी छाती में क्रोध को। तो ऊपर-ऊपर प्रगट न होगा, लेकिन भीतर-भीतर जहर की तरह तुम्हारी जीवन-रचना में फैल जाएगा; तुम्हारे रग-रेशे में प्रविष्ट हो जाएगा।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित मुनि, साधु, त्यागी अत्यंत क्रोधी मालूम होते हैं। क्रोध चाहे न करें, मगर क्रोधी मालूम होते हैं। तुम दुर्वासा को हर मंदिर में बैठा हुआ पाओगे। कारण क्या है? क्रोध चाहे न करें, लेकिन तुम उनकी भाव-भंगिमा क्रोध से भरी पाओगे।
साधारण आदमी इतना क्रोधी नहीं होता, जितने तुम्हारे महात्मा होते हैं तथाकथित। साधारण आदमी तो रोज-रोज क्रोध कर लेता है, छुटकारा हो जाता है। साधारण आदमी का क्रोध तो चुल्लूभर होता है। कोई बात हुई, प्रसंग आया, क्रोध कर लिया। बात खतम हो गयी; क्रोध भी खतम हो गया।
लेकिन तुम्हारे महात्मा क्रोध को इकट्ठा करते जाते हैं। चुल्लू- चुल्लू आता है, वे इकट्ठा करते जाते हैं। और बूंद-बूंद से तो सागर भर जाता है। चुल्लू-चुल्लू इकट्ठा होते-होते इतना हो जाता है कि महात्मा की पूरी जीवन-चर्या ही क्रोध की हो जाती है। क्रोध करता नहीं है, मगर क्रोध इकट्ठा होता है। और जो इकट्ठा होता है, वह ज्यादा खतरनाक है।
मनस्विद कहते हैं कि छोटा-मोटा क्रोध हो जाए--स्वाभाविक है, मानवीय है! लेकिन जो आदमी क्रोध को दबाता चला जाएगा, यह खतरनाक है; इससे सावधान रहना। यह किसी दिन किसी की हत्या कर देगा। किसी दिन अगर फूटा क्रोध, तो छोटी-मोटी घटना नहीं घटेगी। किसी दिन क्रोध फूटा, तो कुछ बड़ी दुर्घटना होगी। इसके पास काफी जहर है।
दमन संयम नहीं है। दमन संवर नहीं है। दमन तो अपने को दो हिस्सों में विभाजित करना है, खंड-खंड कर लेना है। दमन तो एक तरह का रोग है। दमन से तो नैसर्गिक आदमी बेहतर है। लेकिन दमन से धोखा पैदा होता है कि संयम हो गया। मैंने सुनी है एक कहानीः एक आदमी महाक्रोधी था। ऐसा क्रोधी था कि एक बार क्रोध में अपने बच्चे को खिड़की से बाहर फेंक दिया; बच्चा मर गया। और एक बार अपनी पत्नी को कुएं में धक्का दे दिया, तो पत्नी कुएं में गिर गयी। गांव में एक जैन मुनि आए थे। तो उन्होंने इस आदमी को बुलाया। समझाया।
कि पागल! यह तू क्या कर रहा है!
उस दिन उसका भी घाव ताजा था। पत्नी मर गयी थी। सोचा नहीं था कि मार डाले। क्रोध की ज्वाला में घटना घट गयी थी; अपने बावजूद घट गयी थी। अब पछता भी रहा था। ऐसा भी नहीं था कि पत्नी से प्रेम न रहा हो। लगाव भी था। आज अपने ही हाथ से अपने ही प्रेम-पात्र को कुएं में ढकेल आया था। इस चोट में लोहा गरम था।
मुनि ने बुलाया और कहा कि बदलो। अब यह कब तक करोगे? बेटा मार डाला! पत्नी मार डाली! क्या सार है? अब तो तुम्हीं बचे, अब अपने को ही किसी दिन मार डालोगे! और तो कोई बचा भी नहीं। यह तुम्हारा क्रोध तुम्हारे परिवार को खा गया; तुम्हें भी खा जाएगा।
उस दिन लोहा गरम था। चोट लग गयी। उसने कहाः क्या करूं? आप कहें। जो आप कहेंगे, करूंगा। मुनि ने कहाः संन्यस्त हो जाओ।
वह आदमी क्रोधी था। साधारण आदमी होता, तो कहताः घर जाऊं; सोचूं- विचारूं; और झंझटें हैं। वह आदमी तो क्रोधी था; जिद्दी आदमी था; हठी आदमी था। हठी आदमी के हठयोगी होने में देर कितनी लगती है! वह तो क्रोधी आदमी था और आज लोहा गरम भी था। उसने वहीं कपड़े फेंक दिए। वह नग्न हो गया। नग्न मुनि थे। उसने कहाः इसी वक्त दीक्षा दें। देर की जरूरत नहीं है।
मुनि तो बहुत प्रसन्न हुए। नासमझ रहे होंगे, इसलिए प्रसन्न हुए। समझदार होते, तो देखते कि यह कृत्य भी क्रोध से भरा है। इस कृत्य में भी समता नहीं है, बोध नहीं है। यह कृत्य भी गलत है।

आदमी गलत हो, तो उसके हाथ में ठीक चीजें भी गलत हो जाती हैं। और आदमी ठीक हो, तो गलत चीजें भी ठीक हो जाती हैं। इस सूत्र को याद रखना। ठीक आदमी के हाथ में गलत चीजें भी ठीक हो जाती हैं। असली सवाल हाथ का है। और गलत आदमी के हाथ में ठीक चीजें भी गलत हो जाती हैं। असली सवाल हाथ का है। कुशल आदमी के हाथ में जहर औषधि बन जाता है। अकुशल आदमी के हाथ में औषधि भी जहर हो जाती है।
मुनि कुछ बहुत समझदार न रहे होंगे। हो सकता है, खुद भी इसी ढंग के आदमी रहे हों। बहुत प्रसन्न हुए। आशीर्वाद दिया। और खुशी में उसको नाम दिया--कि आज से तेरे जीवन की नयी शुरुआत हुई--तेरा नाम शांतिनाथ! वे थे तो क्रोधनाथ, उनका रूपांतरण हुआ तो शांतिनाथ हो गए।
फिर वर्षों बीत गए। गुरु चले गए संसार से। अब तो शांतिनाथ गुरु हो गए।
और बड़े क्रोधी आदमी थे, तो जैसे पहले दूसरों को क्रोध से सताया था, अब दूसरों को तो सता नहीं सकते थे; अब अपने को सताते थे। छाया में न बैठकर धूप में खड़े होते थे। सीधे रास्ते पर न चलकर, खाई-खड्डों वाले रास्ते से, ऊबड़-खाबड़ रास्ते से चलते थे। जरूरत के योग्य भोजन भी नहीं लेते थे। शरीर को सुखा डाला था। और दिगंबर जैन मुनि की दीक्षा में क्रोध को प्रगट करने के बहुत सुविधापूर्ण उपाय हैं। उनका भी उपाय करते थे।
जैन मुनि के बाल बढ़ जाते हैं, तो लोंचता है। तुमने देखा, क्रोध में स्त्रियां बाल नोचती हैं! जैन मुनि के बाल बढ़ जाते हैं, तो वह लोंचता है; उखाड़ता है। और इसे देखने सैकड़ों लोग इकट्ठे होते हैं। और कहते हैंः धन्य! धन्य! साधु! साधु!
बाल उखाड़ता था यह आदमी। यह प्रतीक्षा करता थाः कब बाल बढ़ जाएं और उखाड़ने का मजा... ! अब अपने को सताता था। अब दूसरे को सताने का तो उपाय नहीं रहा था। वह तो कठिनाई में पड़ गयी थी बात। अब तो अहंकार पर बहुत ज्यादा फूल चढ़ गए थे। और अहंकार को बहुत प्रतिष्ठा मिल गयी थी। तो किसी को सता तो नहीं सकता था। लेकिन परोक्षरूप से सताता था। जो आए, उसी को कहता थाः छोड़ो संसार, नहीं तो नर्क जाओगे। अब वह नर्क का भय देकर सता रहा था! नर्क खड़ा तो नहीं कर सकता था, लेकिन कम से कम सपनों में नर्क तो डाल ही सकता था तुम्हारे। तुम्हारे मन में तो नर्क का भय पैदा कर ही सकता था।
और जो उसके चक्कर में आ जाता, उसको तत्क्षण मुनि बना देता; उसको नग्न करवा देता। उसको बाल उखाड़ना सिखवा देता। उसको सताने की विधि पकड़ा देता। खुद तो नहीं सता सकता था, लेकिन अब धर्म के नाम पर सताने का प्रचार तो कर सकता था। वही कर रहा था। उसकी काफी ख्याति हो गयी। ऐसे लोग काफी ख्यातिलब्ध हो जाते हैं। लोग उनको महात्मा कहते हैं--कि देखो, कितना त्यागी!
अक्सर सौ में निन्यानबे तुम्हारे महात्मा किन्हीं न किन्हीं मानसिक व्याधियों से ग्रस्त होते हैं। उनकी चिकित्सा की जरूरत है, सम्मान की जरूरत नहीं। उनको मनोचिकित्सा की जरूरत है। उन्हें इलाज चाहिए।
मगर तुम अंधे हो, तुम कैसे देख पाओ कि उन्हें इलाज चाहिए! तुम भी उन्हीं के सिद्धांतों में पाले गए हो। उन्हीं ने तुम्हें सिद्धांत सदियों से सिखाए हैं। उन्हीं के सिद्धांत हैं; उन्हीं सिद्धांतों के कारण तुम पकड़ नहीं पाओगे कि कहीं कुछ भूल हो रही है। सब ठीक लगता है।
अगर ईसाई फकीर अपने को कोड़े मारता है, तो हिंदू को दिखायी पड़ता है कि भूल हो रही है। क्योंकि हिंदू उस सिद्धांत में नहीं पला है। ईसाई को नहीं दिखायी पड़ता कि भूल हो रही है। और जब हिंदू संन्यासी भरी दुपहरी में आग जलाकर बैठता है, अपने चारों तरफ धूनी रमाता है, तो हिंदू को नहीं दिखायी पड़ता कि भूल हो रही है, ईसाई को दिखायी पड़ता है कि यह क्या जड़ता है! यह तो आत्म-दमन है। यह तो आत्म-पीड़न है।
और जब जैन मुनि बाल उखाड़ता है, तो हिंदू को दिखायी पड़ता है कि यह क्या पागलपन है! हिंदू ने तो इसको गाली बना रखी है। तुमने एक शब्द सुना है, नंगे- लुच्चे! वह शब्द पहली दफे जैन मुनियों के लिए उपयोग में हुआ था। नंगे रहते हैं और लोंचते हैं बाल, इसलिए नंगे-लुच्चे! वह गाली बन गयी। हिंदू तो उसको

गाली की तरह उपयोग करता है। लेकिन जैन को दिखायी नहीं पड़ता कि इसमें कुछ भूल हो रही है। यही तो धर्म है!
तुम जिस धारा में पले हो, पुसे हो, जो तुम्हारे मन में संस्कार डाल दिए
गए हैं, उन्हीं संस्कारों के आधार पर तुम सोचते हो। इसलिए एक की भूल दूसरे को दिख जाती है, मगर स्वयं को नहीं दिखायी पड़ती!
इस मुनि ने काफी लोग खड़े कर लिए। इसकी प्रतिष्ठा बढ़ती गयी। और जैसे- जैसे इसकी प्रतिष्ठा बढ़ती, यह राजधानी की तरफ बढ़ता गया। क्योंकि अंततः तो राजधानी में ही प्रतिष्ठा है। वह दिल्ली पहुंच गया होगा!
राजनेता ही दिल्ली नहीं पहुंच जाते; महात्मा भी वहीं पहुंच जाते हैं। क्योंकि महात्मा के पीछे भी है तो राजनीति ही।
कोई तीस साल बीत गए थे इसको मुनि हुए। इसके बचपन का एक साथी दिल्ली आया हुआ था। किसी काम से आया होगा, व्यवसाय से। उसने सोचा कि शांतिनाथ के दर्शन कर आऊं। बचपन का साथी। साथ-साथ पढ़े-लिखे। इसे भरोसा नहीं आता था कि वे क्रोधनाथ शांतिनाथ हो गए होंगे। मगर हो ही गए होंगे। इतनी ख्याति सुनता है! तो उनके दर्शन करने गया।
शांतिनाथ अपने सिंहासन पर विराजमान थे। उन्होंने देख तो लिया; पहचान
तो लिया इस आदमी को। मगर अब वे इतने ऊंचे हो गए हैं, इस ऊंचाई पर पहुंच गए हैं--इसको पहचानें कैसे! स्वीकार कैसे करें कि हम कभी साथ खेले! इतने नीचे कैसे उतरें? तो उन्होंने आंख फेर ली। पहचान लिया और नहीं पहचाना!
तभी मित्र को लगा... । क्योंकि मित्र को भी दिखायी पड़ गया कि पहचान लिया है, अब आंख बचा रहे हैं। तो उसे लगा कि शायद कुछ बदलाहट हुई नहीं। उसने कहा कि आप मुझे पहचाने नहीं? तो मुनि ने कहाः कैसे पहचानूं! आप कौन? कहां से आए? तो मित्र ने अपना परिचय दिया। परिचय सुन लिया, लेकिन कोई रस नहीं लिया मित्र में। यह भी नहीं स्वीकार किया कि हां, याद आ गयी; कि कभी तुम्हें जानता था; कभी हम साथ खेले। साथ नदियों में तैरे। साथ लड़े-झगड़े। उस क्षुद्रता की बात अब क्या करनी याद? उस साधारणता की बात अब यह असाधारण महापुरुष कैसे याद करे!
मित्र यह सब देखता रहा। चेहरे पर वही क्रोध है। जो नहीं समझते, वे कहतेः तेजस्विता है! है वही क्रोध, नाक पर सवार है। सब तरफ से साफ है। मित्र जानता है बचपन से। ढंग में कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है। वही बात है। सिर्फ रूप बदला है।
परीक्षा के लिए मित्र ने पूछा कि क्या आप से पूछ सकता हूं आपका नाम क्या है? यह बात ही सुनकर मुनि को बहुत क्रोध आ गया। कहाः अखबार नहीं पढ़ते? रेडियो नहीं सुनते? टेलीविजन नहीं देखते? नाम पूछते हो! तुम्हें मेरा नाम पता नहीं है? मेरा नाम शांतिनाथ है।
मित्र कुछ और थोड़ी बात करता रहा, फिर बोला कि क्षमा करिए! मैं भूल गया। आपका नाम क्या है?
अब तो मुनि को बहुत क्रोध आ गया। क्रोध तो इस आदमी को देखकर ही आना शुरू हो गया था। क्योंकि इसका आना ही... सब स्मृतियां उठने लगी थीं। पुराने दिन जाहिर होने लगे, साफ होने लगे। दबाकर बैठे थे--वह उभरने लगा। क्रोध तो इस आदमी को देखकर ही आ गया था। यह दुष्ट कहां से आ गया! यह कंकड़ की तरह पड़ा और सब पुरानी तरंगें उठने लगीं। मैं तो सोचता था, गया सब। और इसको देखकर सब याद आने लगा!
तुमने कभी-कभी ख्याल किया होगा। पुराने परिचित मिल जाएं, तो तत्क्षण तुम पुराने हो जाते हो। बीस साल पहले का परिचित मिल जाए, तो स्वभावतः उससे बात वहीं से करनी पड़ती है, जहां बीस साल पहले विदा हुए थे। तत्क्षण तुम बीस साल पहले लौट जाते हो।
इस आदमी को देखकर मुनि फिर अपनी पुरानी दुनिया में लौट गया। वह सब भरा
तो पड़ा था भीतर, आगार में--वह सब उभरने लगा। क्रोध तो देखकर ही इस आदमी को आने लगा था। इसके चेहरे को देखकर ही चांडाली छूट रही थी। यह किसी तरह जाए! और अब यह दुष्ट और चोटें करने लगा! इसने फिर पूछा कि आपका नाम क्या है महाराज! तो उन्होंने कहाः मैंने एक दफा कह दिया, समझे नहीं? शांतिनाथ! बहरे हो?

वह आदमी फिर इधर-उधर की बात करता रहा। फिर उसने तीसरी बार पूछा कि क्षमा करिए! मैं भूल गया!
उसका इतना ही कहना था कि मुनि ने अपना डंडा उठा लिया और कहाः सिर तोड़ दूंगा! एक क्षण को सब भूल गए।
उस मित्र ने कहाः मैं पहचान गया शांतिनाथ जी! आप वही के वही हैं। कहीं कोई फर्क नहीं हुआ है।
तुम विपरीत हो सकते हो, लेकिन विपरीत से फर्क नहीं होता। जब तुम सम होते हो, तब फर्क होता है। सम में क्रांति है।
हमारे पास अच्छा शब्द है--संक्रांति। वह क्रांति और सम से मिलकर बना है। वह क्रांति से ज्यादा बहुमूल्य है। क्रांति तो एक कोने से दूसरे कोने पर चला जाना है। अमीर थे, गरीब हो गए। सुंदर कपड़े पहनते थे, नग्न हो गए। धन के अतिरिक्त और किसी चीज में रस नहीं था, तो धन को छूना भी बंद कर दिया। यह क्रांति है।
संक्रांति क्या है? संक्रांति है मध्य में हो जाना। न इस तरफ रहे, न उस तरफ। न त्यागी, न भोगी। जब दोनों न रहे, तब जो घटना घटती है, वह समता।
दमन से नहीं घट सकती। दमन कैसे संवर बनेगा? दमन तो संवर कभी नहीं बन सकता। इसलिए संवर और संयम--दमन का नाम नहीं है।
दमन तो भोग का ही विपरीत रूप है। यह भोग ही है जो शीर्षासन करने लगा।
इसमें जरा अंतर नहीं है। इसे तुम समझोगे, तो ये सूत्र तुम्हें साफ होंगे।
भगवान के जेतवन में विहरते समय पांच ऐसे भिक्षु थे जो पंचेंद्रिय में
से एक-एक का संवर करते थे।
वह संवर नहीं रहा होगा, दमन ही रहा होगा। संवर होता, तो विवाद न उठता।
संवर होता, तो दृष्टि खुल गयी होती। विवाद कैसे उठता? संवर होता, तो अनुभव हो गया होता। संवर होता, तो बुद्ध के पास जाने की जरूरत न थी। संवर होता, तो बुद्ध स्वयं भीतर आ गए होते; बुद्धत्व पास आ गया होता। संवर नहीं था। सुना होगा बुद्ध को--कि साधो इंद्रियों को। जागो इंद्रियों से। होश
को सम्हालो। संवर में उतरो। संयमी बनो। ऐसा बार-बार सुना होगा। रोज बुद्ध यही कहते थे। क्योंकि इसी से दुखमुक्ति होने वाली है। समता को उपलब्ध हो जाओ, तो दुख के पार हो जाओगे। समता के पाते ही संसार के पार हो जाओगे। वही मोक्ष है।
तो बुद्ध की मोक्ष के संबंध में कही प्यारी बातों ने मन में लोभ जगाया होगा। और बुद्ध के नर्क के विवेचन ने मन में भय जगाया होगा। बुद्ध की बात सुनकर हेतु पैदा हुआ होगा, स्वार्थ पैदा हुआ होगा--कि ठीक! यही बात करने जैसी है। मगर समझ न जगी होगी; बोध न जगा होगा। बुद्ध की बात सुन तो ली होगी, समझ में न आयी होगी।
सुन लेना एक, समझ लेना बिल्कुल और बात है। सुन तो सभी लेते हैं; समझता कौन है! समझता वही है, जो सुनी गयी बात पर प्रयोग करता है। और प्रयोग जबर्दस्ती नहीं करता, सहज-स्फूर्तता से करता है। प्रयोग हेतु से भरे नहीं होते। अगर हेतु से भरे हैं, तो उनको प्रयोग नहीं कहा जा सकता।
जैसे तुमने मोक्ष पाने के लिए सोचा कि चलो, भोजन का त्याग कर दें, मोक्ष मिलेगा। तो यह प्रयोग नहीं हुआ। यह लोभ ही हुआ। एक नया लोभ हुआ। तुमने सोचा कि चलो, नर्क में जाने से बचना है, इसलिए सुंदर स्वाद का त्याग कर दो; कि संगीत का त्याग कर दो; कि सुख का त्याग कर दो; नहीं तो नर्क में सड़ना पड़ेगा। यह तो भय हुआ, यह संवर नहीं हुआ।
संवर न तो लोभ जानता, न भय जानता; संवर हेतु ही नहीं जानता। संवर अहेतुक है। जीवन को समझने के लिए किया जाता है। किसी और प्रयोजन से नहीं; निष्प्रयोजन है।
तो ये भिक्षु एक-एक इंद्रिय को साधते थे। कोई भोजन पर नियंत्रण कर रहा था; कोई रूप पर; कोई ध्वनि पर। कोई आंख को झुकाकर चलता था, ताकि रूप दिखायी न पड़ जाए।
अब जो आंख झुकाकर चलता है, वह रूप पर कभी भी संवर न पा सकेगा। संवर पाने के लिए अगर आंख झुका ली, तो यह तो भय ही हुआ। संवर तो तब उपलब्ध होता है, जब रूप को कोई पूरी खुली आंख से देखे और भीतर कोई भाव न उठे; भीतर

निर्भाव दशा रहे। रूप को गौर से देखे और रूप से मुक्त हो जाए--उसी देखने में, उसी दर्शन में--तो संवर। सुंदर स्त्री सामने से गुजरे; स्त्री गुजर जाए, मन में कुछ न गुजरे। मन जैसा था, वैसा का वैसा रहे; जैसे कोई गुजरा ही नहीं, तो संवर।
मगर आमतौर से, तुमने कहानियां सुनी हैं... । सूरदास के साथ किन्हीं ने कहानी जोड़ रखी है। अगर कहानी सच है, तो सूरदास गलत थे। अगर सूरदास सही थे, तो कहानी गलत होनी चाहिए। कि एक सुंदर स्त्री को देखकर वे मोहाविष्ट हो गए। उन्होंने आंखें फोड़ लीं।
आंखें फोड़ने से कैसे सुंदर स्त्री से मुक्त हो जाओगे? रात आंखें तो बंद हो जाती हैं, सपने तो चलते हैं, और प्रगाढ़ होकर चलते हैं! आंख के जाने से कुछ सपने तो बंद नहीं हो जाएंगे। आंख रहती है, तो कभी-कभी सपने बंद भी हो जाते हैं। क्योंकि जिंदगी में और चीजें भी देखने को मिलती हैं।
अगर सूरदास ने किसी सुंदर स्त्री से भयभीत होकर आंखें फोड़ ली थीं, तो फिर आंखें फूट जाने के बाद सिवाय उस सुंदर स्त्री के कुछ भी नहीं दिखायी पड़ेगा। वही-वही दिखायी पड़ेगी। और जिस स्त्री के लिए आंखें फोड़ लीं, उस स्त्री से लगाव बड़ा गहरा हो गया। इतना त्याग किया उस स्त्री के लिए! उस स्त्री के लिए इतनी कुरबानी की! इससे तो गठबंधन गहरा हो जाएगा। इससे तो अब कुछ और याद ही नहीं आएगा। यही स्त्री, यही स्त्री, याद आएगी।
और बंद आंखें हैं, तो स्त्री रोज-रोज सुंदर होती जाएगी। क्योंकि तुम रोज-रोज रंग-तूलिका लेकर उसे रंगते रहोगे। अगर आंखें खुली होतीं, तो एक न एक दिन स्त्री की कुरूपता भी दिखायी पड़ती। क्योंकि जहां सौंदर्य है, वहां कुरूपता भी है। और अगर आंखें खुली रहतीं, तो यह स्त्री जवान थी, किसी दिन बूढ़ी भी होती। जवानी कितनी देर टिकती है! क्षणभंगुर है।
मगर एक दफे आंखें फूट गयीं, तो अब सूरदास ने जिस स्त्री को चाहा था, यह सदा जवान रहेगी; अब बूढ़ी नहीं हो सकती। अब अटक गए।
सपने की स्त्रियां कभी बूढ़ी क्यों हों? और अब स्त्री तो बूढ़ी हो चुकी होगी। लेकिन सूरदास तो उसी स्त्री को याद करेंगे जो जवान थी; जिसे देखकर आंखें फोड़ ली थीं। जिससे इतने घबड़ा गए थे; जिससे इतने आंदोलित हो गए थे; जिससे इतने विचलित हो गए थे--उससे तो गठबंधन हो गया।
नहीं तो मैं कहता हूं, अगर सूरदास सही हैं, तो यह कहानी गलत है। और अगर कहानी सही है, तो सूरदास गलत हैं। अगर कहानी सही है, तो फिर सूरदास वह जो कृष्ण की महिमा गा रहे हैं, वह कृष्ण की नहीं, उसी स्त्री की महिमा होगी। और अगर सूरदास सही हैं और कृष्ण की महिमा सही है, तो किसी स्त्री के लिए क्या आंख फोड़ेंगे! उस स्त्री में कृष्ण का ही दर्शन होगा। जहां सौंदर्य होगा, वहीं परमात्मा का दर्शन होगा।
संवर को उपलब्ध होने वाला आदमी आंख को निखारता है; आंख को खोलता है; ठीक से देखना सीखता है। अंधा नहीं हो जाता। और न आंख को झुकाता है। प्रसिद्ध झेन कथा है, जो मैंने तुमसे बहुत बार कही है। दो भिक्षु एक नदी के किनारे आए। एक बूढ़ा है, एक जवान है। और नदी के किनारे उन्होंने खड़ी एक सुंदर युवती देखी। बूढ़ा साधु आगे है, जैसा कि नियम है कि बूढ़ा आगे चले, जवान पीछे चले। उस बूढ़े आदमी ने तो जल्दी आंखें झुका लीं। स्त्री अपूर्व सुंदर थी।
शायद इतनी सुंदर न भी रही हो, लेकिन बूढ़े संन्यासियों को सभी स्त्रियां सुंदर दिखायी पड़ती हैं! जो स्त्रियों से भागेगा, उसे सभी स्त्रियां सुंदर दिखायी पड़ने लगती हैं। तुम जितना भागोगे, उतनी ही सुंदर दिखायी पड़ने लगती हैं। मगर हो सकता है, सुंदर ही रही हो। वह बहुत विचलित हो गया।
और उस स्त्री ने कहा कि मैं डर रही हूं; मुझे नदी के पार जाना है; क्या
आप मुझे हाथ में हाथ नहीं देंगे? वह बूढ़ा तो सुना ही नहीं। वह तो तेजी से भागा। उसने सोचाः सुनना खतरनाक है, क्योंकि उसे अपने मन की हालत दिखायी पड़ रही है। मन कह रहा हैः ले लो हाथ में हाथ। यह हाथ प्यारा है। फिर मिले, न मिले! और अपने आप आ रहा है हाथ में, छोड़ो मत। और जितना मन यह कहने लगा... । तो चालीस साल का नियम-व्रत, सब मिट्टी में मिल जाएगा; तो घबड़ाहट बढ़ गयी। वह

पसीना-पसीना हो गया होगा उस सांझ। शीतल हवा बहती थी। सूरज ढल गया था। लेकिन वह पसीना-पसीना हो गया होगा। वह तो नदी तेजी से पार करने लगा। उसने तो लौटकर नहीं देखा। उसने तो जवाब नहीं दिया। क्योंकि जवाब में खतरा है। जब वह नदी पार कर गया, तब उसे अचानक याद आयी कि मैं तो पार कर आया, लेकिन मेरा जवान साथी पीछे आ रहा है। कहीं वह झंझट में न पड़ जाए! उसने लौटकर देखा। और झंझट में जवान साथी पड़ गया था उसे लगा।
जवान भी आया नदी के तट पर। उस स्त्री ने कहाः मुझे पार जाना है; हाथ में हाथ दे दो। उस जवान ने कहा कि नदी गहरी है, हाथ में हाथ देने से न चलेगा; तू मेरे कंधे पर बैठ जा। वह उसको कंधे पर बिठाकर नदी पार कर रहा था।
जब बूढ़े ने लौटकर देखा, तो मध्य नदी में थे वे दोनों। बूढ़ा तो भयंकर क्रोध से और रोष से भर गया। शायद ईर्ष्या का तत्व भी उसमें सम्मिलित रहा होगा--कि मैं तो हाथ में हाथ न ले पाया और यह उसे कंधे पर ला रहा है! ऐसी सुंदर स्त्री! सपने जैसी सुंदर! फूलों जैसी सुंदर! रोष उठा होगा। ईर्ष्या उठी होगी। जलन उठी होगी। मैं चूक गया--इसका पश्चात्ताप उठा होगा। और इस सब का इकट्ठा रूप यह हुआ कि उसने कहा कि यह बर्दाश्त के बाहर है। यह भ्रष्ट हो गया। जाकर गुरु को कहूंगा। कहना ही पड़ेगा।
और जब युवक नदी के इस पार आ गया और दोनों आश्रम की तरफ चलने लगे, तो बूढ़ा फिर दो मील तक उससे बोला नहीं। भयंकर क्रोध था। जब वे आश्रम की सीढ़ियां चढ़ते थे, तब बूढ़े ने कहा कि सुनो! मैं इसे छिपा न सकूंगा। यह जघन्य पाप है, जो तुमने किया है। मुझे गुरु को कहना ही पड़ेगा। संन्यासी के लिए स्त्री का स्पर्श वर्जित है। और तुमने स्पर्श ही नहीं किया, तुमने उस युवती को कंधे पर बिठाया। यह तो हद्द हो गयी!
पता है, उस युवक ने उस बूढ़े को क्या कहा!
उस युवक ने कहाः आश्चर्य! मैं तो उस स्त्री को नदी के किनारे कंधे से उतार भी आया। आप उसे अभी भी कंधे पर लिए हुए हैं?
जो कंधों पर कभी नहीं लेते, हो सकता है, कंधों पर लिए रहें। जिन्होंने कंधों पर लिया है, वे कभी न कभी उतार ही देंगे। बोझ भारी हो जाता है। सूरदास ने अगर आंखें फोड़ ली होंगी, तो जिंदगीभर कंधे पर लिए रहे होंगे। नहीं; वह कोई उपाय नहीं है। और मैं सूरदास को समझता हूं। इसलिए कहानी को कहता हूं गलत ही होगी। कहानी सही नहीं हो सकती। किन्हीं मूढ़ों ने रची होगी। उन्हीं मूढ़ों ने, जिनसे पूरा धर्म विकृत हुआ है।
ये भिक्षु पांच--आंखें बंद कर रहे होंगे; कान बंद कर रहे होंगे; जबर्दस्ती अपने को किसी तरह बांध रहे होंगे। जब कोई जबर्दस्ती अपने को बांधता है, तो अहंकार पैदा होता है। अहंकार लक्षण है। अहंकार तभी पैदा होता है, जब तुम कुछ जबर्दस्ती अपने साथ करते हो और उसमें सफल हो जाते हो। जब कोई आदमी समझपूर्वक जीवन में गहरे उतरता है, तो अहंकार निर्मित नहीं होता। क्योंकि करने को वहां कुछ है ही नहीं। समझ से ही अपने आप गुत्थियां सुलझ जाती हैं। करना कुछ भी नहीं पड़ता है।
जिसने जागकर शरीर के रूप को देख लिया, उसे दिखायी पड़ जाएगा, क्षणभंगुर है; पानी का बबूला है। आज है, कल चला जाएगा। अब कुछ करना नहीं पड़ता। बात खतम हो गयी।
जिसने जागकर संगीत को सुन लिया, उसे साफ हो गया कि केवल ध्वनियों की चोट है। आहत नाद है। इसमें कुछ खास नहीं है; शोरगुल है। और जिसे यह दिखायी पड़ गया कि बाहर का संगीत शोरगुल है, उसे भीतर का संगीत सुनायी पड़ने लगेगा-- जिसको हमने अनाहत नाद कहा है। वहां बज ही रही है वीणा। और वहां बजाने वाला स्वयं परमात्मा है।
लेकिन बाहर के संगीत में जो उलझा है, उसे भीतर का संगीत सुनायी भी नहीं पड़ता। और बाहर के स्वाद में जो उलझा है, उसे भीतर के अमृत का स्वाद नहीं आता। मगर बाहर के स्वाद को दबाओगे, तो भी बाहर के स्वाद में ही उलझे रहोगे। दबाने से मुक्ति नहीं है। बाहर का स्वाद समझो।
इन पांचों में एक दिन भारी विवाद छिड़ गया।
पांचों अहंकारी हो गए होंगे। एक आंख झुकाकर चलता था। वह उसका अहंकार
हो गया होगा--कि देखो, मैंने रूप का जैसा संवरण किया है; ऐसा किसी ने भी

नहीं किया। और बड़ा कठिन है रूप का संवरण। क्योंकि आंख पर विजय पाना सबसे बड़ी कठिन बात है। दुष्कर बात है। क्योंकि रूप का आकर्षण बड़ा प्रबल है।
और दूसरा कहता होगाः इसमें क्या रखा है! असली बात तो जिह्वा है। जीभ
पर नियंत्रण चाहिए। मुझे देखो! न नमक लेता हूं; न शक्कर लेता हूं; न घी लेता हूं; न यह लेता हूं, न वह लेता हूं। रूखा-सूखा खाता हूं। असली चीज तो जिह्वा है।
रूप का स्वाद तो तब पैदा होता है, जब आदमी चौदह साल का हो जाता है। जीभ
का स्वाद तो जन्म के पहले दिन ही पैदा हो जाता है। रूप का स्वाद तो आदमी बूढ़ा होने लगता है, तो समाप्त हो जाता है। लेकिन जीभ का स्वाद तो मरते दम तक साथ रहता है।
तो जो जीभ पर नियंत्रण करता था, वह कहता था कि देखो, पहले दिन से लेकर आखिरी दिन तक, झूले से लेकर कब्र तक जो चीज चलती है, वह ज्यादा दुष्कर है। रूप तो आता है और चला जाता है।
कोई नाक पर नियंत्रण कर रहा था--गंध पर। कोई कान पर नियंत्रण कर रहा था--ध्वनि पर। कोई शरीर पर नियंत्रण कर रहा था--स्पर्श पर। सब अपनी दलीलें दे रहे होंगे।
जो स्पर्श की दलील दे रहा था, वह कह रहा होगा--कि ठीक है; बच्चा पैदा होता है, तब दूध पीता है। लेकिन बच्चे को स्पर्श का आनंद तो मां के गर्भ में ही आना शुरू हो जाता है। वहीं दोनों की देहें स्पर्श करती हैं। और यह स्पर्श की आकांक्षा जीवनभर बनी रहती है। एक शरीर से दूसरे शरीर के स्पर्श में जो ऊष्मा मिलती है, जो गर्मी मिलती है, उसका रस सदा बना रहता है।
ऐसे उनमें विवाद चलता होगा। यह विवाद संवर के कारण तो हो ही नहीं सकता। यह विवाद इसीलिए हो रहा है कि सभी ने नियंत्रण किया है। और जिसने नियंत्रण किया है, वह यह कहना चाहता है कि मेरा नियंत्रण तुझसे बड़ा है। और स्वभावतः मेरा नियंत्रण तुझसे कठिन है, तुझसे बड़ा है, इसलिए मैं तुझसे बड़ा हूं। यह अहंकार उसमें भीतर होगा।
अगर त्यागी अहंकारी हो, तो समझना कि त्यागी नहीं है। अगर त्यागी निरअहंकारी हो, तो ही त्यागी है। और निरअहंकारी त्यागी मिलना ही मुश्किल है। क्योंकि निरअहंकारी त्यागी नहीं होता है, न भोगी होता है--मध्य में खड़ा हो जाता है। उसकी घड़ी रुक गयी; उसका पेंडुलम ठहर गया। वह सम को उपलब्ध हो जाता है।
दुनिया में तीन तरह के लोग हैंः भोगी, त्यागी; और दोनों के मध्य में मैं रखता हूं संन्यासी को, क्योंकि वह शब्द भी सम से ही बनता है। संन्यासी को मैं त्यागी नहीं कहता। और संन्यासी को मैं संसारी भी नहीं कहता। इसलिए मैं अपने संन्यासी को नहीं कहता कि तुम संसार छोड़ो और त्यागी
बन जाओ। मैं उनसे कहता हूंः तुम सम्यक्त्व को उपलब्ध हो जाओ। तुम जहां हो, वहीं रहो। वहीं तुम्हारी तराजू को सम्हाल लो। उलटे जाने की कोई भी जरूरत नहीं है।
उन पांचों में बड़ा विवाद हो गया कि किसका संवर दुष्कर है। प्रत्येक अपने संवर को दुष्कर और फलतः श्रेष्ठ बताता था। विवाद की निष्पत्ति नहीं हुई।
हो नहीं सकती। किसी विवाद की कभी नहीं होती। पांच हजार साल में कितने विवाद चले, लेकिन एक विवाद की भी निष्पत्ति नहीं है। निष्पत्ति विवाद की हो ही नहीं सकती।
आदमी सदियों से सोच रहा हैः ईश्वर है या नहीं? जो कहते हैंः नहीं है,
वे कहे चले जाते हैं, नहीं है। जो कहते हैंः है, वे कहे चल जाते हैं, है। कोई निष्पत्ति नहीं है। न तो आस्तिक नास्तिक से राजी हो पाता है; न नास्तिक आस्तिक से राजी हो पाता है। वेद को मानने वाला वेद की ही दुहाई दिए चला जाता है। कुरान को मानने वाला कुरान की दुहाई दिए चला जाता है। और सब अपने पक्ष में दलीलें निकाल लेते हैं। लेकिन न तो किसी को वेद से मतलब है; न किसी को कुरान से मतलब है। न किसी को ईश्वर से मतलब है; न ईश्वर के न होने से मतलब है। सबको मतलब है कि मेरी बात ठीक होनी चाहिए, क्योंकि मैं ठीक हूं।

जब तुम विवाद करते हो, तुमने ख्याल किया, तुम्हें इसकी फिक्र नहीं होती कि सत्य क्या है। तुम्हें इसकी फिक्र होती है कि जो मैं कहता हूं, वह सत्य है या नहीं।
रस्किन का एक प्रसिद्ध वचन है कि दुनिया में दो तरह के लोग हैंः एक तो
वे जो सत्य को अपने साथ चलाना चाहते हैं, अपने पीछे। जैसे कोई गाय को बांध ले रस्सी में, और चलाए अपने पीछे। ये ही लोग विवादी हैं। ये सत्य को अपने पीछे चलाना चाहते हैं। ये सत्य को भी अपना अनुगामी बनाना चाहते हैं। और दूसरे वे लोग हैं, जो सत्य के पीछे चलना चाहते हैं; सत्य जहां जाए, वहीं जाने को राजी हैं। सत्य अगर विपरीत विरोधी के शिविर में ठहरा है, तो वे वहीं जाने को राजी हैं। जहां सत्य है, वहां वे जाएंगे। वे छाया बन जाते हैं सत्य की। ये ही सत्य के खोजी हैं। ये ही खोज पाते हैं। विवादी नहीं खोज पाते।
विवादी का तो कहना यह है कि मैंने पा ही लिया। इसीलिए तो विवाद पैदा
हो रहा है। वह तो कहता हैः मैंने जान ही लिया। और मैं सिद्ध कर सकता हूं। और ध्यान रखना, तर्क सभी कुछ सिद्ध कर सकता है। तर्क वेश्या जैसा है। उसको कुछ लेना-देना नहीं है कि कौन ठीक है, कौन गलत है। तुम उपयोग करो, तो तुम्हारे काम आ जाता है; दूसरा उपयोग करे, तो उसके काम आ जाता है। तर्क वकील है।
एक बड़े वकील थे--डाक्टर हरि सिंह गौर। सागर विश्वविद्यालय का उन्होंने निर्माण किया। वे दुनिया के बड़े ख्यातिलब्ध वकीलों में एक थे। लेकिन कभी-कभी ज्यादा पी जाते थे।
प्रीवी कौंसिल में एक मामला था। किसी भारतीय रियासत का झगड़ा था। बड़ा मामला था। करोड़ों का मामला था। वे कुछ रात ज्यादा पी गए क्लब में। सुबह गए तो खुमारी कायम थी। वे भूल गए कि किसके पक्ष में हैं। तो विपरीत की तरफ से बोल गए। और घंटेभर जब बोले... । उनका जो सहयोगी था, उसने कई बार उनका कोट इत्यादि खींचा। मगर वे पीए ही हुए थे, तो वे उसका हाथ झटक दें। उनको और क्रोध आ रहा था। क्रोध आता तो और उनका तर्क प्रखर होता जा रहा था। वे रुके नहीं।
दूसरा, विपरीत का वकील भी हैरान था, कि अब मेरे लिए कुछ बचा ही नहीं! मजिस्ट्रेट भी हैरान था कि अब होगा क्या! और जो विपरीत पार्टी थी, वह चकित थी। और जो हरि सिंह गौर की पार्टी थी, वह चकित थी कि मार डाला, अपने ने ही मार डाला। इनको हो क्या गया! दिमाग खराब हो गया!
जब घंटेभर बाद वे रुके--सफाया करके बिल्कुल, तो उनके सहयोगी ने कहाः आपने मार डाला! अपने आदमी को मार डाला! आप भूल गए। उन्होंने कहाः तू घबड़ा मत।
उन्होंने फिर शुरू किया। उन्होंने कहाः अभी मैंने वे दलीलें दीं, जो मेरा विरोधी पक्ष का वकील देगा। अब मैं उनका खंडन शुरू करता हूं। और उन्होंने खंडन भी उसी कुशलता से किया। और मुकदमा जीते भी।
तर्क वकील है। तर्क की कोई निष्ठा नहीं है। जो तर्क को अपने साथ ले ले, उसी के साथ हो जाता है। तो हर चीज के लिए तर्क दिया जा सकता है। और मजा ऐसा है कि जिस तर्क से बातें सिद्ध होती हैं, उसी से असिद्ध भी होती हैं।
जैसे कि ईश्वर को मानने वाला कहता हैः ईश्वर होना ही चाहिए, क्योंकि दुनिया है। घड़ा होता है, तो कुम्हार होना चाहिए। बिना बनाए कैसे बनेगा? इतना विराट सृष्टि का फैलाव! ईश्वर होना ही चाहिए, बनाने वाला होना ही चाहिए। बिना बनाए कैसे बन सकता है? यह उसका तर्क है।
नास्तिक से पूछो।
वह कहता हैः हम मानते हैं। यह तर्क बिल्कुल सही है। अब हम पूछते हैंः ईश्वर को किसने बनाया? अगर हर बनायी गयी चीज का--अगर हर चीज का, जो है-- बनाने वाला होना चाहिए, तो ईश्वर का बनाने वाला कौन है?
आस्तिक कहता हैः यह नहीं पूछा जा सकता। ईश्वर को किसी ने नहीं बनाया। आस्तिक कहता है कि कभी तो तुम्हें मानना ही पड़ेगा न एक जगह जाकर कि इसको किसी ने नहीं बनाया; नहीं तो फिर तो यह चलता ही जाएगाः अ को ब ने बनाया; ब को

स ने बनाया। चलता ही जाएगा! इसका कोई अंत नहीं होगा। तो आस्तिक कहता है कि एक जगह तो रुकना होगा न। हम ईश्वर पर रुकते हैं।
नास्तिक कहता हैः हम भी राजी हैं। एक जगह रुकना होगा, तो सृष्टि पर ही क्यों न रुक जाएं? स्रष्टा तक जाने की जरूरत क्या है?
तर्क एक ही है; दोनों के काम पड़ता है। मगर दोनों में से किसी को भी सत्य की कोई आकांक्षा नहीं है। मैं ठीक!
अहंकार विवाद लाता है। जहां अहंकार समाप्त होता है, वहां सत्य से संवाद शुरू होता है।
विवाद की कोई निष्पत्ति न होती देख वे पांचों भगवान के चरणों में उपस्थित हुए।
यह भी बात प्रतीकात्मक है। जब तुम विवाद की कोई निष्पत्ति न कर सको,
तो किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो निर्विवाद हो। किसी ऐसे व्यक्ति के पास जाना चाहिए जो तर्क से न जी रहा हो, जिसने सत्य का अनुभव किया हो।
तुम तो सत्य के संबंध में सोच रहे हो। सोचने से विवाद हल नहीं होता।
अब उसके पास जाओ, जिसने सत्य को जाना है। उस जानने वाले से ही हल हो सकता है।
मगर एक और बात समझना। यह तो जाना फिर भी बाहर से होगा। और बुद्ध जो कहेंगे, ये पांचों उसके अलग-अलग अर्थ भी ले सकते हैं। और विवाद फिर शुरू हो सकता है। अगर विवाद जारी ही रखना हो, तो कोई उपाय नहीं है उससे छूटने का। बुद्ध के पास जाकर भी ये पांचों लौट आएंगे। और एक कहेगाः बुद्ध ने ऐसा कहा। और दूसरा कहेगाः गलत कह रहे हो। ऐसा कहा ही नहीं। उनका प्रयोजन यह था। फिर विवाद नयी समस्या को लेकर शुरू हो जाएगा। लेकिन विवाद जारी रहेगा।
बुद्ध के मरते ही बुद्ध के संप्रदाय में छत्तीस खंड हो गए! जो बुद्ध
के मरते ही छत्तीस संप्रदाय पैदा हुए, वे बुद्ध के जीते भी रहे होंगे; एकदम से कैसे पैदा हो जाएंगे! ऐसा थोड़े ही होता है कि आज बुद्ध मरे और एकदम लोग अलग-अलग हो गए। ये छत्तीस वर्ग रहे ही होंगे, दबे रहे होंगे। बुद्ध की प्रतिष्ठा, बुद्ध के प्रभाव, बुद्ध की गरमी में, बुद्ध की ऊष्मा में ठहरे रहे होंगे। बुद्ध के सामने प्रगट न हो सके। इधर बुद्ध मरे, उधर सब विवाद उठ खड़े हुए। बुद्ध-धर्म छत्तीस खंडों में टूट गया।
महावीर के जाते ही जैन-धर्म खंडों में टूट गया। ये विवाद रहे होंगे।
ये एकदम से आकाश से पैदा नहीं हो सकते। कुछ तो समय लगता। महावीर जाएं दुनिया से; सौ दो सौ साल बाद विवाद पैदा हो; समझ में आता है--कि ठीक है, अब दो सौ साल हो गए। अब जिन्होंने महावीर को सुना था, वे नहीं हैं। जिन्होंने देखा था, वे नहीं हैं। अब विवाद स्वाभाविक है। लेकिन इधर महावीर मरे--इधर लाश पड़ी होती है--उधर विवाद शुरू हो जाता है!
कबीर मरे--लाश पर ही विवाद हो गया! कि हिंदू चाहते हैं कि जलाएं; और मुसलमान चाहते हैं कि गड़ाएं। ये किस तरह के भक्त थे? यह कबीर की मौजूदगी में हिंदू हिंदू था, मुसलमान मुसलमान था। सिर्फ कबीर की प्रभा में, ज्योति में दबा हुआ पड़ा था। उस ज्योति के जाते ही सब जुगनू टिमटिमाने लगे। सब विवाद वापस लौट आए।
तो इसका एक और प्रतीक गहरा है और वह यह है कि बाहर के बुद्ध के पास जाकर विवाद हल शायद हो, शायद न हो। अगर भीतर के बुद्ध के पास जाओगे, तो निश्चित हल हो जाएगा। तुम्हारा बुद्धत्व ही विवाद की निष्पत्ति बनेगा। वे पांचों भगवान के चरणों में उपस्थित हुए और उन्होंने भगवान से पूछाः भंते! इन पांच इंद्रियों में से किसका संवर कठिन है?
भगवान हंसे और बोले... ।
हंसे, क्योंकि उन पांचों को किसी को भी इससे प्रयोजन नहीं है कि किस इंद्रिय का संवर कठिन है। उन्हें सत्य से कुछ लेना-देना नहीं है। वे पांचों अपने को सिद्ध करने आए हैं। पांचों अकड़कर खड़े हैं! पांचों चाहते हैं, भगवान उनका समर्थन करें। इसलिए हंसे। मूढ़ता पर हंसे।

इतने दिन आंख झुकाकर रखी; इतने दिन भोजन का त्याग किया; इतने दिन एकांत में रहे! और फिर उठा आखिर में विवाद! दुर्गंध उठी अंत में, सुगंध का कुछ पता नहीं। इस दुर्दशा पर हंसे। इस मनुष्य की दयनीयता पर हंसे। इस मनुष्य की मूढ़ता पर हंसे।
भिक्षुओ! उन्होंने कहाः संवर दुष्कर है। इस इंद्रिय का संवर, उस इंद्रिय का संवर--ऐसा विवाद व्यर्थ है। संवर दुष्कर है; जागना दुष्कर है। समता की स्थिति पाना दुष्कर है। और तुममें से किसी ने भी उस स्थिति को पाया नहीं है। तुम अभी दमन में ही लगे हो।
असली कठिनाई तो वहां है, जहां तुम जागो और तुम्हारे जागने के कारण संवर सध जाए; साधना न पड़े। साधु वही जो सध जाए; साधना न पड़े।
कबीर ने कहा हैः साधो! सहज समाधि भली। सहज समाधि! उसी को बुद्ध संवर कहते हैं। वही बुद्ध की भाषा में संवर है। सहज समाधि! क्या अर्थ हुआ? अर्थ होता हैः जैसे तुम्हारे घर में आग लगी है, और तुम्हें दिखायी पड़ गया कि आग लगी है, और तुम निकलकर भागे और बाहर हो गए। यह सहज समाधि। तुम्हें दिखायी पड़ा कि आग लगी है, अब भीतर रुकोगे कैसे? दिख गया, आग लगी है, बाहर चले गए।
लेकिन तुम्हारे घर में आग लगी है और तुम अंधे हो, और कोई आया पड़ोसी और तुमसे कहता हैः भई! बाहर निकलो, घर में आग लगी है! तुम कहते होः छोड़ो भी जी! कहां की बातें कर रहे हो! कोई घर लूटना है मेरा? कैसी आग? कहां की आग? मुझे कुछ नहीं दिखायी पड़ता है। और जब तक मुझे नहीं दिखायी पड़ता, मैं कैसे भागूं?
लेकिन अगर पड़ोसी बहुत समझदार हो, और समझाने में कुशल हो और तुम्हें समझा दे, और राजी कर दे कि घर में आग लगी ही है, तो तुम बेमन से, जबर्दस्ती अपने को घसीटते हुए घर के बाहर निकालो। निकलना नहीं चाहते। निकलना पड़ रहा है। अब इस पड़ोसी से कैसे झंझट छुड़ाएं! यह पीछे ही पड़ा है, तो निकलना पड़ रहा है। यह असहज दशा हो गयी। जबर्दस्ती हो गयी। सहज का अर्थ होता है-- स्वस्फूर्त।
बुद्ध ने कहाः संवर दुष्कर है। इसका संवर या उसका संवर नहीं--संवर ही स्वयं दुष्कर है। भिक्षुओ! ऐसे व्यर्थ के विवादों में न पड़ो। क्योंकि विवाद मात्र के मूल में अहंकार है। विवाद की कोई निष्पत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि अहंकार की कोई निष्पत्ति नहीं है। अहंकार भरमाता है, भटकाता है-- पहुंचाता नहीं। पहुंचा ही नहीं सकता है।
विवादों में व्यय न करके शक्ति को भिक्षुओ, समग्र शक्ति को संवर में लगाओ। सारी शक्ति को उंडेल दो अपने भीतर के दीए में, ताकि ज्योति भभककर उठे। उस ज्योति के जगने में ही सब दिखायी पड़ेगाः क्या व्यर्थ है, क्या सार्थक है। क्या असार है, क्या सार है। और असार को असार की तरह देख लेना, असार से मुक्त हो जाना है।
सभी द्वारों का संवर करो भिक्षुओ!
इस झंझट में मत पड़ो कि आंख का करूं, कि कान का करूं, कि नाक का करूं। आंख का कर लोगे, तो क्या फर्क पड़ेगा? अगर आंख को किसी तरह दबा लिया, तो जितनी आंख की वासना थी, वह कान में सरक जाएगी।
यह रोज होता है। तुमने देखा, अंधा आदमी संगीत में बहुत कुशल हो जाता है। उसकी ध्वनि की क्षमता बढ़ जाती। क्यों? क्योंकि आंख से जो ऊर्जा बाहर जाती थी, अब आंख से तो मार्ग न रहा, अब वह कान से जाने लगी। जैसे झरने को एक तरफ से रोक दिया, तो वह दूसरी तरफ से बहने लगेगा। दूसरी तरफ से रोक दिया, तो तीसरी तरफ से बहने लगेगा। झरना बहेगा।
इसलिए अक्सर ऐसा हो जाता है कि जो लोग किसी एक इंद्रिय को नियंत्रण करने में लग जाते हैं, उनकी कोई दूसरी इंद्रिय खूब सशक्त होकर प्रगट होने लगती है। और कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि दूसरी इंद्रिय ज्यादा भयंकर सिद्ध हो। क्योंकि दो इंद्रियों का बल इकट्ठा मिल जाएगा उसे।
इसलिए सवाल यह नहीं है कि इसका करूं संवर या उसका। बुद्ध कहते हैंः संवर करो। जागो। सारी इंद्रियों के द्वारों के पार हो जाना है। संवर दुखमुक्ति का उपाय है।

तब उन्होंने ये गाथाएं कहींः

चक्खुना संवरो साधु साधु सोतेन संवरो।
घाणेन संवरो साधु साधु जिह्वाय संवरो।।

"आंख का संवर शुभ है, साधु है--साधु बनाता व्यक्ति को। कान का संवर भी शुभ है--साधु बनाता व्यक्ति को। घ्राण का संवर भी शुभ है, जीभ का संवर भी शुभ है।"
सब संवर शुभ हैं, क्योंकि संवर व्यक्ति को सरल बनाते हैं, जटिलता से मुक्त कराते हैं। संवर व्यक्ति को एकता देते हैं। नहीं तो पांच इंद्रियां पांच खंडों में तोड़ देती हैं। एक इंद्रिय एक तरफ खींचती है; दूसरी इंद्रिय दूसरी तरफ खींचती है। जब इंद्रियां खींचती ही नहीं, तो व्यक्ति जितेंद्रिय हो जाता है। उस जितेंद्रियता में ही साधुता है।

कायेन संवरो साधु साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु सब्बदुक्खा पमुच्चति।।

"शरीर का संवर शुभ है। वचन का संवर शुभ है। मन का संवर शुभ है।
सर्वेन्द्रियों का संवर शुभ है। सर्वत्र संवरयुक्त भिक्षु सारे दुखों से मुक्त हो जाता है।"
"शरीर का संवर शुभ है। वचन का संवर शुभ है।"
शरीर के संवर का अर्थ होता है--अकेले होने की क्षमता का आ जाना। यह संवर की पहली परिधि, एकांत में जीने का मजा।
तुमने देखा, एकांत काटता है! जब तुम घर में अकेले रह जाते हो, हजार मन उठने लगते हैंः कहां जाऊं? सिनेमा चला जाऊं; होटल चला जाऊं; किसी क्लब में चला जाऊं; पड़ोसी के घर चला जाऊं--कहां चला जाऊं?
क्या कारण है? किसलिए सिनेमा जा रहे हो? किसलिए पड़ोसी के घर जा रहे हो? किसलिए क्लब जा रहे हो? अकेले होने की क्षमता नहीं है। दूसरे चाहिए। दूसरे रहते हैं, तो तुम दूसरों में उलझे रहते हो।
शरीर के संवर का अर्थ हैः अकेले होने की क्षमता, एकांत की क्षमता। और इसका यह अर्थ नहीं कि तुम जाओ, हिमालय की किसी गुफा में बैठो। यहीं, बाजार में चलते-चलते भी तुम चाहो तो अकेले हो सकते हो। और गुफा में बैठकर भी चाहो तो भीड़ में हो सकते हो।
गुफा में बैठकर भी अगर लोगों के संबंध में सोच रहे हो, तो यह शरीर का संवर न हुआ। और राह में चलते हुए, बाजार में चलते हुए भी अगर किसी के संबंध में नहीं सोच रहे हो; शांत, मौन से चल रहे हो; संतुलित अपने भीतर आरूढ़--तो संवर है।
शरीर का संवर यानी एकांत की क्षमता। वचन का संवर यानी मौन की क्षमता, चुप होने की क्षमता।
वचन दूसरे से जोड़ता है। तो वचन सेतु है संबंधों का। अगर वचन से मुक्त होने की क्षमता हो... । इसका यह अर्थ नहीं कि तुम बोलो ही मत। इसका यही अर्थ है कि जब जरूरी हो, अत्यंत जरूरी हो, तो बोलो।
बोलने में आदमी को वैसा ही संयम होना चाहिए जैसा जब तुम तार करते हो,
तो सोचते होः यह शब्द काट दूं, यह शब्द काट दूं। यह ज्यादा, यह ज्यादा। क्योंकि नौ ही शब्द जा सकेंगे; ये दस हो गए, तो एक और काट दूं। और तुमने एक मजा देखा! कि चिट्ठी से तार का परिणाम ज्यादा होता है! चिट्ठी में तुम्हें जो दिल में आता है, लिखते हो। दस पन्ने लिख डालते हो। उसी की वजह से जो तुम लिखते हो, उसकी त्वरा चली जाती है। जो तुम लिखते हो, उसमें बल नहीं रह जाता। जो तुम लिखते हो, उसकी सघनता और चोट खो जाती है।
तार के दस शब्दों में बड़ी सघनता, इंटेंसिटि आ जाती है। शब्द काटते जाते हैं--यह भी गैर-जरूरी, यह भी गैर-जरूरी। फिर जो जरूरी-जरूरी रह गया, उसका वजन बढ़ जाता है। इसलिए तार का परिणाम होता है। तार की चोट होती है।

वचन के संवर का अर्थ हैः जितना जरूरी हो, उतना बोलने की क्षमता। क्षमता क्यों कहते हैं इसे? क्योंकि तुम अकारण बोलते हो; बोलने में अपने को उलझाते हो। बोलना एक तरह का उलझाव है, व्यस्तता है।
जो मिला, उसी से बोलते हो! कुछ भी बोलते हो। वह भी कुछ बोल रहा है; तुम
भी कुछ बोल रहे हो। कुछ नहीं होता, तो मौसम की ही बात करते हो! उसको भी पता है; तुमको भी पता है। लेकिन कर रहे बात! वह भी वही अखबार पढ़ा है, जो तुम पढ़े हो। उसी की बात कर रहे! लेकिन कुछ न कुछ बात करनी है। और जिन बातों को तुम हजार बार कर चुके हो, वही बात फिर दोहरा रहे हो।
वचन की क्षमता का अर्थ हैः जरूरी बोलना, गैर-जरूरी नहीं बोलना।
फिर मन का संवर। मन का संवर हैः भीतर का मौन।
एक तो बाहर का मौन है--व्यर्थ न बोलना। और फिर एक भीतर का मौन है-- व्यर्थ न सोचना। ऐसे धीरे-धीरे एकांत बढ़ता है। पहले बाहर से, भीड़ से मुक्त हो जाओ। फिर शब्दों से मुक्त। फिर मन की तरंगों से मुक्त। तब सर्वेन्द्रियों का संवर सध जाता है। आदमी जितेंद्रिय हो जाता है। "सर्वत्र संवरयुक्त भिक्षु सारे दुखों से मुक्त होता है।"

हत्थसांंतो पादसांंतो वाचाय सांंतो सांंतुत्तमो।
अंझत्तरतो समाहितो एको संतुसितो तमाहु भिक्खुं।।

"जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है, जो उत्तम संयमी है, जो अध्यात्मरत, समाहित, अकेला और संतुष्ट है, उसे भिक्षु कहते हैं।"
बुद्ध ने बहुत जोर दिया है इस बात पर कि चलो भी तो संयम रखना। चलने में कैसा संयम? होशपूर्वक चलना। एक पैर भी उठाओ, तो याद रहे कि मैंने यह पैर उठाया। मूर्च्छा में मत उठाना।
"जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है... ।"
जो बोलता है, तो जानता है तो ही बोलता है।
तुम कितनी बातें बोलते हो, जो तुम जानते भी नहीं! कोई तुमसे पूछता हैः ईश्वर है? तुम कहते होः हां, है। छाती ठोंककर कहते होः है। तुम्हें ईश्वर का कोई पता नहीं है। संसार में झूठ बोलो, चलेगा। कम से कम परमात्मा को तो छोड़ो! उस संबंध में तो झूठ मत बोलो!
तुमसे कोई पूछता हैः आत्मा है? तुम कहते होः है। और न तुम कभी भीतर गए,
और न कभी इस आत्मा का दर्शन किया! कोई पूछता हैः लोग मरने के बाद बचेंगे? तुम कहते होः हां। पुनर्जन्म है। आत्मा अमर है।
तुमने जीवन तक देखा नहीं; मृत्यु की तो बात ही छोड़ो। रात नींद में सो जाते हो, तब तुम्हें पता नहीं रहता कि तुम कौन हो! तो मृत्यु की गहरी निद्रा में उतरोगे, तो तुम्हें कहां पता रहेगा? रात की नींद तक में रोज-रोज तुम टूट जाते हो अपने तादात्म्य से; भूल जाते हो, मैं कौन हूं; तो महामृत्यु जब घटेगी, सब तरह से जब तुम मरोगे, क्या तुम्हें याद रहेगा?
न तुम्हें पुनर्जन्मों की कुछ याद है; न तुम्हें आत्मा की शाश्वतता
का कुछ पता है। लेकिन कहे जा रहे हो! कुछ भी कहे जा रहे हो! इन झूठों से बचो। इन झूठों से जो बच जाए, वही सत्य को उपलब्ध हो सकता है।
जिसके हाथ, पैर और वचन में संयम है; जो उत्तम संयमी है; जो अध्यात्मरत--
जो अपने में लीन रहता--समाहित... । फिर एक शब्द आया जो सम से बना है--समाहित। सब तरह से अपने में ठहरा हुआ; सब तरह से अपने में थिर; सब तरह से अपने में प्रतिष्ठित; अकेला और संतुष्ट है... । फिर सम आया--संतुष्ट, संतोष।
जो जैसा है, जहां है--वैसा ही अपने को धन्यभागी जानता है; इससे अन्यथा
की कोई मांग नहीं है।
जिसको अन्यथा की मांग नहीं है, उसकी जिंदगी में चिंता नहीं है। जिसको अन्यथा की मांग नहीं है, उसकी जिंदगी में कभी कोई दुख नहीं है। जैसा है, उसी से राजी।
तुम कहते होः ऐसा होगा तो मैं राजी होऊंगा। फिर तुम कभी राजी नहीं होने वाले। क्योंकि कौन तुम्हारी आकांक्षाएं तृप्त करने को है? सब अपनी

आकांक्षाएं तृप्त करने में लगे हैं। और यह विराट अस्तित्व एक-एक की आकांक्षाएं तृप्त करने चले, तो कभी का बिखरकर खंडित हो जाए।
लेकिन जो कहता हैः जो अस्तित्व से मुझे मिले, वही मेरा सुख है; इस आदमी
को दुखी नहीं किया जा सकता। जिसने अस्तित्व के साथ अपना गठबंधन बांध लिया, जो अस्तित्व की धारा में बहने लगा, वह संतुष्ट है, समाहित है, अकेला है।
बुद्ध कहते हैंः उसे ही भिक्षु कहते हैं।

यो मुखसांंतो भिक्खु मंतभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मंच दीपेति मधुरं तस्स भासितं।।

"जो मनुष्य मुख में संयम रखता; मनन करके बोलता; उद्धत नहीं होता; अर्थ
और धर्म को प्रगट करता--उसका भाषण मधुर होता है।"

यो मुखसांंतो भिक्खु मंतभाणी अनुद्धतो।

जो उतना ही बोलता है, जितना जानता है; जो उतना ही बोलता है, जितना जीया है। जो उतना ही बोलता है, जिसका स्वयं गवाह है--उसकी वाणी स्वभावतः मधुर हो जाती है। सत्य जहां है, वहां माधुर्य है।

अत्थं धम्मंच दीपेति... ।

उसके वचनों से धर्म के दीए जलने लगते हैं।

मधुरं तस्स भासितं।

और उसके व्यक्तित्व से माधुर्य बरसने लगता है। उसके पास भी जो आएगा,
वह मस्त हो जाएगा। उसके पास जो आएगा, वह ज्योतिर्मय होने लगेगा। जितने पास आएगा, उतना ज्योतिर्मय होने लगेगा।
बुझा दीया जैसे जले दीए के पास आकर जल जाता है, ऐसे ही ऐसे समाहित व्यक्ति के पास, संतुष्ट व्यक्ति के पास, समाधिस्थ व्यक्ति के पास, संबुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति के पास बुझे से बुझा आदमी आकर भी धर्म के दीए से ज्योतिर्मय हो जाता है। जल उठती उसके भीतर सोयी हुई चेतना। अंधेरा मिट जाता है। और परम माधुर्य की वर्षा होती है।

दूसरा दृश्यः

भगवान के यह कहने पर कि चार माह के पश्चात मेरा परिनिर्वाण होगा, भिक्षु अपने को रोक नहीं सके--जार-जार रोने लगे। भिक्षुओं के आंसू बहने लगे। भिक्षुओं की तो क्या कही जाए बात, अर्हंतों के भी धर्मसंवेग का उदय हुआ। उनकी आंखें तो आंसुओं से नहीं भरीं, लेकिन हृदय उनका भी डांवाडोल हो गया।
उस समय धम्माराम नाम के एक स्थविर ने, यह सोचकर कि मैं अभी रागरहित नहीं हुआ और शास्ता का परिनिर्वाण होने जा रहा है, इसलिए शास्ता के रहते ही मुझे अर्हत्व प्राप्त कर लेना चाहिए--ऐसा सोच, एकांत में जाकर समग्र संकल्प से साधना में लग गया।
धम्माराम उस दिन से एकांत में रहते, मौन रखते, ध्यान करते। भिक्षुओं
के कुछ पूछने पर भी उत्तर नहीं देते थे। स्वभावतः, भिक्षुओं को इससे चोट लगी। धम्माराम अपने को समझता क्या है? पूछने पर उत्तर नहीं देता! उपेक्षा करता है! इस तरह चलता है, जैसे अकेला है, कोई यहां है ही नहीं!
वहां दस हजार भिक्षु थे बुद्ध के पास। यह धम्माराम भूल ही गया उन दस हजार भिक्षुओं को। स्वभावतः अनेक को चोटें लगीं। अनेक को बात जंची नहीं। लोग जयरामजी करते, उसका भी उत्तर नहीं देता था! बात ही छोड़ दी थी यह। जैसे संसार मिट गया।

भिक्षुओं ने यह शिकायत भगवान से की। भगवान ने उन्हें कहाः धम्माराम
को बुला लाओ।
धम्माराम के आने पर पूछाः भिक्षु! तुझे क्या हुआ है? क्या यह सत्य है
कि तू अन्य भिक्षुओं से बातें नहीं करता है?
भंते! सत्य है। धम्माराम ने कहा।
भिक्षु! तू ऐसा क्यों कर रहा है?
तब धम्माराम ने अपने सारे विचारों को कह सुनाया। उसने कहाः आप जाते हैं। चार महीने का समय बचा। आपके रहते अगर मैं मुक्त नहीं हो जाता हूं, तो फिर मेरे लिए कोई आशा नहीं है। आपकी मौजूदगी में अगर मेरा दीया नहीं जल सका, तो मैं नहीं सोचता हूं कि फिर कभी जल सकेगा। फिर कहां खोजूंगा ऐसे बुद्धपुरुष को? फिर जन्मों-जन्मों भटकना पड़ेगा। इसलिए अब एक रत्तीभर भी शक्ति किसी और बात में नहीं गंवाना चाहता हूं। एक आंसू भी नहीं गिराना चाहता हूं। एक शब्द भी नहीं बोलना चाहता हूं। ये चार महीने, जो भी मेरे पास है, सब दांव पर लगा देना है। अगर इस बार हो जाए, तो हो जाए। इतने करीब आकर चूक जाऊं, भगवान! तो फिर कितना समय लगेगा! फिर कहां खोज पाऊंगा? फिर कब कोई किसी बुद्ध से मिलना होगा?
अबुद्धों की तो भीड़ है। एक खोजो, हजार मिलते हैं। लेकिन बुद्धों को कहां खोजूंगा? हजारों जन्म बीत जाएंगे। और शायद है--भटक जाऊं। आपके रहते न पहुंच पाया, तो अकेले तो बिल्कुल भटक जाऊंगा। यह सोचकर मैंने सारी ऊर्जा को अपने भीतर समाहित कर लिया है।
अब मेरे पास तीन ही काम हैंः एकांत--एकांत यानी दूसरों को भूल जाना; मौन--दूसरों से संबंध न जोड़ना वाणी का, विचार का; और ध्यान--भीतर विचार की तरंग को विसर्जित करना।
ये तीन उपाय हैं समाधि के। दूसरे नहीं हैं जैसे--ऐसे जीना। अपने पास कहने को भी कुछ नहीं है; बोलने को भी कुछ नहीं है--ऐसे जीना। और अपने भीतर सोचने को भी क्या है? सब कूड़ा-करकट है। इस कूड़ा-करकट को क्यों उलटते-पलटते रहना!
ऐसा तीन भावों से जो भर जाए--एकांत, मौन और ध्यान--एक दिन उसके जीवन में समाधि फलित होती है। एक दिन सब शून्य हो जाता है।
ख्याल रखनाः एकांत में दूसरे मिट जाते हैं। मौन में शब्द मिट जाते हैं। ध्यान में विचार मिट जाते हैं। और समाधि में स्वयं का मिटना हो जाता है; शून्य हो जाता है।
उसने सारी बात बुद्ध को कही। उसे सुनकर बुद्ध ने उसे साधुवाद दिया और कहाः भिक्षुओ! अन्य भिक्षुओं को भी, जिन्हें मुझ पर प्रेम हो, धम्माराम के समान ही होना चाहिए। माला-गंध आदि से मेरी पूजा करने वाले मेरी पूजा नहीं करते। अपने को धोखा देते हैं। प्रत्युत जो धर्म के अनुसार आचरण करते हैं, वे ही मेरी पूजा करते हैं। आंसुओं के बहाने से कोई सार नहीं है। और फिर जो वैसा करते हैं, वे मुझे समझे ही नहीं। क्योंकि कितनी बार तो मैंने तुमसे कहाः यहां सभी अथिर है। जो जन्मा है, मरेगा। जो हुआ है, मिटेगा। इस अथिर से मोह मत बनाओ। और तुमने मुझसे मोह बना लिया! जो मुझसे मोह बना लिए हैं, वे मुझे समझे नहीं। रोओ नहीं। रोने से कुछ होगा भी नहीं। बहुत रो लिए। जन्मों-जन्मों रो लिए। अब बंद करो। सोओ भी नहीं। रोना भी जाने दो; सोना भी जाने दो। अब जागो।
और फिर इस गाथा को कहाः

धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति।

"धर्म में रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिंतन करते और धर्म का अनुसरण करते भिक्षु सद्धर्म से च्युत नहीं होता है।"
पहले दृश्य को खूब हृदयंगम कर लें।
बुद्ध ने एक दिन घोषणा की कि चार महीने और मेरी नाव इस तट पर रहेगी।
फिर मेरे जाने का समय आ गया। चार महीने और इस देह में मैं टिका हूं। फिर यह

पंछी उड़ जाएगा। चार महीने और तुम चर्म-च्रुओं से मुझे देख पाओगे। फिर तो वे ही मुझे देख पाएंगे, जिनके भीतर की आंख खुल गयी है। चार महीने और मैं तुम्हें पुकारूंगा। सुन लो, तो ठीक। चार महीने बाद मेरी पुकार खो जाएगी। हां, जो मेरी पुकार सुन लेंगे इन चार महीनों में, उन्हें सदा सुनायी पड़ती रहेगी। चार महीने और मेरा उपयोग कर लो, तो कर लो। यह औषधि ले लो, तो ले लो। चार महीने और, फिर मेरे जाने की घड़ी आ गयी।
अब यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि भिक्षु रोने लगे। बुद्ध जैसा व्यक्ति हो, और मोह पैदा न हो, यह अस्वाभाविक है। बुद्ध जैसा व्यक्ति हो, और लोगों का राग न लग जाए, यह असंभव है। बुद्ध जैसा व्यक्ति हो, तो साधारण भिक्षुओं की क्या बात, जो अर्हत्व को उपलब्ध हो गए हैं, जो अरिहंत हो गए हैं, जो स्वयं बुद्ध हो गए हैं, उनकी भी राग की रेखा शेष रह जाती है। इतने प्यारे व्यक्ति को पाकर खोने की बात ही छाती को तोड़ देगी।
ठीक ऐसी ही घटना जीसस के जीवन में है। जिस रात उन्होंने अंतिम भोजन लिया अपने शिष्यों के साथ, उनसे कहा कि बस, यह आखिरी रात है। कल सुबह मैं जाऊंगा। घड़ी आ गयी। सूली लगेगी।
वे रोने लगे। शिष्य रोने लगे। जीसस ने कहाः मत रोओ।
फर्क समझना। बुद्ध और जीसस के वचनों का!
जीसस ने कहाः मत रोओ। मेरे लिए मत रोओ। अगर रोना है, तो अपने लिए रोओ। रोना है, तो अपने लिए। मेरे लिए मत रोओ। मेरे लिए रोने से क्या होगा!
जीसस यह कह रहे हैं कि अब तो अपनी तरफ देखो; अपनी तरफ मुड़ो। मेरे जाने
की घड़ी आ गयी। मैं तुम्हें पुकारता रहा कि अपनी तरफ देखो। अब भी तुम मेरे लिए रो रहे हो! मेरे लिए मत रोओ। जो होना है, होकर रहेगा। हो ही चुका है। अब और समय मत गंवाओ। और थोड़ी देर तुम्हारे पास हूं--जाग जाओ। अपने लिए रोओ। इतने दिन गंवाए, इसके लिए रोओ। इतने जन्म गंवाए, इसके लिए रोओ। आज की रात मत गंवा देना।
और जीसस ने कहा कि अब हम चलें, पहाड़ पर प्रार्थना करें। वे गए। और उन्होंने कहाः जागे रहना। लेकिन शिष्य सो-सो जाते हैं! जीसस प्रार्थना करते हैं घड़ीभर, फिर उठते हैं और देखते हैं, तो सब झपकी खा रहे हैं!
आखिरी रात आ गयी! कल इस आदमी से विदा हो जाएगी! फिर जन्मों तक मिलना हो,
न हो। फिर ऐसा भव्य रूप, ऐसा दिव्य रूप आंखों में आए, न आए! फिर यह शुभ घड़ी कब घटेगी, कहा नहीं जा सकता है। लेकिन जाग नहीं सकते! निद्रा गहरी है। आखिरी रात भी सो रहे हैं!
ऐसा ही उस दिन हुआ, जब बुद्ध ने कहा कि चार माह के पश्चात मेरा परिनिर्वाण होगा, भिक्षु आंसू नहीं रोक सके। रोने लगे, जोर-जोर से रोने लगे।
एक अर्थ में स्वाभाविक। लेकिन स्वभाव के ऊपर जाना है, तो असली स्वभाव मिलता है।
इस जगत में दो तरह के स्वभाव हैंः एक तो प्रकृति का, और एक परमात्मा का। इस जगत में दो तल हैं--एक पदार्थ का, एक चेतना का। जो पदार्थ के लिए स्वाभाविक है, उससे ऊपर जाओगे, तो चेतना का स्वभाव प्रगट होता है।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है, मानवीय है। बुद्ध को इतना चाहा; बुद्ध की चाह में सारा संसार छोड़ा; घर-द्वार छोड़ा; पत्नी-बच्चे छोड़े; बुद्ध के प्रेम में सब दांव पर लगा दिया है--और बुद्ध चले! तो आंसू बिल्कुल स्वाभाविक हैं। लेकिन इसके ऊपर एक और स्वभाव है। अगर आंसू रुक जाएं और जागरण घट जाए, तो बुद्ध से फिर कभी बिछुड़ना न हो।
बुद्ध से बिछुड़ना तभी तक होता है, जब तक हम शरीर से बंधे हैं। जिस दिन हमें पता चले कि मैं चैतन्य हूं, उस दिन बुद्ध से कैसा बिछुड़ना! फिर स्वयं बुद्धत्व तुम्हारे भीतर विराजमान हो गया। फिर यह नाता न टूटने वाला है। शिष्य को एक न एक दिन इस दशा में आना चाहिए, जब वह गुरु जैसा हो जाए।
शिष्य जिस दिन गुरु हो जाता है, उसी दिन पहुंचा।
स्वभावतः भिक्षु रोने लगे। अर्हंतों को भी धर्मसंवेग हुआ। जो पहुंच
गए थे, उनको भी संवेग हुआ। रोमांच हो गया। यह कभी सोचा नहीं था कि बुद्ध

जाएंगे। सब जाएगा। सब बह जाएगा। बुद्ध जाएंगे--यह नहीं सोचा था। मान ही लिया था कि बुद्ध तो सदा रहेंगे।
एक क्षण को वे भी कंप गए, जिनकी समाधि सम्हल गयी थी।
अब ध्यान करना, संसार में जो कंप जाते हैं, वे बहुत प्राकृतिक व्यक्ति हैं--सामान्य। संसार में जिनका कंपन बंद हो गया, वे अरिहंत हैं। उनका अब संसार से कोई कंपन नहीं होता है। लेकिन अभी एक कंपन उनमें हो सकता है। वह कंपन है--गुरु का छूटना। इससे भी पार जाना है।
कोई मोह न रह जाए। अशुभ का मोह तो जाए ही जाए, शुभ का मोह भी जाए। पाप
तो छूटे, पुण्य भी छूटे। संसार तो छूटना ही चाहिए, एक दिन निर्वाण और मोक्ष की वासना भी छूट जाए--तो परम मुक्ति, तो परिनिर्वाण।
उस समय धम्माराम नाम के एक स्थविर ने ऐसा सोचा कि मैं तो अभी रागरहित नहीं हुआ और बुद्ध के जाने का दिन करीब आ गया। बहुत दिन गंवा दिए। बहुत समय गंवा दिया। अब गंवाने को क्षण भी मेरे पास नहीं है। और शास्ता का परिनिर्वाण होने जा रहा है! इसलिए शास्ता के रहते ही मुझे अर्हत्व प्राप्त कर ही लेना है। अब कुछ बचाऊंगा नहीं। अब पूरा-पूरा डूबूंगा। अब कोई और किसी तरह के संकल्प-विकल्प में समय न गंवाऊंगा। अब शक्ति की एक छोटी सी किरण भी मुझसे बाहर न जाने दूंगा; सब समाहित कर लूंगा।
एकांत में जाकर उन्होंने संकल्पपूर्वक गहन साधना शुरू कर दी।
बुद्ध परंपरा में संकल्प का अर्थ होता है कि अब या तो बुद्ध होकर रहूंगा, या मौत आए। अब दो के बीच कोई और विकल्प नहीं है। जीवन गया। या तो मौत को चुनूंगा, या बुद्धत्व को। मरने को राजी हूं; अब जीने में मेरा कोई रस नहीं। संकल्प का अर्थ है कि अब यह जो मैंने पाना चाहा है, यह पाकर रहूंगा, या मर जाऊंगा। मृत्यु वरण होगी अब मुझे; लेकिन बुद्धत्व के बिना जीवन वरण नहीं होगा। यह संकल्प का अर्थ है।
ऐसे संकल्प को लेकर धम्माराम एकांत में जाकर मौन रखते, ध्यान करते। भिक्षुओं के कुछ पूछने पर उत्तर नहीं देते थे। भिक्षुओं को अड़चन हुई--यह भी स्वाभाविक है। पहली तो अड़चन यह हुई कि धम्माराम की आंख से आंसू न गिरा।
और जिस दिन से बुद्ध ने कहा कि अब बस, चार महीने और--उस दिन से धम्माराम कुछ और ही हो गया। पत्थर की मूर्ति हो गए। हिले नहीं, डुले नहीं। सारी बातों में रस छोड़ दिया।
गपशप चलती होगी। भिक्षु जहां दस हजार इकट्ठे हों, गपशप होती होगी। निंदा-प्रशंसा होती होगी। कौन गलत कर रहा है; कौन ठीक कर रहा है; कौन क्या कर रहा है! भिक्षु और करेंगे क्या! सब तरह के विवाद चलते होंगेः कौन श्रेष्ठ? कौन अश्रेष्ठ? कौन ऊपर? कौन नीचे? सब तरह की राजनीति चलती होगी।
और भिक्षु करेंगे क्या!
इसीलिए तो धम्माराम विशिष्ट है। अब कई सोचने लगे होंगे कि बुद्ध तो
अब जाने ही वाले हैं, अब शायद मैं कब्जा कर लूं संघ पर। मैं मालिक हो जाऊं। अब बुद्ध तो चले। लोग अपने दांव-पेंच बिठाने में लग गए होंगे।
बुद्ध के बाद कौन? अब कौन बुद्ध की गद्दी पर बैठेगा? अब कौन शास्ता होगा? राजनीति चलने लगी होगी। कूटनीति चलने लगी होगी। एक-दूसरे को गिराने-उठाने के उपाय चलने लगे होंगे। भिक्षु मत-बल इकट्ठा करने लगे होंगे--कि मेरे पास ज्यादा लोग इकट्ठे हो जाएं; ज्यादा मत मेरे पास हों, तो कल कब्जा मेरा हो जाएगा।
बुद्ध तो अब जाते ही हैं, तो अब ठीक है। जो जाता है, उसको रोका तो जा नहीं सकता। रो भी लिए होंगे और फिर इन सब उपद्रवों में भी लग गए होंगे! लेकिन धम्माराम ठीक दिशा पकड़ा। यह बुद्ध के जाने की बात इतना बड़ा घातक प्रहार हो गयी उसके हृदय पर, जैसे छाती में छुरा चुभ गया। अब कोई जीवन नहीं हो सकता। अब तो बुद्ध के रहते ही बुद्धत्व पा लेना है। अब यह अवसर नहीं खोना है। अब चौबीस घंटे सोते-जागते एक ही धुन उसके भीतर बजने लगी; और एक ही स्वर गूंजने लगा।
तो एकांत, मौन और ध्यान--समाधि के उपाय हैं। ये तीन चरण हैं।
अपने को अकेला जानो। अकेले आए हो, अकेले जाओगे, अकेले हो। संग-साथ सब झूठ है। संग-साथ सब खेल है। संग-साथ सब मान्यता है; मानी हुई बात है। कौन

किसका है? न पत्नी, न पति; न भाई, न बहन; न मित्र। कौन किसका है? अकेले आए, अकेले जाओगे, अकेले हो। इस भाव को गहन कर लेने का नाम एकांत है।
मैं अकेला हूं; मैं अकेला हूं--ऐसा श्वास-श्वास में रम जाए। मैं अकेला हूं--ऐसा हृदय की धड़कनों में बस जाए। मैं अकेला हूं--यह बात इतनी प्रगाढ़ होकर बैठ जाए कि कभी भूले न, क्षणभर को न भूले। यही संसार से मुक्ति है। यह नहीं कि तुम पत्नी को छोड़कर जाओ। यह जानना कि मैं अकेला हूं। पत्नी है, तो रहे। बेटे हैं, तो रहें। घर है, तो रहे। लेकिन मैं अकेला हूं। भरे घर में तुम अकेले हो जाओ। भरी भीड़ में तुम अकेले हो जाओ। यह सारा संसार चल रहा है और मैं अकेला हूं--यह एकांत की भाव-भंगिमा है।
और जब अकेला हूं, तो बोलना क्या है! किससे बोलना है? क्या बोलना है? तो
एक चुप्पी अपने आप उतरने लगे।
और जब चुप ही होने लगे, तो भीतर भी क्या सोचना? आदमी को बोलना होता है,
तो सोचता है। बोलना तभी होता है, जब सोचता है कि दूसरे हैं। ये सब जुड़ी हैं बातें। इन सबकीशृंखला है।
आदमी सोचता है, क्योंकि बोलना है। बोलता है, क्योंकि दूसरों से जुड़ना है। जब दूसरों से जुड़े ही नहीं हैं हम, और जुड़ सकते ही नहीं हैं हम, तो बोलना क्या? फिर सोचना क्या!
और ये तीन बातें पूरी हो जाएं--एकांत, मौन और ध्यान--तो फिर जो शेष रह जाती है दशा, समाधि। तब सम हो गए। शून्य प्रगट हुआ।
इस शून्य की खोज में लग गया धम्माराम। भिक्षुओं ने शिकायत भगवान से की। भिक्षुओं के अहंकार को चोट लगी होगी। उनकी जयरामजी का भी जवाब नहीं देता! अकड़ गया!
जो जैसे होते हैं, उनको वैसा ही दिखायी पड़ता है। यह बड़ी मुश्किल है।
जो अहंकारी हैं, उनको हर एक में अहंकार दिखायी पड़ता है। जो चोर हैं, उनको हर एक में चोर दिखायी पड़ता है।
अब यह आदमी ठीक दिशा में चल पड़ा, तो उन गलत दिशा में चलते हुए भिक्षुओं
को यह आदमी अड़चन मालूम होने लगा।
शिकायत भगवान से की। भगवान ने धम्माराम को बुलाया। पूछाः तुझे क्या हुआ? क्या सत्य है यह कि तू भिक्षुओं से बोलता नहीं?
भंते! सत्य है। उसने कहा।
ऐसा क्यों कर रहा है?
तो धम्माराम ने अपनी सारी मनोदशा कही। उसे सुनकर भगवान ने उसे धन्यवाद दिया। और कहाः तू ठीक कर रहा है। तू ही ठीक कर रहा है धम्माराम। तू ही कर रहा है वह, जो करने योग्य है, जो करना चाहिए। अन्य भिक्षुओं को भी, जिन्हें मुझ पर प्रेम हो, धम्माराम के समान ही होना चाहिए। क्योंकि बुद्धों से प्रेम करना हो, तो यह साधारण ढंग का प्रेम नहीं है। इस प्रेम की अपनी शैली है। इस प्रेम की अपनी भंगिमा है। इस प्रेम की अपनी मुद्रा है। बुद्धों से प्रेम करना हो, तो एक ढंग है। सांसारिकों से प्रेम करना हो, तो एक और ढंग है। सांसारिक से प्रेम करो, तो संसार की भेंटें उसके पास लाओः हीरे-जवाहरात लाओ; गहने लाओ; साड़ी लाओ; सुंदर वस्त्र लाओ। सांसारिक से प्रेम करो, तो संसार की भेंट लाओ। बुद्धों से प्रेम करो, तो बुद्धत्व की भेंट लाओ। और कोई चीज काम नहीं पड़ेगी। बुद्धों से प्रेम करो, तो एक दिन बुद्ध हो जाओ। एक दिन उनके चरणों में आकर अपने सिर को रखो, ताकि वे तुम्हारे शून्य को देख सकें। ताकि वे कह सकें--कि ठीक; तू धन्यभागी। तू पहुंच गया। एक दिन अपना शून्य उनके चरणों में चढ़ाओ।
तो बुद्ध ने कहाः माला-गंध आदि से पूजा करने वाले मेरी पूजा नहीं करते; पूजा करने का ढोंग कर लेते हैं।
सस्ती पूजा है--माला-गंध-फूल। अपने को नहीं चढ़ाते। कूड़ा-करकट चढ़ाकर सोचते हैं, काम पूरा हो गया!
पूजा तो वही कर रहा है, जो धर्म के अनुसार चल रहा है। जो मैंने कहा है, उसके अनुसार चल रहा है। चाहे कभी मेरे चरणों में न आए। लेकिन जो मेरे अनुसार चल रहा है; जिसने मेरी बात समझी और पकड़ी, वही मेरी पूजा करता है।

आंसुओं के बहाने से भी कोई सार नहीं है। मत रोओ। समय मत गंवाओ। और ऐसा करोगे, तो मुझे समझे ही नहीं। यही तो समझा रहा हूं जीवनभर से कि यहां सब क्षणभंगुर है। यहां कुछ भी शाश्वत नहीं है। इसलिए किसी से मोह न बांधो।
मुझसे भी नहीं। कम से कम मुझसे तो बिल्कुल नहीं।
रोओ नहीं; सोओ नहीं--जागो।
तब उन्होंने इस गाथा को कहा।
धम्माराम का नाम भी प्यारा है। और यह गाथा शुरू होती हैः

धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं।

धर्म में रमण करने वाला--धम्माराम। धर्म में रत--धम्माराम। धर्म का चिंतन करने वाला--धम्माराम। धर्म का अनुसरण करने वाला--धम्माराम। और ऐसा जो धम्माराम है, वही भिक्षु सद्धर्म को उपलब्ध होगा--चूकेगा नहीं; च्युत नहीं होगा।
मैं जाता हूं, इसकी फिक्र न करो। मैं तो जाऊंगा। मैं आया, जाऊंगा। धर्म सदा रहता है। तुम धम्माराम हो जाओ। तुम मुझसे अपने को मत जोड़ो, धर्म से अपने को जोड़ो। मुझसे जोड़ोगे, तो रोओगे, पछताओगे; क्योंकि मैं तो जाऊंगा। धर्म से जोड़ोगे, तो कभी नहीं जाता। धर्म मात्र शाश्वत है।
धर्म का अर्थ, बौद्ध धर्म, हिंदू धर्म नहीं है। धर्म का अर्थ हैः वह शाश्वत नियम, जो इस प्रकृति को चला रहा है। धर्म का वही अर्थ है बुद्ध के वचनों में, जो गीता में भगवान का अर्थ है, परमात्मा का अर्थ है। धर्म का वही अर्थ है बुद्ध के वचनों में, जो लाओत्सू के वचनों में ताओ का अर्थ है। और बुद्ध की बात आधुनिक विज्ञान को भी बहुत जमती है; क्योंकि बुद्ध व्यक्ति की बात नहीं करते हैं, नियम की बात करते हैं। धर्म यानी नियम। विज्ञान को भी जंचती है बात। यह तो विज्ञान को भी मानना पड़ेगा कि कोई नियम अनुस्यूत है, नहीं तो प्रकृति कैसे डोलती! चांद-तारे कैसे चलते? चलाने वाला कोई नहीं है; लेकिन चलने की प्रक्रिया के पीछे कोई नियम है। जैसे गुरुत्वाकर्षण का नियम चीजों को अपनी तरफ खींच लेता है, ऐसा कोई नियम है।
एक महानियम इस सारे जगत को व्याप्त किए है। बुद्ध ने उसे धर्म कहा है।

धम्मारामो धम्मरतो धम्मं अनुविचिन्तयं।

धर्म में ही डूबो। धर्म की ही सोचो। धर्म को ही खाओ। धर्म को ही पीयो।
धर्म की ही श्वास लो। धर्ममय हो जाओ। धम्माराम हो जाओ।

धम्मं अनुस्सरं भिक्खु सद्धम्मा न परिहायति।

फिर मैं रहूं न रहूं, तुम कभी गिरोगे नहीं। मैं उस धर्म की ही एक भंगिमा हूं। मैं उस धर्म की ही एक अभिव्यक्ति हूं। अभिव्यक्ति तो खो जाएगी, लेकिन जिसकी अभिव्यक्ति है, वह सदा है।
बुद्ध यह कह रहे हैं कि बुद्धपुरुष धर्म की ही एक लहर हैं। धर्म है सागर जैसा, बुद्धपुरुष हैं लहर जैसे। लहरें उठती हैं, खो जाती हैं; सागर सदा है।
यह धम्माराम ने ठीक किया भिक्षुओ। ऐसा ही तुम भी करो। ऐसा ही तुम्हारा जीवन भी हो जाए--एकांत, मौन, ध्यान--ताकि किसी दिन समाधि का फूल खिले।
एस धम्मो सनंतनो।
आज इतना ही।

एस धम्मो सनंतनो, भाग 11
एक सौ बारह प्रवचन

मंजिल है स्वयं में

पहला प्रश्नः भगवान बुद्ध कहते हैं कि संतों का धर्म कभी जराजीर्ण नहीं होता है; फिर कृष्ण, महावीर, स्वयं बुद्ध और जीसस के धर्म इतने जराजीर्ण कैसे हो चले? इस प्रसंग पर कुछ प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

संतों का धर्म निश्चित ही कभी जराजीर्ण नहीं होता है। और जो जराजीर्ण
हो जाता है, वह संतों का धर्म नहीं है।
ईसाइयत का कोई संबंध ईसा से नहीं है। और बौद्धों का कोई संबंध बुद्ध
से नहीं है। जैनों को महावीर से क्या लेना-देना है?
जो महावीर ने कहा था, वह तो अब भी उतना ही उज्ज्वल है। लेकिन जो सुनने वालों ने सुना था, वह जराजीर्ण हो गया।
जो कहा जाता है, वही थोड़े ही सुना जाता है। जब बुद्ध बोलते हैं, तो बुद्ध तो अपनी ही भावदशा से बोलते हैं। तुम जब सुनते हो, अपनी भावदशा से सुनते हो। इन दोनों के बीच में बड़ा अंतर है। बुद्ध पर्वत के शिखर पर खड़े हैं; तुम अपनी अंधेरी खाइयों में पड़े हो। बुद्ध प्रकाश के उज्ज्वल शिखरों से बोल रहे हैं; तुम अपने गहन अंधेरे में सुन रहे हो।
प्रकाश से जो जन्मा है, अंधेरे मन तक पहुंचते-पहुंचते कुछ का कुछ हो जाता है। फिर जो तुम सुनते हो, उसी से शास्त्र निर्मित होते हैं। फिर तुम जो सुनते हो, उसी से संप्रदाय बनते हैं। तुम्हारे सुने हुए को तुम बुद्धों का कहा हुआ मत समझना। इसी कारण प्रश्न उठ गया।
जैन धर्म का अर्थ, महावीर ने जो कहा, वह नहीं; क्योंकि महावीर को तो समझने के लिए महावीर होना पड़े। अपनी चेतना के तल से ऊपर की बात तब तक नहीं समझी जा सकती, जब तक चेतना का तल न उठ जाए।
एक छोटा बच्चा भी सुन लेता है। संभव है कि कोई आदमी प्रेम की महिमा गा रहा हो। एक छोटा सा बच्चा भी सुन लेता है। लेकिन छोटा बच्चा प्रेम को कैसे समझे? अभी तो उसकी वासना के स्रोत जगे नहीं, सोए हैं। तुम एक छोटे बच्चे को ले जा सकते हो खजुराहो के मंदिर में। वह देखेगा नग्न स्त्री-पुरुषों की मूर्तियां। देखेगा जरूर, लेकिन उसके भीतर कोई भाव इससे पैदा नहीं होगा। शायद पूछेगा कि यह क्या है! लेकिन तुम काम को या संभोग को उसे समझा न सकोगे। वह तो जवान होगा, तभी समझ पाएगा। जब प्रौढ़ होगा, तभी समझ पाएगा।
जो काम के संबंध में सच है, वही धर्म के संबंध में भी सच है। धर्म को समझने के लिए भी एक प्रौढ़ता चाहिए--ध्यान की प्रौढ़ता। जब ध्यान का रस पक जाता है, तो ही समझ पाते हो।
महावीर को जिन्होंने सुना, उन्होंने अपने ढंग से समझा। उस ढंग के आधार पर जैन-धर्म निर्मित हुआ। यह जैन-धर्म जराजीर्ण उसी दिन होना शुरू हो गया, जिस दिन बनना शुरू हुआ। इसकी मौत तो उसी दिन शुरू हो गयी, जिस दिन यह जन्मा। हालांकि जैन सोचता हैः इसका संबंध महावीर से है। बौद्ध सोचता हैः इसका संबंध बुद्ध से है। ईसाई सोचता हैः इसका संबंध जीसस से है। कोई संबंध नहीं है। जरा भी संबंध नहीं है।
अफवाहें हैं, लोगों ने जो सुनी हैं। जो मूल है, खो गया। खो ही जाएगा।
उस मूल को सुनने के लिए एक और तरह की प्रतिभा, एक और तरह की प्रज्ञा चाहिए।
ध्यान से उज्ज्वल बुद्धि चाहिए। ध्यान में नहाया हुआ चैतन्य चाहिए।
बुद्ध को समझने के लिए बुद्ध होना पड़े। कृष्ण को समझने के लिए कृष्ण होना पड़े।
इसलिए बुद्ध ठीक ही कहते हैं कि संतों का धर्म कभी जराजीर्ण नहीं होता। और दो संतों का धर्म अलग थोड़े ही होता है, जो जराजीर्ण हो जाए। जो कृष्ण ने कहा है--भाषा अलग है; वही बुद्ध ने कहा है--भाषा अलग है। वही मोहम्मद ने कहा है--भाषा अलग है। स्वभावतः, मोहम्मद अरबी बोलते हैं और बुद्ध पाली बोलते हैं और कृष्ण संस्कृत बोलते हैं। भाषाएं अलग हैं। अलग-

201

अलग समयों में, अलग-अलग प्रतीकों के प्रवाह में, अलग-अलग संकेतों का उपयोग किया है। लेकिन जो कहा है... ।
ऐसा समझो कि बहुत लोगों ने अंगुलियां उठायीं चांद की तरफ। अंगुलियां अलग-अलग, चांद एक है। अंगुलियों पर जोर दोगे, तो भ्रांति खड़ी होगी। उसी भ्रांति से संप्रदाय पैदा होते हैं--हिंदू, मुसलमान, जैन, बौद्ध। अगर चांद को देखोगे, अंगुलियों को भूल जाओगे। अंगुलियां भूल ही जानी चाहिए। अंगुलियों का चांद से क्या लेना-देना! इतना काफी है कि उन्होंने इशारा कर दिया चांद की तरफ। अब अंगुलियों को भूल जाओ, चांद को देखो। चांद एक है। अंगुलियां बनेंगी, मिटेंगी--चांद सदा है। एस धम्मो सनंतनो।
इसलिए बुद्ध कहते हैंः संतों का धर्म कभी जराजीर्ण नहीं होता है। और
जब भी कोई संत पैदा होता है, तब पुनरुज्जीवित हो जाता है। वही धर्म फिर साकार हो जाता है, फिर अवतरित हो जाता है।
अवतार का और क्या अर्थ है? अवतार का अर्थ यह नहीं होता कि भगवान उतरता है। अवतार का इतना ही अर्थ होता है कि जो शाश्वत धर्म है, वह फिर से रूप लेता है।
बुद्ध में वही धर्म फिर से बोलता है जो कृष्ण में नाचा था। वही धर्म फिर रमण में मौन होकर बैठ जाता। वही धर्म अलग-अलग रूप लेता; अलग-अलग फूलों में खिलता है। लेकिन धर्म एक है। और जिनके पास देखने की आंखें हैं, वे उस एक को देख लेंगे। उन्हें अनेक के कारण भ्रांति पैदा न होगी।
लेकिन जिन धर्मों को हम जानते हैं, वे निश्चित जराजीर्ण होते हैं; सड़ते हैं। उनकी ही दुर्गंध से तो मनुष्य की आत्मा दुर्गंधपूर्ण हो गयी है। सारी पृथ्वी दुर्गंध से भरी है। क्योंकि तीन सौ धर्मों की लाशें सड़ रही हैं। और मोह के कारण उन लाशों को हम जाकर मरघट पर जलाते भी नहीं हैं। बाप-दादों का धर्म है--कैसे जला आएं!
यह हालत ऐसी ही है जैसे कि तुम्हारे घर में तुम्हारी मां मर जाए और तुम मोह के कारण उसकी लाश को घर में सम्हालकर रखो। आदर ठीक है, लेकिन लाश को तो मरघट पर जलाना ही पड़ेगा। उसको घर में रखोगे, तो मुश्किल में पड़ोगे। सारा घर बदबू से भर जाएगा। और अगर यह मोह जारी रहे, तो तुम्हारे घर में इतनी लाशें इकट्ठी हो जाएंगी कि जिंदा आदमियों को रहने का स्थान नहीं रह जाएगा।
फिर पिता मरेंगे, फिर भाई मरेगा, फिर पत्नी मरेगी। और तुम्हारे ही थोड़े, तुम्हारे पिता के पिता, उनकी लाशें, और लाशों के ढेर लग जाएंगे, अंबार लग जाएंगे। तो तुम्हारा घर में रहना असंभव हो जाएगा। मुर्दे तुम्हें मार डालेंगे!
यही हालत मनुष्य के मन की हो गयी है। सड़ जाता है, गल जाता है, फिर भी हम उसे फेंक नहीं देते। हमारा अतीत से बड़ा पागल मोह है। और अतीत के साथ जिनका पागल मोह है, उनका कोई भविष्य नहीं है। उनका भविष्य अंधकारपूर्ण है। जो अतीत से मुक्त होता है, उसी के भविष्य की शुरुआत होती है। जो गया, गया; जाने दो। ताकि जो आ सकता है, आ सके। स्थान बनाओ। सिंहासन खाली करो।
बुद्ध तो आते रहे, आते रहेंगे; तुम पुराने बुद्धों को अगर जकड़कर बैठे रहे, तो नए बुद्धों का तुम्हारे द्वार में प्रवेश न हो सकेगा। वे दस्तक भी देंगे, तो भी दस्तक तुम्हें सुनायी न पड़ेगी।
इसलिए तुम शाश्वत धर्म से वंचित रह जाते हो। तुम्हारे हाथ में जो लगता है, वह कूड़ा-करकट है। उसी कूड़ा-करकट की तुम पूजा करते चले जाते हो। तुम्हारे हाथ में जो लगता है; वह रूढ़ियों का समूह है, अंधविश्वास। और सदियों-सदियों में उनका ढंग इतना बदल गया है कि अगर बुद्ध आज लौटें, तो बौद्धों को देखकर पहचान न पाएंगे।
देखो कैसी घटना घटती है! उदाहरण के लिएः बुद्ध ने कहा था अपने भिक्षुओं को कि भिक्षापात्र में जो मिल जाए, जो लोग दान कर दें, उसी को स्वीकार कर लेना। मांग मत करना। कोई रूखी रोटी डाल दे, तो उसे स्वीकार कर लेना। कोई हलुवा दे दे, तो उसे स्वीकार कर लेना। मांग मत करना। भिक्षापात्र लेकर खड़े हो जाना; कोई इनकार कर दे, तो बिना किसी क्रोध के, रोष के चुपचाप आगे बढ़ जाना। जो मिल जाए। और भिक्षापात्र जब भर जाए, तो घर

लौट आना। कहीं अच्छी चीज मिलती हो, तो इशारा भी मत करना आंख से कि थोड़ी और दे दो। और कहीं रूखा-सूखा मिलता हो, तो मुंह मत सिकोड़ लेना। जो मिले, वही सौभाग्य। जो मिले, उसके लिए धन्यवाद। और जो मिले, उसी से काम चला लेना।
एक दिन ऐसा हुआ कि एक भिक्षु भिक्षा मांगने गया। एक चील मांस का टुकड़ा लेकर उड़ती थी। और उस चील का मांस का टुकड़ा छूट गया, और संयोगवशात भिक्षु के पात्र में गिर गया। अब भिक्षु को सवाल उठा कि बुद्ध ने कहा है, जो पात्र में मिल जाए, उसका तो स्वीकार करना ही पड़ेगा। अब आज यह मांस गिर गया पात्र में, अब क्या करना! स्वीकार करना कि नहीं करना?
उसने आकर बुद्ध के सामने सवाल रखा। बुद्ध क्षणभर सोचे। अगर बुद्ध कहते हैं कि नहीं; यह मांस का टुकड़ा स्वीकार मत करो; इसे फेंक दो, क्योंकि मैं नहीं चाहता कि तुम मांसाहारी हो जाओ... । और यह तो संयोग की बात थी। भूल से गिरा है चील के। कोई डाला नहीं है तुम्हारे पात्र में। अगर मैं यह कहूंगा, तो आज नहीं कल लोग विवेचन करने लगेंगे कि क्या छोड़ना, क्या नहीं छोड़ना; फिर कठिनाई खड़ी होगी। और चीलें कोई रोज थोड़े ही मांस डालेंगी। यह तो संयोग है, कभी घट गया। अब शायद कभी न घटे।
इस एक संयोग के लिए अगर मैं नियम बनाऊं कि तुम्हारे ऊपर छोड़ देता हूं
कि कभी ऐसी झंझट हो, तो त्याग देना; ऐसी कोई स्थिति बन जाए, और तुम्हें संदेह हो, तो त्याग देना--तो फिर उसी नियम में से तरकीबें निकल आएंगी। फिर रूखा-सूखा लोग छोड़ देंगे, फिर अच्छा स्वीकार कर लेंगे। कुछ उपाय खोज लेंगे। आदमी बड़ा कानूनी है!
तो बुद्ध ने सोचाः उचित यही है कि कह दिया जाए कि जो तुम्हारे पात्र में गिर गया, स्वीकार कर लो। अब चील दुबारा तो कोई गिराएगी नहीं; बार-बार यह सवाल उठेगा नहीं; इसलिए नियम में एक छिद्र छोड़ना ठीक नहीं है। तो बुद्ध ने कहाः स्वीकार कर लो। और इस छोटी सी घटना से सारे बौद्ध मांसाहारी हो गए! आदमी बड़ा बेईमान है! फिर तो लोगों ने तरकीबें निकाल लीं--कि बुद्ध ने मांसाहार का विरोध नहीं किया। मांसाहार के अगर विरोधी होते तो उन्होंने उस भिक्षु को कहा होता कि यह मांस छोड़ दो। बुद्ध ने तो मांसाहार स्वीकार कर लिया!
तो सारी दुनिया के बौद्ध मांसाहारी हो गए हैं। दुनिया के सबसे बड़े अहिंसक के शिष्य मांसाहारी हो जाएंगे, यह अकल्पनीय मालूम पड़ता है। लेकिन तरकीब आदमी निकाल लेता है।
बुद्ध ने कहा है कि कोई किसी पशु को भोजन के लिए न मारे। सोचा भी नहीं होगा कि आदमी कितना होशियार है। बुद्ध का वचन है कि कोई किसी पशु को भोजन के लिए न मारे। उनको पता नहीं था कि इसका मतलब यह भी हो सकता है कि अगर पशु अपने आप मर जाए, तो फिर उसका भोजन किया जा सकता है! मारा नहीं। तो जो पशु अपने आप मर जाएं, उनका बौद्ध भिक्षु भोजन करने लगे। क्योंकि बुद्ध ने कहा हैः मारे न कोई भोजन के लिए। मगर अपने से जो मर गया हो... !
फिर अब चीन में, और जापान में, और थाईलैंड में--जहां बौद्धों की बड़ी संख्या है--होटलों में तुम इस तरह की तख्तियां लगी देखोगे कि यहां मारे हुए जानवर का मांस नहीं बिकता; यहां अपने से मरे जानवर का मांस बिकता है। अब अपने से कितने जानवर मर रहे हैं? अब भिक्षु को या बौद्ध को कोई चिंता नहीं है। वह कहता हैः हम क्या करें! दुकान पर साफ लिखा है कि यहां तो अपने आप मरे जानवरों का मांस मिलता है।
इतने जानवर अपने आप रोज नहीं मरते कि हर होटल में मांस मिल सके, और हर गांव में मांस बिक सके। लेकिन अब बौद्ध मुल्कों में सब मांस इसी तरह बिकता है। तो बूचड़खाने क्यों हैं वहां? लाखों जानवर रोज काटे जाते हैं। लेकिन बौद्ध कहता हैः यह उसका पाप है। अगर दुकानदार ने धोखा दिया है, तो हम क्या करें! जैसे अपने यहां लिखा रहता है कि यहां शुद्ध घी बिकता है। अब इसमें हम क्या करें! अगर दुकानदार ने कुछ मिला दिया, तो अब हमारी तो जिम्मेवारी नहीं है। हमने तो भरोसा कर लिया!
ऐसा होशियार है आदमी। अपने को ही नष्ट करने में बड़ा कुशल है। और तरकीबें सदा निकाल लेता है। एक नियम बनाओ, उसमें से दस तरकीबें निकाल लेता

है। और जितने ज्यादा नियम बनाओ, उतनी ज्यादा बात उलझती जाती है, सुलझती नहीं।
इस तरह से जो धर्म निर्मित होते हैं, उनका धर्म के मूलस्रोतों से कोई संबंध नहीं। बिल्कुल असंबंधित हैं।
बुद्ध ने कहा थाः मेरी कोई मूर्ति न बनाए। और जितनी मूर्तियां बुद्ध
की हैं दुनिया में, किसी और की नहीं। सब से ज्यादा मूर्तियां बुद्ध की बनीं। और अगर बौद्धों से पूछो--क्यों? यह कैसे हुआ? कि बुद्ध कहते रहे, मेरी कोई मूर्ति न बनाओ! तो बौद्ध कहते हैंः जिसने हमें समझाया, इतना महान सिद्धांत समझाया कि इसकी हम कोई मूर्ति न बनाएं, उसकी याद में हमने मूर्तियां बनायी हैं। इतनी महान बात को जो कहने आया था, उसकी याद तो रखनी पड़ेगी!
उर्दू में, अरबी में मूर्ति के लिए जो शब्द है, वह बुत है। बुत बुद्ध
से बना। बुद्ध की इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध शब्द मूर्ति का पर्यायवाची हो गया कुछ भाषाओं में। उन्होंने पहली दफे मूर्ति ही बुद्ध की देखी। तो बुद्ध और मूर्ति एक ही अर्थ के हो गए। इसलिए बुत।
ऐसा रोज हुआ है, ऐसा सदा हुआ है, ऐसा आज भी हो रहा है। और आदमी को देखकर लगता नहीं कि कभी इससे भिन्न कुछ होगा। आदमी के अंधेरे में चीजें आकर भटक जाती हैं। आदमी से बोलना ऐसे है, जैसे पागलों से तुम बोलो। तुम कहोगे कुछ; वे अर्थ लेंगे कुछ। परिणाम कुछ और होगा। बुद्ध ने इसके लिए एक उदाहरण दिया है।
एक दिन बुद्ध से एक शिष्य ने पूछा कि आप कहते हैं कि मैं कुछ बोलता हूं, तुम कुछ समझते हो--इसके लिए कोई उदाहरण दें। बुद्ध ने कहाः अच्छा, आज ही उदाहरण दूंगा।
उस रात जब बुद्ध बोले... । तो वे नियम से, हर प्रवचन के बाद, रात में कहते थेः अब जाओ; रात्रि का अपना अंतिम कार्य पूरा करो, और फिर विश्राम में जाओ।
भिक्षु तो जानते थे कि अंतिम कार्य क्या है। अंतिम कार्य था अंतिम ध्यान। सोने के पहले अंतिम ध्यान करके फिर निद्रा में चले जाओ, ताकि ध्यान की गूंज नींद में भी सरकती रहे। ताकि धीरे-धीरे छह-आठ घंटे की नींद ध्यान में ही रूपांतरित हो जाए।
और यह बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जब तुम सोते हो, उस समय तुम्हारा
जो आखिरी विचार होता है, वह तुम्हारी निद्रा में सरकता रहता है। उसका परिणाम होता है। इसलिए सारी दुनिया के धर्मों ने सोने के पहले प्रभु- स्मरण, प्रार्थना या ध्यान--इस तरह की विधियां दी हैं। वे बड़ी मनोवैज्ञानिक हैं।
आखिरी क्षण में, जब तुम नींद में पड़े ही जा रहे हो--पड़े ही जा रहे हो-- नींद उतरने ही लगी--पर्दा-पर्दा गिरने लगी तुम्हारे ऊपर--अब तुम कुछ होश में, कुछ बेहोश--तब भी तुम प्रार्थना दोहरा रहे हो या ध्यान कर रहे हो, तो धीरे-धीरे यह ध्यान तुम्हारी निद्रा में प्रविष्ट हो जाएगा।
और निद्रा तुम्हारे भीतर गहरी से गहरी दशा है। इसलिए तो पतंजलि ने योग-सूत्रों में कहा कि सुषुप्ति और समाधि समान हैं। सिर्फ एक भेद हैः सुषुप्ति है बेहोश, और समाधि है होश। अन्यथा दोनों समान हैं। एक सी गहराई दोनों की है। सुषुप्ति में ही जब ध्यान का दीया जल जाता है, तो वह समाधि हो जाती है। लेकिन वही विश्राम है, वही गहराई है।
तो नींद में उतरने के पहले--बुद्ध ने कहा था--ध्यान करना। तो अब रोज-रोज क्या कहना कि ध्यान करो! यह प्रतीकात्मक हो गया था कि भिक्षुओ! अब जाओ। अंतिम कार्य करके और सो जाओ।
उस रात एक चोर भी आया था सभा में; और एक वेश्या भी आयी थी। जब बुद्ध ने
यह कहा कि भिक्षुओ! अब जाओ। अंतिम कार्य करके सो जाओ। चोर ने समझा कि ठीक! बुद्ध को भी खूब पता चल गया कि मैं भी चोर हूं यहां मौजूद। मुझसे कह रहे हैं कि जाओ; अब अपनी चोरी वगैरह करो। अब रात बहुत हो गयी! और वेश्या भी चौंकी। उसने कहाः हद्द हो गयी! कि बुद्ध को मेरा पता चल गया इतनी भीड़ में! और उन्होंने मुझसे भी कह दिया कि अब जाओ। अपना रात का अंतिम कार्य करो!

दूसरे दिन सुबह जब बुद्ध ने समझाया, तो उन्होंने कहाः रात एक चोर भी था। और वह यहां से उठकर सीधा चोरी करने गया। और एक वेश्या थी; यहां से जाकर उसने अपनी दुकान खोली।
भिक्षु ध्यान करने चले गए। चोर चोरी करने चले गए। वेश्याओं ने दुकानें खोल लीं। और बुद्ध ने एक ही वचन कहा था कि अब जाओ; रात्रि का अंतिम कृत्य पूरा करके सो जाओ। इतना ही भेद हो जाता है!
जितने सुनने वाले, उतने अर्थ हो जाते हैं। उन अर्थों पर धर्म बनते हैं। धर्म यानी संप्रदाय। ये धर्म तो जराजीर्ण होते हैं। ये तो सड़ जाते हैं। इनसे बड़ी दुर्गंध उठती है। यह पृथ्वी इन्हीं की दुर्गंध से भरी है। हिंदू मुसलमान से लड़ रहे हैं; ईसाई हिंदुओं से लड़ रहे हैं; जैन बौद्धों से लड़ रहे हैं। सब तरफ संघर्ष है। धर्म में कहां संघर्ष हो सकता है?
धर्म दो नहीं हैं, धर्म एक है। जिसको बुद्ध ने कहा है--एस धम्मो सनंतनो--वे किसी धर्म को सनातन नहीं कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, धर्म सनातन है।
और सारे धर्म जो धर्म के नाम पर खड़े हो जाते हैं, वे सिर्फ अभिव्यक्तियां हैं; और अभिव्यक्तियां भी विकृत हो गयी हैं, रुग्ण हो गयी हैं। समय की धार ने उन्हें खराब कर दिया है; खूब धूल जम गयी है।
इसीलिए तो जिसे सच में ही धर्म की तलाश करनी हो, उसे बुद्धपुरुष को खोजना चाहिए, शास्त्र नहीं। उसे सदगुरु खोजना चाहिए, शास्त्र नहीं। कहीं कोई जीवंत मिल जाए, जहां अवतरण हो रहा हो धर्म का अभी; जहां गंगा अभी उतर रही हो; कहीं कोई भगीरथ मिल जाए, जहां गंगा अभी उतर रही हो--तो ही तुम्हें आशा रखनी चाहिए कि तुम्हें थोड़ा-बहुत जल मिल जाएगा, जो तुम्हारी प्यास को सदा के लिए तृप्त कर दे।
किताबों में खोजते हो, व्यर्थ खोजते हो। अतीत में खोजते हो, व्यर्थ खोजते हो। मरघटों में खोज रहे हो; कब्रों में खोज रहे हो। वहां हड्डियां मिलेंगी सड़ी-गली। उन हड्डियों से कोई संबंध नहीं है। यही तो हो रहा है। लंका में एक मंदिर है, जहां बुद्ध का दांत पूजा जा रहा है। और वैज्ञानिकों ने खोज की है और वे कहते हैंः यह बुद्ध का दांत ही नहीं है। बुद्ध की तो बात छोड़ो, यह आदमी का ही दांत नहीं है। वह किसी जानवर का दांत है। मगर बौद्ध मानने को तैयार नहीं हैं। और उनको भी दिखायी पड़ता है कि इतना बड़ा दांत आदमी का होता ही नहीं। इस ढंग का दांत आदमी का नहीं होता। वैज्ञानिकों ने सब परीक्षण करके तय कर दिया है कि किस तरह के जानवर का दांत है। मगर पूजा जारी है!
वे कहते हैंः सदा से चली आयी है; हम छोड़ कैसे सकते हैं! सदियां मूढ़ थीं? पच्चीस सौ साल से हम इसको पूजते हैं! किसी को पता नहीं चला; आपको पहली दफा पता चला! पूजा जारी रहेगी।
अस्थियां पूजी जाती हैं। राख पूजी जाती है। लाशें पूजी जाती हैं। और जीवंत का तिरस्कार होता है! आदमी बहुत अदभुत है।
जब बुद्ध जिंदा होते हैं, तब पत्थर मारे जाते हैं। और जब बुद्ध मर जाते हैं, तब पूजा होती है! जब क्राइस्ट जिंदा थे, तो सूली लगायी। और जब अब मर गए हैं, तो कितने चर्च! लाखों चर्च! कितनी चर्चा! जितनी किताबें जीसस पर लिखी जाती हैं, किसी पर नहीं लिखी जातीं। और जितने पंडित-पुरोहित जीसस के पीछे हैं, उतने किसी के पीछे नहीं। और जितने मंदिर जीसस के लिए खड़े हैं, उतने मंदिर किसी के लिए नहीं हैं। आधी पृथ्वी ईसाई है!
और इस आदमी को सूली लगा दी थी। और इस आदमी को जब सूली लगी थी, तो लोग पत्थर फेंक रहे थे; सड़े-गले छिलके फेंक रहे थे; लोग इसका अपमान कर रहे थे; हंस रहे थे। और जब यह आदमी सूली पर लटका हुआ प्यास से तड़फ रहा था और इसने पानी मांगा, तो किसी ने गंदे डबरे में एक चीथड़े को भिगोकर एक बांस पर लगाकर जीसस की तरफ कर दिया--कि इसे चूस लो।
जीसस जिंदा थे, तो यह व्यवहार। जीसस को खुद अपनी सूली ढोनी पड़ी थी गोलगोथा के पहाड़ पर। गिर पड़े रास्ते में, क्योंकि सूली वजनी थी, बड़ी थी।

घुटने टूट गए; लहूलुहान हो गए। और पीछे से कोड़े भी पड़ रहे हैं--कि उठो और अपनी सूली ढोओ।
यह व्यवहार जीवित जीसस के साथ और अब पूजा चल रही है! और अब वही क्रास सभी मंदिरों में प्रतिष्ठित हो गया है। भजन-कीर्तन हो रहे हैं!
और मैं तुमसे कहता हूंः जीसस अगर वापस आ जाएं, तो फिर सूली लगे। आदमी वहीं का वहीं है। आदमी कहीं गया नहीं है।
आदमी मुर्दों को पूजता है। क्यों? क्योंकि मुर्दों के द्वारा कोई क्रांति नहीं होती, तुम सुरक्षित रहते हो। जिंदा जीसस तुम्हारे जीवन को बदल डालेंगे। जिंदा जीसस से दोस्ती करोगे, प्रेम लगाओगे, तो बदलाहट होगी। मरे हुए जीसस से बदलाहट नहीं होती। मरे हुए जीसस को तो तुम बदल दोगे।
तुम्हें वे क्या बदलेंगे।
इसलिए आदमी अतीत के साथ अपने मोह को बांधकर रखता है। इसी मोह के कारण इतनी सड़न है, इतनी गंदगी है; धर्म के नाम पर इतना अनाचार है। धर्म के नाम पर इतना रक्तपात है, युद्ध, हिंसा।
धर्म के नाम पर जितने लोग मारे गए हैं, और किसी नाम पर नहीं मारे गए हैं। और धर्म प्रेम की बात करता है! और प्रार्थना की बात करता है। और परिणाम में हत्या होती है।
लेकिन फिर भी बुद्ध ठीक कहते हैं कि संतों का धर्म जराजीर्ण नहीं होता है। जो जराजीर्ण हो जाता है, वह संतों का धर्म नहीं है।

दूसरा प्रश्नः
चरण मेरे रुक न जाएं।
आज सूने पंथ पर
बिल्कुल अकेली चल रही मैं
रात के नीरव तिमिर में
नव-शिखा-सी जल रही मैं
डर रही हूं मैं कहीं
मुझ पर शलभ मंडरा न आएं।
चरण मेरे रुक न जाएं।
मौन का संगीत मुझको
लग रहा है रागिनी-सा
स्नेह मेरा बन गया
इस शून्य की निराजनी-सा
प्राण का लघुदीप श्वासों के अनिल से बुझ न जाए।
चरण मेरे रुक न जाएं।
दूर मंजिल, कौन जाने
कब मिले मुझको किनारा
बांध उर का तोड़ कर
जब बह चली है अश्रुधारा
जल भरे ये मेघ काले
आज मुझ पर झुक न आएं।
चरण मेरे रुक न जाएं।

सब तुम पर निर्भर है। रोकना चाहो, तो रुक जाएंगे। चलाना चाहो, तो इस जगत की कोई शक्ति तुम्हारे चरणों को रोक नहीं सकती। सब तुम पर निर्भर है।
तुम्हीं रुकते हो, तुम्हीं चलते हो। न कोई चलाता है, न कोई रोकता है।
अपने उत्तरदायित्व को समझो। यही तो बुद्ध का अंतिम वचन थाः अप्प दीपो भव, अपने दीए बनो। सहारों की आशाएं छोड़ो। सहारों के ही सहारे तुम अब तक भटके हो। अपने पैरों पर खड़े हो जाओ।
अंधेरा है, तो अंधेरा सही। राह खोजो। राह कठिन है; भटकाव वाली है, तो भटकने की हिम्मत लो, साहस करो। क्योंकि जो भूल-चूक करता है, वही सीखता है।

जो भटकता है, वही कभी घर आता है। जो भटकने से डरता है, वह कभी घर नहीं आ पाता।
भय की कोई जरूरत नहीं है। यह सारा अस्तित्व इसीलिए है कि तुम खोजो; भटको; गिरो-उठो और एक दिन पहुंच जाओ। पहुंचने के लिए यह सब जरूरी है।
ऐसे बैठे घबड़ाते मत रहना कि कहीं तूफान न आ जाए; कहीं मेरा दीया न बुझ जाए; कहीं अंधेरे में मैं भटक न जाऊं! कहीं यह न हो जाए! कहीं बादल न घिर आएं। ऐसे ही डरे-डरे बैठे रहे, तो ही चूकोगे। जो चलता नहीं, वही चूकता है। इस सूत्र को ख्याल में रख लो।
जो चलता है, वह तो एक न एक दिन पहुंच ही जाता है। कितना ही भटके, तो भी पहुंच जाता है। क्योंकि हर भटकाव कुछ न कुछ बोध लाता है। हर भूल से कुछ न कुछ सीख होती है। एक भूल एक बार की, दुबारा करने की फिर जरूरत नहीं है, अगर थोड़ी समझदारी बरतो। नयी भूलें होंगी।
धीरे-धीरे भूलें कम होती जाएंगी। एक दिन ऐसा आएगा कि भूल करने को न बचेगी, उसी दिन पहुंच जाओगे।
"चरण मेरे रुक न जाएं।
आज सूने पंथ पर
बिल्कुल अकेली चल रही हूं।"
अकेला कोई भी नहीं चल रहा है। तुम्हारे साथ परमात्मा चल ही रहा है। तुम्हारे भीतर ही बैठा है; साथ चल रहा है--यह कहना भी ठीक नहीं है। अकेले तो तुम चल भी न सकोगे। अकेले तो तुम्हारा होना भी नहीं है। अकेले तो श्वास भी न ले सकोगे; हृदय भी न धड़केगा। उसके सहारे धड़क रहा है; वही धड़का रहा है। वही धड़कन है। वही श्वास ले रहा है, वही श्वास है। नाम उसे कुछ भी दो। परमात्मा दो, आत्मा दो, या जो चाहो कहना, कहो। लेकिन तुम्हारे भीतर मौजूद है।
इस जगत का जो मूलस्रोत है, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। अकेले हो--ऐसी बात ही छोड़ो। यह अकेले का ख्याल तुम्हें डरा देगा।
ऐसा हुआः मोहम्मद भाग रहे हैं; उनके पीछे दुश्मन लगे हैं। उनका एक संगी-साथी भर उनके साथ है। वे जाकर एक गुफा में बैठ जाते हैं। घोड़ों की आवाज आ रही है। दुश्मन करीब आता जाता है। साथी बहुत घबड़ाया हुआ है। अंततः उसने कहाः हजरत! आप बड़े शांत दिखायी पड़ रहे हैं। मुझे बहुत डर लग रहा है। मेरे हाथ-पैर कंप रहे हैं। घोड़ों की टापें करीब आती जा रही हैं। दुश्मन करीब आ रहा है। और ज्यादा देर नहीं है। मौत हमारी करीब है। आप निश्चिंत बैठे हैं! हम दो हैं; वे हजार हैं। आप निश्चिंत क्यों बैठे हैं?
मोहम्मद हंसे। और मोहम्मद ने कहाः हम तीन हैं, दो नहीं। उस आदमी ने चारों तरफ गुफा में देखा कि कोई और भी छिपा है क्या! मोहम्मद ने कहाः यहां- वहां मत देखो। आंख बंद करो, भीतर देखो; हम तीन हैं। और वह जो एक है, वह सर्वशक्तिमान है। फिकर न करो। निश्चिंत रहो। उसकी मर्जी होगी, तो मरेंगे। और उसकी मर्जी से मरने में बड़ा सुख है। उसकी मर्जी होगी, तो बचेंगे। उसकी मर्जी से जीने में सुख है। अपनी मर्जी से, जीने में भी सुख नहीं है। उसकी मर्जी से मरने में भी सुख है। इसलिए मैं निश्चिंत हूं। कि वह जो करेगा, ठीक ही करेगा। जो होगा, ठीक ही होगा। इसलिए मेरी श्रद्धा नहीं डगमगाती। तूने यह बात ठीक नहीं कही कि हम दो हैं। तीन हैं। और हम दो एक दिन नहीं थे और एक दिन फिर नहीं हो जाएंगे। वह जो तीसरा है, हमसे पहले भी था; हमारे साथ भी है; हमारे बाद भी होगा। वही है। हमारा होना तो सागर में तरंगों की तरह है। लेकिन उस साथी को भरोसा नहीं आता है। उसने कहाः ये दर्शनशास्त्र की बातें हैं। ये धर्मशास्त्र की बातें हैं। आप ठीक कह रहे होंगे। मगर इधर खतरा जान को है।
पर वही हुआ, जो मोहम्मद ने कहा था। घोड़ों की टापों की आवाज बढ़ती गयी, बढ़ती गयी; फिर एक क्षण आया--रुकी--और फिर दूर होने लगी। दुश्मन ने यह रास्ता थोड़ी दूर तक तो पार किया, फिर सोचकर कि नहीं; इस रास्ते पर वे नहीं गए हैं; दूसरे रास्ते पर दुश्मन मुड़ गए।
मोहम्मद ने कहाः देखते हो! उसकी मर्जी है, तो जीएंगे। अपनी मर्जी से यहां जीने में सिर्फ जद्दोजहद है। उसकी मर्जी से जीने में बड़ा रस है। और

जब मैं तुमसे कहता हूं उसकी मर्जी, तो मैं यही कह रहा हूं कि तुम्हारे अंतर्तम की मर्जी। वह कोई दूर नहीं, दूसरा नहीं।
तो यह तो ख्याल छोड़ ही दो कि "चरण मेरे रुक न जाएं। आज सूने पंथ पर बिल्कुल अकेली चल रही मैं।"
बिल्कुल अकेला कोई भी नहीं है। मजा तो ऐसा है कि जब तुम बिल्कुल अकेले
हो जाओगे, तभी पता चलता है--कि अरे! मैं अकेला नहीं हूं! जिस दिन जानोगेः न पत्नी मेरी, न पति मेरा, न भाई, न मित्र--कोई मेरा नहीं--उस दिन अचानक तुम पाओगे कि एक परम संगी-साथी है, जो भीतर चुपचाप खड़ा था। तुम भीड़ में खोए थे, इसलिए चुपचाप खड़ा था। तुम भीड़ से भीतर लौट आए, तो उससे मिलन हो गया। तुम बाहर संगी-साथी खोज रहे थे, इसलिए भीतर के संगी-साथी का पता नहीं चल रहा था।
"दूर मंजिल, कौन जाने
कब मिले मुझको किनारा।"
यह बात भी गलत है। मंजिल बिल्कुल पास है। इतनी पास है, इसीलिए दिखायी नहीं पड़ती। दूर की चीजें तो लोग देखने में बड़े कुशल हैं। पास की चीजें देखने में बड़े अकुशल हैं। दूर के चांद-तारे तो दिखायी पड़ जाते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में एक मुकदमा था। एक हत्या हो गयी थी उसके पड़ोस में। और उससे पूछा गया कि तुमने यह हत्या देखी? उसने कहाः हां, मैंने देखी। पूछाः तुम कितनी दूर थे? उसने कहाः एक फर्लांग के करीब। मजिस्ट्रेट ने कहाः कि रात में, अंधेरे में एक फर्लांग दूर से तुमने यह हत्या देख ली? कौन ने मारा; किसको मारा? तुम्हें कितने दूर तक दिखायी पड़ता है? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः इसका तो मुझे पता नहीं। अब आप ही देखिए, चांद-तारे भी मुझे दिखायी पड़ते हैं; रात के अंधेरे में भी दिखायी पड़ते हैं! चांद-तारे दिखायी पड़ते हैं रात के अंधेरे में। तो मुल्ला यह कह रहा है
कि मुझे तो बड़े दूर की चीजें दिखायी पड़ती हैं; एक फर्लांग का मामला ही क्या है!
दूर का दिखायी पड़ना एक बात है; पास का दिखायी पड़ना बहुत कठिन है। क्योंकि तुम अपने से दूर-दूर हो, इसलिए दूर का दिखायी पड़ जाता है। अपने पास-पास कहां?
और परमात्मा पास है--यह कहना भी गलत होगा; क्योंकि पास में भी एक तरह
की दूरी है। परमात्मा तुम्हारा भीतर अंतर्तम है। पास ही नहीं है, तुम ही हो। इसलिए देखना बहुत मुश्किल है। देखने वाला ही नहीं है कोई वहां, जो अलग से देख ले।
इसलिए तो जो जानते हैं, उन्होंने कहाः दृश्य की तरह परमात्मा कभी दिखायी नहीं पड़ता। दृश्य तो दूर होता है। परमात्मा का अनुभव होता है, जब तुम द्रष्टा हो जाते हो। परमात्मा मिलता है द्रष्टा को, द्रष्टा की भांति; दृश्य की भांति कभी नहीं। परमात्मा का अनुभव होता है, दर्शन नहीं।
जो कहते हैंः हमें परमात्मा का दर्शन हुआ है, वे गलत ही बात कहते हैं। दर्शन तो पराए का हो सकता है; स्वयं का कैसे दर्शन होगा! स्वयं के दर्शन का कोई उपाय नहीं है। आत्म-दर्शन शब्द भी गलत है। आत्म-अनुभूति होती है, दर्शन नहीं होता। दर्शन का तो मतलब हैः दो हो गए--द्रष्टा और दृश्य। और वहां तो एक ही है; वहां कोई द्रष्टा नहीं, कोई दृश्य नहीं। एक पुलक होती है; एक भाव-दशा होती है। जिसको बुद्ध संवेग कहते हैं। एक संवेग होता है। तुम जान लेते हो, बिना जाने। पहचान लेते हो, बिना पहचाने। सामने कोई दिखायी नहीं पड़ता।
असल में तो जब सामने कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता, जब सब दृश्य खो जाते हैं, सब विषय-वस्तु मस्तिष्क से विलीन हो जाती है; जब तुम विराट शून्य में खड़े हो जाते हो; देखने को कुछ भी नहीं होता--तभी देखने की ऊर्जा अपने पर लौटती है। बाहर कोई स्थान नहीं मिलता ठहरने को, तो अपने पर लौट आती है। तुमने ईसाइयों की कहानी पढ़ी! जब बाढ़ आयी और सारी पृथ्वी डूबने लगी, तो नोह--बूढ़ा नोह--एक नाव बनाकर कुछ लोगों को और कुछ जानवरों को लेकर सुरक्षित स्थान की तरफ चला। दिनों पर दिन बीतते गए। चालीस दिनों तक भयंकर वर्षा

हुई। सब डूब गया; सिर्फ नोह की नाव तैरती रही। अब तो भोजन भी चुकने लगा, जो नोह नाव पर ले आया था। चालीस दिन हो गए थे। अब खोज-बीन करनी जरूरी थी।
वह रोज कबूतरों को छोड़ता अपनी नाव से। लेकिन कबूतर थोड़ी देर यहां- वहां घूमकर फिर वापस नाव पर आ जाते। कबूतरों को कोई बैठने की जगह न मिलती; तो अपने पर लौट आते; वापस नाव पर आ जाते। यह तरकीब थी जानने की कि जमीन करीब है कहीं कि नहीं।
अंतिम दिन कबूतर नहीं लौटे, तो नोह ने कहाः बस, अब घबड़ाओ मत। अब जमीन करीब है। कबूतरों को कोई स्थल मिल गया है बैठने के लिए; अब वे नहीं लौटे हैं। कोई वृक्ष मिल गया है बैठने के लिए। जमीन करीब है। अब निश्चिंत हो जाओ। अब हम पहुंच जाएंगे।
फिर कबूतर जिस दिशा में गए थे, उसी दिशा में नाव गयी और जल्दी ही किनारा मिल गया।
तुम्हारी चेतना तब तक भटकती रहती है, जब तक उसको ठहरने के लिए कोई जगह मिलती है। कोई विचार, कोई दृश्य, कोई कामना, कोई वासना--तब तक चेतना भटकती रहती है। जब सब विचार, सब वासना, सब कामना विसर्जित कर दी गयी; और चेतना का कबूतर उड़ता है, और उड़ता है, और कहीं बैठने को जगह नहीं मिलती; कोई जगह है ही नहीं बैठने को; तब अपने पर लौट आता है। उस अपने पर लौट आने में ही अनुभव है। और परमात्मा दूर नहीं है, न मंजिल दूर है। मंजिल मिली ही हुई है। जागो। जागते ही पता होता है कि जिसे कभी खोया नहीं था, उसे व्यर्थ ही खोजने निकल गए थे। जो भीतर ही मौजूद था, उसके लिए बाहर तलाश कर रहे थे। उससे ही कठिनाई हो रही है।

तीसरा प्रश्नः पहले मेरी धारणा थी कि आप भी बुद्ध, नानक, कबीर आदि की प्रतिमूर्ति होंगे। लेकिन जब अपनी आंखों से आपको देखा तो मुझे बहुत धक्का लगा। और फिर आपको देख-सुनकर जैसे ही बाहर निकला कि भीड़ के बीच एक विदेशी युवा जोड़े को मनोहारी प्रेम-पाश में बंधे देखकर मैं ठगा-सा रह गया। और सोचाः क्या यह भी धर्म कहा जा सकता है?

पूछा है भगवानदास आर्य ने। उनके पीछे जो पूंछ लगी है--आर्य--उसी में से प्रश्न निकला है।
पहली बातः मैं किसी की प्रतिमूर्ति नहीं हूं। क्योंकि प्रतिमूर्ति
तो प्रतिलिपि होगा; कार्बन कापी होगा। प्रतिमूर्ति कोई किसी की नहीं है; न होना है किसी को।
क्या तुम सोचते हो कि नानक बुद्ध की प्रतिमूर्ति थे? या तुम सोचते हो
कि बुद्ध कृष्ण की प्रतिमूर्ति थे? या तुम सोचते हो कि कबीर महावीर की प्रतिमूर्ति थे? तो तुम समझे ही नहीं।
अगर तुम कबीर के पास गए होते, तो भी तुम्हें यही अड़चन हुई होती, जो यहां हो गयी। तुम कहते, अरे! हमने तो सोचा था कि कबीर महावीर की प्रतिमूर्ति होंगे! और ये तो कपड़ा पहने बैठे हैं! कपड़ा पहने ही नहीं बैठे, कपड़ा बुन रहे हैं! जुलाहा! और महावीर तो नग्न खड़े हो गए थे। बुनने की तो बात दूर, पहनते भी नहीं थे कपड़ा। छूते भी नहीं थे कपड़ा। ये कैसे महावीर की प्रतिमूर्ति हो सकते हैं?
और रोज कबीर बाजार जाते हैं, बुना हुआ कपड़ा जो है, उसे बेचने। और कबीर
की पत्नी भी है! और कबीर का बेटा भी है। और कबीर का परिवार भी है। और बुद्ध तो सब छोड़कर भाग गए थे।
कबीर ने तो जुलाहापन कभी नहीं छोड़ा। बुद्ध तो राजपाट छोड़ दिए थे। कबीर के पास तो छोड़ने को कुछ ज्यादा नहीं था, फिर भी कभी नहीं छोड़ा। तो कबीर को तुम बुद्ध की प्रतिमूर्ति न कह सकोगे।
और न ही तुम बुद्ध को कृष्ण की प्रतिमूर्ति कह सकोगे। और मैं जानता हूं कि भगवानदास आर्य वहां भी गए होंगे। इस तरह के लोग सदा से रहे हैं। बुद्ध के पास भी गए होंगे और देखा होगा, अरे! तो कृष्ण की प्र्रतिमूर्ति नहीं हैं आप! मोर-मुकुट कहां? बांसुरी कहां? सखियां कहां? रास क्यों नहीं हो रहा है यहां? ये सिर घुटाए हुए संन्यासी बैठे हैं सब! रास कब होगा?

यही होता रहा है। बुद्ध को मानने वाले महावीर के पास जाते थे और कहते
थे कि आप नग्न! और बुद्ध तो कपड़ा पहने हुए हैं! और महावीर के मानने वाले बुद्ध के पास जाते थे और कहते थेः आप कपड़ा पहने हुए हैं! महावीर ने तो सब त्याग कर दिया है। उनका त्याग महान है। नग्न खड़े हैं!
यह मूढ़ता बड़ी पुरानी है। तुम प्रतिमूर्तियां खोज रहे हो! इस जगत में परमात्मा दो व्यक्ति एक जैसे बनाता ही नहीं। तुमने देखाः अंगूठे की छाप डालते हो। दो अंगूठों की छाप भी एक जैसी नहीं होती। दो आत्माओं के एक जैसे होने की तो बात ही गलत है।
मैं मेरे जैसा हूं। बुद्ध बुद्ध जैसे थे। कबीर कबीर जैसे थे।
तुम गलत धारणाएं लेकर यहां आ गए। तुम्हारी खोपड़ी में कचरा भरा है। उस कचरे से तुम मुझे तौल रहे हो! तुम पहले से तैयार होकर आए हो कि कैसा होना चाहिए व्यक्ति को--नानक जैसा होना चाहिए; कि बुद्ध जैसा; कि कबीर जैसा--किस जैसा होना चाहिए! तो तुम चूकोगे। तो तुम्हें धक्का लगेगा।
तुम्हें धक्का इसी से लग जाएगा कि मैं कुर्सी पर बैठा हूं। तुम्हारे धक्के भी तो बड़े क्षुद्र हैं! तुम्हें धक्का इसी से लग जाएगा--कि अरे! मैं इस सुंदर मकान में, इस बगीचे में क्यों रहता हूं! ये धक्के तुम्हें सदा लगते रहे हैं, क्योंकि तुम्हारी धारणाओं के कारण लगते हैं।
जैनों ने कृष्ण को नर्क में डाला है--तुम्हें पता है! धक्का लगा बहुत जैनों को कि यह कैसा आदमी है! युद्ध में भी चला! जैन तीर्थंकर तो कहते रहे कि युद्ध महापाप है और यह आदमी युद्ध में चला। धक्का न लगे तो क्या हो? युद्ध में ही नहीं चला, अर्जुन तो संन्यासी होना चाहता था। बिल्कुल पक्का जैन था अर्जुन। वह कहता थाः मुझे युद्ध नहीं करना है। अपनों को मारना; हत्या करनी; इतना खून-खराबा करना--नहीं; मैं तो जंगल जाऊंगा। मैं तो संन्यस्त हो जाऊंगा। मैं सब त्याग दूंगा। इसमें क्या रखा है?
इस भले आदमी को कृष्ण ने भ्रष्ट किया! गीता और क्या है? अर्जुन को भ्रष्ट करने की चेष्टा; जैनियों की दृष्टि में। इसको भ्रष्ट किया। इसको समझाया कि नहीं; यही कर्तव्य है। कि यही परमात्मा की इच्छा है; यही मर्जी है। तू होने दे। तू बीच में मत आ। तू कौन है छोड़ने वाला? तू कौन है मारने वाला? तू है ही नहीं। मारने वाले ने, जिन्हें मारना है, पहले ही मार दिया है। तू तो निमित्त मात्र है।
तो जैन बड़े नाराज हैं। उन्होंने कृष्ण को सातवें नर्क में डाला है। छठवें में भी नहीं, सातवें में डाला है! और थोड़े-बहुत दिन के लिए नहीं डाला है। जब तक यह सृष्टि चलेगी--यह सृष्टि, यह कल्प--तब तक! फिर जब दूसरी सृष्टि बनेगी, तभी वे मुक्त होंगे वहां से। उन्होंने भयंकर अपराध किया है!
मेरे एक जैन मित्र हैं। गांधी के अनुयायी हैं, तो उनको समन्वय की धुन सवार रहती है। तो मुझसे वे बोले कि मैं समन्वय की एक किताब लिख रहा हूं। बुद्ध और महावीर में समन्वय--कि दोनों बिल्कुल एक ही बात कहते हैं। मैंने कहाः जब किताब पूरी हो जाए, तो मुझे भेजना।
किताब छपी तो उन्होंने मुझे भेजी। मैं देखकर चौंका। किताब का जो शीर्षक था, वह था--भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध।
मैंने उनको पत्र लिखा। पूछा कि एक को भगवान और एक को महात्मा क्यों कहा? उन्होंने कहाः इतना फर्क तो है ही। महावीर भगवान हैं। बुद्ध महात्मा हैं; ऊंचे पुरुष हैं; मगर अभी आखिरी अवस्था नहीं आयी है। क्योंकि कपड़े पहने हुए हैं।
वह कपड़े से बाधा पड़ रही है! कपड़े के पीछे बेचारों को महात्मा रह जाना
पड़ रहा है। वे नंगे जब तक न हों, तब तक वे भगवान नहीं हो सकते!
इसलिए तो जैन राम को भगवान नहीं मान सकते। और धनुष लिए हैं, तो बिल्कुल नहीं मान सकते।
और जो जीसस को देखा है, जो जीसस को मानता है, वह जब देखता है कृष्ण को बांसुरी बजाते, तो उसे बड़ा सदमा पहुंचता है। वह कहता हैः ये किस तरह के भगवान! भगवान तो जीसस हैं। दुनिया के दुख के लिए अपने को सूली पर लटकाया है। और ये सज्जन बांसुरी बजा रहे हैं! और दुनिया इतने दुख में है। तो यह कोई समय बांसुरी बजाने का है! और ये वृंदावन में रास रचा रहे हैं! और

दुनिया दुख में सड़ रही है; महापाप में गली जा रही है। जीसस जैसा होना चाहिए--कि अपने को सूली पर चढ़वा दिया, ताकि दुनिया मुक्त हो सके।
अब तुम्हारी धारणा; तुम जो पकड़ लोगे। उस धारणा से तौलने चलोगे, तो बाकी सब गलत हो जाएंगे। तुम्हारी धारणा ने ही तुम्हें धक्का देने का उपाय कर दिया। अब तुम सोचते हो कि मेरे कारण तुम्हें धक्का लगा, तो तुम गलती में हो।
मेरे कारण भी धक्का लग सकता है, वह धक्का तो तुम्हारे जीवन में सौभाग्य होगा। उससे तो क्रांति हो जाएगी। मगर वह यह धक्का नहीं है। जो धक्का तुम्हें लगा है, वह तुम्हारी धारणा का है। तुम एक पक्की धारणा लेकर आए थेः ऐसा होना चाहिए। और ऐसा नहीं है।
अब हो सकता है, इन सज्जन को पच्चीस अड़चनें आयी होंगी। इनको पीड़ा हुई होगी। यह इनके अनुकूल नहीं है।
जो तुम्हारे अनुकूल नहीं है, वह गलत होना चाहिए--ऐसी जिद्द मत करो। अभी तुमको सही का पता ही कहां है! सही का पता होता, तो यहां आने की जरूरत क्या होती! अभी आए हो, तो खुले मन से आओ; निष्पक्ष आओ। अपनी जराजीर्ण धारणाओं को बाहर रखकर आओ।

कल किसी और सज्जन ने एक प्रश्न पूछा था कि आपसे मिलने क्यों नहीं दिया जाता जब हम मिलना चाहते हैं? आपको बंदी क्यों बना लिया गया है? आप अपनी मर्जी से बंदी हैं? कि आपको किसी ने बंदी बना लिया है? उन्होंने पूछा है कि कबीर को तो जब मिलना हो, तब लोग मिल सकते थे! और नानक झाड़ के नीचे बैठे रहते थे! आपसे क्यों नहीं मिलना हो सकता?

ख्याल रखनाः मुझे किसी ने बंदी नहीं बना लिया है। लेकिन हां, मैं अपने ढंग से जीता हूं और उसमें मैं कोई दखलंदाजी पसंद नहीं करता। मैं बंदी नहीं हूं, तुम्हारी दखलंदाजी पर रोक है। तुम अपनी दखलंदाजी को नहीं देखते। वर्षों तक मैं भी वैसे ही रहा। मैं थक गया। आधी रात लोग चले आ रहे हैं!
दो बजे रात लोग दस्तक दे रहे हैं कि हमें दर्शन करना है! आधी रात लोग कमरे में आ जाएं कि हमें आपके पैर दबाने हैं! मैं उनसे कह रहा हूं कि मुझे सोने दो। वे कहते, नहीं; हम तो सेवा करेंगे। जो भोजन मुझे नहीं करना है, वह मुझे भोजन करना पड़े। क्योंकि हमने बड़े प्रेम से बनाया है! मुझे करना नहीं है। मगर हमारे भाव भी तो देखिए!
मैं दिल्ली उतरा--आज से कोई पंद्रह साल पहले--ग्यारह बजे रात हवाई जहाज पहुंचा। जो सज्जन मुझे लेने आए थे--वहां से कोई सौ मील दूर जाना था, जनवरी की शीत लहर--खुली जीप लेकर आ गए! मैंने पूछा कि आपको कोई बंद गाड़ी नहीं मिली? बैलगाड़ी ले आते; मगर कम से कम बंद तो लाते!
उन्होंने कहाः ऐसा कैसे हो सकता है! जीप नयी आयी है; हमें आपसे उदघाटन करवाना है। कोई और उपाय न देखकर मुझे खुली जीप में रात ग्यारह बजे से सुबह चार बजे तक यात्रा करनी पड़ी। उस दिन से मुझे जो सर्दी पकड़ी, वह आज तक नहीं छूटी। उन्होंने उदघाटन करवा लिया जीप का; उनकी भावना पूरी हो गयी।
मैं थक गया इस तरह की मूढ़ताओं से। मुझ पर कोई बंधन नहीं है। मुझ पर कौन बंधन डालेगा! यह मेरा आयोजन है। कि इस तरह की मूढ़ताओं में मेरा कोई भरोसा नहीं है। और मैं नहीं चाहता कि तुम हर कभी मुझसे मिलने के लिए स्वतंत्र रहो। तुम्हारी स्वतंत्रता पर बाधा होगी; मेरी स्वतंत्रता पर कोई बाधा नहीं है। मेरी स्वतंत्रता बचाने के लिए तुम्हारी स्वतंत्रता पर बाधा डालनी पड़ी है।
और नहीं तो मैं खाना खाने बैठता; पचास लोग बैठे हैं! सभा चल रही है! लोग उठ-उठकर मुझे खाना खिलाने लगें! जबर्दस्ती मेरे मुंह में भरने लगें। राजस्थान मैं जाता तो... । एक वर्ष आम का मौसम था। वे एक टोकरी भरकर आम
ले आए। उनका भाव! और कोई पचास आदमी! आम मेरे मुंह में लगाएं वे। सारे मेरे कपड़े भी सब आम के रस से भर दिए। और मैं उसका एक घूंट भी न ले पाऊं--कि वह गया! वह प्रसाद बन गया। वह एक हाथ से दूसरे हाथ में गया। उसको दूसरे ने ले लिया। वे पचास आदमी जो आए थे पूरी टोकरी लेकर, जब तक वह पूरी टोकरी

उन्होंने मुझे न चखा ली, और मेरे पूरे शरीर को नहाने योग्य नहीं कर दिया, और मक्खियां नहीं भिनभिनाने लगीं, तब तक उन्होंने सेवा जारी रखी। उनको इससे मतलब ही नहीं है।
यह तुम्हारी मूढ़ताओं के कारण ऐसा करना पड़ता है।
तुम समझते हो, मैं बंधन में हूं! मैं क्यों बंधन में होने लगा? हां, इतना जरूर है कि अब तुम्हें स्वतंत्रता नहीं है कि तुम कुछ भी उपद्रव यहां करना चाहो, तो करो।
लोग आते हैं; वे पूछते हैंः दरवाजे पर गार्ड क्यों बैठा है? आपकी कृपा से! तो आपके कारण। जब तक आपकी अनुकंपा रहेगी, गार्ड रहेगा। जब आपको बोध होगा, तो ही गार्ड हट सकता है। गार्ड मुझ पर नहीं है; गार्ड आप पर है। लेकिन जिन सज्जन ने प्रश्न पूछा है, उन्होंने पूछाः "मुझे बड़ा दुख हुआ। क्योंकि बुद्धपुरुषों को तो स्वतंत्र होना चाहिए!"
मैं स्वतंत्र हूं। लेकिन मेरी स्वतंत्रता के चुनाव मेरे हैं। मैं जो खाना चाहता हूं, वही खाना चाहता हूं। और जब मैं शांत बैठना चाहता हूं, तब मैं शांत बैठना चाहता हूं। और जब मैं सोना चाहता हूं, तब मैं सोना चाहता हूं। मैं किसी तरह की दखलंदाजी पसंद नहीं करता।
तुम्हें इससे अड़चन होती है। तुम्हें इससे बेचैनी होती है। तो तुम कहीं और खोजो, जहां तुम्हें अड़चन न हो; जहां तुम्हें बेचैनी न हो। मेरे साथ रहना है, तो मेरी शर्तें स्वीकार करनी पड़ेंगी। मैं तुम्हारे साथ नहीं हूं; तुम मेरे साथ हो।
मैं तुम्हारे पीछे चलने वाला नहीं हूं। तुम्हें मेरे पीछे चलना हो,
तो चल लो। लेकिन तुम्हारी मर्जी यह होती है कि मैं तुम्हारे पीछे चलूं। यही मर्जी होगी इनकी, भगवानदास आर्य की। इनकी धारणा के अनुकूल मुझे होना चाहिए!
मेरा कोई कसूर कि आपकी धारणाएं गलत हैं! मैं आपकी धारणा के अनुकूल क्यों होऊं? मुझे न प्रतिष्ठा चाहिए, न आपका सम्मान चाहिए। मुझे सिर्फ मेरे जैसा होने दो। मैं किसी की प्रतिलिपि नहीं हूं और न किसी की प्रतिमूर्ति हूं।
मुझे क्या लेना बुद्ध से! और क्या लेना कबीर से, नानक से! वे अपने ढंग
से जीए; जो उन्हें ठीक लगा, वैसे जीए। जो मुझे ठीक लगता है, वैसा मैं जीता हूं। वहां हमारी समानता है। उसके अतिरिक्त और कोई समानता नहीं है। महावीर को ठीक लगा--नग्न रहें; वे नग्न रहे। बुद्ध को ठीक लगा--घर-द्वार छोड़कर जंगल जाएं; वे जंगल गए। कबीर को ठीक लगा कि कपड़ा बुनते रहें; वे कपड़ा बुनते रहे। मोहम्मद को ठीक लगा कि तलवार लेकर लड़ना है, तो वे लड़े। और जीसस को ठीक लगा कि सूली पर चढ़ना है, तो वे सूली पर चढ़े। जो मुझे ठीक लगता है, वह मैं करता हूं। वहां हमारी समानता है, बस। उससे ज्यादा कोई समानता नहीं है।
मैंने एक झेन कहानी पढ़ी है। एक भिक्षु अपने गुरु की बरसी मना रहा था। गुरु चल बसे थे। लोगों ने पूछा कि हमें यह कभी पता ही नहीं था कि वे तुम्हारे गुरु थे! तुमने कभी बताया भी नहीं। और आज तुम उनकी बरसी मना रहे हो!
उस भिक्षु ने कहा कि इसीलिए मना रहा हूं; क्योंकि मैं जीवन में कई बार उनके पास गया कि मुझे अपना शिष्य बना लो। उन्होंने कहाः तुझे शिष्य बनने की क्या जरूरत है! तू तू ही रह। मैंने बहुत बार उनसे प्रार्थना की; उन्होंने बहुत बार मुझे ठुकरा दिया। और इसीलिए मैं उनका अनुगृहीत हूं। नहीं तो मैं एक प्रतिलिपि बन गया होता। मैं एक स्वतंत्र व्यक्ति बना--उनकी कृपा से। उन्होंने कभी मुझ पर थोपा नहीं कुछ।
बड़े आश्चर्य की बात है; मैं तुम पर कुछ नहीं थोपता हूं। उलटी हालत हो जाती है, तुम मुझ पर थोपने की आकांक्षा लेकर आ जाते हो! तुम सोचते होः ऐसा होना चाहिए। जैसे कि तुम्हें ठीक का पता है। तुम्हें ठीक का बिल्कुल पता नहीं है। जिसे ठीक का पता है, वह इस जगत के वैविध्य को स्वीकार करेगा, क्योंकि विविधता सत्य है।

और लोग एक-दूसरे की प्रतिलिपि हो जाएं, तो जिंदगी बड़ी उबाने वाली हो जाएगी। एक कृष्ण काफी हैं। अनूठे हैं। मगर हजारों कृष्ण हो जाएं, तो सब रस गया। तब सारा रस गया; सारा सौंदर्य गया। एक बुद्ध अदभुत हैं। इसलिए भगवान दुबारा एक जैसे दो व्यक्ति पैदा नहीं करता। दुबारा कोई बुद्ध हुआ? दुबारा कोई कृष्ण हुआ? दुबारा कोई कबीर हुआ? दुबारा कोई नानक हुआ?
दुबारा भगवान पैदा ही नहीं करता। भगवान की कला यही है कि अद्वितीय, बेजोड़ बनाता है। हमेशा नए को निर्मित करता है।
लेकिन तुम अतीत से चलते हो। तुम अपना हिसाब लेकर आ गए हो। तो तुम्हें जरूर चोट लगी होगी, क्योंकि लगा कि मैं किसी की प्रतिलिपि नहीं हूं। मैं नहीं हूं। मुझे क्षमा करो। चोट लग गयी, उसके लिए माफ करो।
और फिर तुमने जाकर देखा बाहर कि "भीड़ के बीच एक विदेशी युवा जोड़े को मनोहारी प्रेम-पाश में बंधे देखकर मैं ठगा रह गया। और सोचाः क्या यह भी धर्म कहा जा सकता है?"
तुमसे पूछ कौन रहा है? युवा जोड़े ने तुमसे पूछा कि यह धर्म है या नहीं? तुमने कोई ठेका लिया है दूसरे का धर्म तय करने का? तुम हो कौन? कोई पुलिस वाले हो! तुम्हें प्रयोजन क्या है?
युवा जोड़े की अपनी स्वतंत्रता है। तुम दखलंदाजी क्यों करना चाहते हो?
उन दो व्यक्तियों की अपनी निजी जीवन-धारा है। उन्हें ठीक लगा, वे प्रेम-पाश में बंधे हैं। तुम्हें अड़चन क्या हो रही है? जरूर तुम भी कहीं गहरे में प्रेम-पाश में बंधना चाहते हो और बंध नहीं पा रहे हो। तुम्हारे भीतर कुछ कुंठा है।
इसीलिए तो तुम कहते होः "मनोहारी प्रेम-पाश में... ।"
तुम्हारे मन को लुभा गया प्रेम-पाश! मनोहारी कह रहे हो। तुम्हारा मन डांवाडोल हुआ होगा। तुम थोड़ी देर यहां-वहां खड़े-खड़े देखते रहे होओगे। तुमने रस लिया होगा। रात सपने में देखा होगा। बार-बार सोचा होगा, कि यह बात क्या है!
लेकिन तुममें यह करने की हिम्मत भी नहीं है। तो फिर निंदा तो कर ही सकता है आदमी! तो यह धर्म नहीं है, यह अधर्म है। तो फिर कृष्ण के पास जो गोपियां नाच रही थीं, वह क्या था? भगवानदास आर्य! उस पर विचार करना। वह अधर्म था? फिर जहां प्रेम है, वहीं अधर्म है!
मेरे देखे, जहां प्रेम है, वहीं धर्म है। और तुम अगर मुझसे पूछते हो तो मैं तुमसे यह कहना चाहता हूं कि जब भी कोई युवती गहन प्रेम में होती है, तो राधा हो जाती है। और जब भी कोई युवक गहन प्रेम में होता है, तो कृष्ण हो जाता है। गहन प्रेम राधा और कृष्ण को पैदा करता है। इस पृथ्वी पर प्रेम से ज्यादा धार्मिक और कुछ भी नहीं है। इस पृथ्वी पर प्रेम किरण है परमात्मा की।
लेकिन तुम्हारा होगा दमित मन, कुंठित मन, जैसा कि आमतौर से इस देश के लोगों का है। और फिर तुम्हारा आर्य शब्द जाहिर कर रहा है कि तुम हजार तरह के रोगों से भरे होओगे। हजार तरह की बीमारियां तुम्हारे मन में होंगी। कामवासना को दबाया होगा, समझा नहीं होगा। जीए नहीं होओगे। वहीं से ये विचार उठ रहे हैं।
तुम्हें क्या प्रयोजन है! उस युवा जोड़े ने तुमसे कुछ नहीं पूछा। न उस युवा जोड़े ने प्रश्न पूछा कि हम दोनों प्रेम-पाश में खड़े थे और एक सज्जन खड़े होकर बड़ी मनोहारी आंखों से, और देख रहे थे! क्या यह धर्म है कि दो आदमी जब प्रेम कर रहे हों, तो तुम वहां बीच में जाकर खड़े होकर देखने लगो?
लेकिन तुम्हारी आदत पुरानी रही होगी। तुम लोगों के स्नानगृह में चाबी
के छेद में से देखने के आदी रहे होओगे। कुछ लोग यही काम करते हैं! वे नालियों में कीड़े खोजते फिरते हैं!
क्या प्रयोजन तुम्हें? तुम यहां आए किसलिए? और दूसरे व्यक्ति में इतना ज्यादा हस्तक्षेप करने की प्रवृत्ति हिंसात्मक है। इसलिए यहां कोई हस्तक्षेप नहीं है।

अब यह बड़े आश्चर्य की बात है। अगर रास्ते पर कोई आदमी किसी को मार रहा
हो, तो लोग नहीं पूछते कुछ। कोई किसी की हत्या कर दे, तो नहीं पूछते। लेकिन अगर दो व्यक्ति प्रेम-पाश में बंधे हों, तो अड़चन हो जाती है।
तुम देखते हो! हत्यारों को तो महावीर-चक्र प्रदान किए जाते हैं। प्रेमियों को कोई चक्र इत्यादि प्रदान नहीं करता। हत्यारों की तो प्रशंसा होती है, सेनापति! और योद्धा! प्रेमियों की कोई प्रशंसा नहीं होती है। अगर फिल्म में हत्या के दृश्य हों, तो सरकार कोई रोक नहीं लगाती। कोई किसी को मारे, काटे, गोलियां चलाए--कोई हर्जा नहीं है; बिल्कुल ठीक है! हिंसा ठीक है। और अगर कोई प्रेम-पाश में बंध जाए, तो गलत है; तो फिल्म पर रोक लगनी चाहिए! छाती में छुरा भोंकना ठीक है, लेकिन किसी का चुंबन लेना ठीक नहीं है।
यह जरा सोचने जैसी बात है कि यह कैसी बेहूदी दुनिया है। छुरा भोंकना ठीक है; कोई ऐतराज नहीं है। लेकिन कोई किसी का चुंबन लेता हो, तो ऐतराज है। फिर स्वभावतः, ऐसी मूढ़ दुनिया में अगर छुरेबाजी चलती रहे और चुंबन खो जाए, तो आश्चर्य क्या।
प्रेम इस जगत में परमात्मा की पहली किरण है। सब रूपों में मुझे अंगीकार है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि लोग बस, प्रेम-पाश में ही पड़े रहें। लेकिन प्रेम-पाश में जो पड़ेगा, वही उसके बाहर निकल सकेगा। जो प्रेम का अनुभव करेगा, वही एक दिन पाएगा कि इससे तृप्ति नहीं होती; इससे ऊपर जाना है। ठीक है; इससे गुजरना जरूरी था। बिना गुजरे अनुभव भी नहीं होता।
जो लोग दमन करके बैठे हैं, वे परमात्मा तक कभी नहीं पहुंच पाते। उनका प्रेम कभी प्रार्थना नहीं बनता। क्योंकि प्रेम का अनुभव ही नहीं हुआ जीवन में, ऊपर कैसे उठोगे? ऊपर तो उससे उठ सकते हो, जिसको जाना; जाना और खोटा पाया; जाना और साथ में अनुभव किया कि थोड़े दूर तक जाता है; बहुत दूर तक नहीं जाता। तो तुम्हें पार जाने की संभावना खुलती है।
यह कोई मुर्दा आश्रम नहीं है। भगवानदास आर्य ने और आश्रम देखे होंगे निश्चित। मुर्दा आश्रम देखे होंगे, मरे-मराए आश्रम देखे होंगे, जहां अक्सर बूढ़े और बूढ़ियां ही जाते हैं। वहां जवान जाना भी नहीं चाहता। जीवन-विरोधी आश्रम देखे होंगे; जहां जीवन के हर कृत्य की निंदा है; जहां जीवन की निंदा है।
यह तो... जीवन का स्वागत है यहां; जीवन का सत्कार है; क्योंकि जीवन ही प्रभु है। और जहां जीवन का स्वीकार है, वहां युवा आएंगे। वहीं आ सकते हैं। यह मंदिर युवकों का है। और स्वभावतः जहां युवा आएंगे, वहां युवा-जीवन की सारी भाव-भंगिमाएं आएंगी। स्त्री-पुरुष होंगे, तो प्रेम में गिरेंगे। एक-दूसरे का हाथ पकड़ेंगे; एक-दूसरे का आलिंगन करेंगे। यह सब ठीक है। इसमें कुछ अड़चन नहीं है।
छुरा नहीं भोंक रहे। किसी को मार नहीं रहे। किसी को नुकसान नहीं पहुंचा रहे। किसी की चोरी नहीं कर रहे। दो व्यक्तियों ने यह तय किया है कि उन्हें अच्छा लगता है एक-दूसरे के पास खड़े होना; तुम्हारा क्या बिगड़ रहा है? तुम इतना भी बर्दाश्त नहीं कर सकते? तो जरूर तुम रुग्ण हो। तुम्हारा चित्त विकृत है। तुम्हें मनोचिकित्सा की जरूरत है।
क्षुद्र धारणाओं को लेकर यहां आओगे, तो खाली हाथ चले जाओगे। और यहां अमृत बह रहा है। तुम अपनी धारणाओं से भरे रहे, तो तुम जानो।

चौथा प्रश्नः जीवन निरर्थक मालूम होता है। मैं संन्यास भी लेना चाहता हूं। लेकिन समाज का भय लगता है--और रुक जाता हूं। फिर जीवन की अर्थहीनता को देखकर आत्मघात का विचार भी बार-बार आता है। आत्मघात के संबंध में आप क्या कहते हैं?

भाई विचार तो बड़ा ऊंचा है! मगर जब संन्यास तक लेने की हिम्मत नहीं है,
तो आत्मघात कैसे करोगे? इतना साहस तुम जुटा न पाओगे। आत्मघात के लिए कुछ साहस चाहिए। संन्यास का ही साहस नहीं हो रहा है!

और संन्यास में तो मृत्यु नहीं होने वाली है अभी एकदम से; सिर्फ जीवन
की शैली थोड़ी बदलेगी। और मेरे संन्यास में वह भी इतनी सुविधा से बदलती है, इतने आहिस्ता बदली जाती है कि तुम्हें कभी पता भी नहीं चलता है कि कब बदलाहट हो गयी। और तुम तो अभी संन्यास लेने में डर रहे हो।
कहते हो, "समाज का भय लगता है।"
तो आत्मघात में तो बहुत भय लगेंगे। लोग क्या कहेंगे तुम्हारे मर जाने
के बाद! कि आत्मघात कर लिया; कायर था। और फिर यह भी भय लगेगा कि आत्मघात के बाद क्या होगा! शरीर छूट गया--फिर भूत बनूं; प्रेत बनूं! नर्क जाना पड़े! महा रौरव नर्क में पड़ना पड़े! कि मरघटों पर रहना पड़े! कि झाड़ों पर बैठना पड़े! फिर क्या होगा--पता नहीं! वे सब भय भी तुम्हें पकड़ेंगे।
विचार तो बड़ा ऊंचा है! बड़ी पहुंची बात ले आए! दूर की कौड़ी खोज लाए। मगर
कर न सकोगे। और फिर जमाना भी खराब है। सतयुग होता, बात और थी।
मैंने सुना हैः एक आदमी आत्मघात करना चाहता था। जहर खरीदकर लाया।
पीकर सो गया निश्चिंत कि मर गए। सुबह सोचता था कि अब देखें, कहां आंख खुलती है! नर्क में कि स्वर्ग में? लेकिन वही पत्नी की आवाज सुनायी पड़ने लगी! वही दूध वाला दरवाजे पर खटक रहा। बच्चे स्कूल जाने की तैयारी कर रहे हैं। बस्ता गिर गया। किसी की स्लेट फूट गयी। किसी का कुछ... ।
बड़ा हैरान हुआ! आंखें खोलीं कि मामला क्या है! न कोई स्वर्ग, न कोई नर्क! वही का वही घर। आंखें साफ करके गौर से देखा, वही कमरा! खिड़की के बाहर देखा, वही झाड़! उठकर बाहर गया। देखा, वही पत्नी! उसने कहाः मामला क्या है! जहर लाया था इतना कि साधारणतः जितने से आदमी मरे, उससे तीन गुना!
भागा हुआ दुकानदार के पास पहुंचा। कहाः हद्द हो गयी। दुकानदार ने कहा
कि भई! हम भी क्या करें! जमाना खराब है। हर चीज में मिलावट चल रही है! शुद्ध जहर आजकल मिलता कहां है?
तो मैं तुमसे कहता हूंः करोगे कैसे आत्मघात? शुद्ध जहर मिलता नहीं! जमाना खराब है। सतयुग में ये बातें होती थीं। अब बहुत मुश्किल है!
और फिर तुम्हारी हालत संन्यास तक लेने की नहीं हो रही है... ।
एक और आदमी आत्मघात करना चाहता था। उसकी पत्नी घबड़ा गयी। उसने कमरा बंद करके भीतर और आत्मघात करने का उपाय किया। पत्नी पड़ोस के लोगों को बुला लायी। लोगों ने दरवाजा तोड़ा। तो देखा कि स्टूल पर चढ़े--म्याल से रस्सी बांधे--अपनी कमर में रस्सी बांधे खड़े थे! लोगों ने पूछाः यह कर क्या रहे हो यहां? आत्मघात कर रहे हैं। तो उन्होंने कहाः हमने कभी सुना नहीं कि कमर में रस्सी बांधने से कोई आत्मघात होता है! गले में बांधो, अगर आत्मघात करना हो! उसने कहाः पहले मैंने गले में ही बांधी थी। मगर दम घुटता है! हिम्मत तो चाहिए न! अब गले में बांधोगे, दम घुटेगा ही! तो वे अब कमर में बांधकर रस्सी आत्मघात कर रहे हैं!
एक सज्जन और आत्मघात करने रेल की पटरी पर गए। साथ में टिफिन भी ले गए थे! एक चरवाहा वहां अपनी गाएं चरा रहा था, उसने पूछा कि आप यहां लेटे-लेटे क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि मैं आत्मघात करने की तैयारी कर रहा हूं। पटरी पर लेटे हैं; टिफिन अपनी बगल में रखे हैं। अखबार भी पढ़ रहे हैं! टिफिन किसलिए लाए हैं?
उन्होंने कहाः गाड़ियों का क्या भरोसा। हिंदुस्तानी गाड़ी; आए न आए! कितनी लेट हो जाए! भूखों मरना है क्या? तो टिफिन लेकर आए हैं!
तुमसे न हो सकेगा। पहले संन्यास की तो हिम्मत करो। फिर असली आत्मघात संन्यास से घट जाएगा। यह तो जो तुम सोच रहे हो, नकली आत्मघात है। शरीर के बदलने से कुछ भी तो नहीं बदलेगा। फिर पैदा होओगे। फिर गर्भ होगा। फिर यही यात्रा शुरू हो जाएगी।
असली आत्मघात संन्यास से ही घटता है। असली, क्योंकि अहंकार मर जाता है। असली, क्योंकि और जीने की आकांक्षा समाप्त हो जाती है। असली, क्योंकि फिर जन्म नहीं लेना पड़ता। ऐसी मृत्यु मरो कि फिर जन्म न लेना पड़े। वही तो धर्म की सारी प्रक्रिया है। धर्म का अर्थ है, ऐसे मरण की प्रक्रिया कि फिर दुबारा जन्म न हो।

तुम शायद सोचो कि चलो, ये लोग चूक गए--कोई कमर में बांधकर खड़ा हो गया; किसी को जहर नकली मिल गया; किसी की ट्रेन लेट हो गयी--हम सब उपाय कर लेंगे।
ऐसे ही सब उपाय मुल्ला नसरुद्दीन ने एक बार किए। पिस्तौल खरीद लाया।
एक कनस्तर में मिट्टी का तेल भर लिया। एक रस्सी ली। नदी के किनारे पहुंचा।
एक टीले पर चढ़ गया। एक वृक्ष से रस्सी बांधी। रस्सी को गले में बांधा। सब उपाय किए थे उसने, ताकि किसी तरह की चूक न हो। अगर एक उपाय चूक जाए, तो दूसरा उपाय काम में आ जाए।
फिर गले में रस्सी बांधकर, शरीर पर मिट्टी का तेल उंडेल लिया। फिर आग लगायी और झूल गया पहाड़ी से--कि अगर किसी तरह गिर भी जाए, तो गहरी नदी है, उसमें मर जाएगा। और पिस्तौल भी हाथ में रखे है। पिस्तौल चलायी, सिर में मारी--झूलते हुए।
मगर सब चूक हो गयी। पिस्तौल लगी रस्सी में, जो बांधी थी। सो धड़ाम से पानी में गिर गया। पानी में गिर गया तो आग बुझ गयी। और जब शाम को घर लौटकर आया, तो लोगों ने पूछा कि मामला क्या है? उसने कहाः सब गड़बड़ हो गया। अगर तैरना न आता होता, तो आज मर ही गए होते।
तुम इन झंझटों में न पड़ो। सुगम उपाय आत्महत्या का मैं तुम्हें बताता हूंः संन्यास तुम ले लो। कम से कम अपनी जीवन-चर्या को तो नया ढंग दो।
तुम कहते हो, "जीवन निरर्थक मालूम होता है।"
निरर्थक है; मालूम नहीं होता। जिसे तुम जीवन समझते रहे हो, वह निरर्थक है। मगर एक और जीवन है--इस जीवन के पार, इस जीवन से गहरा, इस जीवन से भिन्न-- एक और आयाम है होने का।
यह जीवन व्यर्थ है; सच ही व्यर्थ है। यही तो बुद्ध को भी दिखा। लेकिन उन्होंने आत्मघात नहीं किया। ध्यान की तलाश की। अगर यह जीवन व्यर्थ है, तो कोई और जीवन भी होगा। इस पर ही क्यों समाप्त मान लेते हो!
इस जीवन का अर्थ--रोटी-रोजी कमाना; दुकान चलाना; रोज वही... । सुबह फिर उठे; फिर वही कोल्हू के बैल जैसे चल पड़े। फिर सांझ हो गयी; फिर आकर सो गए! फिर सुबह चले। वही लड़ाई-झगड़ा! वही बकवास। वही मतवाद।
और धीरे-धीरे किसी को भी लगेगा, जिसमें थोड़ी बुद्धि है उसको लगेगाः यह
हो क्या रहा है? इससे सार क्या है? ऐसे ही चालीस साल करता रहा; और पच्चीस साल तीस साल करूंगा; फिर मर जाऊंगा। इससे प्रयोजन क्या है?
सिर्फ बुद्धुओं को यह विचार नहीं उठता। यह शुभ है कि तुम्हें विचार उठा कि जीवन निरर्थक है। मगर इससे ही यह निर्णय लेना उचित नहीं है कि आत्मघात कर लें। पहले और भी तो तलाश कर लो। और ढंग का जीवन भी हो सकता है। मैं तुमसे कहता हूं, और ढंग का जीवन है। मैं तुमसे जानकर कह रहा हूं कि
और ढंग का जीवन है। एक जीवन है, जो बाहर की तरफ है; वह व्यर्थ है। और एक जीवन है, जो भीतर की तरफ है; वह सार्थक है। प्रत्येक व्यक्ति अर्थ खोज रहा है। लेकिन गलत दिशा में खोज रहा है, इसलिए नहीं मिलता।
अब तुम ऐसा ही समझो कि एक आदमी रेत से तेल निकालने की कोशिश कर रहा है,
और नहीं मिलता है। और कहता हैः मैं आत्मघात कर लूंगा! क्योंकि रेत में तेल नहीं है। अब इसमें रेत का क्या कसूर है? तेल निकालना हो, तो तिल से निकालो। रेत में नहीं है, तो रेत की कोई गलती नहीं है। तुम रेत से निकाल रहे हो, यह तुम्हारी गलती है।
एक आदमी दीवाल से निकलने की कोशिश करता है और नहीं निकल पाता, तो कहता हैः आत्मघात कर लूंगा; क्योंकि दीवाल में कोई दरवाजा नहीं है। मगर दरवाजा भी है। तुम दीवाल से निकलने की कोशिश कर रहे हो, यह तुम्हारी भूल है। दीवाल दरवाजा नहीं है। मगर दरवाजा नहीं है, ऐसा तो तुम तभी कहना, जब तुम जीवन के सब आयाम खोज लो और दरवाजा न पाओ।
जिन्होंने भीतर की दिशा में थोड़े भी कदम उठाए, उन्हें दरवाजा मिला। सदा मिला। नहीं तो महावीर-बुद्ध, कृष्ण-क्राइस्ट, मोहम्मद-जरथुस्त्र--इन सबने आत्मघात कर लिया होता। इन्होंने आत्मघात नहीं किया। इन्होंने रूपांतरण किया, आत्म-रूपांतरण किया। अपने को बदल लिया। एक नए जीवन का सूत्रपात हुआ। जो महिमापूर्ण था, दिव्य था, भव्य था। एक नया संगीत इनके भीतर उठा। इनकी वीणा बजी। इनके फूल खिले। इनके जीवन में उत्सव आया।

तुम्हारे जीवन में उदासी है, मुझे मालूम है। मगर तुम्हारे कारण है।
और तुम अगर मर भी जाओ, जैसे तुम अभी हो, तो फिर ऐसे के ऐसे पैदा हो जाओगे।
इससे कुछ लाभ नहीं होगा। ऐसे तो तुम कई बार मर चुके हो। हो सकता है, पहले भी आत्मघात करते रहे हो; शायद इसीलिए ख्याल आता है! पुरानी आदत हो; लत लग गयी हो! फिर उस तरह कर लोगे, इससे कुछ भी नहीं होगा।
अब इस बार जीवन का ठीक-ठीक, सम्यक उपयोग कर लो। इस जीवन में बड़ा सौंदर्य छिपा है, मगर खोजने वाला चाहिए। इस जीवन में बड़ी संपदा है; ऐसी संपदा, जो कभी नहीं चुकती; सनातन संपदा है। मगर ठीक दिशा में खुदाई करनी चाहिए।
और कभी-कभी ऐसा हो जाता है कि दिशा गलत होती है। और कभी-कभी ऐसा भी होता हैः दिशा भी ठीक होती है, तो तुम खोदते नहीं।
मैंने सुना हैः अमरीका में ऐसा हुआ। कोलेरेडो में जब पहली दफा सोने
की खदानें मिलीं, तो सारी दुनिया कोलेरेडो की तरफ भागने लगी; सारा अमरीका कोलेरेडो की तरफ भागने लगा। सोना जगह-जगह था। खेतों में पड़ा था। जहां खोदो, वहां मिल रहा था। जो गया, वही धनपति हो गया।
एक आदमी के पास काफी संपत्ति थी; कोई एक करोड़ रुपया था। उसने सब संपत्ति बेचकर... । उसने सोचाः छोटा-मोटा काम क्या करना। सब संपत्ति बेचकर एक पूरा पहाड़ खरीद लिया। इसी आशा में कि अब तो धन ही धन हो जाएगा। लेकिन संयोग की बात, पहाड़ बिल्कुल सोने से खाली था। बड़ी खुदाई की। यहां खोदा, वहां खोदा। थकने लगा; घबड़ाने लगा। टुकड़ा भी सोने का नहीं मिला।
फिर किसी ने कहा, खुदाई गहरी होनी चाहिए। सोना तो है, खोज करने वालों
ने कहा, लेकिन गहरे में है; पहाड़ में नीचे दबा है। तो उसने बड़े यंत्र... । और जो कुछ पास था--घर-मकान-द्वार, गहना-जेवरात--सब बेच दिया। बड़े यंत्र लाया, पहाड़ पर बड़ी गहरी खुदाई की। लेकिन आखिर थक गया। सोना न मिला, सो न मिला। उसने अखबारों में विज्ञापन दिया कि मैं पूरा पहाड़, खोदने के सारे यंत्रों के साथ, बेचना चाहता हूं। उसके मित्रों ने कहाः कौन खरीदेगा? अब तुम बेकार विज्ञापन में पैसा खराब मत करो। तुम्हारी खबर तो सारे अमरीका में पहुंच गयी है। सबको पता हो गया है कि तुम्हें पहाड़ पर कुछ भी नहीं मिला है! सब तुमने गंवा दिया है इसके पीछे। अब कौन पागल गंवाएगा?
उसने कहाः मैं ही कोई एक अकेला पागल थोड़े ही हूं इतने बड़े मुल्क में, कोई एकाध होगा। और निकल आया एक आदमी! और उसने एक करोड़ रुपए देकर वह पूरा पहाड़ खरीद लिया। उसके मित्रों ने कहा कि तुम महा पागल हो! वह आदमी बरबाद हो गया--तुम देखते नहीं? उसने कहाः जहां तक उसने खोदा है, वहां तक सोना नहीं है; यह ठीक है। लेकिन खुदाई तो आगे भी हो सकती है। एक कोशिश और कर ली जाए। और तुम जानकर हैरान होओगे कि सिर्फ एक हाथ खुदाई करने पर दुनिया की सबसे बड़ी खदान मिली। सिर्फ एक हाथ और खुदाई करने की बात थी।
तो कभी दिशा गलत होती है, तब तो मिल ही नहीं सकता। कभी दिशा भी ठीक होती है, तो तुम पूरे नहीं जाते! कभी तुम जाते भी हो, तो आखिर-आखिर में चूक जाते हो। एक हाथ के फासले से भी आदमी लौट आ सकता है।
इसलिए इतनी जल्दी निर्णय मत लो कि जीवन व्यर्थ है। मैं तुमसे कहता हूं--चश्मदीद गवाह की तरह--जीवन व्यर्थ नहीं है। दिशा बदलो। और दिशा बदलने के बाद सारी ऊर्जा को खुदाई में लगा दो। और कभी निराश मत होना। नहीं तो कभी यह हो सकता है कि एक हाथ पहले से लौट आओ। खोदते ही जाना, खोदते ही जाना। आज नहीं कल, कल नहीं परसों--खोदते ही जाना--एक दिन खजाना मिलने ही वाला है। क्योंकि खजाना प्रत्येक के भीतर छिपाया ही गया है।
तुम्हारे होने में ही प्रमाण है कि तुम्हारे भीतर खजाना है। जहां जीवन है, वहीं परमात्मा भीतर विराजमान है। खुदाई करने की जरूरत है। कोई थोड़ी खुदाई से पा लेता है, क्योंकि किसी के कर्मों का जाल कम है। कोई थोड़ी ज्यादा खुदाई से पाता है; क्योंकि अतीत में बहुत कर्मों का जाल बना लिया है।
और मैं तुमसे कहता हूंः आत्महत्या मत कर लेना, नहीं तो तुमने फिर और
एक कर्म का जाल बनाया। अगले जीवन में खुदाई और मुश्किल हो जाएगी।

आत्महत्या ही करनी हो, तो कम से कम पहला साहस करो--संन्यास का। फिर मैं तुम्हें ठीक आत्महत्या का उपाय बता दूंगा। ऐसी आत्महत्या का उपाय कि पुलिस भी नहीं पकड़ेगी; अदालत में भी नहीं जाना पड़ेगा। परमात्मा के कानून में भी कहीं नहीं आओगे। मैं तुम्हें ठीक-ठीक रास्ता बता दूंगा--कैसे तिरोहित हो जाओ; कैसे विलीन हो जाओ; कैसे खो जाओ; कैसे समाप्त हो जाओ।
और यह तो सच है कि जब तुम समाप्त होते हो, तभी परमात्मा प्रगट होता है। तुम्हारे मिटने में ही उसका होना है।

पांचवां प्रश्नः आप कहते हैं कि बौद्ध धर्म में प्रार्थना के लिए जगह नहीं है। लेकिन बौद्ध मंदिरों में उनके अनुयायी प्रणति और प्रार्थना में झुकते पाए जाते हैं। यह कैसे?

बुद्ध को किसने सुना? जो लोग सुनना चाहते थे, सुन लिया। जो कहा गया था,
वह नहीं सुना गया।
बुद्ध के धर्म में प्रार्थना के लिए कोई जगह नहीं है, क्योंकि बुद्ध
के धर्म में परमात्मा के लिए ही कोई जगह नहीं है। प्रार्थना किससे करोगे? बुद्ध कहते हैंः परमात्मा बाहर नहीं है। अगर बाहर हो, तो प्रार्थना हो सकती है--हाथ जोड़ो; नमस्कार करो; मांग करो; स्तुति करो; महिमा का गीत गाओ। लेकिन परमात्मा बाहर नहीं है। परमात्मा भीतर है। और परमात्मा कहना भी उसे, ठीक नहीं है। क्यों कहना ठीक नहीं है? क्योंकि परमात्मा शब्द से ही ऐसा भाव होता है कि दुनिया को बनाने वाला, चलाने वाला।
बुद्ध के विचार में न कोई चलाने वाला है, न कोई बनाने वाला है। दुनिया अपने से चल रही है। धर्म है, परमात्मा नहीं है। नियम है, नियंता नहीं है। इसलिए प्रार्थना किससे करो!
और प्रार्थना का मतलब ही क्या हो गया है? लोगों की प्रार्थना क्या है? खुशामद है।
इस देश में इतनी रिश्वत चलती है, इतनी खुशामद चलती है, उसका कारण यही
है कि इस देश में पुरानी आदत प्रार्थना की पड़ी है। इस देश से रिश्वत मिटाना बहुत मुश्किल है। क्योंकि लोग भगवान को रिश्वत देते रहे हैं! चले! उन्होंने कहा कि चलो, हनुमान जी! अगर मेरा दुश्मन मर जाए, तो एक नारियल चढ़ा देंगे!
यह क्या है? रिश्वत है। और खूब सस्ते में निपटा रहे हो! एक सड़ा नारियल खरीद लाओ, क्योंकि हनुमानजी के मंदिर में चढ़ाने के लिए कोई अच्छा नारियल तो खरीदता नहीं।
अलग दुकानें होती हैं तीर्थ-स्थानों में, जहां कि चढ़ाने के लिए नारियल बिकते हैं। अलग ही दुकानें होती हैं, जहां सड़े-सड़ाए नारियल बिकते हैं। और ऐसे नारियल बिकते हैं, जो हजार दफे चढ़ चुके हैं और फिर लौट आते हैं। इधर तुम चढ़ाकर आए कि पुजारी उन्हें दुकानों पर बेच जाता है सुबह आकर। फिर चढ़ जाते हैं; फिर चढ़ जाते हैं! हनुमानजी भी थक गए होंगे उन्हीं नारियलों से।
एक नारियल चढ़ाकर तुम मुकदमा जीतना चाहते हो! पत्नी की बीमारी दूर करना चाहते हो! चुनाव जीतना चाहते हो! आम आदमी की तो बात छोड़ो; तुम्हारे जो तथाकथित नेता हैं, उनकी भी मंदबुद्धिता की कोई सीमा नहीं है! वे भी चुनाव लड़ते हैं, तो हनुमानजी के मंदिर के सहारे लड़ते हैं। कोई ज्योतिषी... । हर आदमी के ज्योतिषी हैं दिल्ली में। हर नेता का ज्योतिषी है। वह पहले ज्योतिषी को पूछता है कि जीतेंगे, कि नहीं! फिर किसी गुरु का आशीर्वाद लेने जाता है। मेरे पास तक लोग आ जाते हैं! कि आशीर्वाद दीजिए।
एक राजनेता आए। मैंने उनसे पूछाः पहले यह बताओ कि किसलिए? क्योंकि राजनेताओं से मैं डरता हूं। डरता इसलिए हूं कि तुम्हारे इरादे कुछ खराब हों! पहले यह तो पक्का हो जाए कि तुम किसलिए आशीर्वाद चाहते हो। उन्होंने कहाः अब आपको तो सब पता ही है! चुनाव में खड़ा हो रहा हूं।
मैंने कहाः अगर मैं आशीर्वाद दूं, तो यही दूंगा कि तुम हार जाओ। इसमें तुम्हारा भी हित होगा और देश का भी हित होगा।

वे तो बहुत घबड़ा गए कि आप क्या कह रहे हैं! ऐसा वचन न बोलिए! संत पुरुषों को ऐसा वचन नहीं बोलना चाहिए।
मैंने कहाः और कौन बोलेगा!
उन्होंने कहाः मैं तो जहां जाता हूं, सभी जगह आशीर्वाद पाता हूं।
मैंने कहाः तुम्हें जो आशीर्वाद देते होंगे, वे तुम जैसे ही लोग होंगे। तुम्हें उनसे आशा है कि कुछ मिल जाएगा; उनको तुमसे आशा है कि उनको तुमसे कुछ मिल जाएगा। वे तुमको ही आशीर्वाद नहीं दिए हैं। तुम्हारे विपरीत जो खड़ा है, उसको भी आशीर्वाद दिए हैं। कोई भी जीत जाए।
तुम भगवान को रिश्वत देते रहे हो। तुम्हारी प्रार्थना एक तरह की रिश्वत और खुशामद है--कि मैं पतित और तुम पतितपावन। तुम अपने को छोटा करके दिखाते हो; हालांकि तुम जानते हो कि यह मामला ठीक नहीं है। हम और छोटे? मगर कहना पड़ता है। शिष्टाचारवश भगवान के सामने तुम कहते हो कि तुम महान, मैं क्षुद्र। हालांकि तुम जानते हो कि महान असली में कौन है!
मगर आदमी को तो जरूरत पड़ जाए, तो गधे से बाप कहना पड़ता है। तो यह तो परमात्मा है; अब इनसे तो जरूरत पड़ी है, तो कहना ही पड़ेगा। हालांकि बगल की नजर से तुम देखते रहते हो कि अगर नहीं हो पाया, तो समझ लेना। अगर मेरी बात पूरी न हुई, तो फिर कभी प्रार्थना न करूंगा।
बुद्ध ने कहाः न कोई परमात्मा है... । बुद्ध तुम्हारी रिश्वत की धारणा
को तोड़ देना चाहते थे। बुद्ध चाहते थे कि तुम जागो। तुम अपने को बदलो। तुम किसी का सहारा मत खोजो। वहां कौन है सहारा देने वाला! तुम्हारी बनायी हुई मूर्तियों को प्रतिष्ठित कर लिया है। तुम्हीं ने बनायीं, तुम्हीं ने रख लीं, तुम्हीं उनके सामने झुके हो। खूब खेल चल रहा है! आदमी की धोखे की भी कोई सीमा नहीं है!
बुद्ध ने कहाः कोई परमात्मा नहीं है।
इसका मतलब यह नहीं कि परमात्मा नहीं है। इसका इतना ही अर्थ है कि अगर परमात्मा है, तो तुम्हारे चैतन्य में छिपा है। वह तुम्हारे चैतन्य की सुवास है। अपने चैतन्य को निखारो और परमात्मा प्रगट होगा। प्रार्थना से नहीं, ध्यान से प्रगट होगा।
प्रार्थना में दूसरा है। ध्यान में कोई दूसरा नहीं है, तुम अपने भीतर उतरते हो। अपने को निखारते, साफ करते, पोंछते। धीरे-धीरे जब विचार झड़ जाते हैं, वासनाएं गिर जाती हैं, तब तुम्हारे भीतर वह ज्योतिर्मय, वह चिन्मय प्रगट होता है।
तुम्हारे इस मृण्मय रूप में चिन्मय छिपा है--यह बुद्ध ने कहा।
प्रार्थना से नहीं होगा, ध्यान से होगा।
लेकिन, जैसा मैंने तुमसे पहले कहा, सुनता कौन है बुद्ध की! लोग बुद्ध
की ही प्रार्थना करने लगे! लोगों ने बुद्ध के ही मंदिर बना लिए। और लोगों ने कहाः चलो, कोई परमात्मा नहीं है, चलेगा। आप ही परमात्मा हैं। हम आपके ही चरणों में झुकते हैं। आपकी ही प्रार्थना करेंगे!
बुद्ध ने घोषणा की थी, परमात्मा नहीं है, ताकि तुम समझ जाओ कि तुम भी परमात्मा हो।
नीत्शे का एक बहुत प्रसिद्ध वचन है कि जब तक ईश्वर है, तब तक आदमी स्वतंत्र न हो सकेगा। इसलिए नीत्शे ने कहाः ईश्वर मर गया है।
इससे आदमी स्वतंत्र हुआ, ऐसा नहीं लगता है। सिर्फ विक्षिप्त हुआ है। नीत्शे खुद पागल होकर मरा।
बुद्ध ने भी यही कहा कि कोई ईश्वर नहीं है। क्योंकि बुद्ध भी समझते हैं कि जब तक ईश्वर है, तुम स्वतंत्र न हो सकोगे। लेकिन बुद्ध पागल नहीं हुए; स्वयं परमात्मा हो गए। कैसे यह क्रांति घटी!
बुद्ध ने कहाः कोई ईश्वर नहीं है, क्योंकि तुम ईश्वर हो। प्रार्थना किसकी करते हो? जिसकी प्रार्थना करते हो, वह तुम्हारे भीतर बैठा है। बुद्ध ने तुम्हें महिमा दी। बुद्ध ने मनुष्य को परम महिमा दी।
बुद्ध की धारणा को चंडीदास ने अपने एक वचन में प्रगट किया हैः साबार ऊपर मानुष सत्य, ताहार ऊपर नाहीं। सबसे ऊपर मनुष्य का सत्य है और उसके ऊपर और कोई सत्य नहीं है।

बुद्ध मनुष्य-जाति के सबसे बड़े मुक्तिदाता थे। सबसे मुक्ति दिला दी। लेकिन आदमी गुलाम है; आदमी मुक्ति चाहता नहीं। तुम उसे किसी तरह जंजीरों से निकाल लो, वह फिर जंजीरें बांध लेता है। तुम किसी तरह उसे धक्के देकर कारागृह के बाहर करो, वह दूसरे दरवाजे से भीतर घुस जाता है। आदमी को गुलामी में सुरक्षा मालूम पड़ती है!
इसलिए बुद्ध ने तो कहा था कि अब प्रार्थना न हो, ध्यान हो। लेकिन लोगों ने बुद्ध की ही प्रार्थना करनी शुरू कर दी। बुद्ध के मंदिर बने; मूर्तियां बनीं। प्रार्थना चली। लोग बुद्ध की प्रार्थना तो करने लगे, लेकिन बुद्ध के मूल-तत्व से चूक गए।
प्रत्येक द्रष्टा की अपनी प्रक्रिया है। उस प्रक्रिया में तुमने जरा
भी कुछ जोड़ा-घटाया कि खराब हो जाती है। और हम जोड़ते-घटाते हैं। हम अपने मन को बीच में ले आते हैं। हम अपनी वासनाओं को बीच में ले आते हैं। हम रंग डालते हैं चीजों को; हम अपना रंग दे देते हैं।
बुद्ध के धर्म में प्रार्थना की तो कोई जगह नहीं है, लेकिन झुकने की जगह है। इसको ख्याल में रखना। और तब बड़ा कठिन हो जाता है बुद्ध को समझना। क्योंकि बुद्ध ने इतनी ऊंची उड़ान ली है कि समझना बहुत कठिन हो जाता है। बुद्ध कहते हैंः प्रार्थना की तो कोई जरूरत नहीं है, लेकिन झुकने का भाव कीमती है। किसी के सामने मत झुकना, झुक ही जाना। झुकना किसी के सामने गलत है। लेकिन झुकना अपने आप में सही है। क्योंकि जो झुकता है, समर्पित होता है। जो झुकता है, वह मिटता है। जो झुकता है, उसका अहंकार खोता है।
अब यह बड़ा कठिन है। तुम्हें यह समझ में आता है कि अगर मूर्ति हो, परमात्मा हो, तो झुका जा सकता है। कोई झुकने को तो चाहिए! बुद्ध कहते हैंः झुकने को कोई नहीं चाहिए। झुकना शुद्ध होना चाहिए। क्योंकि अगर तुम किसी के सामने झुकोगे, तो किसी वासना से झुकोगे। तुम अगर किसी के सामने झुकोगे, तो तुम्हारे झुकने में कोई हेतु रहेगा। यह कोई असली झुकना नहीं होगा।
जब तुम बिना किसी वासना के झुकोगे; सिर्फ झुक जाओगे; झुकने का मजा लोगे; न कोई मांग है, न कोई मांग को पूरी करने वाला है। तुम एक वृक्ष के पास झुके पड़े हो। या जमीन पर सिर रखे पड़े हो; तुम मिट रहे हो, गल रहे हो, तुम विसर्जित हो रहे हो। जो पूरी तरह झुक गया, वह पूरी तरह उठ गया। और जो अकड़ा खड़ा रहा, वह चूकता चला गया है।
ध्यान रखनाः पहाड़ खड़े हैं अकड़े हुए, इसलिए पानी से खाली रह जाते हैं। वर्षा तो उन पर होती है, लेकिन खाली रह जाते हैं। और झीलें, जो खाली हैं, झुकी हैं; गड्ढे हैं; सिर उठाए नहीं खड़े हैं--उनमें जल भर जाता है। परमात्मा तो रोज बरस रहा है। सारा जगत चैतन्य से भरा है। तुम्हीं चैतन्य से भरे नहीं हो; सभी कुछ चैतन्य से भरा है। चेतना का ही सारा जाल है। चेतना प्रतिपल बरस रही है, लेकिन तुम अकड़े खड़े हो। अकड़े खड़े हो, इसलिए खाली रह जाते हो। झुको।
बुद्ध से किसी ने पूछा है... । क्योंकि बुद्ध ने कहाः किसी के सामने नहीं झुकना है। कोई पहुंच गया होगा तार्किक व्यक्ति। उसने देखा कि बुद्ध कहते हैंः किसी के सामने नहीं झुकना; और लोग बुद्ध के सामने ही झुक रहे हैं! और लोग कह रहे हैं; बुद्धं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि। धम्मं शरणं गच्छामि। बुद्ध की शरण आता हूं; संघ की शरण आता हूं; धर्म की शरण आता हूं।
किसी तार्किक ने देखा होगा कि यह क्या हो रहा है! और बुद्ध कहते हैंः किसी के सामने झुकना मत। तो उसने पूछा कि यह आप कैसे स्वीकार कर रहे हैं! लोग आपके सामने झुक रहे हैं!
बुद्ध ने कहा कि नहीं; मेरे सामने कोई नहीं झुक रहा है। लोग झुक रहे हैं। अभी लोग इतने कुशल नहीं हो पाए हैं, इसलिए मेरा सहारा लेकर झुक रहे हैं। मगर मेरे सामने नहीं झुक रहे हैं।
जैसे छोटे बच्चे को हम पढ़ाते हैं, तो कहते हैं, ग गणेश का। पुराने जमाने में कहते थे। अब कहते हैंः ग गधा का। उसको गधा या गणेश से जोड़ना पड़ता है ग को, नहीं तो बच्चे को ग समझ में नहीं आता। हां, गणेशजी की मूर्ति दिख जाती है, तो वह समझ जाता है कि ठीक, ग गणेश का।

फिर जिंदगीभर थोड़े ही ग गणेश का! फिर जब भी ग आए, तभी पढ़ना पड़े ग गणेश का, तो फिर पढ़ना ही मुश्किल हो जाए। फिर तो ग गणेश का, और आ आम का, और इसी तरह अगर पढ़ाई करनी पड़े, तो पढ़ाई क्या हो पाएगी! फिर तो एक लाइन भी पढ़ नहीं पाओगे। इतनी चीजें आ जाएंगी कि भटक ही जाओगे। पंक्ति का तो अर्थ खो जाएगा। फिर धीरे-धीरे गणेशजी छूट जाते हैं, गधाजी भी छूट जाते हैं। फिर ग ही शुद्ध रह जाता है।
तो बुद्ध ने कहाः जैसे छोटे बच्चे को चित्र का सहारा लेकर समझाते हैं, ऐसे ये अभी छोटे बच्चे हैं। मैं तो सिर्फ ग गणेश का। जल्दी ही ये प्रौढ़ हो जाएंगे, फिर मेरी जरूरत न होगी। फिर मेरे बिना सहारे के झुक जाएंगे।
जैसे मां बच्चे को चलाती है हाथ पकड़कर। फिर जब बच्चा चलने लगता है, हाथ अलग कर लेती है। ऐसे सदगुरु चलाता है। फिर जब बड़ा हो जाता है, प्रौढ़ हो जाता है व्यक्ति, हाथ अलग कर लेता है।
फिर इस बुद्ध के वचनों में ये जो तीन शरण हैं--त्रिरत्न--ये भी समझने जैसे हैं। पहला हैः बुद्धं शरणं गच्छामि। बुद्ध एक व्यक्ति हैं। फिर दूसरा हैः संघं शरणं गच्छामि। वह बुद्ध से बड़ा हो गया मामला। दूसरा चरण आगे का है। बुद्ध के ही नहीं, जितने बुद्ध हुए हैं, उन सबके संघ की शरण जाता हूं। एक बुद्ध से इशारा लिया, सहारा लिया। एक बुद्ध को पहचाना। एक बुद्ध से संबंध जोड़ा। फिर आगे चले।
जैसे घाट से उतरे, तो सीढ़ियों पर चले। फिर सीढ़ियों से उतरे, तो नदी में गए। बुद्धं शरणं गच्छामि। जिससे पहचान बनी, जिससे नाता जोड़ा, जिससे शिष्यत्व का संबंध बना--उसकी शरण गए। फिर जल्दी ही ख्याल में आना शुरू हुआ कि बुद्ध ही थोड़े बुद्ध हैं; कृष्ण भी बुद्ध हैं; महावीर भी बुद्ध हैं; पतंजलि भी बुद्ध हैं; लाओत्सू भी बुद्ध हैं। फिर और सारे बुद्ध दिखायी पड़ने लगे। एक फूल से क्या पहचान हुई, फिर सारे फूलों से पहचान होने लगी। एक नदी का क्या जल पीया, फिर सारे नदियों के जल की समझ आने लगी कि यही जल है। सभी जगह गंगाजल है। तो दूसरी शरण है--संघं शरणं गच्छामि।
और तीसरी शरण और बड़ी हो गयी। फिर जब सब बुद्धों को देखा, सब फूलों को देखा, तो उन फूलों के भीतर अनस्यूत धागा दिखायी पड़ने लगा--कि इतने बुद्ध हुए, ये सब कैसे बुद्ध हुए? ये किस कारण बुद्ध हुए? धर्म के कारण। फिर बुद्ध भी गए; बुद्धों का संघ भी गया; फिर धम्मं शरणं गच्छामि--फिर धर्म की शरण आए। और एक दिन वह भी चला जाएगा। फिर सिर्फ झुकना रह जाएगा, शुद्ध झुकना।
सीढ़ियां उतरे; बुद्ध सीढ़ियों जैसे। फिर नदी में गए; नदी बुद्धों के संघ जैसी। फिर नदी में बहे और सागर में पहुंचे; सागर धर्म जैसा। फिर सागर में गले और एक हो गए। फिर झुकना शुद्ध हो गया। फिर असली शरण हाथ लगी। फिर तुम धन्यवाद करोगे--बुद्धों का, धर्म का, बुद्ध का; अनुग्रह मानोगे। अब झुकना शुद्ध हो गया। अब तुमने जान लिया कि मेरे न होने में ही मेरे होने का असली राज है। मेरी शून्यता में ही मेरी पूर्णता है।
आज इतना ही।